बाबासाहेब डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

जन्म : 14 अप्रैल, 1891 परिनिर्वाण 6 दिसंबर, 1956

बाबासाहेब

डॉ. अम्बेडकर

सम्पूर्ण वाङ्मय

लेख और भाषण

खंड 36

डॉ. बी. आर. अम्बेडकर और उनकी समतावादी
क्रांति : सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक
गतिविधियों के परिप्रेक्ष्य में

डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय

खंड : 36

डॉ. भीमराव अम्बेडकर और उनकी समतावादी क्रांति : सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक गतिविधियों के परिप्रेक्ष्य में

पहला संस्करण : 2019 (जून)

ISBN : 978-93-5109-144-8

© सर्वाधिकार सुरक्षित

आवरण परिकल्पना : श्री देबेन्द्र प्रसाद माझी

पुस्तक के आवरण पर उपयोग किया गया मोनोग्राम बाबासाहेब डॉ. बी. आर. अम्बेडकर के लेटरहेड से साभार

ISBN (सेट) : **978-93-5109-129-5**

खंड 22–40 सामान्य (पेपरबैक) के 1 सेट का मूल्य :

प्रकाशक :

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

15, जनपथ

सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय

भारत सरकार, नई दिल्ली – 110 001

फोन : 011–23320588, 23320571

जनसंपर्क अधिकारी मोबाइल नं. 85880–38789

वेबसाइट : http://drambedkarwritings.gov.in

Email-Id : cwbadaf17@gmail.com

मुद्रक : अरावली प्रिंटर्स एंड पब्लिशर्स प्रा.लि., W-30 ओखला, फेज–2, नई दिल्ली–110020

परामर्श सहयोग

डॉ. थावरचन्द गेहलोत
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री
भारत सरकार
एवं
अध्यक्ष, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

श्री रामदास अठावले
सामाजिक न्याय और अधिकारिता राज्य मंत्री

श्री कृष्णपाल गुर्जर
सामाजिक न्याय और अधिकारिता राज्य मंत्री

श्री रतनलाल कटारिया
सामाजिक न्याय और अधिकारिता राज्य मंत्री

श्रीमती नीलम साहनी
सचिव
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय
भारत सरकार

श्रीमती रश्मि चौधरी
संयुक्त सचिव
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार
एवं सदस्य सचिव, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

श्री देबेन्द्र प्रसाद माझी
निदेशक
डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

डॉ. बृजेश कुमार
संयोजक
बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाड्:मय
डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

अंग्रेजी में सकंलन
श्री वसंत मून

अनुवादक
सीताराम खोड़ावाल

पुनरीक्षक
श्री उमराव सिंह

सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री
भारत सरकार
MINISTER OF SOCIAL JUSTICE & EMPOWERMENT
GOVERNMENT OF INDIA
तथा
अध्यक्ष, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान
CHAIRPERSON, DR. AMBEDKAR FOUNDATION

संदेश

स्वतंत्र भारत के संविधान के निर्माता डॉ. अम्बेडकर, बहुआयामी प्रतिभा के धनी थे। डॉ. अम्बेडकर एक उत्कृष्ट बुद्धिजीवी, प्रकाण्ड विद्वान, सफल राजनीतिज्ञ, कानूनविद्, अर्थशास्त्री और जनप्रिय नायक थे। वे शोषितों, महिलाओं और गरीबों के मुक्तिदाता थे। डॉ. अम्बेडकर सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष के प्रतीक है। डॉ. अम्बेडकर ने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सभी क्षेत्रों में लोकतंत्र की वकालत की। एक मजबूत राष्ट्र के निर्माण में डॉ. अम्बेडकर का योगदान अतुलनीय है।

डॉ. अम्बेडकर के लेख एवं भाषण क्रांतिकारी वैचारिकता एवं नैतिकता के दर्शन–सूत्र है। भारतीय समाज के साथ–साथ संपूर्ण विश्व में जहां कहीं भी विषमतावादी भेदभाव या छुआछूत मौजूद है, ऐसे समस्त समाज को दमन, शोषण तथा अन्याय से मुक्त करने के लिए डॉ. अम्बेडकर का दृष्टिकोण और जीवन–संघर्ष एक उज्ज्वल पथ प्रशस्त करता है। समतामूलक, स्वतंत्रता की गरिमा से पूर्ण, बंधुता वाले एक समाज के निर्माण के लिए डॉ. अम्बेडकर ने देश की जनता का आह्वान किया था।

डॉ. अम्बेडकर ने शोषितों, श्रमिकों, महिलाओं और युवाओं को जो महत्त्वपूर्ण संदेश दिए, वे एक प्रगतिशील राष्ट्र के निर्माण के लिए अनिवार्य दस्तावेज है। तत्कालीन विभिन्न विषयों पर डॉ. अम्बेडकर का चिंतन–मनन और निष्कर्ष जितना उस समय महत्त्वपूर्ण था, उससे कहीं अधिक आज प्रासंगिक हो गया है। बाबासाहेब की महत्तर मेधा के आलोक में हम अपने जीवन, समाज राष्ट्र और विश्व को प्रगति की राह पर आगे बढ़ा सकते हैं। समता, बंधुता और न्याय पर आधारित डॉ. अम्बेडकर के स्वप्न का समाज–"सबका साथ सबका विकास" की अवधारणा को स्वीकार करके ही प्राप्त किया जा सकता है।

मुझे यह जानकर अत्यंत प्रसन्न्ता हो रही है, कि सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय का स्वायत्तशासी संस्थान, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, "बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर : संपूर्ण वांग्मय" के अन्य अप्रकाशित खण्ड 22 से 40 तक की पुस्तकों को, बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के अनुयायियों और देश के आम जन–मानस की मांग को देखते हुए मुद्रत किया जा रहा है।

विद्वान, पाठकगण इन खंडों के बारे में हमें अपने अमूल्य सुझाव से अवगत कराएंगे तो हिंदी में अनुदित इन खंडों के आगामी संस्करणों को और बेहतर बनाने में सहयोग प्राप्त हो सकेगा।

(डॉ. थावरचंद गेहलोत)

प्राक्कथन

भारत रत्न बाबासाहेब डॉक्टर भीमराव अम्बेडकर अप्रतिम प्रतिभा के धनी थे। वे सच्चे देशभक्त थे। उन्होंने देश की महान सेवा की। देश को कमजोर बनाने वाली समस्याओं को समझा और उनके कारणों को एक अन्वेशी के रूप में तह तक पहुंचकर जानने का अथक प्रयास किया। समाज में व्याप्त जाति व्यवस्था को वे प्रजातंत्र के लिए घातक मानते थे। वे वर्ण–व्यवस्था को, जाति व्यवस्था की जननी मानते थे। मनुष्य–मनुष्य के साथ अमानवीय व्यवहार करे, उसके साथ छुआछूत बरते, वह मनुष्य सभ्य नहीं कहा जा सकता, वह समाज जो इसकी आज्ञा दे वह समाज सभ्य नहीं कहा जा सकता। आज समाज की कुप्रथा को अवैध करार दे दिया गया है। बाबासाहेब के प्रयासों का ही परिणाम है।

बाबासाहेब डॉक्टर भीमराव अम्बेडकर के अंग्रेजी में प्रकाशित वाङ्मय को हिन्दी के अतिरिक्त देश की अन्य 8 क्षेत्रीय भाषाओं में अनुदित किया जा रहा है।

मैं प्रतिष्ठान की ओर से माननीय, सामाजिक न्याय और अधिकारिता 'मंत्री' एवं सचिव, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार का आभार व्यक्त करती हूँ जिनके सद्परामर्श एवं प्रेरणा से प्रतिष्ठान के कार्यों में अपूर्व प्रगति आई है।

प्रस्तुत हिन्दी खंड–36 में **"डॉ. भीमराव अम्बेडकर और उनकी समावादी क्रांति : सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक गतिविधियों के परिप्रेक्ष्य में"** नामक शोधपूर्ण रचना समाहित है। मानविकी के अध्येताओं लिए तो आधारभूत सामग्री है ही, साथ ही यह सामग्री समाज निर्माण के सुधी एवं सजग प्रहरियों के लिए चिंतन का आधार बनेगी। पाठकों के बहुमूल्य सुझावों की प्रतिक्षा बनी रहेगी।

नई दिल्ली

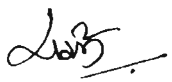

रश्मि चौधरी
सदस्य सचिव,
डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

प्रकाशकीय

महाराष्ट्र सरकार द्वारा अंग्रेजी में प्रकाशित डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर, वाड़्मय का हिंदी एवं अन्य 8 क्षेत्रीय भाषाओं में डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा अनुवाद किया गया। इस अनूदित कार्य का सुधी पाठकों ने हृदय से स्वागत किया है।

हमें प्रसन्नता है कि हम अपने पाठकों के समक्ष खंड 36 (अंग्रेजी खंड–17 भाग–2) हिंदी में समर्पित कर रहे है।

प्रस्तुत खंड में **"डॉ. भीमराव अम्बेडकर और उनकी समावादी क्रांति : सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक गतिविधियों के परिप्रेक्ष्य में"** में शोधपूर्ण सामग्री समाहित की गई है। बाबासाहेब अम्बेडकर ने भारतीय इतिहास के तथाकथित स्वर्णयुग से छुआछूत के औचित्य पर प्रश्न चिन्ह लगाया है। आज की सभ्यता और आवश्यकता के संदर्भ में सुधी पाठक, इतिहास को नए सिरे से देखना चाहेगा।

अंत में मैं अपने संयोजक, अनुवादकों, पुनरीक्षकों आदि सभी सहयोगियों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ जिनकी निष्ठा एवं सतत् प्रयत्न से यह कार्य संपन्न किया जा सका है।

हमें आशा और विश्वास है कि हमारे पाठक पूर्ववत की तरह इस खंड का भी स्वागत करेंगे।

नई दिल्ली

देबेन्द्र प्रसाद माझी
निदेशक,
डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

<u>अस्वीकरण</u>

डॉ. अम्बेडकर के लेख एवं भाषण क्रांतिकारी वैचारिकता एवं नैतिकता के दर्शन–सूत्र हैं। भारतीय समाज के साथ–साथ संपूर्ण विश्व में जहां कहीं भी विषमतावादी भेदभाव या छुआछूत मौजूद है, ऐसे समस्त समाज को दमन, शोषण तथा अन्याय से मुक्त करने के लिए डॉ. अम्बेडकर का दृष्टिकोण और जीवन–संघर्ष एक उज्ज्वल पथ प्रशस्त करता है। समतामूलक, स्वतंत्रता की गरिमा से पूर्ण, बंधुता वाले एक समाज के निर्माण के लिए डॉ. अम्बेडकर ने देश की जनता का आह्वान किया था।

सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय का स्वायत्तशासी संस्थान, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, **''बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकरः संपूर्ण बाङ्मय''** के अन्य अप्रकाशित खण्ड 22 से 40 तक की पुस्तकों को, बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के अनुयायियों और देश के आम जन–मानस की मांग को देखते हुए मुद्रण किया जा रहा है।

विद्वान एवं पाठकगण इन खंडों के बारे में तथा व्याकरण एवं मुद्रण सम्बधी सुझाव से डॉ अम्बेडकर प्रतिष्ठान को उसकी वैधानिक ई–मेल आई.डी. **cwbadaf17@gmail.com** पर अवगत कराएं ताकि हिंदी में प्रथमवार अनुदित, इन खंडों के आगामी संस्करणों को और बेहतर बनाने में सहयोग प्राप्त हो सकें।

पाठकों के बहुमूल्य सुझावों की प्रतिक्षा बनी रहेगी।

निदेशक

बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण बाङ्मय
डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान,
नई दिल्ली–01

जिस समाज में कुछ वर्गों के लोग जो कुछ चाहें वह सब कुछ कर सकें और बाकी वह सब भी न कर सकें जो उन्हें करना चाहिए, उस समाज के अपने गुण होते होंगे, लेकिन इनमें स्वतंत्रता शामिल नहीं होगी। अगर इंसानों के अनुरूप जीने की सुविधा कुछ लोगों तक ही सीमित है, तब जिस सुविधा को आमतौर पर स्वतंत्रता कहा जाता है, उसे विशेषाधिकार कहना अधिक उचित होगा।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर

विषय सूची

संदेश		v
प्राक्कथन		vii
प्रकाशकीय		viii
अस्वीकरण		ix
1.	अल्पसंख्यकों की आकांक्षाओं का पता लगाएँ	1
2.	इंग्लैड में डॉ. अम्बेडकर के राजनैतिक मिशन के बारे में "डॉन" में प्रकाशित समाचार	3

परिच्छेद III

राष्ट्र और इसके लोकतंत्र के निर्माण के बारे में

3.	जवाबदेही के बिना प्रांतीय स्वायत्तता अविवेकपूर्ण	6
4.	संयुक्त बनाम अलग–अलग निर्वाचन क्षेत्र	7
5.	आश्वासन से गवर्नर को कोई नुकसान नहीं; न ही कांग्रेस को कोई फायदा	11
6.	2यह मात्र पार्टी का कदम है न कि कोई राष्ट्रीय प्रयोजन	16
7.	वयस्क मताधिकार लागू करने के लिए हम अविराम संघर्ष करेंगे	17
8.	संघीय ढ़ांचे के विरुद्ध लामबंदी राष्ट्र के इतिहास में मोड़	20
9.	मतदान की वितरणात्मक प्रणाली	21
10.	ग्रेट ब्रिटेन का समर्थन आवश्यक	24
11.	भारत का दो भागों में विभाजन रोकने के लिए सद्बुद्धि और राजनीतिमत्ता जागृत होगी	32
12.	अत्यंत अस्पष्ट योजना सलाहकार समिति में डॉ. अम्बेडकर	34
13.	सामाजिक समरसता के माध्यम से ही हम एक राष्ट्र बन सकते हैं	35
14.	सुभाष चंद्र बोस और डॉ. भीमराव अम्बेडकर की मुलाकात	36
15.	कांग्रेस के निर्णय का तात्पर्य गांधी जी की आपत्ति पर डॉ. अम्बेडकर के विचार	37
16.	भारतीय संकट के समाधान की डॉ. अम्बेडकर की योजना	39
17.	भारतीयों की नियति लोकतंत्र की जीत से ज़ुड़ी है	45
18.	भारतीय राजनैतिक गतिरोध को कैसे समाप्त किया जाए	50
19.	जिन्ना के भय को दूर करना होगा	52
20.	केन्द्रीय सिंचाई तथा जलमार्ग सलाहकार बोर्ड से संबंधित पहला प्रस्ताव	54
21.	दोनों गंभीर गलती कर रहे हैं	56

22. सप्रू गलत हैं 60
23. सर्वोत्तम फायदे के लिए महानदी का नियंत्रण एवं उपयोग 62
24. हमें भारत में सभी पार्टियों के बीच सहयोग की 64
25. जब तक ये मुद्दे स्पष्ट नहीं होते, विभाजन के मुद्दे पर कोई बातचीत नहीं 66
26. भारत सरकार किसी भी रियासत को संप्रभु स्वतंत्र रियासत के रूप में मान्यता नहीं देगी 67
27. बरार 15 अगस्त को निजाम के पास वापस जाएगा 70
28. यदि खींची गई सीमारेखा प्राकृतिक नहीं होगी तो यह भारत के लोगों की सुरक्षा और संरक्षा को भारी खतरे में डाल देगी 72
29. विधि के समक्ष भारत के नागरिकों के अधिकार समान हैं एलन कैम्पबेल की डॉ. अम्बेडकर के साथ बातचीत 75
30. केन्द्र और प्रांतों के लिए एक राजभाषा 77
31. भारत और ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल 78
32. संविधान और संविधानवाद 91
33. भारत के लोग अपने मूल अधिकार पहचानेंगे 96
34. मैं यही कहता हूं कि अडिग और ईमानदार बनो 99
35. ताकत बढ़ाए बिना स्वतंत्र विदेश नीति की बातें करने का कोई औचित्य नहीं 101
36. अमेरिका का झुकाव पाकिस्तान की ओर 102
37. अंग्रेजी को किसी भी कीमत पर बनाए रखें 103
38. सार्वजनिक मामलों में एकतरफा यातायात 104
39. बाढ़ नियंत्रण परमाणु शक्ति का उपयोग 105
40. अखण्ड विशालकाय राज्यों के निर्माण का प्रबल विरोध 108
41. महाराष्ट्र के लिए अम्बेडकर का फार्मूला जनता की आवाज 109

परिच्छेद–IV

संस्थाएं, संगठन और उनके संविधान

42. कार्यकारी परिषद में अनुसूचित जातियों के प्रतिनिधित्व के लिए प्रस्ताव 115
43. केबिनेट मिशन को प्रस्तुत ज्ञापन 119
44. केबिनेट मिशन के साथ डॉ. अम्बेडकर का साक्षात्कार 134
45. डॉ. भीमराव अम्बडेकर और फील्ड मार्शल विस्काउंट वॉवेल के बीच बैठक पर टिप्पणी 136
46. अछूतों के लिए पृथक बस्तियां 141
47. केबिनेट मिशन के प्रस्तावों के विरुद्ध विरोध पत्र 143

48. केबिनेट मिशन के प्रस्तावों के संबंध में ए.वी.अलेक्जेंडर को पत्र 147
49. केबिनेट मिशन द्वारा जारी बयान के संबंध में लॉर्ड पैथिक–लॉरेन्स को पत्र 154
50. लॉर्ड पैथिक–लॉरेन्स द्वारा डॉ. भीमराव अम्बेडकर को भेजा गया स्पष्टीकरण 156
51. अम्बेडकर ने चर्चिल को चैम्पियन माना 157
52. बम्बई में हिन्दुओं– अनुसूचित जातियों के बीच संघर्ष 158
53. प्रत्यक्ष कार्रवाई पर संघ कार्यकारिणी का संकल्प केबिनेट मिशन द्वारा निर्दोष साक्ष्य की अनदेखी 161
54. ब्रिटिश केबिनेट की योजना पर प्रतिक्रियाएं डॅ. अम्बेडकर का चर्चिल को विरोध 168
55. मैं अनुसूचित जाति के अधिकारों के लिए लड़ रहा हूं प्रधानमंत्री एटली को लंदन भेजा गया तार संदेश 169
56. क्या भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस भारत के अछूतों का प्रतिनिधित्व करती है? 170
57. किसी अन्य की तुलना में, मैं बड़ा राष्ट्रवादी हूँ 187
58. श्री एटली द्वारा डॉ. भीमराव अम्बेडकर को लिखा गया पत्र 198
59. डॉ.अम्बेडकर का श्री एटली को लिखा गया विरोध पत्र 201
60. हम अधीन तो हो सकते हैं किन्तु हम आत्मसमर्पण नहीं करेंगे 204
61. लार्ड पैथिक–लॉरेन्स द्वारा प्रधानमंत्री श्री एटली को लिखा गया पत्र 206
62. चर्चिल–अम्बेडकर वार्ता 226
63. पृथक निर्वाचन क्षेत्रों की बहाली 227
64. डॉ. अम्बेडकर महसूस करते हैं कि अंग्रेज न्याय करेंगे 228

Dr. B.R. Ambedkar & His Egalitarian Revolution

Part Two

65. बहिष्कृत हितकारिणी सभा 232
66. दलित वर्ग संस्थान 244
67. स्वतंत्र श्रमिक दल 250
68. दल के लक्ष्य 252
69. स्वतंत्र श्रमिक दल 257
70. बंबई में अछूतों के लिए समाज केंन्द्र 280
71. केंद्र के कार्य और गतिविधियां 284
72. अखिल भारतीय अनुसूचित जाति संघ का संविधान 290

परिशिष्ट

73. परिशिष्ट-I अखिल भारतीय अनुसूचित जाति छात्र परिसंघ का गठन 321

74. परिशिष्ट-II हिंदू धर्म और बौद्ध धर्म में नारी की स्थिति 329
75. परिशिष्ट-III द केबिनेट मिशन 334
76 परिशिष्ट-IV 340
77. परिषिष्ट-V पूना सत्याग्रह 341
78. अनुसूचित जाति परिसंघ के सत्याग्राहियों को कैद किया गया 343
79. सत्याग्रह आंदोलन का पांचवा दिन 345
80. नागपुर सत्याग्रह 348
81. परिशिष्ट-VI पूना पैक्ट लादकर गांधी ने अछूतों का मताधिकार–से वंचित किया ब्रिटिश नेताओं ने गांधीवादी दांवपेजों की कटु आलोचना की 357
82. परिशिष्ट-VII भारत में पददलितों को अत्याचारियों के हवाले किया गया। 360
83. परिशिष्ट-VIII 367
84. परिशिष्ट-IX राज्यों का क्या होगा 371
85. परिशिष्ट-X 374
86. परिशिष्ट-XI 378
87. परिशिष्ट-XII 384
88. परिशिष्ट-XIII 386

खण्ड – 17

भाग – 2

परिच्छेद – 1

89. धर्म एवं पुरोहितों को समुचित नियंत्रण में लाया जाए। 388
90. बंबई प्रेजीडेन्सी में कानूनी शिक्षा के सुधार पर विचार 390
91. डॉ. अम्बेडकर का सर एस. राधाकृष्णन को उत्तर अतिजीवन्त सिद्धान्त 404
92. और लार्ड ने – तक कहा 405
93. बम्बई शहर के अस्पृश्नीय कर्मचारी 446
94. क्या गाँधी एक महात्मा है? 448
95. मराठी विद्वान को सहायता–निधि के लिए अपील 453
96. जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में ज्ञान ही शक्ति है 454
97. कांग्रेस का अस्पृश्यों को हटाने का प्रयास 455
98. मैं पराजयवादी मानसिकता में विश्वास नहीं करता। 460
99. हमारे विद्यार्थी सीखें एवं नेतृत्व करें 461
100. डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर का 'मराठा मन्दिर' को सन्देश 463
101. तब तक न ठहरो जब तक अस्पृश्य पुरुषार्थ न प्राप्त कर ले 465

102.	'बौद्ध धर्म का सार' की प्रस्तावना	468
103.	भारत की प्राचीन घटनाओं ने निराशावाद को जन्म दिया	471
104.	पावती शब्द का अर्थ	472
105.	बुद्ध एवं उसके धर्म का भविष्य	478
106.	हिन्दू महिला का उत्थान एवं पतनः इसके लिए जिम्मेवार कौन था?	490
107.	सन्तों का साहित्य मनुष्य के नैतिक–उत्थान में सहायता कर सकता है।	510
108.	सारांश	511
109.	दी महारों: वे कौन थे तथा वे कैसे अस्पृश्य बने?	519
110.	रिपब्लिकन पार्टी का अर्थ	532
111.	'बुद्ध एवं उसका धम्म'	538
112.	राजनीति में प्रवेश के लिए प्रशिक्षण विद्यालय	539

27

अल्पसंख्यकों की आकांक्षाओं का पता लगाएँ

लन्दन से भारत वापस आने पर पत्रकारों ने कराची हवाई अड्डे पर 15 नवम्बर, 1946 को डॉ. भीमराव अम्बेडकर से बातचीत की थी। इसकी रिपोर्ट इस प्रकार है : सम्पादक।

कराची, 15 नवम्बर, 1946 : यूनाइटेड किंगडम की यात्रा से वापस लौटकर यहाँ डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने पत्रकारों से बातचीत करते हुए आशा व्यक्त की कि ब्रिटिश सरकार भारत को संप्रभुता के हस्तांतरण से संबंधित अधिनियम को संसद में पारित करने से पूर्व वंचित वर्गों सहित अल्पसंख्यकों की वास्तविक आकांक्षाओं को जानने के लिए कुछ ठोस कदम उठाएगी।

वंचित वर्गों के बीच शांति बनाए रखने के लिए डॉ. अम्बेडकर ने इस अंतिम घड़ी में भी कांग्रेस से वंचित वर्गों को अलग राजनैतिक प्रतिनिधित्व देने की अपील की।

उन्होंने कहा कि वंचित वर्गों की समस्याओं के बारे में ब्रिटिश प्रधानमंत्री और भारत के सेक्रेटरी ऑफ स्टेट के अलावा श्री चर्चिल, श्री आर. ए. बटलर, लॉर्ड टेम्पलवुड, पूर्व सर सैम्युअल होअर, जिन्होंने भारत के सेक्रेटरी ऑफ स्टेट के पद पर रहते हुए 1935 का इण्डिया एक्ट प्रस्तुत किया था और लॉर्ड स्केपरबरो से भी चर्चा की थी।

डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि ब्रिटेन में भारत के वंचित वर्गों के प्रति न केवल हार्दिक सहानुभूति है बल्कि जिस तरीके से कैबिनेट मिशन ने वंचित वर्गों की अनदेखी की है, उसके प्रति आक्रोश भी है। उन्होंने आगे कहा : चुनाव के आँकड़ों का विश्लेषण करते हुए जो ज्ञापन मैंने प्रस्तुत किया वह सबको चौंका देने वाला था, क्योंकि उन आँकड़ों ने ब्रिटिश कैबिनेट मिशन के सदस्यों द्वारा हाऊस ऑफ कॉमन्स में दिए गए उस बयान को झुठला दिया कि कांग्रेस ही अनुसूचित जातियों का प्रतिनिधित्व करती

है। इसलिए, मेरा यह निश्चित मत है कि संप्रभुता के हस्तांतरण हेतु अधिनियम पारित करते समय संसद में जब बहस होगी, तो केवल इस तथ्य को ही मद्देनजर नहीं रखा जाएगा कि अल्पसंख्यकों के सुरक्षा उपायों के बारे में संविधान सभा का निर्णय बहुमत से लिया गया था, बल्कि सम्बन्धित अल्पसंख्यकों की वास्तविक आकांक्षाओं को जानने के लिए कुछ ठोस कदम भी उठाए जाएंगे।

यह पूछे जाने पर कि क्या वह संविधान सभा में शामिल होंगे? डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि वह जरूर शामिल होंगे और आगे कहा : मैं अपने उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए संवैधानिक तरीके से कार्य करूँगा। जब सभी संवैधानिक तरीके समाप्त हो जाएँगे तो हम विचार करेंगे कि हम और कौन से साधन अपना सकते हैं।

दोपहर को डॉ. अम्बेडकर विमान से बम्बई रवाना हो गए।"[1]

***

[1] द टाइम्स ऑफ इण्डिया, शनिवार दिनांक 16 नवम्बर, 1946
पुनर्मुद्रण : खैरमोडे, भाग 8 पृ. 142–143

28

इंग्लैड में डॉ. अम्बेडकर के राजनैतिक मिशन के बारे में "डॉन" में प्रकाशित समाचार

1 जनवरी, 1947

सरकार और विपक्ष के अग्रणी सदस्यों के साथ ब्रिटेन में एक माह के व्यापक विचार–विमर्श के बाद अनुसूचित जातियों के नेता डॉ. भीमराव अम्बेडकर अपनी कर्मभूमि भारत लौट आए हैं। अपने समाज के मामले को ब्रिटिश जनता के सामने पुरजोर तरीके से रखने के लिए उन्होंने लन्दन की यह यात्रा की थी। कांग्रेस ने पिछले कई वर्षों से देश के भीतर मनमुटाव की गलत तस्वीर पेश की है और यहाँ तक कि कैबिनेट मिशन भी इस गलतबयानी के झाँसे में आ गया है।

अखिल भारतीय अनुसूचित जाति संघ इस समुदाय का प्रतिनिधि संगठन है और इस संगठन की मजबूती और एकजुटता को छिन्न–भिन्न करने के लिए कांग्रेस बीच में आ गई है। हाऊस ऑफ कामन्स में कैबिनेट मिशन के सदस्यों के इस बयान में कि कांग्रेस अनुसूचित जातियों का प्रतिनिधित्व करती है, सच्चाई केवल इतनी ही है कि अपार संसाधनों से युक्त इस ताकतवर राजनैतिक संगठन को अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षित कई सीटों पर कब्जा जमाने में सफलता मिली है। इसका कतई यह अर्थ नहीं है कि विभिन्न विधानमंडलों में जीतकर आए लोग इस समुदाय के सच्चे प्रतिनिधि हैं।

ब्रिटेन में डॉ. अम्बेडकर का पहला काम इस मिथक को तोड़ना था और ब्रिटिश राजनेताओं को सौंपे अपने ज्ञापन में उन्होंने यह कर दिखाया। ज्ञापन का ब्यौरा प्रकाशित नहीं किया गया है, लेकिन स्वदेश लौटकर आने के बाद कराची हवाई अड्डे पर पत्रकारों से की गई बातचीत से यह स्पष्ट है कि वह अपने मिशन में काफी हद तक कामयाब रहे। उन्होंने एटली और चर्चिल सहित ब्रिटेन के कई गणमान्य लोगों से व्यक्तिगत स्तर पर बातचीत की और अतिविश्वासपूर्वक कहा कि संप्रभुता के हस्तांतरण से सम्बन्धित अधिनियम को पारित करते समय संसद में जब इस पर बहस होगी, तब अल्पसंख्यकों के लिए जरूरी सुरक्षा उपायों के संबंध में उनकी वास्तविक आकांक्षाओं को जानने के लिए ठोस कदम जरूर उठाए जाएंगे। डॉ. अम्बेडकर की बातों से यह जानकर प्रसन्नता होती है कि ब्रिटिश जनता में अनुसूचित जातियों के प्रति न केवल हार्दिक सहानुभूति

है, बल्कि इस समुदाय के अधिकारों की कैबिनेट मिशन द्वारा की गई अनदेखी के प्रति वहाँ आक्रोश भी है। लेबर पार्टी के समर्थकों में भी यह भावना तेजी से उभर रही है कि भारत की संवैधानिक समस्या का हल निकालने के लिए लेबर सरकार जो कदम उठा रही है क्या वह सही हैं? यह निश्चित रूप से फायदे की बात होगी, यदि ब्रिटिश जनता गलतफहमी का लबादा उतार फेंके और भारत के हालात की वास्तविकता से रूबरू हो, तो भारतीय समस्या का हल ढूंढ पाना कुछ आसान हो जाएगा।

डॉ. अम्बेडकर ने वंचित वर्गों के लिए अलग राजनैतिक प्रतिनिधित्व पर जोर देते हुए कहा है कि यही वह साधन है जिससे कांग्रेस के साथ विवाद का निपटारा किया जा सकता है और उनका विचार है कि एक बार ऐसा किए जाने पर कांग्रेस और अनुसूचित जातियों के बीच मतभेद नहीं रहेंगे। वह उन लोगों में से है जिन्होंने सवर्ण हिन्दुओं के अत्याचार और जातिगत विद्वेष को बचपन से भोगा है और हिन्दुओं की उच्च्य जातियों पर न तो आसानी से विश्वास कर सकते हैं और न ही अपने समुदाय के भविष्य को उनकी दया पर छोड़ सकते हैं। सवर्ण हिन्दुओं के अतिक्रमण से अपने अधिकारों का पर्याप्त कानूनी संरक्षण ही वह मार्ग है जो उनके कर्त्तव्यपथ का मूलमंत्र है। उनका कहना है कि वह अपने समुदाय की समस्याओं के निवारण के लिए संवैधानिक साधन अपनाने हेतु प्रतिबद्ध हैं और इनसे न्याय न मिलने पर ही वह और रास्ता अपनाने का विचार करेंगे। यह कांग्रेस की ओर बढ़ाया गया समझौते का हाथ है।

अनुसूचित जातियों के नेता ने अनुसूचित जाति संघ और मुस्लिम लीग के बीच किसी गुप्त समझौते से इंकार किया है। इस उपमहाद्वीप पर सवर्ण हिन्दू कांग्रेस का शासन लादने से बढ़कर कोई गुप्त या खुला समझौता क्या हो सकता है, जिसका साझा खतरा उनके समुदाय और इस देश, दोनों को है? कांग्रेस नेतृत्व का चरित्र और बनावट ही ऐसी है, जिससे लोगों के अनेक वर्गों में भय व्याप्त है और यदि लीग और अनुसूचित जातियाँ खतरे को महसूस करते हैं और नजदीक आना चाहती हैं तो इसलिए कि वह साझा खतरे को महसूस करती हैं और सामान्य हित में और अपने लोगों की भलाई के लिए इसका डटकर सामना करना चाहते हैं। इस देश में दलित वर्गों का जीवन सदियों से गुलामी का पर्याय रहा है और वे अब इस नियति को बदलने के लिए कृतसंकल्प हैं। इसे वे कैसे कर पाएंगे इसका फैसला खुद उन्हें करना है न कि यह कांग्रेस को बताना है।

"डान"[1]

***

[1] पुनर्मुद्रण : जय भीम : 1 जनवरी, 1947

परिच्छेद III

राष्ट्र और इसके लोकतंत्र के निर्माण के बारे में

1

जवाबदेही के बिना प्रांतीय स्वायत्तता अविवेकपूर्ण

डॉ. भीमराव अम्बेडकर 7 नवम्बर 1932 को इंग्लैंड रवाना हुए। रवाना होने से पहले दिए गए एक साक्षात्कार में उन्होंने कहा कि केन्द्र की जवाबदेही के बिना प्रांतीय स्वायत्तता का प्रावधान करना अविवेकपूर्ण होगा और ब्रिटिश भारत को अखिल भारतीय संघ पर निर्भर रखने वाली केन्द्रीय जवाबदेही के विचार से वह सहमत नहीं हैं। गाँधीजी के सविनय अवज्ञा आन्दोलन के बारे में उनकी राय थी कि यह कोई बगावत नहीं थी, क्योंकि इससे ब्रिटिश नौकरशाही को निकाल बाहर नहीं किया जा सका था।

2

संयुक्त बनाम अलग–अलग निर्वाचन क्षेत्र

डॉ. अम्बेडकर का मध्यमार्ग

प्रांत के अल्पसंख्यकों मामलों के निर्णय में योगदान

इस विषय पर टाइम्स ऑफ इण्डिया में डॉ. भीमराव अम्बेडकर का वक्तव्य इस प्रकार बताया गया है :–

पं. मदनमोहन मालवीय और जिन्ना के बीच विचारों व शुभकामनाओं के आदान–प्रदान से एक बार फिर पता चलता है कि हिन्दुओं और मुसलमानों की परस्पर सहमति से अंग्रेज सरकार के सांप्रदायिक निर्णय को बदलने की कोई उम्मीद निकट भविष्य में दिखाई नहीं देती। पं. मालवीय ने यह कहते हुए मैदान छोड़ दिया है कि फिलहाल तो दोनों समुदायों को अलग–अलग रहते हुए काम करना चाहिए और मैं नहीं जानता कि कितने लोग दोनों समुदायों के अलग–अलग काम करने की संभावना को सहजता से स्वीकार करेंगे। जो कुछ हो, परन्तु मुझे तो ऐसा लगता है कि अलग रहकर काम करने की परिणति अंततः एक–दूसरे के विरोध में काम करने में होकर रहेगी।

मैं न तो हिन्दू हूँ और न ही मुसलमान, और यह पेशकश मैं किसी का पक्ष लेते हुए नहीं बल्कि समस्या को समझने में लगे एक विधार्थी के रूप में कर रहा हूँ।

इससे पहले कि मैं अपना प्रस्ताव विस्तार से बताऊँ, मेरा यह सुविचारित मत है कि साम्प्रदायिक विवाद में "अल्पसंख्यक" शब्द का प्रयोग बड़े ही हल्के–फुल्के ढंग से किया गया है और बदतर बात तो यह है कि इसका प्रयोग किसी प्रांत अथवा प्रांत के किसी निर्वाचित क्षेत्र के संदर्भ के बिना ही कर दिया जाता है, जबकि राजनीति में तो उसके संदर्भ में ही यह कोई अर्थ रखता है। मेरे विचार से कोई समुदाय तभी अल्पसंख्यक होता है और "अल्पसंख्यक" के रूप में संरक्षण की पात्रता रखता है, यदि वह उस प्रांत में अल्प संख्या में है अथवा यदि कानून की दृष्टि से कहें तो निर्वाचन क्षेत्र में वह "अल्पसंख्यक" है। प्रांत अथवा निर्वाचन क्षेत्र को छोड़कर "अल्पसंख्यक" का कोई राजनीतिक महत्व नहीं है।

सुझाव

इस आधारभूत बात से शुरू करते हुए, जिस पर मैं पूरा जोर देना चाहता, हूँ मेरा प्रस्ताव साम्प्रदायिक निर्णय में शामिल दोनों प्रश्नों को अलग–अलग करके देखने का है अर्थात सीटों का प्रश्न और निर्वाचन क्षेत्रों का प्रश्न। ये दोनों प्रश्न अलग–अलग प्रश्न है और इन्हें हल करने के लिए जिन–जिन बातों पर विचार करना चाहिए वे भी सर्वथा भिन्न हैं। दोनों प्रश्नों को अलग–अलग करते हुए हिन्दुओं और मुसलमानों को मेरी सलाह है कि वह साम्प्रदायिक निर्णय के उस भाग को स्वीकार कर लें जो सीटों की संख्या से संबंधित है। इसे चाहें तो स्थायी तौर पर नहीं, बल्कि फिलहाल स्वीकार कर लें और इसका निर्णय भविष्य में कभी, किसी और अधिक समानता के सिद्धांत पर छोड़ दें। लेकिन जहाँ तक निर्वाचन क्षेत्रों का प्रश्न है, हिन्दुओं और मुसलमानों की सहमति से इस एक आसान से प्रस्ताव के साथ साम्प्रदायिक निर्णय में संशोधन किया जाए कि निर्वाचन क्षेत्रों का प्रश्न किसी प्रांत में अथवा प्रांत में किसी विशेष निर्वाचन क्षेत्र में सही मायनों में अल्पसंख्यकों का मामला है, चुनाव चाहे केन्द्रीय या प्रांतीय विधानमण्डल का हो, बहुसंख्यकों को अल्पसंख्यकों के निर्णय का पालन करना चाहिए।

अल्पसंख्यक निर्णय करें

यदि अल्पसंख्यक अलग निर्वाचन क्षेत्र चाहते हों, तो बहुसंख्यकों को इसके विरुद्ध कुछ भी नहीं कहना चाहिए; इसी प्रकार यदि अल्पसंख्यक संयुक्त निर्वाचन क्षेत्र चाहते हों, तो बहुसंख्यकों को उनका निर्णय स्वीकार करने के लिए बाध्य होना चाहिए।

यह प्रस्ताव उन मामलों में भी लागू किया जा सकता है जहाँ अनेक अल्पसंख्यक हैं और जहां निर्वाचन क्षेत्रों के मुद्दे पर उनके विचार एक नहीं हैं। ऐसे मामलों में जहां अल्पसंख्यक अलग निर्वाचन क्षेत्र चाहते है वहाँ उनके लिए अलग नामावली होगी, जबकि संयुक्त निर्वाचन क्षेत्र चाहने वाले अल्पसंख्यकों की बहुसंख्यकों के साथ सामान्य नामावली होगी। इससे बेहतर कुछ हो ही नहीं सकता कि इस करार में यह सिद्धांत स्वीकार कर लिया जाए कि निर्वाचन क्षेत्रों के मामले में निर्णय प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र के अल्पसंख्यकों पर निर्भर होगा। परन्तु यदि ऐसा नहीं किया जा सकता तो यह भी कुछ बेहतर होगा कि इस आधार पर कोई समझौता ही हो जाए कि निर्वाचन क्षेत्रों का निर्णय उस प्रांत के अल्पसंख्यकों पर छोड़ दिया जाए।

ऐसा समझौता कर लेने से बम्बई, मद्रास, केन्द्रीय प्रांत, संयुक्त प्रांत आदि जैसे हिन्दू बहुलता वाले प्रांतों में मुसलमान अल्पसंख्यकों को यदि वे चाहें तो अलग निर्वाचन क्षेत्र मिल जाएंगे। दूसरी ओर, पंजाब, सिंध, बंगाल उत्तर–पश्चिम सीमा प्रांत जैसे

मुस्लिम बहुलता वाले प्रांतों में हिन्दू यदि चाहें, तो उन्हें संयुक्त निर्वाचन क्षेत्र मिल जाएंगे। इस प्रस्ताव की मुख्य बात यह है कि निर्वाचन क्षेत्रों का प्रश्न अल्पसंख्यकों के निर्णय पर छोड़ दिया जाए। संयुक्त अथवा अलग–अलग निर्वाचन क्षेत्रों की व्यवस्था अल्पसंख्यकों के संरक्षण के लिए की गई है और इन दोनों में से उनका संरक्षण भली प्रकार कौन करेगा, इसका सही फैसला भी अल्पसंख्यक करेंगे।

यदि इस प्रस्ताव में सिद्धांततः कोई दोष है तो इस पर मि. जिन्ना अथवा पं. मदन मोहन मालवीय को विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं। परन्तु, यदि यह प्रस्ताव न्यायोचित और निष्पक्ष है, जो मेरे विचार से है, तो मुझे आशा है कि मि. जिन्ना अपने समुदाय के लोगों को इसे बताने का साहस करेंगे और पं. मालवीय अपने विवेक से इसे स्वीकार करेंगे।

मध्यम मार्ग

निःसंदेह यह प्रस्ताव एक बार में ही कांग्रेस और हिंदू महासभा को सभी प्रांतों में हिन्दुओं और मुसलमानों के लिए संयुक्त निर्वाचन क्षेत्र बनाने का उद्देश्य प्राप्त करने में सहायक नहीं होगा। परन्तु, देश भर में संयुक्त निर्वाचन क्षेत्र बनाने की कांग्रेस और हिन्दू महासभा की वैचारिक स्थिति एवं देश भर में अपने लिए अलग निर्वाचन क्षेत्रों की मुसलमानों की मांग को देखते हुए इस प्रस्ताव में एक मध्यमार्ग दिखाने की क्षमता तो है। इस मध्यमार्ग से, कुछ प्रांतों में संयुक्त निर्वाचन क्षेत्रों और शेष प्रांतो में अलग–अलग निर्वाचन क्षेत्रों की मिलीजुली व्यवस्था शुरू करते हुए देश भर में संयुक्त निर्वाचन क्षेत्रों के अंतिम चरण तक का सफर आसान हो जाएगा। संयुक्त निर्वाचन क्षेत्रों के समर्थकों में से जो अधीर आदर्शवादी हैं, केवल वही इस प्रस्ताव को खारिज करेंगे।[1]

बहरहाल, इस विषय पर डॉ. भीमराव अम्बेडकर के वक्तव्य में जो अतिरिक्त आयाम थे जिनका ब्यौरा "जनता" में प्रकाशित हुआ था। ये आयाम इस प्रकार थे :–

"निर्वाचन क्षेत्र की संरचना केवल अल्पसंख्यकों का विषय नहीं है। यह संविधान निर्माण से जुड़ी समस्या है, जिसमें पूरे देश की हिस्सेदारी है। एक राष्ट्रीय समस्या को मात्र इससे जुड़े संरक्षण के दावे के कारण केवल इस या उस समूह के निर्णय का विषय नहीं बनाया जा सकता। चूंकि किसी प्रश्न पर मतैक्य असंभव है, अतः राजनैतिक सिद्धांतों की मतभेदों से भरी दुनिया में जन सामान्य की इच्छा के संभव

1. द टाइम्पस ऑफ इण्डिया, दिनांक 9 अप्रैल, 1934

विकल्प के रूप में बहुसंख्यकों के निर्णय को ही अपने कर्त्तव्य का निर्वहन करना अपेक्षित है।

अल्पसंख्यकों को महज इसलिए उठाकर बहुसंख्यकों की सत्ता और प्रतिष्ठा से भी ऊंचे शिखर पर बैठा देना, क्योंकि वह अल्पसंख्यक है, लोकतांत्रिक शासन के बुनियादी सिद्धांत की जड़ को ही नष्ट कर देने जैसा है। राजनैतिक विचारधारा नजीर–दर–नजीर आगे बढ़ती है। किसी भी आपत्तिजनक सिद्धांत को एक बार स्थापित कर देने पर उसके निहित स्वार्थ उसके इर्दगिर्द इकट्ठे होते जातें है। केवल कष्टों से अर्जित सत्ता स्वयं को अपदस्थ करने के सभी प्रयासों का पुरजोर विरोध करती है। यही कारण है कि जल्द छुटकारा पा लेने की आशा से सहन किए गए क्षणिक समझौते प्रगति के मार्ग में विकट बाधा बन जाते हैं।

अल्पसंख्यकों की निरंकुशता को उभरने देने या बहुसंख्यकों की इच्छा को अल्पसंख्यकों से भी निचला दर्जा देने के किसी भी विचार को न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता।

–फ्री प्रेस"[1]

***

[1]: पुनर्मुद्रितः जनता, दिनांक 28 अप्रैल, 1934

3

आश्वासन से गवर्नर को कोई नुकसान नहीं; न ही कांग्रेस को कोई फायदा

बम्बई, 8 अप्रैल, 1937

"भारत के संवैधानिक गतिरोध के बारे में बैरिस्टर डॉक्टर भीमराव अम्बेडकर ने यह बयान जारी किया है :

"कांग्रेस के लिए मैदान छोड़ देने के कारण मैं यह जरूरी नहीं समझता कि अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के प्रस्ताव की शर्त के अनुसार कांग्रेस के नेताओं को आश्वासन देने पर गवर्नर के इंकार से उत्पन्न स्थिति पर मैं अपने विचार व्यक्त करूँ। लेकिन कुछ मित्रों ने जोर देकर मुझे अपने विचार बताने के लिए कहा है, इसलिए इस विवाद में शामिल होने के लिए मैंने स्वयं को तैयार किया हैं।

मेरी समझ में नहीं आता कि कांग्रेसजन अंतरिम मंत्रालयों के गठन का दोष गवर्नर को क्यों दे रहे हैं और मुझे यह जानकर थोड़ा आश्चर्य भी है कि कांग्रेसजन, जो पद स्वीकार करने के लिए अनुत्सुक हैं और जिनका उद्देश्य संविधान को ध्वस्त करना था, उन्हें अंतरिम मंत्रालयों के गठन पर राहत की सांस लेने के बजाए, उन्हें मौका हाथ से निकल जाने पर कुछ क्रुद्ध होना चाहिए था; यह सब देखकर किसी को भी यह संदेह होना स्वाभाविक है कि संविधान को ध्वस्त करने का उनका आह्वान महज एक नाटक था।

गवर्नर का दोष नहीं

जब एक पार्टी जिसके पास बहुमत है, पद स्वीकार करने से इंकार करती है तो गवर्नर का यह कर्त्तव्य है कि वह उन्हें बुलाए जो उसे अपनी नीति के समर्थन में विधानमण्डल में बहुमत जुटाने का आश्वासन दे सकते हों। दोषी गवर्नर नहीं हैं, बल्कि दोषी वे लोग हैं, जिन्होंने पद स्वीकार किए हैं। यह विचार उन्हें करना है कि यदि वे सदन में आवश्यक बहुमत जुटाने में असफल रहते हैं तो क्या उन्हें गवर्नर को धोखा देने का दोषी नहीं माना जाएगा। गवर्नरों पर दोष तब आएगा, जब वे संविधान के अन्तर्गत उन्हें दिए गए विशेष अधिकारों का प्रयोग उन मंत्रियों को पद

पर बनाए रखने के लिए करेंगे, जिन्होंने विधानमण्डल में बहुमत का विश्वास खो दिया है; क्योंकि गवर्नरों को जारी निर्देशों के अन्तर्गत उन्हें सतर्क रहने का निर्देश दिया गया है जिससे कि वे अपने अधिकारों का प्रयोग करें, ताकि मंत्रिगण अपनी जिम्मेदारियों से बचने के लिए, जो वस्तुतः मंत्रियों की ही हैं, अपने विशेष अधिकारों पर निर्भर न रहें।

स्थिति उत्पन्न नहीं हुई है

अभी ऐसी स्थिति उत्पन्न नहीं हुई है और गवर्नर की कार्रवाई की आलोचना करने से पहले हमें इंतजार करना और देखना होगा कि वह क्या करते हैं जब इस समय बने हुए मंत्रिगण विधानमण्डल में प्रतिकूल मत के कारण हार जाते हैं।

आश्वासन की माँग

बहरहाल, सैद्धांतिक प्रश्न यह है कि क्या कांग्रेस को पद स्वीकार करने से पहले, जो बहुमत में होने के कारण उसकी हकदार है, गवर्नर से अभिवचन की मांग करना न्यायोचित था? कांग्रेसजनों ने यह स्वीकार किया है कि वे कानून में संशोधन नहीं चाहते हैं। कांग्रेस का तर्क है कि उन्हें अपेक्षित अभिवचन गवर्नर द्वारा गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया एक्ट के प्रावधान को हटाए बिना भी दिया जा सकता था और सवाल यह है कि क्या कानून के प्रावधान को हटाए बिना ऐसा अभिवचन दिया जा सकता है।

सम्राट और गर्ववर्नर

श्री भूलाभाई देसाई और सी. राजगोपालाचारी ने कांग्रेस द्‌वारा तय की गई वैचारिक स्थिति की हिमायत करते हुए यह स्पष्ट किया है कि अधिनियम में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो गवर्नर को अभिवचन देने से रोक सकता हो और यदि गवर्नर ने अभिवचन नहीं दिया तो इसका कारण यही है कि वह ऐसा करना नहीं चाहते।

जिस प्रश्न से हमारा सरोकार है, वह यह है कि क्या गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट ने प्रावधानों को लागू किए बिना गवर्नर के लिए यह संभव है कि वह उनके विशेष अधिकारों को निलंबित रखने के लिए सहमत हो जाएंगे। श्री भूलाभाई देसाई की वैचारिक स्थिति इस विश्वास पर आधारित प्रतीत होती है कि गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया एक्ट के अन्तर्गत गवर्नर को दिए गए अधिकार और सम्राट के वीटो अधिकार के बीच कोई अन्तर नहीं है। लेकिन मेरा मत यह है कि गवर्नर को वैयक्तिक निर्णय

लेने के लिए प्रदत्त वैयक्तिक विवेकाधिकार का स्वरूप इंग्लैड के संविधान के अंतर्गत सम्राट के अधिकार से पूर्णतः भिन्न है।

सम्राट को दिया गया वीटो अधिकार उसे उसके मंत्रिमंडल के किसी मंत्री द्वारा उसे कोई कार्यवाही करने की सलाह को अस्वीकार करने का अधिकार प्रदान करता है। परन्तु यह मंत्री की सलाह के बिना किसी कार्रवाई की जिम्मेवारी लेने का सम्राट को अधिकार नहीं देता।

वैयक्तिक निर्णय का अधिकार और वैयक्तिक विवेकाधिकार गवर्नर को न केवल किसी मंत्री की सलाह को अस्वीकार करने का अधिकार देता है बल्कि यह उसे उस कार्रवाई का समर्थन करते हुए मंत्री की सलाह के बिना भी कार्रवाई का अधिकार देता है। दरसअल मंत्री की सलाह के विपरीत सम्राट के पास अपनी प्रस्तावित कार्रवाई हेतु किसी मंत्री का समर्थन होना बहुत जरूरी है। गवर्नर के लिए कार्रवाई हेतु किसी मंत्री का समर्थन आवश्यक नहीं है। वीटो के अधिकार और वैयक्तिक निर्णय के अधिकार के बीच यही अंतर है।

सीमित मंत्रिमंडल

श्री राजगोपालाचारी का यह दावा कि भारत में मंत्रियों को उसी व्यवहार की पात्रता है, जो लोकप्रिय सरकार की संसदीय पद्धति के अंतर्गत उन्हें प्राप्त होता है, गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया एक्ट में निहित सरकार की प्रणाली के बारे में उनकी गलतफहमी का द्योतक है। गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट में सरकार की जो प्रणाली निहित है वह सीमित मंत्रिमंडल प्रणाली है। यह सीमित राजतंत्र की प्रणाली नहीं है। सीमित राजतंत्र में, राजतंत्र का प्राधिकार मंत्रिमंडल की शक्ति द्वारा सीमित होता है। सीमित मंत्रिमंडल प्रणाली में मंत्रियों की शक्ति गवर्नर के प्राधिकार द्वारा सीमित होती है। जिन भेदों का मैंने उल्लेख किया है अर्थात वीटो अधिकार तथा वैयक्तिक निर्णय के बीच भेद तथा सीमित मंत्रिमंडल एवं सीमित राजतंत्र के बीच भेद को यदि समझ लिया जाए तो यह समझना भी आसान हो जाएगा कि सम्राट अपने वीटो के अधिकार को क्यों स्थगित कर सकता है और गवर्नर क्यों नहीं कर सकता। गवर्नर अपने विशेष अधिकारों का त्याग नहीं कर सकता। यदि मंत्रिमंडल की किसी कार्रवाई की परिणति दुष्परिणाम में होती है तो कानून के अन्तर्गत वह मंत्रिमंडल के कृत्य के लिए जवाबदेह होता है। कोई संविधान का तर्क देकर यह जोर दे सकता है कि जवाबदेही मंत्रिमंडल की होनी चाहिए, न कि गवर्नर की; परन्तु कोई इसकी उपेक्षा नहीं कर सकता। संविधान को यथास्थिति देखते हुए और इसके तथा अंग्रेजी संविधान में जो अंतर है उन्हे देखते हुए मैं नहीं समझता कि गवर्नरों द्वारा अपने

विशेष अधिकारों का त्याग करने की कानूनी असमर्थता वास्तविक है और संवैधानिक कानून, जिसका पालन उनके निर्देश प्रपत्र के अनुसार किया जाना अपेक्षित है, के उल्लंघन के बिना अपने कर्त्तव्य का अधित्याग वे नहीं कर सकते थे। यदि सरल शब्दों में कहूँ तो कोई सत्ता का त्याग कर सकता है, यदि कोई जवाबदेही न हो, परन्तु यदि जवाबदेही है तो कोई सत्ता का त्याग नहीं कर सकता।

मेरे विवेकानुसार विशेष अधिकारों के अस्तित्व को संविधान के कार्यचालन की आपत्ति का ठोस आधार बनाने का आग्रह नहीं किया जा सकता।

महात्मा का तर्क

आश्वासन की मांग हेतु महात्मा गांधी ने सर्वदा भिन्न कारण दिया है। यह आधार इतना अवास्तविक है कि इस बात पर आश्चर्य होता है कि क्या ऐसा कोई व्यक्ति यह कारण दे सकता है जो जानता हो कि संविधान किस प्रकार कार्य करता है। उनका कहना है : मतदाताओं के निर्णायक समर्थन वाली एक मजबूत पार्टी हर समय गवर्नर की इच्छानुसार उसके हस्तक्षेप की भयाक्रांत स्थिति में अपने आपको रखना स्वीकार नहीं कर सकती;'' जब आत्मसम्मान रखने वाला मंत्री पूर्ण बहुमत के प्रति सचेत हो। कोई यह भी विचार कर सकता है कि क्या अपने मतदाताओं की शक्ति के प्रति सचेत कोई मंत्रिमंडल आश्वासन की विनती के बजाए गवर्नर के विरोध में मैदान में आएगा और अपने अधिकारों का प्रयोग उसके विरुद्ध करेगा। इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि कोई अभिवचन आवश्यक है तो केवल एक कमजोर मंत्रिमंडल के लिए है जिसके समर्थन में मतदाताओं की शक्ति नहीं है। कांग्रेस जैसी मजबूत पार्टी के लिए। कोई अभिवचन आवश्यक नहीं है। कांग्रेसजन गवर्नर से सद्व्यवहार के आश्वासन की भीख क्यों मांग रहे हैं। वे उसे तमीज से पेश आने के लिए विवश कर सकते हैं।

गवर्नर आश्वासन दे सकते हैं

क्या गवर्नर कांग्रेस जनों से उस तरह पेश नहीं आ सकते थे जैसे हम शैतान बच्चों को आश्वासन देकर खुश कर देते हैं? वह एआईसीसी का प्रस्ताव पढ़कर और यह जानकर कि वह प्रस्ताव की शर्तों के अनुसार आश्वासन मांग रहे हैं, ऐसा कर सकते थे। मेरा ख्याल है कि यदि ऐसा आश्वासन दे भी दिया जाता, तो कोई नुकसान नहीं होता। मुझे लगता है कि चूंकि कांग्रेस के मंत्रियों ने संविधान के दायरे में रहकर कार्य करने का अभिवचन दिया था और उनके फार्मूले में यह अभिवचन अत्यंत स्पष्ट था, अतः गवर्नरों के लिए एक पारस्परिक अभिवचन देने से इंकार करने का कोई कारण नहीं था कि वे अपने विशेष अधिकारों का प्रयोग नहीं करेंगे।

न फायदा, न नुकसान

लेकिन एक प्रश्न जो मैं सभी कांग्रेस जनों से पूछना चाहता हूं वह इस प्रकार है। एआईसीसी के प्रस्ताव की शर्तों के अनुसार यदि गवर्नर ने अभिवचन दे दिया होता, तो इससे उन्हें क्या लाभ होता? मेरे ख्याल से महत्वपूर्ण प्रश्न तो यह है कि इस बात का निर्धारण कौन करेगा कि गवर्नर द्वारा विशेष अधिकारों के प्रयोग का अवसर उत्पन्न हुआ है अथवा नहीं है। जब भी कोई बात होती तब कांग्रेसजन इस अभिवचन की माँग करते कि क्या विशेष अधिकारों के प्रयोग का अवसर उत्पन्न हुआ है अथवा नहीं, इसका निर्धारण मंत्रिमंडल करेगा। इस प्रकार का अभिवचन वास्तव में बहुमूल्य होता, परन्तु ऐसा अभिवचन माँगा ही नहीं गया था। कांग्रेस जनों द्वारा मांगा गया अभिवचन ही निरर्थक था कि इसके बावजूद और इसके उल्लंघन के बिना ही गवर्नर इस आधार पर हस्तक्षेप करने के लिए स्वतंत्र रहता कि मंत्रिमंडल ने अमुक कार्य इस तरीके से किया है कि उसके विवेक के अनुसार विशेष अधिकार का प्रयोग करने का अवसर आ गया है। अतः, मैं यही ढूँढ़ने का प्रयत्न कर रहा हूं कि गवर्नर को क्या नुकसान होता यदि उसने आश्वासन दे दिया होता और कांग्रेस को क्या फायदा होता यदि उसे आश्वासन मिल भी जाता।"[1]

***

1. द बॉम्बे क्रॉनिकल, दिनांक 9 अप्रैल, 1937

4

यह मात्र पार्टी का कदम है न कि कोई राष्ट्रीय प्रयोजन

"बम्बई प्रांतीय विधानमंडल में इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी के नेता डॉ. बी. आर. अम्बेडकर ने स्वयं अपनी और अपने पार्टीजनों की ओर से कांग्रेस पार्टी के नेता श्री बी.जी. खेर को पत्र लिखकर बम्बई के गवर्नर द्वारा मंत्रिमंडल की नियुक्ति का विरोध करते हुए कांग्रेस पार्टी का समर्थन करने से इंकार किया है।

अपने उत्तर में, डॉ अम्बेडकर ने वर्तमान हालात के लिए कांग्रेस पार्टी पर दोषारोपण किया है क्योंकि उनकी पार्टी की राय में गवर्नर से आश्वासन की कांग्रेस की मांग अनावश्यक और असंभव है।

डॉ. अम्बेडकर का कहना है कि विधान मंडल का सत्र न बुलाने की गवर्नर की कार्रवाई पर अभी कोई सवाल नहीं उठाया जा सकता। ऐसी कार्रवाई तभी असंवैधानिक होगी यदि सत्र न बुलाए जाने पर छह माह बीत जाते हैं।

अब संविधान के लागू हो जाने के बाद इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी का मानना है कि सभी संवैधानिक साधनों का सहारा ले लेने और उनके असफल होने तक विधान मंडल के सदस्यों द्वारा कोई भी संविधान–बाह्य आन्दोलन नहीं चलाया जाना चाहिए।

डॉ. अम्बेडकर ने आगे कहा कि कांग्रेस पार्टी ने यह कदम कांग्रेस की स्थिति को न्यायोचित ठहराने के इरादे से और अपनी शक्ति और प्रतिष्ठा को बढ़ाने के लिए उठाया है यह मात्र पार्टी द्वारा उठाया गया कदम है। इसका कोई राष्ट्रीय प्रयोजन नहीं है।"[1]

***

[1] द टाइम्स ऑफ इंडिया, दिनांक 17 मई, 1937

* बिहार प्रांतीय दलित वर्ग लीग, पटना के अध्यक्ष बाबू जगजीवन राम द्वारा डॉ. बी.आर. अम्बेडकर को दिनांक 8 मार्च, 1937 को लिखा गया पत्र परिशिष्ट टप्प्ट में देखा जा सकता है।

5

वयस्क मताधिकार लागू करने के लिए हम अविराम संघर्ष करेंगे

"यह आश्चर्य की बात है कि बम्बई मंत्रिमण्डल जो भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के टिकट पर चुनकर आया है और जिसने वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित संविधान सभा के माध्यम से राष्ट्रीय संविधान तैयार करने का कार्यक्रम जोर–शोर से घोषित किया है, वयस्क मताधिकार के प्रश्न पर अपने कर्त्तव्य और जवाबदेही से विमुख हो रहा है। जैसा कि उसने बम्बई नगरपालिका संशोधन विधेयक के मामले में करने की कोशिश की है।" "सेंटिनल" के एक पत्रकार के साथ बातचीत के दौरान डॉ. अम्बेडकर ने ये उद्‌गार व्यक्त किए।

उन्होंने कहा "लोथियन समिति, जिसके लिए कांग्रेस ने कभी कोई विशेष लगाव नहीं दिखाया, के कुछेक सदस्य पूरे प्रांत में वयस्क मताधिकार लागू करने के लिए तैयार थे और केवल एक कठिनाई जो उनके रास्ते में आई वह थी चुनाव के दिन वोट करने वाले व्यक्तियों का अभाव।"

कांग्रेस सरकार जो पिछले कई वर्षों से वयस्क मताधिकार के लिए शोर मचाती रही है, को इसे पहला अवसर पाते ही जिला और तालुका बोर्ड और नगरपालिका में लागू कर देना चाहिए था। लेकिन वे तो शुरू से ही अपनी जिम्मेवारी से दूर भागते रहे हैं।"

जहाँ तक बम्बई नगरपालिका में वयस्क मताधिकार का संबंध है, यहाँ तो झिझक की कोई गुंजाइश ही नहीं होनी चाहिए थी, पूरी प्रेसिडेंसी में वयस्क मताधिकार के "प्रयोग" के लिए सबसे उपयुक्त यदि कोई स्थान है, तो वह बम्बई है। और जगहों के मुकाबले यहाँ साक्षरता का स्तर अधिक है। शायद और स्थानों की तुलना में यहाँ के लोग सार्वजनिक समस्याओं के प्रति अधिक सचेत हैं। वयस्क मताधिकार लागू करने के लिए बम्बई के सबसे उपयुक्त होने के और भी बहुत से कारण हैं। इसके बावजूद कांग्रेस मंत्रिमंडल एक ऐसा विधेयक लाया है, जिसमें वयस्क मताधिकार को 1942 में लागू करने की बात कही गई है और वह भी कारपोरेशन के इस पर सहमत होने की शर्त पर।

"जैसा कि श्री एन.एम. जोशी ने कहा है, यह एक निरर्थक शर्त है। किसी मतदाता के वोट से कारपोरेशन आत्महत्या नहीं करने जा रहा है, जो काफी हद तक उनका अस्तित्व ही मिटा देगा।"

डॉ. बी. आर. अंबेडकर का

महानता केवल संघर्ष और त्याग से हासिल की जा सकती है। अग्नि परीक्षा दिए बिना न तो मनुष्यता प्राप्त की जा सकती है और न ही देवत्व।

डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

कांग्रेस सरकार की नीति चाहे जो कुछ भी हो, मैं और मेरी पार्टी जो समाज के सबसे शोषित तबकों का प्रतिनिधित्व करती है, इस शहर को वयस्क मताधिकार दिलाने वाले किसी भी आंदोलन में शामिल रहेगी।

विधानमण्डल के भीतर हम इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए अविराम संघर्ष करेंगे – जो लोकतंत्र की पहली शर्त है – और यदि संभव हो तो मंत्रिमण्डल को झुकने के लिए विवश कर देंगे।

मंत्रिमंडल को लोगों की मांग और जनता से किए गए वादों और सिद्धान्तों की कीमत जताने के लिए हम विधानमण्डल के बाहर जनसभाएं और प्रदर्शनों का आयोजन करेंगे।

बहरहाल, मुझे उम्मीद है कि मंत्रिमण्डल जिस स्वरूप में विधेयक को पेश करने का प्रस्ताव करता है, उसे अपनी गलती का अहसास होगा। मैं उम्मीद करता हूँ कि विधानमण्डल में इसे पेश करने से पहले वे किए गए वादों और वचनों को याद करेंगे और इसमें आवश्यक संशोधन करके 1942 तक और कारपोरेशन की सहमति की प्रतीक्षा किए बिना वयस्क मताधिकार को तुरंत लागू करेंगे।"[1]

***

[1] द बॉम्बे सेंटिनल, दिनांक 31 जनवरी, 1938

6

संघीय ढ़ांचे के विरुद्ध लामबंदी राष्ट्र के इतिहास में मोड़

बम्बई, 20 जुलाई 1938

"संघीय व्यवस्था एक ऐसा मुद्दा है जिस पर देश के सभी प्रगतिशील लोगों द्वारा अपनी पूरी ताकत लगाई जानी चाहिए, चाहे वे किसी भी पार्टी के हों, ताकि देश का भविष्य खतरे में न पड़े"।

संघीय व्यवस्था और इस पर उनकी पार्टी के दृष्टिकोण संबंधी मौजूदा विवाद के बारे में "यूनाइटेड प्रेस" को दिए गए बयान में इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी ऑफ बॉम्बे के नेता डॉ. बी. आर. अम्बेडकर ने कहा "यह एक निर्णायक क्षण है और सबसे सर्वोच्च त्याग की मांग करता है।"

कांग्रेस और संघ

डॉ. अम्बेडकर ने अपना बयान जारी रखते हुए कहा "इस समय देश में राष्ट्रीय महत्व का सबसे बड़ा राजनैतिक मुद्दा गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया एक्ट, 1935 में निहित संघीय योजना को स्वीकार करना अथवा अस्वीकार करना है। ब्रिटिश सरकार के नुमाइन्दे जितनी जल्दी हो सके संघीय व्यवस्था को लागू करने के लिए एड़ी चोटी का जोर लगा रहे हैं। जाहिर है कि पूरा देश गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया एक्ट के उस हिस्से के विरोध में है जो संघीय व्यवस्था से संबंधित है। तथापि, विपक्ष में इस मुद्दे पर विभिन्न मत हैं और यहाँ तक कि काँग्रेस पार्टी जो संघीय योजना को अस्वीकार करने के लिए प्रतिबद्ध व्यवहार में संघीय ढांचे की पद्धति के प्रति कांग्रेस को क्या दृष्टिकोण अपनाना चाहिए, इस बात को लेकर मतभेद है। ऐसा विश्वास करने के भी कारण हैं कि कांग्रेस के अधिकांश वयोवृद्ध नेता भी अपने विरोध को लेकर इतने अड़ियल नहीं हैं जितना कुछ लोग इस विषय पर कांग्रेस के मंच पर पारित प्रस्ताव की भाषा से समझते हैं और उन नेताओं में से कुछेक तो संघीय व्यवस्था लागू करने का हार्दिक स्वागत भी करेंगे।

"इसके अलावा, ऐसे मामलों में पिछले अनुभव को देखते हुए यह डर होना भी सही है कि पार्टी के वरिष्ठ नेता युवा नेताओं के विरोध को इस आधार पर शांत करने में कामयाब हो जाएंगे कि वह इसकी अच्छाइयों को स्वीकार कर लें अथवा इसे तहस–नहस करने को ही सही मान लें। यह विश्वास करने के लिए परिस्थितिजन्य साक्ष्य भी मौजूद हैं कि छुपाए जाने के बावजूद भारत में और इंग्लैड में हाल ही में गुप्त वार्ताएं भी हुई हैं। अतः यह भी संभव है कि इस वार्ता और विचार–विमर्श के परिणामस्वरूप संविधान में कुछ छेड़छाड़ की जाएगी और फिर इसे स्वीकार करने लायक घोषित कर दिया जाएगा।

मोड़

इंडिपेंडेट लेबर पार्टी की नीति का उल्लेख करते हुए डॉ. अम्बेडकर ने कहा "इंडिपेंडेट लेबर पार्टी महसूस करती है कि यह राष्ट्र के जीवन में एक मोड़ है और यह देश की प्रत्येक पार्टी का कर्त्तव्य है कि वह इस प्रश्न को एक पार्टी की दृष्टि से नहीं बल्कि देश की दृष्टि से देखे। गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया एक्ट में संघीय योजना के प्रतिक्रियावादी स्वरूप को कई लोगों ने ठीक प्रकार से अभी समझा नहीं है। अधिकांश भारतीय राजनेता नए संविधान से महज इसलिए असंतुष्ट लगते हैं क्योंकि इसमें किंतु–परंतु के साथ स्व–शासन के पूर्ण अधिकार पर रोक लगाई गई है। इसके खतरे को उन्होने पर्याप्ततः समझा नहीं है। और इन नेताओं के मामले में संविधान को चलने न देने की उनकी धमकी केवल थोथी ही मानी जा सकती है। मुझे डर इस बात का है कि कांग्रेस जनों में से अधिकांश अथवा अधिकांश नेता उस विषय के सम्बन्ध में इसी श्रेणी के हैं।

इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी देश की स्वतंत्रता के सम्पूर्ण राष्ट्र में विकसित होने के किसी समझौते में कोई हिस्सेदारी नहीं करेगी चाहे इसे कितना ही बड़ा नाम क्यों न दिया जाए। विकास की प्रक्रिया में संघ अत्यावश्यक हो सकता है लेकिन यह वह संघ कदापि नहीं है जो नए संविधान में परिकल्पित है।"

संघीय व्यवस्था के दोष

अपनी पार्टी द्वारा संघ की आलोचना के आधारों का उल्लेख करते हुए डॉ. अम्बेडकर ने कहा : "आलोचना के आधारों को दो समूहों में बांटा जा सकता हैः (1) अपूर्णताएं, और (2) अन्तर्निहित दोष। पहले समूह में राज्यों को दिया गया अत्यधिक प्रतिनिधित्व, नामांकनों द्वारा राज्य का प्रतिनिधित्व, ब्रिटिश भारत और राज्यों के बीच वित्तीय बोझ का असमान बंटवारा, संघीय असेम्बली में अप्रत्यक्ष निर्वाचन और गवर्नर जनरल की विशेष जिम्मेदारियों को शामिल किया जा सकता है। दूसरे समूह

में निम्नलिखित का उल्लेख किया जा सकता है (1) सर्वोच्चता को आरक्षित विषय मानना, (2) सेना पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त करने की असंभावना और (3) वित्तीय विषयों पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त करने की असंभावना। यद्यपि अपूर्णताएं गंभीर हैं परन्तु आने वाले समय में वे गायब हो सकती हैं अथवा हटाई अथवा विलोपित की जा सकती हैं। ऐसी स्थिति अन्तर्निहित दोषों के साथ नहीं है। इन दोषों को नहीं हटाया जा सकता जब तक सम्पूर्ण संघीय संविधान ही न हटाया जाए। संविधान के बारे में किसी को यह झगड़ा नहीं करना चाहिए कि इसमें कतिपय अपूर्णताएँ हैं। व्यवहारतः पारस्परिक समझ से इन अपूर्णताओं को दूर किया जा सकता है और अनुभव यह बताता है कि ऐसा करना असंभव नहीं है यदि अपूर्णताएँ ऐसी हैं कि उन्हें व्यवहार में हटाया नहीं जा सकता, तो पुनरीक्षा का समय आने पर उन्हें बदला जा सकता है। परन्तु मामला सर्वथा भिन्न हो जाता है जब संविधान ऐसे सिद्धांतों पर आधारित है जो दोषयुक्त हैं और जो इसे प्रगति करने नहीं देते। संघीय संविधान अपनी अवधारणा और अपने आधार की दृष्टि से ही त्रुटिपूर्ण है।

"घातक विष"

अपनी बात का समापन करते हुए डॉ अम्बेडकर ने कहा: "इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी की राय में गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया एक्ट में संघीय योजना को लागू करने का हर संभव साधन से विरोध किया जाना चाहिए। नए संविधान का संघीय हिस्सा घातक विष की तरह अस्वीकार किया जाना चाहिए। यदि कांग्रेस नए संविधान का बहुमत से विरोध करती है तो इसे इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी पूर्ण समर्थन देगी। यदि कांग्रेस पार्टी में बहुमत प्रतिक्रियावादी तत्वों के प्रभाव में आ जाता है और श्री सुभाष चन्द्र बोस अपनी बात पर कायम रहने का निर्णय करते हैं तो इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी उनकी पार्टी से हाथ मिलाएगी। हमारी पार्टी उस पार्टी अथवा पार्टियों के समूह से सहयोग करेगी जो नए संविधान के संघीय हिस्से का हर संभव तरीके से विरोध करने के लिए वचनबद्ध हैं।

युनाइटेड प्रेस"[1]

***

[1] द बॉम्बे क्रॉनिकल, दिनांक 21 जुलाई, 1938

7

मतदान की वितरणात्मक प्रणाली

डॉ. अम्बेडकर का विरोध

बम्बई, गुरूवार*

"कामगार नेता डॉ. अम्बेडकर ने भारत के सेक्रेटरी ऑफ स्टेट और मेजर एटली, नेता प्रतिपक्ष को तार भेजकर मतदान की प्रस्तावित वितरणात्मक प्रणाली में अछूतों का विरोध जताया है।

तार का पाठ इस प्रकार है :—

सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इण्डिया, लंदन

मतदान की वितरणात्मक प्रणाली लागू करने के प्रस्ताव का मैं अछूतों की ओर से इसके पूना पैक्ट की भावना के विरुद्ध होने के कारण पुरजोर विरोध करता हूँ।

अम्बेडकर

मेजर एटली, एम.पी.

हाऊस ऑफ कॉमन्स,

लंदन

वितरणात्मक मत लागू करना अछूतों के लिए नुकसानदेह होने के कारण प्रस्तावित ऑर्डर इन कौंसिल का विरोध किया।

अम्बेडकर"[1]

***

---

* 9 मार्च, 1939

[1] द फ्री प्रेस जर्नल दिनांक 10 मार्च, 1939

8

ग्रेट ब्रिटेन का समर्थन आवश्यक

इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी के अध्यक्ष डॉ. बी. आर. अम्बेडकर ने प्रेस को जारी एक वक्तव्य में पार्टी का दृष्टिकोण बताते हुए कहा है कि भारत को युद्ध में ग्रेट ब्रिटेन का समर्थन करना चाहिए – सम्पादक

इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी की कार्यकारी परिषद ने यूरोपीय युद्ध के लिए पार्टी का दृष्टिकोण बताने हेतु पार्टी अध्यक्ष को निम्नलिखित वक्तव्य जारी करने के लिए अधिकृत किया है।

जब से युद्ध की घोषणा हुई है अनेक भारतीय प्रतिनिधियों ने अपने विचार व्यक्त करते हुए बयान जारी किए हैं कि इस युद्ध में भारत के लोगों का कर्त्तव्य क्या होना चाहिए। हालांकि अधिकांश की यही राय है कि भारत को युद्ध में ग्रेट ब्रिटेन का साथ देना चाहिए लेकिन कोई उत्साह दिखाई नहीं देता। तो दूसरी ओर, अपनी किस्मत को ग्रेट ब्रिटेन से जोड़ने में बहुत झिझक और अनुत्सुकता दिखाई देती है। जाहिर है कि यदि मदद करनी है तो यह अनुत्सुक और गैर–दोस्ताना तरीके से नहीं होना चाहिए।

अनुत्सुक लोग, जो केवल निष्क्रिय सुरक्षा के प्रयोजनार्थ सहयोग करने से ज्यादा कुछ करने के लिए तैयार नहीं है और गैर–दोस्ताना लोग, जो वास्तविक मदद के नाम पर कोई नई अड़चन पैदा करने के सिवाय कुछ न करेंगे, एक–दूसरे को निष्प्रभावी कर देंगे। अतः सभी वर्गों और तबकों की सहायता जुटाना अत्यंत आवश्यक है और इसके लिए उन कारणों की जांच करके उन्हें समझना जरूरी है जो इस अनुत्साह के लिए उत्तरदायी हैं।

चेम्बरलीन का आलस्य

अनुत्साह के कारणों का विश्लेषण करते हुए इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी को प्रतीत होता है कि इसमें कोई संदेह नहीं कि यह ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस के विगत व्यवहार के कारण उत्पन्न हुआ है। ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस जर्मनी के विरुद्ध कार्रवाई करने में बहुत ढीले रहे।

उन्होंने सामूहिक कार्रवाई द्वारा पहली ही बार में जर्मनी के आक्रमण का करारा जवाब देने के बजाए जर्मनी को एक के बाद दूसरे आक्रमण का मौका दिया और विशेष रूप से चेकोस्लोवाकिया जैसे राष्ट्रों के जीवन और स्वतंत्रता की कुर्बानी से जर्मनी के तुष्टीकरण की नीति अपनाते रहे, जबकि उनका कर्त्तव्य उन राष्ट्रों का संरक्षण करना था। हिटलर को पाँच बार जीतने दिया गया और पोलैंड उसकी छठी जीत हो सकती है।

इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी महसूस करती है कि अब जो ताकतें उसका विरोध करने के लिए आगे आई हैं उन्हें पहले ही उससे सख्ती से निपटना चाहिए था।

छोटे और कमजोर राष्ट्रों के जीवन और स्वतंत्रता की कुर्बानी देकर जर्मनी के साथ शांति स्थापित करने से उनके युद्ध करने के नैतिक आधार का बहुत नुकसान हुआ है।

इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी महसूस करती है कि न्यायोचित और स्थायी शर्तों पर शांति स्थापित करने और शांति की शर्तों को कुचलने से बचाने की सच्ची आकांक्षा के अभाव के कारण युद्ध लड़े जाते हैं।

तीन अनिवार्य शर्तें

ग्रेट ब्रिटेन और फ्रांस ने यह कभी नहीं समझा कि सामूहिक सुरक्षा अच्छी बात तो है परन्तु इतना करना ही पर्याप्त नहीं होता। 1914 के युद्ध में सामूहिक सुरक्षा में कोई कमी नहीं थी। आक्रांता का मुकाबला करने के लिए अनेक बड़े राष्ट्र थे और आक्रांता को खाक में मिला दिया गया था। लेकिन आक्रांता अपनी कब्र से फिर उठ खड़ा हुआ और अब सबके सिर पर चढ़ गया है।

यह दर्शाता है कि आक्रांता को खाक में मिलाने के लिए केवल उसे जीतना पर्याप्त नहीं है। इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी महसूस करती है कि यदि युद्ध का परिणाम स्थायी शांति में होना है तो निम्नलिखित जैसी कतिपय सावधानियां बरती जानी चाहिएं।

पहली :– विजय की परिणति शांति में होनी चाहिए जो न्यायोचित हो।

दूसरी :–सामूहिक कार्रवाई द्वारा शांति की रक्षा की जानी चाहिए।

तीसरी :–शांति भंग चाहे कहीं हो, निकट अथवा दूर और इसका शिकार चाहे जो बने, शांति के समर्थक देश को उसकी रक्षा के लिए तैयार रहना चाहिए।

इन सावधानियों के बिना युद्ध को समाप्त करना संभव नहीं है। निःसंदेह इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी इन सिद्धांतों से इतनी प्रभावित है कि यह महसूस करती है कि प्रारंभिक चरण

के रूप में मित्र राष्ट्रों के प्रतिनिधियों की एक परिषद का गठन किया जाए जो शांति की शर्तों के निर्धारण के लिए उनकी ओर से लड़ने को तैयार हों और विश्व में उनकी घोषणा कर दें ताकि सभी को और जर्मन लोगों को भी इसका पता चल जाए।

इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी की राय में इस घोषणा से बढ़कर मित्र देशों के सरोकारों के बारे में दुनिया को बेहतर तरीके से और कुछ समझाया नहीं जा सकता। इससे सब आश्वस्त हो जाएंगे कि मित्र देशों का दावा न्यायोचित शांति का है और यह हासिल कर लेने पर उसे बनाए रखने के लिए कृतसंकल्प हैं। केवल ऐसा युद्ध ही युद्ध को समाप्त करने वाला सच्चा युद्ध कहा जा सकता है। ऐसे युद्ध में किसी भी विचारशील व्यक्ति को शामिल होने में कोई हिचक नहीं होगी।

भारत और साम्राज्य की विदेश नीति

इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी के विचार में इस स्थिति में एक अन्य दोष भी है, जो ग्रेट ब्रिटेन की मदद किए जाने में भारतीय लोगों की झिझक के दृष्टिकोण के लिए उत्तरदायी है। आज जैसी स्थिति है, उसमें भारत ब्रिटिश मंत्रिमंडल के रथ के पहिए से बंधा हुआ है। ब्रिटिश राजनेता किसी भी प्रकार की विदेश नीति अपनाने और कोई भी अंतर्राष्ट्रीय वचनबद्धता करने के लिए स्वतंत्र हैं। वे अपनी इच्छानुसार युद्ध की घोषणा करने अथवा न करने के लिए स्वतंत्र हैं और किसी भी प्रकार की शांति वार्ता करने के लिए स्वतंत्र हैं। उनकी विदेश नीति में युद्ध की घोषणा करने और शांति वार्ता करने में भारत की आवाज शामिल नहीं है।

यदि किसी प्रकार की विदेश नीति सफल रहती है तो भारत को इसका श्रेय नहीं मिलता। परन्तु यदि इस नीति की परिणति युद्ध में होती है तो भारत की जनशक्ति और धनशक्ति को तलब कर लिया जाता है।

युद्ध की शुरुआत करने वाले घटनाक्रम में भारत को 'सुने जाने के अधिकार' का कोई स्थान नहीं है। वे शर्तें तैयार करने में भी उसका कोई हाथ नहीं है, जिनके कारण युद्ध विराम के स्थान पर युद्ध स्थगित हो जाता है। उसका कर्त्तव्य तो युद्ध होने पर युद्ध क्षेत्र की ओर कूच करना है। यदि कम से कम शब्दों में कहें तो ऐसी स्थिति भारत जैसे देश के लिए विसंगतिपूर्ण और अनुचित है।

निर्विवाद अधिकार

यह सच है कि वर्सेलिस संधि के समय भारतीय प्रतिनिधियों को संधि की शर्तों को अनुप्रमाणित करने की अनुमति दी गई थी। परन्तु शांति की शर्तें तैयार कर लेने

पर उन्हें अनुप्रमाणित करने का अवसर भारत के लिए कोई प्रतिपूर्ति नहीं है। ब्रिटिश साम्राज्य की विदेश नीति में भागीदारी का भारत का दावा अपेक्षाकृत अधिक है और शांति की शर्तें तय करने में किसी उपनिवेश से अधिक है।

उपनिवेशों को तटस्थ रहने का अधिकार होता है। तदनुसार जिस विदेश नीति की उपयुक्तता एवं औचित्य को वे मंजूर नहीं करते उसके परिणामस्वरूप हुए युद्ध के दुष्परिणामों को भोगने के लिए बाध्य नहीं हैं। परन्तु भारत ऐसे किसी युद्ध से बच नहीं सकता, जिसमें ब्रिटिश मंत्रिमण्डल ने अपने आपको शामिल कर लिया हो। यदि भारत को किसी युद्ध अथवा शांति हेतु वचनबद्ध करना है तो यह उसका पूर्ण अधिकार है कि उससे परामर्श किया जाये। खेद है कि आज ऐसा नहीं हो रहा है।

सभी राष्ट्रों को खतरा

इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी ने झिझक के इन सभी आधारों पर विचार किया है। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि ये सभी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। यदि केवल पोलैण्ड को बचाने के किए युद्ध लड़ा जा रहा होता तो वह और ज्यादा निर्णायक शक्ति हासिल करते। क्योंकि इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी की राय में पोलैण्ड का पक्ष लेना कोई अनुकरणीय कार्य नहीं है। पोलैण्ड, लोकतंत्र की हत्या बहुत पहले कर चुका है। जर्मन लोगों ने यहूदियों से जो व्यवहार किया पोलैण्ड ने उससे भी क्रूरतापूर्ण व्यवहार उनसे किया। पोलैण्ड तो इस आपातकाल में भी रूस की सहायता लेकर बचने के बजाए मरने के लिए तैयार है। लेकिन जैसा कि इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी का आकलन है, युद्ध केवल पोलैण्ड के लिए नहीं लड़ा जा रहा है।

पोलैण्ड का मुद्दा युद्ध की केवल एक घटना है। इससे कोई भी इंकार नहीं कर सकता कि जर्मनी और पोलैण्ड के बीच युद्ध का गहरा महत्व है और व्यापक आधार है। यह एक ऐसा युद्ध है जिसमें जर्मनी का दावा है कि वह अनेक राष्ट्रों में से मात्र एक राष्ट्र ही नहीं है बल्कि उसे तो शेष राष्ट्रों से ऊपर और उत्कृष्ट माना जाना चाहिए, जिसकी इच्छा को निर्विवाद रूप से माना जाएगा और उसकी अवज्ञा करने की स्थिति में उससे असहमत राष्ट्र पर उसे हिंसा द्वारा अपनी इच्छा को थोपने का अधिकार होगा। ऐसा दावा न केवल पोलैण्ड बल्कि सभी राष्ट्रों के लिए खतरा है।

भारत का अपमान

ऐसी स्थिति में जाहिर है कि जो राष्ट्र यह मानते हैं कि सभी राष्ट्र बराबर हैं और प्रत्येक को जीवन जीने का समान अधिकार है, वे अपने अनुयायियों से बाधित

हुए बिना खुशहाली की राह पर चलते हैं और* इस अनर्गल दावे का विरोध करने के लिए समस्त मानव सभ्यता को एकजुट होना चाहिए।

जर्मन राष्ट्र की ओर से किया गया दावा अन्य राष्ट्रों का अपमान है। परन्तु भारत के लिए यह विशेष रूप से आपत्तिजनक है। यह भारत के लोगों की अपेक्षाओं और आकांक्षाओं के विरुद्ध है और उन्हें हराने और नेस्तनाबूद करने की चाल है। भारत अपना शासन स्वयं करने की आकांक्षा रखने वाले लोगों का राष्ट्र है और उसकी यह एक महत्वाकांक्षा है कि सभी प्रकार की कठिनाइयों के बावजूद वह न केवल यह दर्जा प्राप्त करके रहेगा बल्कि इसे बनाए रखने का प्रयास भी करेगा।

जब जर्मनी इस बात पर जोर देता है कि पूरे विश्व में केवल नॉर्डिक नस्ल का ही वर्चस्व होना चाहिए और अन्य नस्ल वाला दूसरा राष्ट्र उसका अधीनस्थ हो, तो यह अन्य सभी नस्लों के लिए एक चुनौती है।

भारत के लोगों की आकांक्षाओं और महत्वाकांक्षाओं को ध्यान में रखते हुए और उनके व जर्मन लोगों के बीच बुनियादी मतभेद को ध्यान में रखते हुए आदर्श भारत जर्मनी की चुनौती का सामना करने से विमुख नहीं हो सकता और उसे करारा जवाब देते हुए अपनी नियति तक पहुंचने के अपने अधिकार के संरक्षण के प्रति तैयारी प्रदर्शित नहीं कर सकता।

इस युद्ध से जुड़ी इन्हीं सब बातों को देखते हुए इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी को यह कहने में कोई झिझक नहीं है कि यह एक युद्ध है जिसका भारत के लोगों को अपने स्वयं के हित में समर्थन करना चाहिए और ग्रेट ब्रिटेन को आगे बढ़ने में सहायता करनी चाहिए।

खोखला वाक्य

इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी को ज्ञात है कि अन्य राजनैतिक दलों को भी कुछ झिझक है। परन्तु यह झिझक सिद्धांतों पर आधारित नहीं बल्कि चालबाजियों पर आधारित है। वे इंग्लैंड की जरूरत को भारत के लिए एक अवसर बना देना चाहते हैं। मुस्लिम लीग और हिन्दू महासभा "जरूरत की इस घड़ी" का लाभ उठाते हुए साम्प्रदायिक संतुलन को अपने पक्ष में करने के लिए भारतीय संविधान में संशोधन कराना चाहते हैं। इस वर्गगत दर्ष्टिकोण पर विचार करना अनावश्यक है।

सबसे महत्वपूर्ण वर्ग, वह वर्ग है जो इंग्लैण्ड की जरूरत की घड़ी को भारत के

* यहां कुछेक शब्द अपठनीय हैं ।

उद्धार का अवसर बनाना चाहता है। यह समझ पाना बहुत कठिन है कि भारत के अवसर से क्या तात्पर्य है।

यदि इसका तात्पर्य यह है कि भारत अब अपनी अन्तर्निहित शक्ति से ब्रिटेन से अपनी शर्तों को मनवाने में सफल हो जाता है तो प्रत्येक व्यक्ति को यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि "भारत का अवसर" केवल एक खोखला वाक्य है, जिसमें कोई माद्दा नहीं है। सविनय अवज्ञा का गांधीवादी तरीका बहुत थकाऊ है और हर कोई इसे दूसरे रूप में देखना चाहता है।

यदि इसका तात्पर्य यह है कि यह भारतीय लोगों को ब्रिटिश वर्चस्व से उनका उद्धार करने के लिए ग्रेट ब्रिटेन के किसी शत्रु देश को आमंत्रित करने का एक अवसर है तो यह सबसे बड़ा जाल है। यह अच्छी तरह जानते हुए कि मेहमान के यहाँ आकर रहने और फिर भारतीय लोगों का मेजबान बन जाने की पूरी संभावना है तो ऐसा कोई भी भारतीय जिसकी निर्णय शक्ति भावनाओं के बोझ तले न दबी हो, इस कदम को सुविचारित और विवेकपूर्ण नहीं कहेगा।

कृपया, कोई नया आका नहीं

इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी मानती है कि जहाँ तक निकट भविष्य की कल्पना का संबंध है, अपने कदमों को व्यावहारिक राजनीति के ठोस धरातल पर रखते हुए भारत के लिए ब्रिटिश राष्ट्रकुल के राष्ट्रों में बने रहना और उनमें समान भागीदारी का दर्जा हासिल करने का प्रयत्न करना ही उसके सर्वोत्तम विकल्प है।

उस दर्जे को हासिल करने की दिशा में काफी रास्ता पहले ही तय कर लिया गया है। अब जितना रास्ता बाकी है वह छोटा–सा है और पहुंच के भीतर है। भारत के किसी काल्पनिक मित्र देश द्वारा अपने उद्धार की आशा में इस अवसर को भी गंवा देना राष्ट्र के लिए चाहे राजनैतिक आत्महत्या नहीं, परन्तु मूर्खतापूर्ण कार्य होगा। यह कोई नहीं जानता कि नए आका की सरपरस्ती में भारत का हश्र क्या होगा। कोई भी विचारशील भारतीय अपने देशवासियों को ऐसी नीति अपनाने की सलाह नहीं देगा जिसका परिणाम इतना अव्यावहारिक और इतना अनिश्चित व खतरनाक न हो।

ब्रिटेन का भारत के प्रति कर्त्तव्य

जर्मनी के साथ हो रहे इस युद्ध में ग्रेट ब्रिटेन से सहयोग करना जहाँ भारत के लोगों के हित में है, वहीं ब्रिटिश लोगों को भी यह समझ लेना चाहिए कि उनके भी भारत के प्रति कुछ कर्त्तव्य हैं, जिनका निर्वाह लम्बे समय तक स्थगित नहीं रखा जा सकता।

भारत के प्रति ब्रिटेन का सर्वप्रथम कर्त्तव्य भारतीय लोगों को अपने देश की रक्षा के लिए तैयार करने हेतु कदम उठाने का है।

भारत एक ऐसा देश है जिस पर चौतरफा हमले की संभावना है। इसके बावजूद भारत आज विश्व का सर्वाधिक संरक्षणहीन देश है। भूमि, समुद्री अथवा हवाई मार्ग से हमले का सामना करने के लिए इसके पास अपने कोई संसाधन नहीं हैं। अपनी रक्षा के लिए यह पूरी तरह नहीं, फिर भी काफी हद तक ब्रिटिश सेना, ब्रिटिश नौसेना और ब्रिटिश वायुसेना पर निर्भर है। गोलमेज सम्मेलन में इस बात पर सहमति हुई थी कि भारत की रक्षा को भारत की जिम्मेवारी माना जाना चाहिए, परन्तु इस सिद्धांत को कार्यरूप देने के लिए कुछ भी नहीं किया गया। सैन्य महाविद्यालय खोलने और अधिकारियों के ग्रेडों के भारतीयकरण के बारे में बहुत कुछ कहा जा चुका है। इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी का यह स्पष्ट अभिमत है कि भारतीयों को अपने देश की रक्षा का प्रशिक्षण देने के लिए कम से कम इतना तो किया जाना जरूरी है।

इसका सबसे महत्वपूर्ण भाग भारत के सभी लोगों के लिए जाति, वर्ग और पंथ के भेदभाव के बिना कतिपय आयु के आधार पर अनिवार्य सैन्य सेवा लागू करना है। कोई ऐसी नीति ही भारत के लोगों को अपने देश की रक्षा हेतु प्रशिक्षित करने में सफल हो सकती है।

भारत की जनशक्ति की सीमा अपार है। यदि इसे अपेक्षित सैन्य प्रशिक्षण दिया जाए, तो इसमें न केवल भारत की रक्षा करने का बल्कि पूरे ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा करने का सामर्थ्य है, चाहे आक्रमणकारी देश कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो। अतः यह अत्यंत आश्चर्य की बात है कि ब्रिटिश सरकार ने भारत के पुरुषों को राष्ट्रीय सुरक्षा हेतु प्रशिक्षण देने का कभी विचार नहीं किया। यह भी आश्चर्यजनक है कि जब युद्ध जीतना हो तो सरकार भारत के लोगों को सैनिक बनने के लिए बुलाती है और युद्ध समाप्त होते ही उन्हें नकारा बनाकर छोड़ देती है।

अनिवार्य सैन्य प्रशिक्षण

ब्रिटिश सरकार भारतीय लोगों को सैन्य दृष्टि से युद्ध की तरह शांति के समय भी सुव्यवस्थित रखने के लिए तैयार क्यों नहीं है? यह प्रश्न चारों ओर पूछा जा रहा है। लोगों में व्याप्त भावना के अनुसार ब्रिटिशों द्वारा अनिवार्य सैन्य प्रशिक्षण लागू न करने का कारण यह है कि सैन्य प्रशिक्षण प्राप्त भारतीय लोगों पर वे विश्वास नहीं कर सकते। इस संदेह को दूर करने के लिए कुछ किया जाना चाहिए। ब्रिटिश लोग यदि भारतीयों से मदद और सुरक्षा चाहते हैं, तो उन्हें भारत के लोगों पर विश्वास करना सीखना होगा और उन्हें सैन्य प्रशिक्षण सुलभ कराना होगा। विश्वास करने से ही विश्वास उत्पन्न होता है।

इसी प्रकार स्थायी सेना में भर्ती भी सभी समुदायों के लिए खुली होनी चाहिए और बहादुर और गैर–बहादुर वर्गों के बीच का भेद समाप्त किया जाना चाहिए। अधिकारियों के पदों का भारतीयकरण समुचित और निष्पक्ष तरीके से किया जाना चाहिए।

इस समय केवल सम्पन्न घरों के लड़के ही नौसैनिक और सैनिक स्कूलों में प्रवेश ले सकते हैं इसलिए नहीं कि उनका शरीर सौष्ठव इसके लिए उपयुक्त है बल्कि इसलिए कि प्रशिक्षण की ऊंची लागत वहन करने के लिए पैसा उनके पास है। दूसरे शब्दों में, ब्रिटिश सरकार में भरोसा और विश्वास पैदा करने के उद्देश्य से सैन्य सेवा में उच्च पदों पर केवल सम्पन्न और विशेष रूप से चुने गए समुदायों का एकाधिकार समाप्त किया जाना चाहिए।

साम्राज्य के भीतर भारत की प्रास्थिति

ब्रिटिशों को भारत के प्रति दूसरा कर्त्तव्य उसे इस बात का विश्वास दिलाना है कि ब्रिटिश साम्राज्य में उसका दर्जा क्या होगा। गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया एक्ट की उद्देशिका में ब्रिटिश संसद का यह कहना कि भारत का दर्जा अंततः एक उपनिवेश का होगा, द्वेष का कारण बन चुका है।

ब्रिटिश सरकार में अनेक लोगों के विश्वास को इस बात से गहरा धक्का लगा कि संसद को 1935 में औपनिवेशिक दर्जे की घोषणा पर औपचारिक स्वीकृति प्रदान करने से इंकार कर देना चाहिए था, जिसे लार्ड इरविन ने 1929 में अनौपचारिक परन्तु प्राधिकृत रूप से किया था। ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत का यह संदेह यथाशीघ्र दूर किया जाना चाहिए। भारत स्वेच्छा और हृदय से उन सिद्धांतों के लिए नहीं लड़ सकता। यदि वह आश्वस्त न हो कि इन्हीं सिद्धांतों का लाभ उसे युद्ध समाप्त होने पर मिलेगा।

इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी की यही वैचारिक स्थिति है। इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी इस वक्तव्य में दिए गए कारणों से युद्ध में ब्रिटिश सरकार की मदद करने के लिए महामहिम वायसराय द्वारा की गई अपील का समर्थन करती है।

इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी सहमत है कि यह शर्तें रखने का समय नहीं है। साथ ही इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी यह मानती है कि ब्रिटिश और भारतीय यह अच्छी तरह समझ लें कि वे किस उद्देश्य से लड़ रहे हैं और एक–दूसरे से क्या चाहते हैं।[1]

***

[1] विविध वृत्त : 17 सितम्बर, 1939

9

भारत का दो भागों में विभाजन रोकने के लिए सद्बुद्धि और राजनीतिमत्ता जागृत होगी

दिनांक 6 अक्तूबर, 1939 को प्राप्त संदेश के अनुसार डॉ. बी. आर. अम्बेडकर को महामहिम वायसराय से मुलाकात करने के लिए सोमवार दिनांक 9 अक्तूबर, 1939 को आमंत्रित किया गया था।[1] तदनुसार, महामहिम वायसराय ने डॉ अम्बेडकर से दिनांक 9 अक्तूबर, 1939 को बातचीत की। इसके अलावा उन्होंने श्री विनायक दामोदर सावरकर और सर मोहम्मद याकूब से भी बातचीत की।[2]

तत्पश्चात डॉ. अम्बेडकर ने यह बयान जारी किया :

नई दिल्ली, दिनांक 10 अक्तूबर, 1939

"अल्पसंख्यकों की समस्या का समाधान तब तक नहीं हो सकता जब तक श्री गांधी और कांग्रेस, गैर–कांग्रेसी व्यक्तियों और पार्टियों के प्रति अपना स्वार्थी और अक्खड़ दृष्टिकोण त्याग नहीं देते। देशभक्ति कांग्रेसजनों का एकाधिकार नहीं है और कांग्रेस से मतभेद रखने वाले व्यक्तियों को भी अपना अस्तित्व बनाए रखने और मान्यता प्राप्त करने का पूरा विधिसम्मत अधिकार है।" ये उद्‌गार डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने आज सुबह मुम्बई रवाना होने से पहले एसोसिएटेड प्रेस को दिए गए एक बयान में व्यक्त किए।

डॉ. अम्बेडकर, जो कल दिल्ली आए थे, ने महामहिम वायसराय से लम्बी बातचीत की। समझा जाता है कि उन्होंने भारत में संविधान निर्माण की प्रगति और अपने समुदाय की वैचारिक स्थिति से वायसराय को अवगत कराया। इस संबंध में डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि पूना समझौते का कार्यान्वयन संतोषजनक नहीं कहा जा सकता। बहुसदस्यीय निर्वाचन क्षेत्रों के अभाव में अनुसूचित जातियों के वास्तविक प्रतिनिधि चुनाव जीतकर विधानमंडल में नहीं पहुंच सके हैं। वह इस प्रश्न को आगामी पुनरीक्षा के दौरान उठाना चाहते हैं, जो उन्हें आशा है कि पहले से तय कार्यक्रम से भी पहले ही की जाएगी। जब तक अनुसूचित जातियों के वास्तविक प्रतिनिधित्व का

[1] द बॉम्बे क्रॉनिकल, दिनांक 7 अक्तूबर, 1939

[2] द बॉम्बे क्रॉनिकल, दिनांक 10 अक्तूबर, 1939

कोई तरीका नहीं ढूंढ लिया जाता, उन्हें खेद है कि अपने समुदाय के लिए अलग निर्वाचन क्षेत्रों पर जोर देना पड़ेगा।

हिन्दू–मुस्लिम समस्या

हिन्दू–मुस्लिम समस्या का उल्लेख करते हुए डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि वह इस आरोप को सही नहीं मानते कि कांग्रेस शासित प्रांतों में मुसलमानों पर अत्याचार हो रहे हैं अथवा उन्हें आतंकित किया जा रहा है। आज मुसलमान और अन्य अल्पसंख्यक देश की सरकार में हिस्सेदारी और शासक वर्ग में बराबरी का दर्जा चाहते हैं। कांग्रेस हमेशा से उससे वंचित करती रही है और अपने संगठन के अलावा किसी और वर्ग अथवा समुदाय को मान्यता देने से इंकार करती रही है।

उन्होंने कहा कि मुसलमान अब तक सुरक्षा उपाय चाहते रहे हैं, जिसका तात्पर्य है कि जरूरी संरक्षण मिलने पर वह अन्य समुदायों के साथ रहने के लिए तैयार हैं। आज भारत को हिन्दू भारत और मुसलमान भारत में विभाजित करने की मांग उठी है और यदि यही दृष्टिकोण आम जनता में पैठ बना लेता है, तो अखण्ड भारत की कोई आशा नहीं रह जाएगी। आज इसका समाधान कांग्रेस और बहुसंख्यक समाज के पास है और इसके लिए मानसिक आदार्य, राजनीतिमत्ता और वास्तविकता से रूबरू होने की जरूरत है।

"बहुत देर हो चुकी होगी"

डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि कल तक बहुत देर हो चुकी होगी। यह समस्या सुलझाई जा सकती है और इसे सुलझाया जाना चाहिए। समस्या अब केवल यह नहीं है कि अल्पसंख्यकों के साथ उचित और बराबर का व्यवहार होना चाहिए। समस्या यह है कि अल्पसंख्यकों को महसूस कराया जाए कि वे .... देश की सरकार के अभिन्न अंग हैं। अब यह गरिमा और आत्मसम्मान का प्रश्न बन गया है।

अपने वक्तव्य का समापन करते हुए डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि आज की स्थिति में अपने समुदाय को किसी और बड़े समुदाय में शामिल होने से रोक पाना उन्हें कठिन प्रतीत हो रहा है, परन्तु कांग्रेस का वर्तमान रवैया उनकी आवाज को शायद अप्रभावी कर देगा। अनुसूचित जातियों के किसी और धर्म में जाकर मिल जाने की जिम्मेदारी कांग्रेस की होगी। "मुझे उम्मीद है कि भारत के दो टुकड़े होने से रोकने और अनुसूचित जातियों को ताकतवर और प्रभावशाली अल्पसंख्यकों से जाकर मिलने से रोकने के लिए कांग्रेस में समय रहते सद्बुद्धि और राजनीतिमत्ता जागृत होगी।"[1]

***

[1] द टाइम्स ऑफ इंडिया, दिनांक 11 अक्तूबर, 1939

10

अत्यंत अस्पष्ट योजना सलाहकार समिति में डॉ. अम्बेडकर

इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी के नेता डॉ भीमराव अम्बेडकर ने यह बयान जारी किया है:—

डॉ. बी. आर. अम्बेडकर की अध्यक्षता में इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी की कार्यकारी परिषद की दिनांक 21 अक्तूबर को हुई बैठक में निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किया गया :

इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी की कार्यकारी परिषद वर्तमान युद्ध से उत्पन्न स्थिति के संबंध में जारी किए गए वक्तव्य की पुष्टि करती है।

पार्टी की कार्यकारी परिषद ने महामहिम वायसराय द्वारा 27 अक्तूबर को की गई घोषणा पर विचार किया है।

परिषद की राय में भारत के लोगों की आकांक्षाओं और मांगों के बारे में अंग्रेज सरकार की ओर से एक बेहतर तथा अधिक संतोषजनक उत्तर आता, यदि कांग्रेस ने इस देश के विभिन्न समुदायों और वर्गों के बीच एकता कायम करने का प्रयास किया होता।

महामहिम वायसराय के इस आश्वासन को देखते हुए कि युद्ध समाप्त होने के बाद सरकार तुरंत विभिन्न समुदायों, पार्टियों और हितबद्ध लोगों के प्रतिनिधियों के साथ भारत के संविधान में संशोधन करने के लिए विचार—विमर्श करेगी और इस तथ्य के मद्देनजर कि ब्रिटिश सरकार ने भारत के उद्देश्य के रूप में उसके औपनिवेशिक दर्जे के अनुपालन की घोषणा की है और इस तथ्य को भी देखते हुए कि युद्ध का घटनाक्रम एक ऐसा मोड़ ले सकता है कि भारत की रक्षा का प्रश्न ग्रेट ब्रिटेन की मदद करने से भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाए, कार्यकारी परिषद महसूस करती है कि वर्तमान समय ग्रेट ब्रिटेन के साथ सहयोग को स्थगित रखने का उचित अवसर नहीं है।

बहरहाल, परिषद की राय में सलाहकार समिति के गठन का प्रस्ताव संतोषजनक नहीं है। इस प्रश्न के अलावा कि प्रस्तावित समिति को न तो निर्णय लेने का अथवा दिशा—निर्देश देने का अधिकार होगा, यह केवल अस्थायी लोगों का एक निकाय बनकर रह जाएगी। समिति की यह राय है कि पैनल प्रणाली इस प्रस्ताव की सबसे आपत्तिजनक बात है। तथापि, इस प्रस्ताव पर पार्टी द्वारा कोई अंतिम या सुविचारित मत व्यक्त किए जाने से पहले प्रस्तावित समिति की संरचना, कार्यों, अधिकारों और दायरे के विशेष संदर्भ में इस योजना का विस्तृत विवरण दिया जाना जरूरी है — एसोसिएटेड प्रेस"[1]

***

[1] द बॉम्बे क्रॉनिकल, दिनांक 24 अक्तूबर, 1939

11

सामाजिक समरसता के माध्यम से ही हम एक राष्ट्र बन सकते हैं

इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी के नेता डॉ. बी. आर. अम्बेडकर ने सोमवार दिनांक 5 फरवरी, 1940 को कांग्रेस और मुस्लिम लीग के दष्टिकोण पर चर्चा करते हुए कहाः

"मैं गांधी जी और कांग्रेस से सहमत नहीं हूं जब वे यह कहते हैं कि भारत एक राष्ट्र है। मैं मुस्लिम लीग की विदेश संबंधी समिति के इस कथन से भी सहमत नहीं हूं कि एक राष्ट्र के रूप में हिन्दुओं और मुसलमानों को जोड़ा नहीं जा सकता।"

उन्होंने आगे कहा "मेरा मानना है कि हम एक राष्ट्र नहीं हैं। परन्तु मुझे इस बात की पूरी आशा है कि हम एक राष्ट्र हो सकते हैं बशर्ते सामाजिक समरसता की समुचित प्रक्रिया की शुरुआत की जाए।"[1]

***

[1] द टाइम्स ऑफ इंडिया, मंगलवार, 6 फरवरी, 1940
पुनर्मुद्रण खैरमौडे खण्ड 9, पृष्ठ 31

12

सुभाष चंद्र बोस और डॉ. भीमराव अम्बेडकर की मुलाकात

जब सुभाष चंद्र बोस को कांग्रेस के अध्यक्ष पद से हटा दिया गया था तब वे बेचैन से थे। वह भारतीय फौज को ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध संघर्ष के लिए संगठित कर रहे थे, जो यूरोप में जीवन–मरण की लड़ाई में उलझी थी। सुभाष बाबू ने बम्बई आकर जिन्ना, अम्बेडकर और सावरकर से 22 जुलाई, 1940 को मुलाकात की।

सुभाष चंद्र बोस प्रस्तावित संघ को स्वीकार करने के एकदम खिलाफ थे, और चूंकि डॉ अम्बेडकर भी इसके विरोधी थे इसलिए सुभाष बाबू ने इसे उनके साथ एकजुट होने का अवसर जाना होगा।

संघ के मुद्दे पर विचार–विमर्श के बाद, डॉ. अम्बेडकर ने सुभाष बाबू से पूछा कि क्या वह चुनाव में कांग्रेस के विरुद्ध अपने उम्मीदवार खड़े करेंगे। उनका उत्तर नकारात्मक था। तब डॉ. अम्बेडकर ने सुभाष बाबू से पूछा कि अछूतों की समस्या पर उनकी पार्टी का सकारात्मक दृष्टिकोण क्या होगा। सुभाष बाबू के पास कोई युक्तिसंगत उत्तर नहीं था, अतः बातचीत वहीं समाप्त हो गई।"[1]

***

[1] कीर, पृष्ठ 322

13

कांग्रेस के निर्णय का तात्पर्य

गांधी जी की आपत्ति पर डॉ. अम्बेडकर के विचार

सेवा में,

सम्पादक,

'द टाइम्स ऑफ इण्डिया'

महोदय,

बम्बई में हुई ए. आई. सी. सी. की बैठक में गांधीजी के उद्गारों पर दो प्रकार की राय देखी गई है।

पहली तो यह कि वहाँ गांधीजी का प्रदर्शन अत्यंत चतुराई भरा था जो एक साधारण व्यक्ति की क्षमता से कहीं आगे था, और गांधीजी ने अपने प्रदर्शन से सविनय अवज्ञा के विक्षोभ को दरकिनार कर दिया। मेरे लिए तो ये दोनों विचार विस्मित कर देने वाले हैं। इतने महत्वपूर्ण मामलों पर लोग इतने हल्के तरीके से जनमत तैयार करें, यह देखकर जनता की विशेष रूप से हिन्दू जनता की विचार क्षमता पर क्षोभ होता है। मेरी समझ में नहीं आता कि गांधीजी किस प्रकार सविनय अवज्ञा से बचना चाहते हैं। यह सही है कि गांधीजी युद्ध के विरुद्ध अपनी बात कहने की स्वतंत्रता चाहते हैं और यह कहना चाहते हैं कि लोग युद्ध में भागीदारी न करें अथवा तन या धन से सहयोग न करें। परन्तु इसका तात्पर्य क्या है? मेरे विचार से तो इसका तात्पर्य और कुछ नहीं बल्कि डिफेंस ऑफ इण्डिया एक्ट की सविनय अवज्ञा है। हिन्दू जनता गांधीजी के इस आह्वान का अर्थ निरूपण सविनय अवज्ञा के रूप में क्यों नहीं करती, यह मेरी समझ से परे है।

अत्यन्त असमंजसपूर्ण

इस पूरी स्थिति में जो बात सबसे असमंजसपूर्ण है वह है गांधीजी का वायसराय से मुलाकात की धृष्टता और वायसराय द्वारा मुलाकात के लिए स्वीकृति दिए जाने के प्रति निश्चित होना। गांधीजी से कहीं कम बुद्धि रखने वाला व्यक्ति भी जानता है कि डिफेंस ऑफ इण्डिया एक्ट की अवहेलना करने के लिए वायसराय की अनुमति लेने से ज्यादा हास्यास्पद और कुछ नहीं है। यह बात गांधीजी से छिपी तो नहीं हो सकती कि वह इंग्लैंड अथवा अमेरिका के कर्त्तव्यनिष्ठ आपत्तिकर्ताओं को जो पहले से स्वीकृत है उससे कहीं अधिक की मांग कर रहे हैं। कर्त्तव्यनिष्ठ आपत्तिकर्ताओं से यही कहा गया है कि उनसे सैनिक सेवा में आने की जबरदस्ती नहीं की जाएगी। उन्हें न तो असैन्य सेवा से छूट दी गई है और न ही उन्हें युद्ध छिड़ जाने पर युद्ध के विरोध में भाषण देने की स्वतंत्रता ही दी गई है।

14

भारतीय संकट के समाधान की डॉ. अम्बेडकर की योजना

मुसलमानों की मांग की आलोचना

"जनरल च्यांग काई शेक ने ब्रिटिश सरकार से अपील की है कि वह भारत के लोगों से माँग किए जाने की प्रतीक्षा किए बिना उन्हें वास्तविक राजनैतिक सत्ता शीघ्र सौंप दे। परन्तु इस परिपूर्ति के मार्ग में आने वाली कठिनाइयों का कोई समाधान इन्होंने नहीं बताया है", ये उद्गार डॉ. बी. आर. अम्बेडकर ने प्रेस से बातचीत करते हुए व्यक्त किए।

कठिनाई वायसराय द्वारा जारी अगस्त घोषणापत्र की आधारभूत विशेषताओं को कांग्रेस द्वारा स्वीकार न किए जाने के कारण उत्पन्न हुई है जिसमें कहा गया है कि भारत के भावी संविधान में भारत के राष्ट्रीय जीवन के कतिपय महत्वपूर्ण तत्वों की सहमति अवश्य होनी चाहिए। इसी प्रकार, कठिनाई ब्रिटिश सरकार द्वारा अपना दायित्व महसूस न किए जाने के कारण भी उत्पन्न हुई है।

कांग्रेस किसी भी सुविज्ञ व्यक्ति से, जो भारत की दशा के बारे में जानता हो, हिन्दू बहुसंख्यकों के हाथों में महज इसलिए कि वे बहुसंख्यक हैं, देश को दे देने की आशा नहीं कर सकती। कांग्रेस यह आसानी से भूल जाती है कि हिन्दुत्व फासीवादी अथवा नाजीवादी विचारधारा के लक्षणों जैसी ही एक राजनैतिक विचारधारा है जो घोर अलोकतांत्रिक है। यदि हिन्दुत्व को छूट दे दी जाए, जो बहुसंख्यक हिन्दू चाहते हैं, तो यह हिन्दुओं से अन्य लोगों और जो हिन्दुत्व के विरोधी हैं, की प्रगति के लिए एक खतरा सिद्ध होगा। यह वैचारिक दृष्टिकोण केवल मुसलमानों का ही नहीं है। दलित वर्गों और गैर–ब्राह्मणों का भी यही दृष्टिकोण है।

सत्ता का बंटवारा जरूरी

इसका प्रतिकारक उपाय एक ऐसा संविधान है जिसमें सत्ता का बंटवारा ब्रिटिश भारत के राष्ट्रीय जीवन के विभिन्न तत्वों के बीच किया गया हो। यदि लोकतंत्र के लिए भारत को सुरक्षित रखा जाना हो तो ब्रिटिश हाथों से भारतीय हाथों में सत्ता

हस्तांतरण से पहले किसी ऐसी व्यवस्था पर सहमति बनानी होगी जिसके द्वारा सत्ता का सीधा बंटवारा हो, जो नियंत्रण एवं संतुलन का ही दूसरा नाम है। अतः ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत के लोगों को यह बताया जाना बिल्कुल उचित है कि राजनैतिक सत्ता हस्तांतरण की मांग करने से पहले वे अपने संवैधानिक मतभेदों का सहमत समाधान प्रस्तुत करें।

यह कहना हास्यास्पद है कि कांग्रेस देश के लिए लड़ रही है। कांग्रेस इसलिए लड़ रही है कि वह सत्ता की चाबी अपने हाथ में चाहती है। यह कहना भी उतना ही हास्यास्पद है कि कांग्रेस अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए लड़ रही है। डिफेंस ऑफ इण्डिया एक्ट को अस्तित्व में आए पूरा एक वर्ष बीत गया है। कांग्रेस ने जो परिश्रम किया है वह सिविल लिबर्टीज यूनियन की हाल की रिपोर्ट में दिया गया है। यदि गाधी जी महसूस करते हैं कि डिफेंस ऑफ इण्डिया एक्ट ने देश को उसकी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता से वंचित कर दिया है तो उन्होंने यह अधिनियम पारित होने पर तुरंत सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू क्यों नहीं किया? उन्होंने एक वर्ष इंतजार क्यों किया? विद्रोह इसके बाद ही क्यों शुरू हुआ जब वायसराय ने बयान दिया कि सरकार देश के अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधियों और अन्य पार्टियों की सहायता से चलने दी जाए? इसका कोई उत्तर नहीं है। डिफेंस ऑफ इण्डिया एक्ट से उत्पन्न कठिनाई वायसराय की योजना को नाकाम करने और अल्पसंख्यकों एवं अन्य लोगों को राजनैतिक ताकत हासिल करने से रोकने के लिए कांग्रेस द्वारा पेश किया गया एक बहाना मात्र है।

ब्रिटिश उदाहरण

ऐसी बेसिर की कांग्रेस की कारवाई। यह एक अच्छी चालबाजी है और यदि कांग्रेस इसमें कामयाब रहती है तो यह इस बात का एक और प्रमाण होगा कि लोकतांत्रिक सरकार की स्थापना करने वाले ब्रिटिश एक लोकप्रिय पार्टी की नजरों में बुरा बनने का जोखिम नहीं उठाएंगे। लेकिन क्या यह राजनीतिमत्ता है? इस संदर्भ में हमें मि. एस्किथ द्वारा 1923 में की गई कार्रवाई याद आती है। 1923 में हुए चुनाव में किसी भी पार्टी को बहुमत हासिल नहीं हुआ था। कंजर्वेटिव पार्टी को 255, लेबर पार्टी को 191 और लिबरल पार्टी को 158 सीटें हासिल हुई थीं। उदारवादियों के नेता के रूप में मि. एस्किथ के सामने तीन विकल्प थे : (i) कंजर्वेटिव पार्टी का समर्थन करना, अथवा (ii) लेबर पार्टी का समर्थन करना, अथवा (iii) कंजर्वेटिव पार्टी के समर्थन के भरोसे स्वयं पद ग्रहण करना। मि. एस्किथ से टोरी पार्टी से समझौता करने की अपील की गई थी ताकि लेबर पार्टी को सत्ता में आने से रोका जा सके।

लेकिन ऐसे सुझाव के लालच में आने के बजाए मि. एस्किथ ऐसी किसी योजना के विरुद्ध थे। उन्होंने जो कारण दिए थे उनमें से पहला तो यह था कि ऐसा करना राष्ट्रीय हित के लिए नुकसानदेह होगा और दो मध्यमवर्गीय पार्टियों द्वारा मिलाकर लेबर– पार्टी को सरकार बनाने के अवसर से वंचित रखना वर्ग संघर्ष को बढ़ावा देने वाली बात होगी। यदि कांग्रेसजन अल्पसंख्यकों को अवसर से वंचित रखते है तो मुझे उम्मीद है कि उन्हें महसूस होगा वे अपनी जीत भारी कीमत देकर खरीद रहे हैं। यदि वे इसे अभी महसूस नहीं करते तो तब महसूस करेंगे जब पार्टियां संविधान में संशोधन हेतु बैठक करेंगी। कांगेस की इस कार्यवाही से दो बातें अच्छी तरह स्पष्ट हो जाती हैं। एक तो यह कि ब्रिटिश संसदीय पद्धति इस देश के लिए उपयुक्त नहीं है। दूसरे, यदि कोई एक सद्भावनापूर्ण वायदे के भरोसे एक महत्वपूर्ण रक्षोपाय त्याग देता है तो ऐसा वह अपने स्वयं के जाखिम पर करेगा।

डॉ. बी. आर.
अम्बेडकर"[1]

***

[1] द टाइम्स ऑफ इंडिया दिनांक 24 सितम्बर, 1943

डॉ. अम्बेडकर की योजना की आलोचना

लेकिन मि. एमरी यह समझते हैं कि वह रुक सकते हैं। उन पर लगाए जाने वाले इस लांछन के अलावा कि वह भारतीय राजनैतिक पार्टियों के बीच व्याप्त मतभेद को भारत की प्रगति को रोकने का बहाना बना रहे है, मुझे ऐसा लगता है कि वह, अपनी जिम्मेदारियों को समझ पाने में पूरी तरह असफल रहे हैं। ब्रिटिश सरकार को मात्र यह अधिकार नहीं है कि वह सर्वसम्मत समाधान पेश करने के लिए भारतीय लोगों से अपील करे बल्कि उसका यह कर्त्तव्य इसलिए बनता है कि ब्रिटिश सरकार भारत के लोगों को एक संवैधानिक गतिरोध को दूर करने के एक महत्वपूर्ण अंतिम साधन और शायद एकमात्र साधन से वंचित कर रही है। वह युद्ध के साधन से अन्य और कोई साधन नहीं है। कुछ लोगों को इससे सदमा जरूर लगेगा। लेकिन हम यह न भूलें कि चाहे अंग्रेजी क्रांति हो, या फ्रांस की क्रांति या अमेरिकी क्रांति; ये ऐसे उदाहरण हैं जब संवैधानिक गतिरोध को युद्ध से ही सुलझाया गया था। इस साधन का प्रयोग करना ब्रिटिश सरकार द्वारा सबकी भलाई के लिए निषेधादेश निकालना होगा। तात्पर्य यह है कि जब विवाद का निपटारा किसी पार्टी की हठधर्मिता या अड़ियल रवैये के कारण न हो सके तो विवाद निपटाने के लिए वह स्वयं बीच में आए।

जब ऐसी स्थिति है तो ब्रिटिश सरकार संवैधानिक मतभेद को निपटाने की जिम्मेदारी भारत के लोगों के कंधों पर डालकर बच नहीं सकती। उसे यह समझ लेना चाहिए कि इस मामले में अंतिम उत्तरदायित्व उसी का है। ऐसा मेरा अभिमत है। मेरा विचार है कि ब्रिटिश सरकार के लिए निम्नलिखित दिशा–निर्देशों पर घोषणा पत्र जारी करना संभव है :–

(1) शांति की तारीख से तीन वर्षों के भीतर भारत को उपनिवेश का दर्जा देने का प्रस्ताव किया जाता है।

(2) इस प्रयोजन के शीघ्र निष्पादन हेतु भारत के राष्ट्रीय जीवन के पक्षकारों को अपने संवैधानिक मतभेदों का सहमत समाधान युद्ध विराम पर हस्ताक्षर की तारीख से एक वर्ष के भीतर प्रस्तुत करना अपेक्षित होगा।

(3) सहमति न बनने पर, ब्रिटिश सरकार इस विवाद को एक अन्तर्राष्ट्रीय अधिकरण के समक्ष निर्णयार्थ प्रस्तुत करेगी।

(4) जब ऐसा निर्णय प्रस्तुत किया जाता है तो ब्रिटिश सरकार इसे भारत के लिए औपनिवेशिक संविधान के भाग के रूप में कार्यान्वित करने का अभिवचन देती है।

ऐसी घोषणा से सभी विचारशील लोग संतुष्ट होने चाहिए। जहाँ तक मेरा मानना है यह श्री जिन्ना के वैचारिक दृष्टिकोण और दलित वर्गों के दृष्टिकोण के अनुरूप है कि साम्प्रदायिक समस्या का सर्वसम्मत हल ढूंढा जाना चाहिए। यह कांग्रेस की वैचारिक स्थिति के भी अनुरूप है कि ब्रिटिश भारत के राष्ट्रीय जीवन के किसी तत्व को औपनिवेशिक संविधान के जन्म के संबंध में वीरों की शक्ति नहीं दी जानी चाहिए। यह तर्क, कि अभी तो हम युद्धरत हैं ऐसी घोषणा जारी न करने का कोई तर्क नहीं है। निःसंदेह यह तर्क इसके पक्ष में है।

युद्ध का प्रयास तीन बातों पर निर्भर है :–

(1) अत्यावश्यकता का भाव, (2) युद्ध के प्रयोजन का बोध, और (3) इस बात की ठोस अवधारणा कि हम युद्ध कैसे जीत सकते हैं – वास्तविक एवं युक्तिसंगत योजना की आवश्यकता। युद्ध में जापान के कूद पड़ने से भारत के लोगों के लिए अत्यावश्यकता की स्थिति आ गई है, कम से कम उन लोगों के लिए जो यह समझते हैं कि आसन्न विनाश से अपने आपको बचाना अंतिम उद्देश्य को प्राप्त करने से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। युद्ध के प्रयोजन की समझ का अभी अभाव है और ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतीय लोगों के पक्ष में अपने प्राधिकार को वापस ले लेने से वह समझ भी उत्पन्न होगी।

क्या घोषणा के साथ एक राष्ट्रीय सरकार का होना भी जरूरी है? यदि ऐसा किया जा सकता हो तो बेहतर होगा। लेकिन श्री जिन्ना दो माँगें रख रहे हैं। एक तो अंतिम है, अर्थात पाकिस्तान। दूसरी तात्कालिक है अर्थात मंत्रिमंडल में 50 प्रतिशत प्रतिनिधित्व। पाकिस्तान की माँग मैं भलीभांति समझ सकता हूँ। जब श्री जिन्ना यह कहते हैं कि मुसलमान एक राष्ट्र है। मैं झगड़ा करने का कोई कारण महसूस नहीं करता। जब श्री जिन्ना यह कहते है कि मुसलमानों को पाकिस्तान मिलना चाहिए, क्योंकि वह एक राष्ट्र है तो मैं कहता हूँ कि जरूर ले लो और इस तरह हिन्दुओं की एक बड़ी आबादी भी साथ ले जाओ, जिनकी राष्ट्रीयता आपके अनुसार अलहदा है।

जहाँ तक पाकिस्तान का प्रश्न है, मैं यह बताना चाहता हूँ कि श्री जिन्ना पहले से ही अपनी जीत निश्चित मान रहे हैं। एन. डब्ल्यू. एफ. इस पाकिस्तान का अभिन्न अंग है। जिन्ना को यह स्वीकार करना होगा कि वह एन. डब्ल्यू. एफ. मेजबान नहीं है। मेजबान हैं खान अब्दुल गफ्फार खान। उनकी सहमति के बिना पाकिस्तान हो ही नहीं सकता। पाकिस्तान के पक्ष में धुँआंधार प्रचार करने के बजाए जिन्ना को अपनी ऊर्जा और समय खान अब्दुल गफ्फार खान का मन बदलने में लगानी चाहिए। खैर, यह श्री जिन्ना के लिए विचार करने की बात है।

पाकिस्तान की मांग

जैसा कि मैंने कहा, मैं पाकिस्तान को समझ सकता हूँ। लेकिन मैं यह मुस्लिम समुदाय के लिए 50 प्रतिशत के प्रतिनिधित्व की माँग नहीं समझ सकता। न मैं यह समझ सकता हूँ कि यह 50 प्रतिशत की तात्कालिक माँग पाकिस्तान जैसी अंतिम माँग से कैसे जुड़ी हुई है। मुझे पूरा यकीन है कि मुस्लिम लीग की यह माँग शैतानी करतूत है और इसमें कोई संदेह नहीं कि लॉर्ड लिनलिथगो ने यह माँग ठुकरा कर भारत का बहुत भला किया। मेरा यह सुविचारित मत है कि अंतरिम उपाय के तौर पर भारत में ऐसी कोई राष्ट्रीय सरकार नहीं बननी चाहिए जिसमें जिन्ना साहब के 50 प्रतिशत प्रतिनिधित्व के दावे को माने जाने का अभिप्राय हो। आखिरकार, मैं यह नहीं समझता कि युद्ध के प्रयास के मामले में जो कुछ किया जा रहा है, राष्ट्रीय सरकार उससे बढ़कर कुछ और कर सकती है।

भारत ज्यादा कुछ कर नहीं सकता। उसकी क्षमता का अभी विकास नहीं किया गया है। इसका पूरा दोष ब्रिटिश सरकार का है। शांति के समय उसने भारत के संसाधनों का विकास नहीं किया। इसलिए, अभी जो किया जा रहा है उससे अधिक कुछ कर पाना सरकार या राष्ट्रीय सरकार के लिए संभव नहीं है। यदि भारत का पूर्ण विकास किया गया होता तो उसने ब्रिटिश साम्राज्य को बचा लिया होता। अब तो वह स्वयं की भी रक्षा नहीं कर सकता। उसे अपनी रक्षा करनी चाहिए। वह तो आसन्न जापानी आक्रमण से अपनी रक्षा के लिए इंग्लैण्ड का मुंह ताकने को विवश है; ऐसी असहाय स्थिति है उसकी!

रक्षा सदस्य के रूप में किसी भारतीय की नियुक्ति करना एक अच्छा विचार है, परन्तु क्या यह पर्याप्त है? यह समझ पाना बहुत कठिन है कि अपने नियंत्रण में रक्षा साधनों के बिना भारतीय रक्षा मंत्री कर भी क्या सकता है। मेरा विचार है कि रक्षा से जुड़े साधनों को, जिन्हें इंग्लैण्ड ने अपनी स्वयं की सुरक्षा के लिए जमा कर रखा है, उसे भारत भेजने के लिए कहना भारतीयों के लिए उचित निर्णय होगा। इसी में भारत का तात्कालिक हित है और यही इंग्लैण्ड का कर्त्तव्य है।" ए.पी.[1]

***

[1] द टाइम्स ऑफ इंडिया : 27 फरवरी, 1942

15

भारतीयों की नियति लोकतंत्र की जीत से जुड़ी है

"गांधीजी से कोई भी एक समान व्यवहार करते रहने की अपेक्षा नहीं कर सकता। लेकिन सबने यही किया और प्रत्येक को उनसे जिम्मेदारी की भावना की उम्मीद करने का अधिकार था। इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि गांधीजी का इस समय एक जनांदोलन छेड़ने का विचार गैर–जिम्मेदाराना भी है और युक्तिहीन भी।" यह बात भारत सरकार के लेबर मेम्बर माननीय डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने सोमवार की शाम यहां से दिल्ली रवाना होने से पहले द टाइम्स ऑफ इण्डिया के प्रतिनिधि से कही।*

"गांधीजी कोई और तरीका अपनाने की कोशिश क्यों नहीं करते, जैसे सभी पार्टियों के बीच आम राय बनाना? वह सभी राजनैतिक पार्टियों के नेताओं का एक सम्मेलन बुलाकर क्यों नहीं देखते कि उनकी माँगें क्या–क्या हैं और यदि कोई मतभेद है तो उसे निपटाते क्यों नहीं?"

ये सवाल डॉ. अम्बेडकर ने किए। उन्होंने आगे कहा : "कर्त्तव्य की माँग है कि गांधी जी के आन्दोलन में जिन लोगों का विश्वास नहीं है, उन्हें कुछ कदम उठाकर कथित कार्रवाई पर अमल करने से उन्हें रोकना चाहिए।"

यह समझ पाना कठिन है कि भारत के इतिहास के इतने खतरनाक दौर में गांधी जी ऐसी खतरनाक कार्ययोजना को शुरू करना जरूरी क्यों समझते हैं, डॉ. अम्बेडकर ने आगे कहा :

कुछेक बातें मेरे सामने बहुत स्पष्ट हैं। जहाँ तक भारत का अपने राजनैतिक उद्देश्य को प्राप्त करने का प्रश्न है, इस बात से कोई इंकार नहीं करता कि ब्रिटिश सरकार से भारत के लोगों को सत्ता का हस्तांतरण एक सतत प्रक्रिया रही है और हाल के दिनों में भारत की स्वततंत्रा के प्रति भावातिरेक रखने वाले लोगों के विचारों को छोड़कर इस प्रक्रिया में तेजी भी आई है। इन भावातिरेकी देशभक्तों को छोड़ दिया जाए तो यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं कि ब्रिटिश और भारत के लोगों का साथ अब अपने अंतिम दौर में है। यह बात भी उतनी ही साफ है कि ब्रिटिश भी इस अंतिम

---

* 27 जुलाई, 1942

दौर में अपने आपको फंसाए रखना और अंतिम लक्ष्य को प्राप्त करने में भारत की राजनैतिक प्रगति में रुकावट डालना नहीं चाहते हैं। यदि बात का कोई प्रमाण देना जरूरी है तो वह हैं क्रिप्स मिशन के प्रस्ताव। उन्होंने स्वतंत्रता और संविधान सभा का गठन करना स्वीकार कर लिया है, और यही दोनों माँगें कांग्रेस कर रही थी।

क्रिप्स मिशन के प्रस्तावों के बाद गांधीजी के इस कथन पर विश्वास करना कठिन है कि ब्रिटिश भारत के लोगों के हाथों सत्ता सौंपना नहीं चाहते। यह एक सकारात्मक और सुविचारित झूठ है।

क्रिप्स प्रस्तावों को खारिज किया जाना मेरे विचार से इस बात को प्रभावित नहीं करता कि यदि भारतीय अपने लिए औपनिवेशिक दर्जा पसन्द करते हों तो ब्रिटिश सरकार स्वतंत्रता के प्रति वचनबद्ध है।

अदूरदर्शी निर्णय

"यह कोई नहीं जानता कि कांग्रेस ने क्रिप्स मिशन के प्रस्तावों को अस्वीकार करने का निर्णय क्यों लिया, जबकि उनमें स्वतंत्रता और संविधान सभा के गठन की बात मान ली गई थी। यदि रक्षा विभाग का हस्तांतरण नहीं किया जाना ही जनांदोलन छेड़ने का कारण है तो मुझे पक्का विश्वास है कि कोई भी इस अदूरदर्शी निर्णय को सुविचारित नहीं कहेगा। सबसे पहले कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार से युद्ध के उद्देश्यों की केवल घोषणा करने की माँग की थी और युद्ध के दौरान उद्देश्यों पर अमल करने का दावा नहीं किया था। दूसरे, मेरी जानकारी में ऐसा कोई भारतीय राजनेता नहीं है, जो रक्षा विभाग के तकनीकी व सामरिक पक्ष को संभाल पाने में सक्षम हो। भारतीय इस विषय के अध्ययन की उपेक्षा करते आए हैं। तो इन परिस्थितियों में रक्षा विभाग पर नियंत्रण की मांग करना मूर्खतापूर्ण होगा क्योंकि नासमझ व्यक्ति के हाथों में ऐसा नियंत्रण नाममात्र का होगा। तीसरे, जब क्रिप्स मिशन के प्रस्तावों के अनुसार सभी विभागों का हस्तांतरण किया गया तो रक्षा विभाग को हस्तांतरित न करने पर झगड़ा करना बचकाना व्यवहार था। सामान्य बुद्धि रखने वाला कोई भी व्यक्ति यह समझता है कि हस्तांतरित विभागों के मामलों, यदि वे जरूरी और समीचीन हों, को आरक्षित विभागों के दायरे से बाँटा नहीं रखा जा सकता था। गवर्नरों के विशेष अधिकारों के बारे में भी यही हुआ था जब कांग्रेस 1937 में सत्तारूढ़ हुई थी। यह कितने आश्चर्य की बात है कि इस मामले में कांग्रेस अपना पिछला अनुभव भूल गई है।

"मेरा यह स्पष्ट अभिमत है कि इस मामले में गड़बड़ी फैलाने के लिए कांग्रेस सहानुभूति की हकदार है। देश की सेवा करने का उसे दिया गया सर्वोत्तम अवसर उसने ठुकरा दिया है। इस दृष्टिकोण से देखते हुए मुझे नहीं जान पड़ता कि गांधीजी

द्वारा प्रस्तावित यह कदम किस प्रकार देशहित में कहा जा सकता है।

मुझे तो लगता है कि गांधीजी और कांग्रेस युद्ध शुरू होने से अपनी खोई प्रतिष्ठा को फिर प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

"कांग्रेस की प्रतिष्ठा दो तरीकों से ही कायम रह सकती है। यह सीधी कार्रवाई की चकाचौंध से कायम रह सकती है या फिर पद के कारण उसे जो संरक्षण प्राप्त है उससे। गांधीजी ने तो कांग्रेस को पद छोड़ने के लिए विवश कर दिया और वह सीधी कार्रवाई में भी पार्टी के साथ शामिल नहीं हुए। गांधीजी की इस कुछ न करने की नीति से कांग्रेस की प्रतिष्ठा को ठेस पहुंची है और यह कांग्रेस और गांधीजी के लिए विनाशकारी सिद्ध हुई है एवं गांधीजी अब जो कुछ कर रहे हैं वह अपनी खोई प्रतिष्ठा और गरिमा को वापस पाने के लिए कर रहे हैं।

यह कदम चाहे कांग्रेस पार्टी के सर्वोत्तम हित में उठाया गया हो, परन्तु यह देश की सेवा करने का कोई तरीका नहीं है। इस समय तो यह कदम अत्यंत शरारतपूर्ण है और निश्चित रूप से इसके परिणामस्वरूप देश का लिए अधिकतम नुकसान होगा।

इस देश की राजनैतिक गतिविधियों को आगे बढ़ाने के लिए कांग्रेस पार्टी के सामने दो रास्ते खुले हैं; कांग्रेस द्वारा कार्रवाई और देश के राष्ट्रीय जीवन के विभिन्न पक्षों का प्रतिनिधित्व करने वाली सभी पार्टियों द्वारा संयुक्त माँग। गांधीजी और कांग्रेस पहले रास्ते के प्रति उत्सुक हैं। यह एक सामान्य योजना है। गांधीजी को छोड़कर, हर व्यक्ति यह बात जानता है कि एक सीमा के बाद इस कार्रवाई की कोई उपयोगिता नहीं, चाहे इसमें सफलता भी मिले; क्योंकि नाजी सरकार के विपरीत ब्रिटिश सरकार नैतिक आंदोलन का दमन अनैतिक साधनों से करने की आदी नहीं है। गांधीजी इसे स्वीकार नहीं करेंगे। सौभाग्यवश, उन्हें इस बात का अनुभव नहीं है कि उनके सविनय अवज्ञा आंदोलन से नाजी कैसे निपटते। इसमें संदेह नहीं कि नाजी गांधीजी को थोड़ा वक्त देते और साबित कर देते कि सीधी कार्रवाई की उनकी योजना को शुरुआत में ही नाकाम किया जा सकता है।

पार्टियों के बीच एकता

"जो प्रश्न मेरे मन को झकझोरता है वह यह है: गांधी जी केवल कांग्रेस द्वारा की जाने वाली सीधी कार्रवाई का सहारा क्यों लेते हैं, जो नाकामयाब सिद्ध हो चुकी है? क्यों नहीं वह कोई और तरीका अपनाते जैसे सभी पार्टियों के बीच एकता स्थापित करना? गांधीजी विभिन्न पार्टियों के सभी नेताओं का एक सम्मेलन बुलाकर पता क्यों नहीं लगाते कि उनकी माँगें क्या–क्या हैं और उनके बीच यदि कोई विवाद है, तो उसे निपटाते क्यों नहीं? उन्हें ऐसी कोशिश करनी चाहिए। यह राजनेता होने का एक गुण है और इससे विभिन्न समुदायों के बीच स्थायी शांति कायम होगी। लेकिन गांधीजी ने ऐसा प्रयास कभी नहीं किया और समस्या को सुलझाने के इस तरीके से बचते रहने

के उनके कारण को मैं अब तक समझ नहीं पाया हूँ। यह कहना कि अंग्रेजों के रहते कोई बन्दोबस्त हो नहीं सकता; इस बात के केवल दो अर्थ निकलते हैं: कि अल्पसंख्यक समुदायों के नेता अंग्रेजों के हाथों की कठपुतलियां हैं या कांग्रेस यह समझती है कि साम्प्रदायिक बंदोबस्त की बात ब्रिटिश सरकार के चले जाने के बाद करना बेहतर रहेगा क्योंकि तब कानून और व्यवस्था कांग्रेस के हाथों में होगी और तब वह अल्पसंख्यकों पर नियंत्रण करने और अपनी शर्तों पर बंदोबस्त करने के लिए बेहतर स्थिति में रहेगी। यदि पहला अर्थ सही है तो यह अल्पसंख्यक समुदायों के नेताओं के चरित्र पर लगाया गया घृणित एवं निरर्थक लांछन है। कांग्रेस को आत्मश्लाघा की यह मनोवृत्ति त्याग देनी चाहिए और यह स्वीकार करना चाहिए कि उससे वैचारिक मतभेद रखने वाले लोग भी उतने ही देशभक्त हैं और मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि अल्पसंख्यक समुदायों के नेताओं के विरुद्ध कांग्रेस और इसकी प्रेस जो मूर्खतापूर्ण एवं आधारहीन आरोप लगातार लगाती रही है उसके कारण साम्प्रदायिक समस्या के समाधान में कठिनाइयाँ ही उपजती रही है। यदि दूसरा अर्थ सही है तो निःसंदेह यह मिथ्याभिमानपूर्ण कदम है। मामला चाहे कुछ भी हो, यह गांधीजी के राजनीतिक दिवालिएपन को घोषित करता है।

"एक बात गांधीजी ने महसूस नहीं की है, जिसे वह जितनी जल्दी महसूस करें उतना ही बेहतर होगा। हिन्दू–मुस्लिम एकता स्थापित करना और अछूतों की सेवा करना उनके सर्वाधिक प्रचारित एवं विज्ञापित राजनैतिक गुण थे।"

''20 वर्ष बाद न तो मुसलमानों की गांधीजी में आस्था है और न ही अछूतों की। यह उनके जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी है।"

"यह बात गांधीजी जितनी जल्दी महसूस करें उतना बेहतर है। गांधीजी अभी भी अल्पसंख्यक नेताओं को विचार–विमर्श के लिए बुला सकते हैं। यह कहने का कोई अर्थ नहीं कि वे असंभव माँगें कर रहे हैं इसके बारे में अंतर्राष्ट्रीय मध्यस्थता की अपील करने का रास्ता उनके लिए सदैव खुला है।"

गांधीजी की इस भूमिका पर आम जनता को उन्हें समर्थन करने का कोई कारण नहीं है और यह जरूरी भी नहीं। अल्पसंख्यकों को गांधीजी का समर्थन करने का कोई कारण नहीं है क्योंकि उन्होंने नए संविधान जो स्पष्ट है और भावनात्मक रूप से निष्कपटता का पूर्ण प्रमाण है के अंतर्गत उनकी सुरक्षा और हिफाजत का आश्वासन देने से इंकार कर दिया है।

"हम ऐसे खतरनाक समय में जी रहे हैं कि केवल गांधीजी के साथ असहमति व्यक्त कर देने से हमारे कर्त्तव्य की इतिश्री नहीं हो जाती। कर्त्तव्य तो यह बनता है कि जिनकी इस आंदोलन में आस्था नहीं है उन्हें इसे आकार लेने से रोकने के लिए कदम उठाने चाहिए। 1930 के सविनय अवज्ञा आंदोलन में मुसलमानों और दलित वर्गों ने चाहे भाग न लिया हो, परन्तु इन लोगों ने एक तरह की सद्भावनापूर्ण तटस्थता दिखाई थी। 1930 की स्थिति आज की स्थिति से बहुत भिन्न थी। 1930 के आंदोलन

में केवल दो संभावनाएँ थीं। या तो राजनैतिक सत्ता अंग्रेजों के पास रहती या फिर भारत के लोगों को सौंप दी जाती। जापान या जर्मनी के बीच में आने और भारत पर अपना प्रभुत्व जमाने की कोई संभावना नहीं थी। यह संभावना अब हमारे सामने आ खड़ी हुई है। अब जब आक्रांता हमारे द्वार तक आ पहुंचे हैं और न केवल अंग्रेजों को हराना बल्कि हमें भी गुलाम बनाना चाहते हैं, कानून और व्यवस्था को कमजोर करना पागलपन होगा। 1930 के सविनय अवज्ञा आंदोलन और गांधीजी जिस जनांदोलन को अब छेड़ने की बात कर रहे हैं उन दोनों के बीच मुझे यही अंतर दिखाई देता है।

झूठा दावा

"कांग्रेस और गांधीजी देश के लिए बोलने की अनधिकार चेष्टा कर रहे हैं। यह झूठा दावा है जिसे किसी ने चुनौती देने की चेष्टा नहीं की है। यह इसलिए कि जब तक कांग्रेस देश के हितों को नुकसान नहीं पहुँचाती तब तक यह छोटी सी बात है चाहे वह राष्ट्र के नाम पर बोलने का दावा करें या पार्टी के नाम पर। लेकिन महज एक पार्टी होते हुए यदि कांग्रेस कोई ऐसी नीति चलाना चाहती है जिससे देश की सुरक्षा और देश की स्वतंत्रता खतरे में पड़ती हो, तो अन्य पार्टियों का भी यह कर्त्तव्य है कि वे अपना सद्भावपूर्ण तटस्थता का दृष्टिकोण त्याग दें और कांग्रेस का विरोध करें जब वह देश को अराजकता में झोंकने और देश के राजनैतिक भविष्य को निराशा के गर्त में झोंकने पर आमादा हो। मैं चाहता हूँ कि भारत के लोग दो बातों को महसूस करें : पहली यह कि उनका भविष्य नाजीवाद के विरुद्ध लोकतंत्र की जीत से जुड़ा हुआ है और दूसरी, यह कि एक बार लोकतंत्र की जीत होने पर भारत को स्वतंत्रता प्राप्त करने से कोई नहीं रोक सकता यदि भारत के लोग एकजुट रहने की क्षमता रखते हों। मेरा दृढ़ विश्वास है कि गांधीजी का कदम गैर–जरूरी है।

"यदि लोकतंत्र की जीत होती है तो भारत की स्वतंत्रता में कोई आड़े नहीं आ सकता। इस समय भारत के लोगों का सबसे बड़ा काम लोकतंत्र की विजय सुनिश्चित करना है। यह जरूरी नहीं कि केवल सिद्धांत की खातिर वे ऐसा करें। यह हमारे देश का भविष्य है जो हमसे कर्त्तव्य स्वरूप ऐसा करने की अपेक्षा रखता है। गाधीजी एक जल्दबाज वयोवृद्ध व्यक्ति हैं। भारत के लोगों को यह सावधानी बरतनी चाहिए कि वे जल्दबाजी में ऐसा कुछ न करें जिसके लिए बाद में उन्हें पछताना पड़े।"

डॉ. अम्बेडकर बम्बई से सोमवार की रात फ्रंटियर मेल से नई दिल्ली रवाना हो गए। उन्हें बम्बई सेन्ट्रल स्टेशन पर अनुसूचित जातियों, इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी, म्युनिसिपल कामगार संघ तथा अन्य संगठनों के प्रतिनिधियों, मित्रों व उनके प्रशंसकों सहित लगभग 400 लोगों ने विदाई दी।"[1]

***

[1] द टाइम्स ऑफ इंडिया, दिनांक 28 जुलाई, 1942

16

भारतीय राजनैतिक गतिरोध को कैसे समाप्त किया जाए

भारत सरकार के लेबर मेम्बर माननीय डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने बुधवार को बम्बई में द टाइम्स ऑफ इण्डिया के प्रतिनिधि से हुई बातचीत में भारत के राजनैतिक गतिरोध को समाप्त करने के लिए एक ऐसी योजना की रूपरेखा प्रस्तुत की जो पाकिस्तान के मुद्दे से उत्पन्न विकट समस्या का समाधान करेगी और युद्ध के दौरान राष्ट्रीय सरकार के गठन का मार्ग प्रशस्त करेगी।*

उन्होंने कहा कि "पाकिस्तान का मुद्दा एक प्रारम्भिक मुद्दा समझा जाना चाहिए। जब तक इस मुद्दे का कोई न कोई हल नहीं निकाला जाता तब तक संविधान के निर्माण की दिशा में कोई कदम नहीं उठाया जा सकता। इस प्रश्न पर मतभेद दूर करने के लिए हम अब तक गांधीजी और जिन्ना जैसे नेताओं पर निर्भर रहे हैं। लेकिन दोनों असफल रहे। मुझे ऐसा महसूस होता है कि अब वक्त आ गया है कि लोगों द्वारा ही इस मुद्दे पर निर्णय लिया जाए।

"मैं नहीं समझता कि पाकिस्तान एक ऐसा मुद्दा है जिसे ब्रिटिश सरकार सुलझा सकती है। उनसे ऐसा करने के लिए अनुरोध करना उचित नहीं है और न ही उनके द्वारा इस संबंध में निर्णय लिया जाना न्यायोचित है। पाकिस्तान का प्रश्न स्वनिर्धारण का प्रश्न है अतः इसका फैसला प्रभावित लोगों द्वारा ही लिया जाना चाहिए। यदि यह स्थिति स्वीकार कर ली जाती है तो "द इंडियन कांस्टीट्यूशन प्रीलिमनरी प्रोविजन्स एक्ट" नामक एक अधिनियम संसद को पारित करना होगा।

मुसलमानों का जनमतसंग्रह

उक्त अधिनियम में निम्नलिखित बातों के लिए प्रावधान किए जाने चाहिएः–

(क) पाकिस्तानी क्षेत्र के मुसलमानों का जनमतसंग्रह, विशेष रूप से यह निर्धारण करने के लिए कि क्या वे मुस्लिम बहुल क्षेत्रों को शेष भारत से अलग करना चाहते हैं; (ख) पाकिस्तानी क्षेत्र में रह रहे गैर–मुसलमानों का अलग जनमतसंग्रह, यह जानने के लिए कि वे पाकिस्तान में शामिल होना पसंद करते हैं अथवा हिन्दुस्तान में रहने की इच्छा रखते हैं; (ग) यदि गैर–मुसलमान बहुमत से पाकिस्तान में शामिल न होने का निर्णय लेते हैं तो उन जिलों का निर्धारण करने जहाँ मुसलमानों की बहुतायत है और उनका जिनमें गैर–मुसलमानों की बहुतायत है, एक सीमा आयोग का गठन किया जाए।

* 12 मई, 1943

एक अनुसूची तैयार की जानी चाहिए जिसमें उन जिलों की सूची शामिल हों, जिन्हें सीमा आयोग ने मुस्लिम बहुल जिले करार दिया हो। इसे अनुसूचित जिलों की अनुसूची कहा जाना चाहिए।

यह करने के बाद, अगले कदम के तौर पर मुसलमानों को जनमतसंग्रह द्वारा निम्नलिखित विकल्पों में से एक विकल्प का फैसला करने की अनुमति दी जानी चाहिएः—

अनुसूचित जिलों को दस वर्ष तक संयुक्त भारत का भाग बने रहने देने हेतु सहमत होना, जिसके अंत में उन्हें अनुसूचित जिलों को अलग करके पाकिस्तान बनाने की अनुमति होगी, अथवा अनुसूचित जिलों को मिलाकर एक अलग देश पाकिस्तान बनाने का निर्णय लेना और पाकिस्तान को पाकिस्तान और हिन्दुस्तान द्वारा सहमत शर्तों पर दस वर्ष बाद किए जाने वाले जनमतसंग्रह के आधार पर हिन्दुस्तान के साथ मिल जाने की अनुमति देना।

कौंसिल ऑफ इण्डिया

यदि मुसलमान पाकिस्तान बनाने का निर्णय करते हैं तो साझा सरोकारों से जुड़े मसलों पर बातचीत करने के लिए एक कौंसिल ऑफ इण्डिया का गठन किया जाए जिसमें हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के प्रतिनिधियों की संख्या बराबर होगी। यदि दस वर्ष बाद पाकिस्तान देश हिन्दुस्तान के साथ मिल जाने का निर्णय करता है, तो यह कौंसिल भंग कर दी जाएगी।"

डॉ. अम्बेडकर ने इस बात पर जोर दिया कि उनके सुझाव के अनुसार पारित अधिनियम के तुरंत बाद जनमतसंग्रह कराना आवश्यक नहीं है। इसे युद्ध के बाद कराया जा सकता है। उनके विचार से अधिनियम पारित करने का हिन्दुओं और मुसलमानों पर सद्‌भावपूर्ण प्रभाव होगा, क्योंकि दोनों समुदायों को यह ज्ञात रहेगा कि चाहे जो संविधान अस्तित्व में आए इसे लोगों की व्यापक सहमति प्राप्त रहेगी। यदि ऐसी स्थिति निर्मित कर दी जाती है तो इससे युद्ध के दौरान एक राष्ट्रीय सरकार के गठन का मार्ग प्रशस्त हो जाएगा।

अपनी बात का समापन करते हुए डॉ. अम्बेडकर ने कहा "मुझे नहीं लगता कि ऐसे किसी कानून से बचा जा सकता है। इसे अभी या फिर शांति स्थापित होने पर, लेकिन संविधान निर्माण का कार्य शुरू करने से पहले किसी भी स्थिति में पारित करना ही होगा। जहां तक पहले जनमतसंग्रह का प्रश्न है, इसे पाकिस्तान के प्रांतों के मुस्लिम विधान मण्डलों द्वारा पृथक्करण की मांग करने वाले प्रस्ताव के आधार पर किया जाना चाहिए।[1]

***

[1] द टाइम्स ऑफ इंडिया, दिनांक 13 मई, 1943

17

जिन्ना के भय को दूर करना होगा

नई दिल्ली, 12 जुलाई, 1944

"भारत सरकार के लेबर मेम्बर डॉ. बी. आर. अम्बेडकर ने आज यहाँ एक प्रेस साक्षात्कार में राज गोपालाचारी फार्मूले का स्वागत किया और इसे 'समझदारी की ओर वापसी' का संकेत बताते हुए 1943 की अपनी योजना की रूपरेखा को दुहराया जिसके अंतर्गत पाकिस्तान का निर्माण दस वर्ष के लिए एक प्रयोग के तौर पर किया जाए और इस अवधि के अंत में यदि पाकिस्तान के मुसलमान हिन्दुस्तान के साथ मिल जाने का फैसला करें तो उन्हें ऐसा करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए।

उनकी योजना में आगे ब्रिटिश संसद द्वारा एक अधिनियम पारित किए जाने, एक सीमा निर्धारण आयोग का गठन करने और दो जनमतसंग्रह जिसमें से एक में मुसलमान यह निर्धारण करेंगे कि क्या वे बंटवारा चाहते हैं और दूसरे में गैर–मुसलमान यह फैसला करेंगे कि वे पाकिस्तान में ही रहना पसंद करेंगे या फिर बाहर निकलना चाहेंगे कराने का सुझाव दिया गया है।

सीमा आयोग

यदि गैर–मुसलमान पाकिस्तान में रहने का निर्णय करते हैं तो पाकिस्तान की सीमाएँ प्रांतों की मौजूदा सीमाएं रहेंगी, जबकि यदि गैर–मुसलमान पाकिस्तान में रहने के प्रति विरोध प्रकट करते हैं तो गैर–मुसलमान बहुल जिलों से मुसलमान बहुल जिलों को अलग करने के लिए एक सीमा आयोग का गठन किया जाएगा।

बहरहाल, डॉ. अम्बेडकर ने गांधीजी द्वारा स्वनिर्धारण का सिद्धांत स्वीकार कर लिए जाने का स्वागत किया लेकिन कहा कि यह अधिक बेहतर होता यदि यह पेशकश उनकी ओर से की गई होती और यह भी बेहतर होता यदि यह पेशकश बिना शर्त होती और स्वतंत्रता की माँग के साथ जोड़ने और पूर्ण राष्ट्रीय सरकार के निर्माण जैसी शर्तें इसके साथ न जोड़ी जातीं।

जिन्ना का भय

डॉ. अम्बेडकर के अनुसार उन्हें यह नहीं मालूम कि जिन्ना ने यह प्रस्ताव किस आधार पर ठुकराया। यह तथ्य कि जनमतसंग्रह के दौरान हिन्दू मुसलमानों को प्रभावित करके पाकिस्तान के विरुद्ध मतदान करा सकते हैं, जिन्ना का इस प्रस्ताव को अस्वीकार करने का आधार हो सकता है। लेकिन जनमतसंग्रह ही वह तरीका है जिससे इस प्रकार की समस्याओं का निर्णय किया जा सकता है। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार इतिहास में ऐसा उदाहरण नहीं है जब ऐसी समस्या का फैसला जनमतसंग्रह के बिना किया गया हो।

क्या कांग्रेस मुसलमानों को खरीद लेगी?

डॉ. अम्बेडकर ने स्वीकार किया कि "जनमतसंग्रह में जोखिम तो होता ही है। लेकिन ऐसा जोखिम जिन्ना साहब को उठाना ही पड़ेगा। प्रस्ताव के पीछे जो संजीदगी है वह प्रस्ताव से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। जिन्ना साहब यह प्रस्ताव स्वीकार करने की इच्छा न रखते हों, क्योंकि उन्हें मालूम है कि दरअसल राजगोपालाचारी और कांग्रेस ने यह प्रस्ताव उन्हें गलत साबित करने के लिए किया है और ऐसी पेशकश के साथ ही मुस्लिम वोटों को खरीदने के तौर–तरीके भी निकाल लिए हैं। जिन्ना साहब राजगोपालाचारी से पूछ सकते हैं कि मुसलमानों को पाकिस्तान की पेशकश करने की उनकी मंशा और फिर पेशकश को नकारने में मुसलमानों के दावे में सच कितना था।

इस पेशकश के पीछे की सद्भावना को गांधीजी को सिद्ध करना होगा और यह गारंटी भी देनी होगी कि हिन्दू स्वतंत्र मतदान करने से मुसलमानों को रोकेंगे नहीं।"[1]

***

[1] द फ्री प्रेस ऑफ इंडिया दिनांक 13 जुलाई, 1944

18

केन्द्रीय सिंचाई तथा जलमार्ग सलाहकार बोर्ड से संबंधित पहला प्रस्ताव

श्रम विभाग का अभिमत है कि एक केन्द्रीय सिंचाई तथा जलमार्ग सलाहकार बोर्ड का गठन किया जाना समीचीन होगा। हम चाहते हैं कि यह बोर्ड स्थायी रूप से रहे और इसके पास आवश्यक प्राधिकार हों। हमारे विचार से इस बोर्ड की संरचना निम्नानुसार होनी चाहिए :

अध्यक्ष : भारत सरकार के जलमार्ग एवं सिंचाई आयुक्त। इस अधिकारी को भारत के बारे में अनुभव होना चाहिए अतः यह अधिकारी भारतीय इंजीनियरी सेवा का एक वरिष्ठ अधिकारी होना चाहिए। उसे जलमार्ग तथा सिंचाई दोनों का ज्ञान होना अपेक्षित है, परन्तु एक सलाहकार निकाय के रूप से बोर्ड का अधिकार बोर्ड की सामूहिक शक्ति में निहित होगा न कि अध्यक्ष के व्यक्तिगत अधिकार में। (तथापि, वह अपनी व्यक्तिगत क्षमता में भारतीय जलमार्ग विकास संस्थान के कार्यचालन का पर्यवेक्षण करेगा।)

सदस्य : तीन स्थायी सदस्य होंगे : 1. जलमार्ग सदस्य 2. सिंचाई सदस्य 3. पनबिजली सदस्य।

अंशकालिक सदस्य भी होंगे उदाहरणार्थ, किसी भी प्रांत का मुख्य इंजीनियर, जब प्रांतों से संबंधित कोई मामला विचाराधीन हो, भारत सरकार के कृषि सलाहकार, जब कृषि से जुड़ा कोई मामला विचाराधीन हो। विशेष मामलों हेतु सदस्यों को सहयोजित करने का अधिकार भी प्रदान किया जाएगा।

टिप्पणी : इस संरचना के अनुसार बोर्ड में गुरुत्व सिंचाई संबंधी कोई सदस्य नहीं है, परन्तु यह संभाव्य है कि अध्यक्ष को इस विषय का ज्ञान अवश्य होगा।

केन्द्रीय सिंचाई एवं जलमार्ग बोर्ड के दायित्व निम्नानुसार होंगेः—

1. निम्नलिखित उद्‌देश्य से नदी तथा जलमार्ग नियंत्रण से जुड़ी योजनाओं का

सूत्रपात, समन्वयन एवं कार्यान्वयन :

(क) बाढ़ की रोकथाम;

(ख) कटाव की रोकथाम;

(ग) जलभराव की रोकथाम;

(घ) सिंचाई के प्रयोजनार्थ जल का नियंत्रण;

(ड.) बिजली के प्रयोजनार्थ जल का नियंत्रण;

(च) सस्ती बिजली के प्रयोग से भूमिगत जल की उपलब्धता;

(छ) जलभराव वाले क्षेत्रों से बिजली के जरिए पानी बाहर निकालने की कार्रवाई;

(ज) नौवहन प्रयोजनार्थ पानी के बहाव का विनियमन।

2. सभी प्रमुख जलमार्गों हेतु प्रांतीय सरकारों के परामर्श से जल नियंत्रण योजनाएँ तैयार करना और परियोजना रिपोर्ट तैयार करना।

3. जलमार्गों से संबंधित सांख्यिकीय सूचना एकत्र करना और भूजल सर्वेक्षणों का आयोजन एवं नियंत्रण।

4. उन सिद्धांतों के बारे में भारत सरकार को सलाह देना जिन्हें प्रांतों के बीच विवादों के निपटान हेतु निर्धारित किया गया हो।

इसके अलावा बोर्ड को निम्नलिखित मामलों पर परामर्शदाता इंजीनियरों की आवश्यकता होगी–

(i) बांधों का निर्माण

(ii) बैराज निर्माण

एच. सी. प्रायर

सचिव

31.8.44

मैं सहमत हूँ। मुझे केवल यह टिप्पणी करनी है कि क्या अब प्रांतों से विचार–विमर्श करने पर मामले में विलम्ब नहीं होगा। क्या हम उनसे बाद में परामर्श नहीं कर सकते।

बी. आर. अम्बेडकर

9.9.1944"[1]

***

[1] थोरात, मुद्रित पृष्ठ 150–151

19

दोनों गंभीर गलती कर रहे हैं

"वायसराय की कार्यकारी परिषद के लेबर मेम्बर डॉ. भीमराव अम्बेडकर के मंगलवार शाम पूना एक्सप्रेस से यहाँ आगमन पर विक्टोरिया टर्मिनल पर भारी संख्या में जुटे समर्थकों और प्रशंसकों ने उनका स्वागत किया।*

कई अनुसूचित जातियों और अन्य अनेक एसोसिएशनों के प्रतिनिधियों ने प्लेटफार्म पर उतरते ही डॉ. अम्बेडकर को फूलमालाओं से लाद दिया।

उनके सम्मान में एक शोभा यात्रा निकाली गई जो स्टेशन से शुरू होकर दादर स्थित राजगृह पर समाप्त हुई।[1]

टाइम्स ऑफ इण्डिया के प्रतिनिधि के साथ बुधवार** को हुई बातचीत में माननीय डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने कहा कि गांधी जिन्ना वार्ता से और कुछ नहीं केवल असफलता की आशा है उन्होंने कहा "वे दोनों खाली दिमाग से नहीं मिले हैं लेकिन यह भी उतना ही सच है कि दोनों खुले दिल से भी नहीं मिले हैं।"

डॉ. अम्बेडकर की राय में अन्य कारणों के अलावा असफलता का कारण गांधीजी और जिन्ना दोनों का अड़ियल रवैया और राजगोपालाचारी फार्मूला की आधारभूत गलती था। उन्होंने आगे कहा कि भारतीय प्रश्न का कोई भी समाधान अनुसूचित जातियों की सहमति के बिना पूरा नहीं हो सकता। न तो गांधीजी और न ही जिन्ना को उनके लिए बोलने का हक है।

इस बातचीत में डॉ. अम्बेडकर ने कहा "मुझे विश्वास नहीं होता कि साम्प्रदायिक समस्या का समाधान करने के लिए गांधीजी और जिन्ना आपस में मिले। जब जिन्ना ने मुलाकात करनी चाही तब गांधीजी ने गुजराती भाषा को सम्प्रेषण के माध्यम के रूप में चुना तब मैंने जान लिया कि बातचीत असफल रहेगी। जिन्ना साहब वह पत्र पाकर बहुत खुश हुए लेकिन इसका निहितार्थ नहीं समझ पाए। गुजराती में पत्र

---

* 3 अक्तूबर, 1944

** 4 अक्तूबर, 1944

[1] द टाइम्स ऑफ इंडिया, दिनांक 4 अक्तूबर, 1944

लिखकर गांधीजी ने अपनी विशिष्ट शैली में जिन्ना से कह दिया कि वे महज एक लोहाना है जिसकी मातृभाषा गुजराती है।

इसी प्रकार जिन्ना भी जानते थे कि राजाजी राजगोपालाचारी का फार्मूला मुस्लिम लीग के लाहौर प्रस्ताव से अलग है। जिन्ना यह भी जानते थे कि गांधीजी उनसे व्यक्तिगत स्तर पर मुलाकात कर रहे हैं। जिन्ना यह भी जानते थे कि गांधीजी उनसे हिन्दुओं के प्रतिनिधि के तौर पर नहीं मिल रहे हैं। ये सभी परिस्थितियाँ इन शर्तों के बिल्कुल विपरीत थी जिन पर जिन्ना लाहौर में मात खाने के बाद जोर दे रहे थे।

नेताओं का अड़ियल रवैया

"बातचीत की असफलता अवश्यंभावी थी। यदि यह दोनों व्यक्तियों के अड़ियल रवैये के कारण अवश्यंभावी थी तो यह सी.आर. फार्मूले के आधारभूत दोषों के कारण भी अवश्यंभावी थी। यह फार्मूलों दोषपूर्ण इसलिए है कि इसमें साम्प्रदायिक मामले और राजनैतिक मामले को मिला दिया गया था। फार्मूले में न तो राजनैतिक समाधान है और न ही साम्प्रदायिक समाधान। फार्मूला कोई समाधान ही प्रस्तुत नहीं करता। इसमें जिन्ना साहब को सौदेबाजी के लिए बुलाया गया था। यह एक सौदा था– यदि आप स्वतंत्रता प्राप्त कराने में हमारी मदद करेंगे तो हम आपके पाकिस्तान के प्रस्ताव पर सहर्ष विचार करेंगे।"

सी. आर. फार्मूले की दूसरी कमी किए जाने वाले समझौते को अमल में लाने वाली मशीनरी से संबंधित है। सी. आर. फार्मूले में सुझाई गई एजेन्सी अन्तरिम सरकार है।

अंतरिम सरकार बनाने की सहमति देकर मुस्लिम लीग ने कांग्रेस को स्वतंत्रता प्राप्त कराने में मदद करने का वायदा पूरा कर दिया होता। लेकिन कांग्रेस द्वारा पाकिस्तान बनाए जाने का वादा शेष रह गया होता। जिन्ना साहब का इस बात पर जोर देना बिल्कुल सही है कि वायदे साथ–साथ निभाए जाने चाहिए और उनसे ऐसी उम्मीद नहीं की जा सकती कि वह स्वयं को ऐसी स्थिति में रखेंगे।

दूसरी कठिनाई जिसे राजगोपालाचारी जी ने नजरअंदाज कर दिया है, यह है कि यदि अंतरिम सरकार समझौते के हिन्दू भाग को लागू करने में असफल रहती है तब क्या होगा। इस पर अमल कराने का काम कौन करेगा? अंतरिम सरकार एक संप्रभु सरकार बनेगी न कि किसी उच्च प्राधिकारी के अधीन। यदि यह समझौते को कार्यान्वित करने की इच्छुक न हो तो मुसलमानों के लिए केवल विद्रोह का रास्ता बचता है। पाकिस्तान बनाने के लिए कपटपूर्वक एक नए संविधान हेतु अंतरिम

सरकार की बात को कोई भी स्वीकार नहीं करेगा। यह तो एक जाल हुआ; न कि कोई समाधान। संवैधानिक बदलाव लाने का केवल एक तरीका है और वह है संसद के अधिनियम द्वारा, जिसमें ब्रिटिश भारत के राष्ट्रीय जीवन के महत्वपूर्ण तत्वों द्वारा सहमत प्रावधान शामिल हों। दूसरा कोई और तरीका नहीं है।

सी. आर. फार्मूले में तीसरा दोष भी है। यह पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के बीच रक्षा, विदेश संबंध और सीमाशुल्क जैसे साझा हित के मामलों के रक्षोपाय हेतु एक संधि के प्रावधान से संबंधित है। यहाँ भी राजगोपालाचारी जी सामान्य समस्याओं से अवगत प्रतीत नहीं होते।

किसी को भी इस बात पर ज्यादा आपत्ति नहीं है कि बातचीत असफल रही। सबको इस बात का जरूर खेद है कि बातचीत हमें कुछेक सवालों के स्पष्ट उत्तर दिए बिना ही असफल रही जिनके बारे में जिन्ना साहब अपने सार्वजनिक बयानों में चुप्पी साधे रहते थे जबकि व्यक्तिशः वह बातचीत में उनके बारे में हमेशा मुखर रहते।

सवाल, जिनके स्पष्टीकरण चाहिए

ये सवाल इस प्रकार हैं :–

(1) क्या पाकिस्तान की माँग मुस्लिम लीग के प्रस्ताव के कारण मान ली जाए?

(2) इस मामले में क्या मुस्लिम लीग से अलग मुसलमानों की राय मायने नहीं रखती?

(3) पाकिस्तान की सीमाएँ कौन सी होंगी? क्या ये सीमाएँ वर्तमान पंजाब और बंगाल की प्रशासनिक सीमाएँ होंगी या पाकिस्तान की सीमाएं जातीय सीमाएं होंगी?

(4) ऐसे भूभागीय समायोजनों के बारे में लाहौर प्रस्ताव में जिन शब्दों का उल्लेख किया गया है, उनका आशय क्या है? भूभागीय समायोजनों के बारे में लीग का क्या दृष्टिकोण था?

(5) लाहौर प्रस्ताव के अंतिम भाग में जिस "अंततः" शब्द का उल्लेख किया गया है, उसका आशय क्या है? क्या लीग ने किसी संक्रमण काल का विचार किया है जिसके दौरान पाकिस्तान एक स्वतंत्र और संप्रभु राज्य नहीं होगा?

(6) यदि जिन्ना साहब का प्रस्ताव यह है कि पूर्वी और पश्चिमी पाकिस्तान की

सीमाएँ वही होंगी जो मौजूदा प्रशासनिक सीमाएँ हैं तो वह अनुसूचित जातियों, या मैं यह कहूँ क पंजाब और बंगाल के गैर– मुसलमानों को जनमतसंग्रह द्वारा यह निर्धारित कैसे करने देंगे कि क्या वे जिन्ना के पाकिस्तान में शामिल होना चाहते हैं और क्या पंजाब और बंगाल के गैर–मुसलमानों के जनमतसंग्रह के नतीजों के अनुसार कार्यवाही करने के लिए जिन्ना साहब तैयार होंगे।

(7) क्या जिन्ना साहब एक ऐसा रास्ता चाहते हैं जो उत्तर प्रदेश और बिहार को पूर्वी पाकिस्तान और पश्चिमी पाकिस्तान से जोड़ता है? कितना फायदेमंद होता यदि जिन्ना साहब से सीधे सवाल पूछे जाते और उनसे साफ–साफ जवाब माँगे जाते।

यह कहने के बाद कि पाकिस्तान का प्रश्न महज अकादमिक महत्व का नहीं है और इस पर फिर बातचीत की जाएगी। डॉ. अम्बेडकर ने कहाः "गांधीजी और जिन्ना साहब के बीच पत्रों का जो आदान–प्रदान हुआ है उससे मालूम होता है कि पाकिस्तान के बारे में समझौते के लिए गांधीजी और जिन्ना हिन्दुओं और मुसलमानों को दो जरूरी और सही पक्षकार मानते हैं। इससे यह भी पता चलता है कि जिन्ना वह पाकिस्तान चाहते हैं जिसकी सीमा रेखाएं वही रहें जो अभी हैं और पाकिस्तानी क्षेत्रों के गैर–मुसलमानों की राय जाने बिना ही यह सब कर दिया जाए।

"मुझे यह कहना पड़ रहा है कि इन अवधारणाओं पर आगे बढ़ते हुए गांधी और जिन्ना दोनों गंभीर भूल कर रहे हैं। हिन्दुओं और मुसलमानों के अलावा अनुसूचित जातियाँ तीसरे जरूरी पक्षकार हैं। न गांधी, न कांग्रेस और न ही हिन्दू महासभा को उनके लिए बोलने का हक है। जिन्ना साहब को समझ लेना चाहिए कि उन्हें अनुसूचित जातियों की इतनी बड़ी आबादी को उसकी रजामंदी के बिना साथ लेकर जाने नहीं दिया जा सकता।

"चूंकि पाकिस्तान के सवाल से मेरा भी सरोकार है, मैं अपनी स्थिति बताते हुए यह कहना चाहता हूँ कि अनुसूचित जातियों को उनकी जाहिर रजामंदी के बिना पाकिस्तान के पूर्वी हिस्से में या पश्चिमी हिस्से में शामिल नहीं किया जा सकता। यह रजामंदी जाहिर तौर पर होनी चाहिए और उनके स्वतंत्र जनमतसंग्रह जैसे सकारात्मक तरीके से होनी चाहिए।"[1]

***

[1] द टाइम्स ऑफ इंडिया, दिनांक 5 मई, 1944

20

सप्रू गलत हैं

नई, दिल्ली, 31 दिसम्बर, 1944

"मध्यस्थता समिति के साथ अनुसूचित जातियों के सहयोग के प्रश्न के संबंध में सर तेज बहादुर सप्रू के पत्र के उत्तर में डॉ. बी. आर. अम्बेडकर ने अपने बयान में कहा:–

"मुझे इस बात पर आश्चर्य है कि सर तेज बहादुर सप्रू को यह शिकायत है कि मैंने इस समिति के साथ सहयोग करने से इंकार कर दिया है। मुझे लगता है कि यदि किसी व्यक्ति को शिकायत होनी चाहिए तो वह व्यक्ति मैं हूँ; न कि सर तेज बहादुर सप्रू।

"मुझे इस बात में कोई संदेह नहीं कि जब उन्होंने अपना काम शुरू किया था तब उन्होंने शुरुआत ही गलत सिरे से की थी। यदि वे यह चाहते थे कि साम्प्रदायिक विवाद के विभिन्न पक्षकार समिति के सामने पेश होने के लिए तैयार रहें तो यह वांछनीय ही नहीं बल्कि जरूरी भी था कि समिति के कार्मिकों के नामों को अंतिम रूप देने से पहले संबंधित पक्षों के नेताओं को उन्हें दिखाते और पूछते कि क्या इस सूची पर उन्हें कोई आपत्ति है। ऐसा करने के बजाए वह कार्मिकों को अपनी इच्छानुसार तय कर लेते हैं और "कार्य सम्पन्न" होने के बाद वह चाहते हैं कि अब उसे स्वीकार या अस्वीकार किया जाए। समिति को नियुक्त करने और लोगों से विश्वास करने की उम्मीद करने का तरीका चाहे अनर्गल न हो, अनुचित जरूर है।

नाम नहीं बताए गए

"जब सर तेज बहादुर सप्रू ने मुझसे सम्पर्क किया तो उन्होंने मुझे आभास भी नहीं होने दिया कि किन–किन लोगों को वह समिति में शामिल करने जा रहे हैं। हमारी बातचीत केवल सामान्य मुद्दों पर ही हुई थी जैसे विभिन्न समुदायों द्वारा पेश की गई विभिन्न माँगों पर एक निष्पक्ष निकाय द्वारा विचार किया जाना और यह आकलन किया जाना उचित नहीं होगा कि उन माँगों में से कौन सी माँगें उपयुक्त हैं और कौन सी नहीं। मैंने भी इसके बाद उम्मीद की थी कि अब सर तेज बहादुर

सप्रू मुझे इन लोगों के नाम बताएंगे, जिन्हें वह समिति में रखना चाहते हैं। उन्होंने ऐसा कभी नहीं किया।

"इन परिस्थितियों में, मैंने यदि सर तेज बहादुर सप्रू से कहा कि समिति में शामिल लोगों से मैं संतुष्ट नहीं हूँ, अतः उसके साथ सहयोग का अभिवचन मैं नहीं दे सकता, तो मुझे नहीं लगता कि मैं गलत हूँ।

साइमन से तुलना

"सर तेज किसी भी प्रकार यह नहीं कह सकते कि मेरा दृष्टिकोण गैर–जिम्मेदाराना है। यह सब जानते हैं कि सर तेज स्वयं 1929 में साइमन कमीशन का विरोध करने और उससे सहयोग न करने के लिए यह कहते हुए सबसे पहले आगे आए थे कि उस आयोग के सदस्य इस देश के लोगों की आम भावना के अनुरूप नहीं थे।

सर तेज बहादुर सप्रू ने यह बात जरूर कही कि मैंने सहयोग करने से इंकार कर दिया, लेकिन उन्होंने मेरे पत्र के दूसरे भाग का उल्लेख कि मेरी संतुष्टि के अनुसार समिति का गठन करते हैं तब मैं भी सहयोग करने के लिए तैयार हूँ। जाहिर है कि वह यही समझते हैं कि विभिन्न समुदायों द्वारा अपनी माँगों का उल्लेख करते हुए प्रस्तुत किए गए साहित्य एवं प्रस्तावों की जांच करके और विभिन्न समुदायों की भीड़ का सहयोग हासिल करके समिति अपना काम आगे बढ़ा सकती है। निःसंदेह उनका ऐसा करना स्वागतयोग्य है। मैं केवल इतना कहना चाहता हूँ कि उन्होंने मेरे खिलाफ शिकायत की है और मुझे इसमें कोई संदेह नहीं कि इसका कोई कारण नहीं है; और यदि कोई कारण है भी, तो वही इसके जिम्मेवार भी हैं।"–ए.पी."[1]

***

[1] द फ्री प्रेस ऑफ इंडिया, 1 जनवरी, 1945

21

सर्वोत्तम फायदे के लिए महानदी का नियंत्रण एवं उपयोग

हीराकुण्ड बांध के बारे में कैबिनेट मेम्बर, लेबर
डॉ. अम्बेडकर द्वारा लिखा गया पत्र

डॉ. अम्बेडकर का पत्र

श्रम विभाग

प्रिय लॉर्ड वेवेल,

क्या आप दिनाँक 20 जनवरी के अपने पत्र के पैराग्राफ 2 का संदर्भ ग्रहण करेंगे? मैंने अपने विभाग द्वारा वित्त विभाग के परामर्श से इस मामले की जांच कराई थी। खोसला जी ने रिपोर्ट दी है कि सम्बलपुर बाँध को महानदी योजना का भाग अवश्य बनाया जाना चाहिए। उन्होंने उल्लेख किया है कि भूगर्भ विज्ञान रिपोर्ट संतोषजनक है परन्तु उन्होंने इस बाँध अथवा पूरी योजना की लागत अथवा इससे प्राप्त होने वाले राजस्व का अनुमान अभी नहीं लगाया है। बहरहाल, उनका विचार है कि इससे इतना जरूर होगा कि सम्बलपुर बांध महानदी योजना का अंग बन जाएगा। अतः यह लाजिमी है कि इसका शिलान्यास मार्च के महीने में किया जाए। वित्त सदस्य भी इस प्रकार की योजनाओं के पक्ष में हैं और उन्हें नहीं लगता कि शिलान्यास करने में कोई विशिष्ट वचनबद्धता शामिल होगी, हालांकि मेरी तरह वह भी यह मानते हैं कि यदि शिलान्यास करने का निर्णय लिया जाता है तो हम गवर्नर को यह कहने के लिए अधिकृत कर सकते हैं कि सरकार महानदी के जल पर नियंत्रण करने और देश के सर्वोत्तम हित में उसका लाभदायक उपयोग करने हेतु वचनबद्ध है और इस मामले में प्रांतीय सरकार आशा करती है कि उसे केन्द्रीय सरकार से समुचित सहायता प्राप्त होगी बशर्ते परियोजना की योजनाएँ जो अभी प्रारम्भिक चरण में हैं, यह दर्शाए कि इस योजना को आगे बढ़ाना लाभदायक होगा।

आपने अपने पत्र में उल्लेख किया है कि इस संबंध में शीघ्र निर्णय लेने का उद्देश्य रखा जाए ताकि श्री लेविस अपना कार्यभार सौंपने से पूर्व शिलान्यास संपन्न कर सकें। मेरा विचार है कि हम यही निर्णय ले सकते हैं कि हम उपर्युक्त शर्तों के अधीन महानदी योजना को आगे बढ़ाने में उड़ीसा की सहायता करेंगे। मेरा विचार है कि शिलान्यास करने का हमारा निर्णय न्यायोचित है बशर्ते इस आश्वासन के साथ उड़ीसा की ओर से गवर्नर स्वयं यह करने के लिए तैयार हों।

मेरे विभाग ने यह पत्र वित्त विभाग को दिखा दिया है और वह इससे सहमत है।

भवदीय,

बी. आर. अम्बेडकर

मेम्बर लेबर

फरवरी 1946"[1]

महामहिम

मान्यवर विस्काऊंट वेवेल

डॉ. अम्बेडकर ने यह पत्र वायसराय विस्काऊंट वेवेल के निम्नलिखित पत्र के उत्तर में लिखा था।

वायसराय हाऊस

20 जनवरी 1946

प्रिय डॉ. अम्बेडकर,

यह जानकर सन्तोष हुआ है कि मुचकुण्ड मामले पर मद्रास और उड़ीसा सहमत हो गए हैं। दोनों गवर्नरों को मैंने तार भेजे हैं और उनसे यह सुनिश्चित करने का अनुरोध किया है कि समझौते की पुष्टि यथाशीघ्र कर दी जाए।

मेनन जी से मुझे ज्ञात हुआ है कि वार्त्ताओं के दौरान सम्बलपुर में एक बांध के निर्माण से महानदी योजना को शीघ्र शुरू करने की वांछनीयता का उल्लेख किया गया था। उड़ीसा बहुत गरीब और पिछड़ा प्रांत है और यदि सम्बलपुर बाँध का निर्माण करना तकनीकी दृष्टि से व्यावहारिक है, यह एक ऐसा मुद्दा है जिस पर हमें स्वयं को इसी समय संतुष्ट कर लेना चाहिए, तो मुझे आशा है कि रौलेण्ड करार के अनुसार हम कार्य तुरंत शुरू कर सकते हैं। जल नियंत्रण एवं सिंचाई में मेरी दिलचस्पी से आप वाकिफ ही हैं, अतः मैं चाहूँगा कि योजना की प्रगति के बारे में मुझे सूचित किया जाता रहे। इस संबंध में हम शीघ्र निर्णय ले लें (यदि हम इस योजना को शुरू करना चाहते हैं) ताकि श्री लेविस 31 मार्च को अपना कार्यभार सौंपने से पूर्व शिलान्यास संपन्न कर सकें।

भवदीय,

वेवेल

माननीय

डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

[1] धोरात, मुद्रित पृष्ठ 172–174

22

हमें भारत में सभी पार्टियों के बीच सहयोग की भावना जगाने के लिए कार्य करना चाहिए

"लंदन, 22 अक्तूबर 1946

(रॉयटर)

भारत की संवैधानिक स्थिति के बारे में रॉयटर के संवाददाता के साथ बातचीत के दौरान डॉ. अम्बेडकर ने कहा:

"यह बिल्कुल निश्चित है कि वे मित्र नहीं हैं और वे सहयोगी भी नहीं हैं" उन्होंने आगे कहा "हम ऐसे लोगों को जानते हैं जो मित्र न होते हुए भी सहयोगी हैं, परन्तु मुस्लिम लीग और काँग्रेस पार्टी ने परस्पर विरोधी होते हुए अन्तरिम सरकार बनाई है। हम क्या उम्मीद कर सकते हैं? इसे शायद ही गठबंधन कहा जा सकता है। दरअसल, एक तरह से यह दो राष्ट्रों द्वारा बनाई गई एक देश की सरकार है।"

डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि भारत में पार्टी की सरकार बनाने का यही समय नहीं है।"वस्तुतः हम तो एक गृहयुद्ध के दौर में हैं।" उन्होंने जोर देते हुए कहा "आप चाहे इसे गृहयुद्ध न कहना चाहें, लेकिन इसके पीछे भावना यही है। इस समय दरअसल एक गठबंधन सरकार होनी चाहिए जिसमें केन्द्र की सभी पार्टियाँ शामिल हों, ठीक वैसी ही, जैसी कि युद्ध के दौरान ब्रिटेन में थी।

मुझे महसूस होता है कि आने वाले दस वर्ष भारत की नियति की दृष्टि से इतने निर्णायाक होंगे कि जब तक सभी पार्टियाँ मिलकर कार्य न करें तब तक देश को वैसा नहीं बना पाएँगे जैसा कि हम चाहते हैं।"

अम्बेडकर ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा कि ''हमें यह याद रखना चाहिए कि भारत में हमें ऐसी भावना उत्पन्न करनी होगी।"

इसके बाद भारत में गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया एक्ट, 1935 की धारा 93 जैसी कोई चीज नहीं होगी। चाहे, लोगों ने इसे सख्त नापसंद किया हो, लेकिन धारा 93 अराजकता पर लगाई गई संवैधानिक रोक थी।" डॉ. अम्बेडकर ने आगे कहा "ब्रिटिश सेना की टुकड़ियां अब नहीं होंगी। यही वह परिस्थितियाँ हैं, जिन्हें ध्यान में रखकर हमें भारत की सभी पार्टियों और लोगों के बीच सहयोग की भावना उत्पन्न करने के उद्देश्य से कार्य करना चाहिए और भविष्य में यही भावना हमारे लिए मददगार होगी।"

डॉ. अम्बेडकर ने स्वीकार किया कि वर्तमान और भविष्य दोनों के प्रति वह असंतुष्ट हैं। उन्होंने कहा "आखिर हमने हासिल ही क्या किया था और भविष्य में भी हमारे लिए क्या संभावना है? देश को तीन भौगोलिक क्षेत्रों में बाँटने वाले दो राष्ट्र।" "तो कैसी उम्मीद की जाए " मैंने डॉ. अम्बेडकर से पूछा।

"मुझे नहीं मालूम" उनका जवाब था, "लेकिन यदि यह मेरे हाथ में होता तो मैं गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया एक्ट, 1935 को फिर लागू करने का प्रस्ताव करता।"

उन्होंने कहा कि "उस अधिनियम में एक संयुक्त भारत की परिकल्पना की गई थी और उसने स्थिति के साम्प्रदायिक पहलू को बदल दिया होता और कुछेक अल्पसंख्यक समुदायों को जिन्हें महसूस होता है कि उन्हें पर्याप्त संरक्षण नहीं मिला है और अधिक संरक्षण दिया गया होता,।"

"तब मैंने कहा होता, आइये, दस वर्ष तक एक संयुक्त संविधान के लिए मिलकर कार्य करें। दस वर्ष के अंत में एक संविधान सभा का गठन करें और जैसा चाहें वैसा देश विभाजन करें।

डॉ. अम्बेडकर ने कहा "यदि अंग्रेजों ने यह किया होता तो उन्होंने कहा होता कि हमारी सबसे बड़ी उपलब्धि है भारत की एकता; चाहे हमने कई गलतियाँ की हों और कई काम गलत ढंग से किए हों, 150 वर्षों की गलतियों और त्रुटियों की भरपाई हमने एकता हासिल करके कर दी है और यही एकजुट विरासत हम सौंपना चाहते हैं।"

मैं प्रधानमंत्री श्री क्लेमेंट एटली, श्री विंस्टन चर्चिल और अन्य लोगों से मुलाकात के लिए एक राजनैतिक मिशन पर आया हूँ'' डॉ. अम्बेडकर ने कहा "मैं कैबिनेट मिशन और लेबर पार्टी द्वारा अनुसूचित जातियों के प्रति किए गए अन्याय के बारे में अपना दृष्टिकोण उनके सामने रखना चाहता हूँ। मैं इसमें कितना सफल होऊंगा मैं यह कह नहीं सकता। मुझे व्यक्तिगत तौर पर यह लगता है कि कैबिनेट मिशन को गलत सूचना दी गई थी।"

अपनी बात समाप्त करते हुए डॉ. अम्बेडकर ने कहा "लेबर पार्टी की सरकार ने अब भारत की पुनर्गठित अंतरिम सरकार में अनुसूचित जातियों को उनकी माता द्वारा पोषित करने के बजाए जिन्ना और गांधी के रूप में दो दाइयों की नियुक्ति प्रतिनिधियों के तौर पर कर दी है।"

डॉ. अम्बेडकर अनुसूचित जातियों के मामलों का उल्लेख करते हुए एक ज्ञापन छपवा रहे हैं और इसके तैयार होने तक वे प्रतीक्षा करेंगे और फिर राजनैतिक नेताओं से सम्पर्क करेंगे।"[1]

***

[1] द बॉम्बे क्रानिकल, दिनांक 24 अक्तूबर, 1946

23

जब तक ये मुद्दे स्पष्ट नहीं होते, विभाजन के मुद्दे पर कोई बातचीत नहीं

नई दिल्ली, 27 अप्रैल, 1947

अनुसूचित जाति संघ के अध्यक्ष डॉ. बी. आर. अम्बेडकर ने आज यहाँ एक साक्षात्कार में कहा कि फेडरेशन ने बंगाल और पंजाब के विभाजन के प्रश्न पर अभी कोई निर्णय नहीं लिया है और इस मुद्दे पर पहले से कोई निर्णय लेने का इच्छुक भी नहीं है।

उन्होंने कहा कि यदि हिन्दू विभाजन चाहते हैं तो उन्हें अनुसूचित जातियों को इन मुद्दों पर संतुष्ट करना होगाः–

पहला, मुस्लिम लीग द्वारा की गई पेशकश की तुलना में नए संविधान के अंतर्गत अनुसूचित जातियों को क्या हिन्दू संरक्षण देने के लिए तैयार हैं? दूसरा, सीमारेखा कहाँ खिंची जाएगी? तीसरा, क्या आबादी के आदान–प्रदान का कोई प्रावधान है? और चौथा, उन अनुसूचित जातियों के आर्थिक पुनर्वास के लिए हिन्दू क्या प्रावधान करने के लिए तैयार हैं जो विभाजन के परिणामस्वरूप मुस्लिम इलाके में रह जाएंगी और आबादी के आदान–प्रदान के परिणामस्वरूप जो हिन्दू इलाके में आ जाएंगी?

डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि जब तक ये मुद्दे साफ नहीं हो जाते, फेडरेशन के लिए बंगाल और पंजाब के विभाजन के मुद्दे पर कुछ कहना संभव नहीं हो सकेगा।–एपी।"[1]

***

[1] द टाइम्स ऑफ इंडिया, दिनांक 28 अप्रैल, 1947

24

भारत सरकार किसी भी रियासत को संप्रभु स्वतंत्र रियासत के रूप में मान्यता नहीं देगी

भारत को एक स्वतंत्र संप्रभु देश घोषित करने का प्रस्ताव किया गया था और एक प्रश्न यह था कि रियासतों की स्थिति क्या होगी? रियासतों का यह अभिमत था कि वे भी स्वतंत्र संप्रभु राज्य होंगे क्योंकि वे भी ब्रिटिश सरकार के नियंत्रण के अन्तर्गत आते हैं। 'त्रावणकोर' और 'हैदराबाद' प्रमुख रियासतें थीं। कैबिनेट मिशन ने भी इस विचार को स्वीकार कर लिया था, परन्तु डॉ. बी. आर. अम्बेडकर ने इस विचार का विरोध करते हुए बयान जारी किया और बताया कि राष्ट्र के सन्दर्भ में कैबिनेट मिशन का यह विचार कितना गलत है। उन्होंने आगे इस बात पर जोर दिया कि देश की संप्रभुता के हितों में रियासतों का भारत में विलय किया जाना चाहिए। यह बयान इस प्रकार थाः सम्पादक।

वायसराय कार्यकारी परिषद के पूर्व सदस्य एवं प्रख्यात संविधान विशेषज्ञ वकील डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने कतिपय राज्यों द्वारा स्वतंत्रता की घोषणा के विरोध में जारी वक्तव्य में कहा है कि "भारत के राज्यों को सर्वोच्चता से स्वयं को मुक्त करने का एकमात्र तरीका है कि वे संप्रभुता या आधिराज्य में विलय कर लें। यह तभी हो सकता है जब भारत के राज्य भारत संघ में घटक इकाईयों के रूप में शामिल हों।" डॉ. अम्बेडकर का कहना है कि भारत के राज्य उतने ही संप्रभु रहेंगे, जितने वे हैं, परन्तु यदि भारत स्वतंत्र होता है तो वे तब तक स्वतंत्र नहीं हो सकते जब तक वे ब्रिटिश साम्राज्य के आधिराज्य के तहत रहेंगे। उन्होंने आगे कहा कि राज्यों को यह महसूस करना चाहिए कि प्रभुतासम्पन्न स्वतंत्र राज्यों के रूप में उनके अस्तित्व का कोई अर्थ नहीं रहेगा। डॉ. अम्बेडकर ने आगे कहा कि राज्यों द्वारा स्वयं को स्वतंत्र घोषित करने के अधिकार के दावे का आधार कैबिनेट मिशन द्वारा दिनांक 12 मई, 1946 को जारी उस वक्तव्य में निहित है जिसमें उसने कहा है कि ब्रिटिश सरकार किसी भी परिस्थिति में भारतीय सरकार को सर्वोच्चता का हस्तांतरण नहीं कर सकती और न ही करेगी, जिसका तात्पर्य है कि साम्राज्य से उनके संबंध के कारण राज्यों को प्राप्त अधिकार समाप्त हो जाएंगे और राज्यों द्वारा सर्वोच्च शक्ति को अर्पित किए गए सभी अधिकार राज्यों को वापस हो जाएंगे।

शरारतपूर्ण सिद्धांत

यह सिद्धांत कि सर्वोच्चता का हस्तांतरण भारतीय सरकार को नहीं किया जा सकता, सर्वाधिक शरारतपूर्ण सिद्धांत है और यह इस मुद्दे में शामिल गलतफहमी पर आधारित है। वेस्टमिनिस्टर स्टैच्यूट पारित होने के परिणामस्वरूप कनाडा, आस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रीका और आयरलैण्ड अलग–अलग स्वतंत्र उपनिवेश बने हैं और वहाँ साम्राज्य विशेषाधिकार का प्रयोग करते हुए संबंधित स्वतंत्र उपनिवेश के मंत्रिमंडल की सलाह से कार्य करता है। वह ऐसा करने के लिए बाध्य है। वह इसके विपरीत कुछ नहीं कर सकता, इसका तात्पर्य है कि जब भारत स्वतंत्र उपनिवेश बनेगा तब साम्राज्य अपने विशेषाधिकार का प्रयोग करते हुए अर्थात भारतीय मंत्रिमंडल की सलाह के अनुसार कार्य करने के लिए बाध्य होगा। इस सिद्धांत, कि सर्वोच्चता का हस्तांतरण भारत सरकार को नहीं किया जा सकता है, के समर्थक गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया एक्ट, 1833 की धारा 39 के प्रावधानों को गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया एक्ट, 1935 से हटाए जाने पर विश्वास करते हैं (इन्हें गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया एक्ट, 1915–19 की धारा 33 में दोहराया गया था), जिसके अनुसार भारत का नागरिक तथा सैन्य शासन (ब्रिटिश भारत के नागरिक तथा सैन्य शासन से भिन्न) गवर्नर जनरल इन कौंसिल में निहित है और उनका यह तर्क है कि प्रावधानों का लोप किया जाना इस निष्कर्ष का प्रमाण है कि सर्वोच्चता का हस्तांतरण किसी भारतीय सरकार को नहीं किया जा सकता।

साम्राज्य के संवैधानिक कानून के अन्तर्गत जब कोई देश एक स्वतंत्र उपनिवेश बन जाता है तभी वह सम्राट को सलाह देने के अधिकार का दावा कर सकता है और इस तथ्य से उसके दावे का निषेध नहीं होता कि स्वतंत्र उपनिवेश बनने से पूर्व सम्राट को सलाह देने का तरीका भिन्न था। इस तथ्य का विगत में भारत सरकार को अपनी सर्वोच्चता के अधिकार का प्रयोग करते हुए सम्राट को सलाह देने की अनुमति प्रदान नहीं की गई थी आशय यह नहीं है कि कोई ऐसी अंतर्निहित संवैधानिक अक्षमता है जिसके कारण उसे सलाह देने के अधिकार का दावा करने की पात्रता नहीं रह जाती।

सर्वोच्चता व्ययगत नहीं हो सकती

अब तक मैंने कैबिनेट मिशन के वक्तव्य के एक भाग का उल्लेख किया है, जिसमें कहा गया है कि सम्राट द्वारा सर्वोच्चता का हस्तांतरण किसी भारतीय सरकार को नहीं किया जा सकता। कैबिनेट मिशन के अनुसार, सर्वोच्चता व्यपगत हो जाएगी। यह अत्यंत विस्मयकारी वक्तव्य है जो संवैधानिक कानून के एक अन्य सुस्थापित

सिद्धांत के विरुद्ध है। इस सिद्धांत के अनुसार, सम्राट अपने विशेषाधिकार का अभ्यर्पण अथवा परित्याग नहीं कर सकता। यदि सम्राट सर्वोच्चता का हस्तांतरण नहीं कर सकता तो सम्राट उसका परित्याग भी नहीं कर सकता। इस सिद्धांत की वैधता को 1840 में निर्णीत एवं 5 मूरे प्रिवी कौंसिल मामलों (पृ. 276) में उल्लिखित महारानी बनाम इड्डुलजी बैरमजी मामले में प्रिवी कौंसिल द्वारा स्वीकार किया गया था, जिसमें (पृ. 294 पर) यह कहा गया है कि सम्राट चार्टर द्वारा भी अपने विशेषाधिकार को अपने से अलग नहीं कर सकता। अतः जाहिर है कि कैबिनेट मिशन का यह वक्तव्य कि सम्राट सर्वोच्चता का प्रयोग नहीं करेगा उस संवैधानिक कानून के विरुद्ध है, जिसके द्वारा ब्रिटिश साम्राज्य शासित होता है।

अंतिम स्वीकृति

इसके अलावा, ग्रेट ब्रिटेन की संसद द्वारा सर्वोच्चता का निरसन करते हुए पारित किया गया कानून अमान्य होगा। इसका कारण भी स्पष्ट है। सर्वोच्चता हेतु अंतिम स्वीकृति सेना की होती है। यह सेना भारतीय सेना है, जिसका भुगतान अब तक ब्रिटिश भारत करता रहा है। ब्रिटिश भारत द्वारा अनुरक्षित और एजेन्ट अर्थात वायसराय एवं भारत के गवर्नर जनरल के अधिकार के अधीन रखी गई इस शक्तिशाली सेना की सहायता के बिना सम्राट सर्वोच्चता की शक्ति का निर्माण एवं संरक्षण कदापि नहीं कर सकता था। ये शक्तियाँ भारत के लोगों के लाभार्थ सम्राट के विश्वास के रूप में धारित हैं और उस विश्वास को छिन्न–भिन्न करते हुए ब्रिटिश संसद द्वारा कानून पारित करना सत्ता का घोर दुरुपयोग होगा।

अपनी बात का समापन करते हुए डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि भारत की रियासतों की पसंद चाहे जो हो, भारत के लोगों का कर्त्तव्य स्पष्ट है। उनकी ओर से अंतरिम सरकार द्वारा सम्राट को यह सूचित किया जाना चाहिए कि ब्रिटिश संसद को सर्वोच्चता का निरसन करने को कानून पारित करने का कोई अधिकार नहीं है और आगामी विधान में इस आशय की ऐसी कोई धारा जिसमें भारत में स्वतंत्र उपनिवेश बनाए गए हों, उनकी संप्रभुता के प्रतिकूल होगा अतः वह अमान्य होगा और यह घोषणा की जाए कि भारत सरकार किसी रियासत को कभी संप्रभु स्वतंत्र रियासत के रूप में मान्यता नहीं देगी।[1] *

****

[1] द टाइम्स ऑफ इण्डिया, दिनांक 18 जून, 1947

पुनर्मुद्रणः खैरमोडे, खण्ड 8 पृ. 195–198

* इस बयान पर की गई टिप्पणियों हेतु परिशिष्ट–IX तथा X देखें ।

25

बरार 15 अगस्त को निजाम के पास वापस जाएगा

डॉ. अम्बेडकर द्वारा न्यू इण्डिया बिल की व्याख्या

पिछले सप्ताह दिल्ली में आयोजित एक संवाददाता सम्मेलन में सुधार आयुक्त श्री वी. पी. मेनन द्वारा दिए गए उत्तरों के संदर्भ में डॉ. बी. आर. अम्बेडकर ने कहाः जिस संधि द्वारा बरार का सत्तांतरण अंग्रेजों को किया गया था वह कालातीत हो जाएगी और यह भू–भाग 15 अगस्त को निजाम के पास वापस चला जाएगा, जब भारत से सम्राट का आधिराज्य समाप्त हो जाएगा।

डॉ. अम्बेडकर ने आगे कहा कि "बरार के लोग बड़ी बेसब्री से यह जानने का इंतजार कर रहे हैं कि नए तंत्र के अन्तर्गत उनका भविष्य क्या होगा, उन्हें श्री मेनन के विचार जानकर, यदि वह सही हैं, बड़ी राहत मिलेगी।

"प्रश्न यह हैः क्या उनके द्वारा व्यक्त किए गए विचार सही हैं? मेरे मतानुसार इस विधेयक के खण्ड 2 की धारा 7 में निहित प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए श्री मेनन द्वारा व्यक्त विचार बिलकुल युक्ति संगत नहीं हैं।

"धारा 7 की उपधारा 1(ख) में कहा गया है कि निर्धारित तारीख अर्थात 15 अगस्त से न केवल भारत से सम्राट का आधिराज्य कालातीत हो जाएगा, अपितु सभी संधियों, स्वीकृतियों, रूढ़ियों, मौन अनुमति द्वारा भारतीय रियासतों पर अथवा उनके संबंध में सम्राट द्वारा प्रयोग की जा सकने वाली सभी शक्तियां, अधिकार, न्यायाधिकार का प्राधिकार भी कालातीत हो जाएगा। इसका क्या आशय है जब इसे बरार की संधि पर लागू किया जाए? स्पष्टतः इसका तात्पर्य है कि जिस संधि द्वारा बरार का सत्तांतरण अंग्रेजों को किया गया था, वह भी कालातीत हो जाएगी।"

खण्ड 2 बरार पर लागू होता है

यदि इस खण्ड का अर्थान्वयन सही है तो इस उपधारा का प्रभाव यह होगा कि 15 अगस्त को बरार निजाम के पास वापस आ जाएगा। यह तर्क प्रस्तुत करना कि यह खण्ड बरार पर लागू नहीं होता क्योंकि बरार का विशेष रूप से उल्लेख नहीं

किया गया हैं, इसके लिए उप खण्ड 'क' में दी गई सीमाओं को देखना होगा जिसमें इसका उल्लेख नहीं किया गया है। यह उप खण्ड इतना सामान्य है कि बरार का विशिष्ट उल्लेख करना अनावश्यक है। बरार का विशेष उल्लेख करना तभी आवश्यक होगा जब इसका मंतव्य सामान्य खण्ड के प्रभाव से इसे बचाने का हो, अन्यथा नहीं। चूंकि इसे बचाने का कोई खण्ड नहीं है, अतः यह उप खण्ड अपने वर्तमान रूप में बरार तथा भारतीय राज्यों के अन्य भू–भागों पर और जो किसी संधि अथवा करार के कारण ब्रिटिश भारत के भाग हैं, उन पर भी पूर्णतः लागू होगा। अतः यह कहना आवश्यक प्रतीत होता है कि श्री वी0 पी0 मेनन, धारा 7 की उप धारा 1 (ख) का मंतव्य नहीं समझ सके हैं और उन्होंने संवाददाता सम्मेलन में दिए गए उत्तरों से भ्रम की स्थिति उत्पन्न कर दी।

भूभागों का हस्तांतरण

यह कहना भी उतना ही गलत है, जैसा कि उक्त संवाददाता सम्मेलन में सरदार पटेल ने कहा था कि निजाम के साथ नया करार होने तक बरार की स्थिति यथावत रहेगी। इसका कारण यह है कि यथास्थिति खण्ड में, जो धारा 7 की उप धारा (1) का उप खण्ड (ग) है, भू भागों के हस्तांतरण के संदर्भ में की गई संधियों और करारों तथा सीमा शुल्क, परिवहन, संचार, पोस्ट व टेलीग्राफ तथा इस प्रकार के मामलों से संबंधित संधियों और करारों के बीच भेद किया गया है। यह केवल बाद वाले वर्ग की संधियों को बचाता है। यह ऐसे किसी करार को नहीं बचाता जो भू–भाग के अंतरण से संबधित है। बरार से संबंधित करार वह करार है जो भूभाग के हस्तांतरण से संबंधित है और इसे धारा 7 के उप खण्ड 1 (ख) के प्रभाव से अलग नहीं रखा गया है।

मैं अत्यंत प्रसन्न होऊँगा यदि कोई मुझे बताए कि धारा 7 के अर्थान्वयन की मेरी व्याख्या गलत थी। मैं केवल इतना कहना चाहता हूँ कि भारत के लोग और बरार के लोग धारा 7 को यथा रूप नोट करें और जब इस विधेयक पर हाऊस ऑफ कॉमन्स में बहस हो तब प्रधानमंत्री श्री एटली से सीधे प्रश्न पूछकर इस मामले में स्पष्टीकरण मांगें।"–एपी"[1]

***

[1] द टाइम्स ऑफ इंडिया, दिनांक 5 जुलाई, 1947

26

यदि खींची गई सीमारेखा प्राकृतिक नहीं होगी तो यह भारत के लोगों की सुरक्षा और संरक्षा को भारी खतरे में डाल देगी

नई दिल्ली, 20 जुलाई, 1947

डॉ. बी. आर. अम्बेडकर ने आज यहां एक बयान में कहा कि पंजाब और बंगाल का विभाजन कोई स्थानीय समस्या नहीं है जिसे इन दोनों प्रांतों के लोगों पर छोड़ा जा सके, बल्कि यह एक "अखिल भारतीय समस्या" है क्योंकि इसमें पाकिस्तान और भारत की सीमाओं का निर्धारण शामिल है और यह निर्धारण प्रथमतः रक्षा और प्रशासनिक सुविधा पर विचार करके किया जाना चाहिए।"

डॉ. अम्बेडकर ने कहाः पश्चिमी पंजाब और पूर्वी पंजाब के बीच और पश्चिमी बंगाल तथा पूर्वी बंगाल के बीच सीमारेखा के निर्धारण के बारे में चल रहे विवादों की समाचार पत्रों में प्रकाशित रिपोर्टों और मुसलमानों व गैर–मुसलमानों द्वारा सीमा आयोग को प्रस्तुत ज्ञापनों से यह स्पष्ट है कि सीमा आयोग के परिणाम देश के लिए विनाशकारी हो सकते हैं।

"सबसे पहले तो इस समस्या को एक स्थानीय समस्या के तौर पर लिया गया और पंजाब व बंगाल के लोगों को आपस में लड़ने के लिए छोड़ दिया गया। दूसरे, स्थानीय लोग इसे जमीन हड़पने की समस्या मानते हैं। जमीन की इस छीना–झपटी में राष्ट्रीय सीमारेखा को आगे पीछे खिसकाने के लिए गैर–मुसलमान इलाकों से मुसलमानों को खींचकर मुसलमान इलाकों में लाने और मुसलमान इलाकों से अधिकाधिक गैर–मुसलमानों को गैर–मुसलमान इलाकों में लाने के उद्देश्य से गैर–मुसलमान इलाकों में मुसलमान बस्तियों और मुसलमान इलाकों में गैर–मुसलमानों की बस्तियों को ढूंढने की पुरजोर कवायद की जा रही है।

"मेरे मतानुसार ये दोनों विधियाँ गलत और गुमराह करने वाली हैं। बस्तियों को देखते हुए राष्ट्रीय सीमारेखाओं को आगे पीछे करना न्यायोचित होता, यदि यह स्वीकार्य होता कि पाकिस्तान और हिन्दुस्तान समांगी देश होने चाहिए। लेकिन यह

विभाजन का आधार नहीं है, जो इस तथ्य से स्पष्ट है कि आबादी के स्थानांतरण की बात न कांग्रेस ने कही है और न ही मुस्लिम लीग ने। राष्ट्रीय सीमारेखा को चाहे जैसे बनाया–बिगाड़ा जाए, पाकिस्तान में बहुत बड़ी संख्या में गैर–मुसलमान बने रहेंगे और वैसी ही बड़ी संख्या में मुसलमान भारत में रहेंगे। इस वजह से अपनी बिरादरी के अधिकाधिक लोगों को अपने पाले में लाने के लिए सीमारेखा को आगे–पीछे करना मेरे विचार में अत्यंत मूर्खतापूर्ण कार्य है।

रक्षा

दूसरे, यह समस्या स्थानीय समस्या होती यदि पाकिस्तान और भारत दो प्रभुसत्ता संपन्न स्वतंत्र देश नहीं होते। लेकिन तथ्य यह है कि ऐसी स्थिति पैदा होने पर उनमें से प्रत्येक अतिक्रमण अथवा आक्रमण से स्वयं की रक्षा करेगा।

इस बात को देखते हुए, पंजाब और बंगाल का विभाजन एक स्थानीय समस्या नहीं है, बल्कि अखिल भारतीय समस्या है, क्योंकि इसमें पाकिस्तान और भारत की सीमारेखाओं का निर्धारण शामिल है और यह निर्धारण प्रथमतः रक्षा एवं प्रशासनिक सुविधा को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए।

उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखते हुए, पाकिस्तान सरकार और भारत सरकार सीमा आयोग के समक्ष न केवल उचित पक्षकार होंगे अपितु वे ही आवश्यक पक्षकार भी होंगे। भारत और पाकिस्तान के बीच की सीमारेखाएं भारत की सीमा होने के कारण भारत सरकार के रक्षा विभाग द्वारा इस बात पर जोर दिया जाना चाहिए था कि सीमा आयोग में निर्धारणकर्त्ताओं के रूप में सैन्य अधिकारियों को शामिल किया जाना चाहिए, जैसा कि दो देशों के बीच सीमाओं के निर्धारण में किया जाता है।

भारत सरकार का रक्षा विभाग न केवल इस मामले में कार्रवाई करने में असफल रहा, बल्कि उसने सीमा आयोग के सामने पेश होकर रक्षा एवं प्रशासन की दृष्टि से यह मामला उठाने की जहमत भी नहीं उठाई। शायद वह भूल गया है कि सरहद की निगरानी पूर्वी पंजाब या पश्चिमी बंगाल की जिम्मेवारी नहीं होगी। शुरू से लेकर आखिर तक यह जिम्मेवारी भारत सरकार की होगी और यही कारण है कि सीमाओं के निर्धारण में अपनी भूमिका रखना रक्षा विभाग का पहला सरोकार होना चाहिए था।

प्राकृतिक सीमाएँ

इस बात से किसी को इंकार नहीं कि रक्षा और प्रशासन के दृष्टिकोण से भारत और पाकिस्तान के बीच की सीमाएँ प्राकृतिक सीमाएँ होनी चाहिए अर्थात वे किसी नदी अथवा पर्वत के साथ–साथ चलनी चाहिए। सीमा आयोग को प्रस्तुत ज्ञापनों में

उठाए गए मुद्दों के स्वरूप से यह स्पष्ट है कि इन कारकों पर जैसा विचार किया जाना चाहिए उतनी गंभीरता से विचार नहीं किया जाएगा।

इन मुद्दों पर ध्यान नहीं दिया गया है और उल्लेख भी नहीं किया गया है। खतरा यह है कि सीमा आयोग के परिश्रम से भारत और पाकिस्तान के बीच जो सीमाएँ उभर कर आएंगी, वे तत्काल प्रभावित समुदायों के दृष्टिकोण से चाहे जितनी संतोषजनक हों, परन्तु भारत के दृष्टिकोण से तो अत्यंत असंतोषजनक होंगी।

यदि मेरा डर सही साबित होता है और सीमा आयोग द्वारा खींची गई सीमारेखा प्राकृतिक सीमारेखा नहीं है तो किसी पैगम्बर को आकर यह बताने की जरूरत नहीं कि भारत की सरकार को इसका रखरखाव करना बहुत महंगा पड़ेगा और इससे भारत के लोगों की सुरक्षा और हिफाजत गंभीर खतरे में पड़ जाएगी। अतः मुझे उम्मीद है कि चाहे जितनी देर हो चुकी हो रक्षा विभाग हरकत में आएगा और बहुत देर होने से पहले ही अपने कर्त्तव्य का निर्वहन करेगा।"—एपीआई"[1]

***

[1] द फ्री प्रेस जर्नल, दिनांक 21 जुलाई, 1947

27

विधि के समक्ष भारत के नागरिकों के अधिकार समान हैं एलन कैम्पबेल की डॉ. अम्बेडकर के साथ बातचीत :–

गवर्नमेंट हाऊस, नई दिल्ली

शनिवार, 24 अप्रैल, 1948

चमचमाती रोशनी में नहाए दिल्ली जिमखाना क्लब के लॉन पर मैं भी उनके साथ रात्रिभोज में शामिल था। हमारे मेजबान थे श्री कृष्ण (दिल्ली के जानेमाने राजनैतिक संवाददाता), जिन्होंने एक दिलचस्प पार्टी वहाँ रखी थी। मुख्य अतिथि थे कानून मंत्री, अछूतों के नेता और पिछले बीस वर्षों में भारतीय राजनीति में बहुरंगी व्यक्तित्व के धनी डॉ. भीमराव अम्बेडकर। वह भारत के नए संविधान के निर्माण से जुड़े प्रमुख लोगों में से हैं, जिसने छुआछूत के कलंक को कानून की किताब से निकाल बाहर किया है। डॉ. अम्बेडकर खुद एक अछूत हैं जिन्होंने हाल ही में एक ब्राह्मण डॉक्टर महिला से विवाह किया है। सदियों पुराने रीति–रिवाज को यों तो एक दिन में उखाड़ नहीं फेंका जा सकता, लेकिन इस आयोजन ने काफी गहमा–गहमी पैदा कर दी थी। उनकी पत्नी भी पार्टी के दौरान उनके साथ थीं, लेकिन सामाजिक आयोजनों में भारतीय महिलाओं के साथ जैसा अक्सर होता है, वह ज्यादा बोली नहीं।

डॉ. अम्बेडकर खुद गंभीर विचार मुद्रा में थे और उन्होंने नए संविधान की कुछेक विशेषताओं की विश्लेषणात्मक व्याख्या भी प्रस्तुत की। उदाहरण देते हुए उन्होंने उल्लेख किया कि इसके प्रावधानों के अंतर्गत न्यायपालिका के लिए आरक्षित विशेष अधिकार यूनाइटेड स्टेट्स के सर्वोच्च न्यायालय को प्राप्त अधिकारों से भी व्यापक हैं। 1935 के अधिनियम के सतत् गुणता के बतौर उदाहरण पेश करते हुए उन्होंने कहा कि नए संविधान के अनुच्छेदों में इससे संबंधित दो सौ पचास खण्ड शामिल किए गये हैं।

कैबिनेट सरकार पर भी हमने चर्चा की, और डॉ. अम्बेडकर ने एक शिकायत का हवाला देते हुए कहा कि भारत में सरकार की मौजूदा प्रणाली बहुत ही धीमी

गति से काम करती है। उनका ख्याल था कि जहाँ दो विभागों को प्रभावित करने वाला नीति विषयक कोई मामला हो तो इसका निपटान संबंधित मंत्रियों के स्तर पर तुरंत किया जाना चाहिए। उन्होंने सेड्स प्रस्तावों पर गैर–विभागीय कैबिनेट प्रमुखों की प्रणाली पर टिप्पणी की जिनके मातहत विभाग में उन प्रमुखों का एक समूह हो। उन्होंने कहा कि उन्हें इस बात का अफसोस है कि माऊंटबेटन संविधान पारित होने से पहले ही विदाई ले रहे हैं। उन्होंने महसूस किया राष्ट्रकुल के मुद्दे का निर्णय संविधान सभा के बाहर ही किए जाने की संभावना है।" (एलन कैम्पबेल–जॉनसन द्वारा लिखित मिशन विथ माऊंटबेटन, पृष्ठ 318–20)।

भारत का संविधान, जिसे लॉर्ड माऊंटबेटन के कार्यकाल के दौरान जोरशोर से तैयार किया गया और उस पर विचार–विमर्श किया गया, पश्चिम की स्वतंत्रता की भावना का मिलाजुला रूप है। इस दस्तावेज का दृष्टिकोण और भारतीय जीवन के यथार्थ का अन्तर उसके दृष्टिकोण को नष्ट नहीं करता। यह ब्रिटिश विचारधारा में निहित स्वतंत्रतावादी प्रभाव का प्रतिनिधित्व करता है और साम्प्रदायिकता के मंसूबों और आकांक्षाओं की जड़ों पर सीधा प्रहार करता है। भारत का संविधान उन आठ करोड़ अछूतों में नई आशा जगाता है, जिनकी छाया से मतांध परम्परावादी हिन्दुओं के अनुसार भी भोजन भी अपवित्र हो जाता था, लेकिन अब वे भी भारत के नागरिक हैं और कानून के सामने उन्हें भी बराबर का अधिकार है। यह उल्लेखनीय है कि डॉ. अम्बेडकर नेहरू सरकार के प्रमुख व्यक्ति और संविधान का निर्माण करने वाले महानुभावों में से एक हैं और अस्पृश्य समझी जाने वाली जातियों के जानेमाने नेता हैं।"[1]

***

[1] एलन कैम्पबेल–जॉनसन द्वारा लिखित मिशन विथ माऊंटबेटन, पृ. 361–362
पुनर्मुद्रण, खैरमोडे, भाग 10 पृ. 36–38

28

केन्द्र और प्रांतों के लिए एक राजभाषा

बम्बई, 15 अक्तूबर, 1948 (एपीआई)

भारत के कानून मंत्री डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने भाषाई प्रांत आयोग को प्रस्तुत अपने वक्तव्य में यह अभिमत व्यक्त किया है कि भाषाई आधार पर प्रांतों के पुनर्गठन संबंधी मांग को स्वीकार कर लिया जाना चाहिए परन्तु भारत संघ के संविधान में यह प्रावधान होना चाहिए कि प्रत्येक प्रांत की राजभाषा वही हो, जो केंद्र सरकार की राजभाषा है।

डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि केवल इसी आधार पर वह भाषाई आधार पर प्रांतों के गठन की मांग को स्वीकार करने के लिए तैयार हैं जो भारत की एकता को छिन्न–भिन्न होने से बचाने के लिए आवश्यक है।

डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि भाषा आधारित राज्य ही सामाजिक एकरूपता उत्पन्न करते हैं जो लोकतंत्र के लिए जरूरी है। विषमांगी समाज में लोकतंत्र है। क्यों सफल नहीं हो सकता है क्योंकि सत्ता का निष्पक्ष करने के बजाए इसका प्रयोग अन्य लोगों का अहित करने के लिए किया जाता है।

महाराष्ट्र प्रांत के प्रश्न का उल्लेख करते हुए डॉ. अम्बेडकर ने उसके आकार और जनसंख्या संबंधी आंकड़े उद्धृत करते हुए कहा कि इन आँकड़ों के अनुसार इसमें कोई संदेह नहीं कि महाराष्ट्र न केवल एक व्यावहारिक प्रांत होगा बल्कि अपने क्षेत्र, जनसंख्या और राजस्व को देखते हुए एक मजबूत प्रांत भी होगा। उन्होंने महाराष्ट्र के भीतर उप प्रांतों के विचार का विरोध किया जो सामान्य समय के दौरान एक स्थायी बोझ और आपात स्थिति में कमजोरी का सबब बन जाएगा।

प्रस्तावित महाराष्ट्र प्रांत में बम्बई को शामिल किए जाने के विरोध में समाचार पत्रों में हाल ही में प्रकाशित लेखों में उठाए गए अनेक मुद्दों का विस्तृत उत्तर देते हुए डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि महाराष्ट्र और बम्बई एक–दूसरे पर केवल निर्भर ही नहीं हैं बल्कि वे वस्तुतः एक–दूसरे के अभिन्न अंग हैं और इन्हें अलग कर देना दोनों के लिए घातक होगा। डॉ अम्बेडकर ने कहा, कि "यदि आयोग बम्बई को महाराष्ट्र से पृथक करने के तर्क को स्वीकार कर लेता है, तो उसे कलकत्ता को पश्चिम बंगाल से पृथक करने की संस्तुति करने के लिए भी तैयार रहना चाहिए, क्योंकि महाराष्ट्रीय लोग कम से कम यह दावा तो कर सकते हैं कि बम्बई के व्यापार और उद्योग के लिए उन्होंने पूंजी नहीं तो मजदूर तो दिए ही हैं; जबकि बंगाली तो यह भी दावा नहीं कर सकते।"[1]

***

[1] द सण्डे क्रॉनिकल, दिनांक 17 अक्तूबर, 1948

29

भारत और ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल

वित्त मंत्री

भारत

सं0 48 का 8195

नई दिल्ली

19 नवम्बर, 1948

प्रिय डॉ. अम्बेडकर,

भारत और ब्रिटिश राष्ट्रकुल पर मुझे भेजे गए आपके नोट के लिए अनेक धन्यवाद। मैंने इसे बहुत दिलचस्पी से पढ़ा है और यह एक गंभीर समस्या का गहन और बोधगम्य विश्लेषण है।

नोट इस पत्र के साथ वापस किया जाता है।

आपका,

हस्ताक्षर अपठनीय

माननीय डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

विधि मंत्री, भारत सरकार

नई दिल्ली

(नोट अगले पृष्ठ पर देखें – सम्पादक)

जहां तक इस पत्र का संबंध है, तत्कालीन विशेष कार्य अधिकारी ने नोट किया था कि यह दस्तावेज 1979 में महाराष्ट्र एडमिनिस्ट्रर जनरल से सरकार को प्राप्त रिकार्ड में पाया गया था।

भारत और ब्रिटिश राष्ट्रकुल' से संबंधित नोट डॉ. अम्बेडकर ने भारत के वित्त मंत्री को भेजा था जो उनके कार्यालय के आवरण पत्र के साथ लौटा दिया गया था। तथापि, इस पर किए गए हस्ताक्षर अपठनीय है।—सम्पादक

भारत और ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल

I. संबंध की जरूरत

भारत और ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के बीच संबंध स्थापित करने के प्रश्न पर विचार करते समय दो प्रश्न निर्णयार्थ उपस्थित होते हैं। पहला प्रश्न यह है कि क्या भारत को ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल से अपने सभी संबंध तोड़ लेने चाहिए और एक स्वतंत्र संप्रभु राज्य का दर्जा हासिल कर लेना चाहिए ? दूसरा प्रश्न यह है कि यदि भारत ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल से अपने सभी संबंध विच्छेद नहीं करता तो भारत और ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के बीच क्या संबंध होना चाहिए ?

2. पहले प्रश्न पर शायद ही कोई मतभेद दिखाई देता है। कुछेक अतिवादियों को छोड़कर अधिकांश ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल से भारत के संबंध विच्छेद के विरुद्ध हैं। ऐसा नहीं है कि केवल भारत ही है जो इस संबंध को बनाए रखना चाहता है, ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल की भी यही आकांक्षा है। यह राष्ट्रमण्डल के हित में ही होगा कि भारत उससे संबंध समाप्त न करे। भारत और राष्ट्रमण्डल के बीच संबंध राष्ट्रमण्डल के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। राष्ट्रमण्डल की रक्षा भारत से इसके संबंध पर निर्भर है। वहीं उदासीनता का बर्ताव करना भारत के लिए ठीक नहीं होगा। क्योंकि भारत भी राष्ट्रमण्डल से संबंध रखे बिना कुछ नहीं कर सकता। दो बातें हैं जो भारत के लिए जरूरी हैं, जो बाहरी दबाव के बिना मनचाहे तरीके से अपना भविष्य संवारने की क्षमता रखने वाले एक स्वतंत्र देश के रूप में अपना अस्तित्व बनाए रखने और विश्व के मामलों में अपना दखल रखने की दृष्टि से बहुत जरूरी हैं। स्वतंत्र भारत जब तक इस स्थिति में नहीं पहुंचता, वह स्वतंत्र भारत नहीं रहेगा। भारत इस स्थिति में तब तक नहीं पहुंच सकता जब तक उसका औद्योगीकरण पूर्ण न हो जाए और वह रक्षा तथा आक्रमण के लिए पर्याप्त सामरिक शक्ति का विकास न कर ले। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए भारत को तकनीकी उपस्कर प्राप्त करने चाहिए जो अभी हमारे पास नहीं हैं और जिन्हें विदेशी मदद के बिना हम प्राप्त नहीं कर सकते। यह विदेशी सहायता किसी और क्षेत्र से प्राप्त करने के बजाए ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल से ज्यादा आसानी से प्राप्त की जा सकती है। अतः यह भारत के हित में होगा कि

वह ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल के साथ संबंध बनाए रखे।

II. राष्ट्र का दर्जा बनाम उपनिवेश का दर्जा

3. दूसरे प्रश्न का हल इतना आसान नहीं है। इसमें अनेक समस्याएं हैं। भारत ने एक राष्ट्र का दर्जा हासिल कर लिया है। क्या इसके बदले उसे एक स्वतंत्र उपनिवेश का दर्जा ले लेना चाहिए? यह पहली समस्या है, जिसका समाधान हमें करना है। अत्यंत औपचारिक दृष्टिकोण से ऐसा करने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। राष्ट्र के दर्जे और उपनिवेश के दर्जे में कोई अन्तर नहीं है। उपनिवेश का दर्जा कोई अधीनस्थ दर्जा भी नहीं है। प्रत्येक स्वतंत्र उपनिवेश न केवल स्वायत्तशासी है बल्कि स्वतंत्र भी होता है और उसका दर्जा किसी भी अन्य स्वतंत्र उपनिवेश के बराबर का होता है। राष्ट्रमण्डल पद्धति में यूनाइटेड किंगडम स्वतंत्र उपनिवेशों में से एक है। प्रत्येक स्वतंत्र उपनिवेश कितना स्वायत्त और स्वतंत्र है इसे हाल ही में हुई दो घटनाओं से देखा जा सकता है। एक घटना दक्षिण अफ्रीका से संबंधित है। सम्राट एडवर्ड अष्टम शेष राष्ट्रमण्डल के सम्राट न रहते हुए भी दो दिनों के लिए दक्षिण अफ्रीका के सम्राट रहे। दूसरी घटना आयरलैण्ड से संबंधित है। पिछले युद्ध में जब सभी स्वतंत्र उपनिवेश युद्धरत थे, आयरलैण्ड ने तटस्थ रहने का निर्णय लिया था। प्रत्येक स्वतंत्र उपनिवेश की स्वायत्तता और स्वतंत्रता कितनी वास्तविक और कितनी कारगर है, यह दिखाने के लिए मेरी राय में इससे बड़ा और कोई प्रमाण आवश्यक नहीं है। यह राष्ट्र के दर्जे के समान ही है।

4. प्रश्न यह है कि क्या भारत, राष्ट्र का दर्जा हासिल कर लेने के बाद अब स्वतंत्र उपनिवेश का दर्जा स्वीकार कर सकता है? मेरे विचार में तो यह ऐसा नहीं कर सकता। इसके कारण भी जाहिर है। ये संवैधानिक और मनोवैज्ञानिक दोनों है। स्वतंत्र उपनिवेश के दर्जे की तीन अनिवार्यताएं हैं – (1) सम्राट के प्रति वफादारी को मान्यता, (2) सम्राट को उसके द्वारा नियुक्त गवर्नर जनरल के माध्यम से कार्य करने वाले स्वतंत्र उपनिवेश के प्रमुख के रूप में मान्यता देना, (3) स्वतंत्र उपनिवेश की संसद के सदस्यों द्वारा सम्राट के प्रति सत्यनिष्ठा की शपथ। यदि हम प्रत्येक स्वतंत्र उपनिवेश के संविधान का अध्ययन करें तो यह पता चलेगा कि इसमें तीनों बातें शामिल होती हैं।

5. स्वतंत्र भारत के संविधान के प्रारूप में जिस पर संविधान सभा द्वारा विचार किया जा रहा है, इन बातों को मान्यता नहीं दी गई है। प्रारूप संविधान की उद्देशिका में भारत को एक प्रभुसत्ता सम्पन्न स्वतंत्र गणराज्य बताया गया है। राज्य का प्रमुख सम्राट होने पर "गणराज्य" शब्द का प्रयोग सुसंगत नहीं है। संविधान के प्रारूप में

राष्ट्रपति को राज्य का प्रमुख बताया गया है, न कि सम्राट को। राष्ट्रपति सम्राट का प्रतिनिधि भी नहीं है। वह तो भारत के लोगों का प्रतिनिधि है। भारतीय संसद के सदस्यों द्वारा ली जाने वाली सत्यनिष्ठा की शपथ सम्राट के प्रति नहीं, बल्कि देश के प्रति और संविधान के प्रति है। अतः संविधान का मसौदा आधारभूत रूप से स्वतंत्र उपनिवेश के संविधान में जो अपेक्षित है, उससे भिन्न है। इसके लिए स्वतंत्र उपनिवेश के संविधान की तीनों अनिवार्य बातों में से प्रत्येक का होना जरूरी है। भारत को अब स्वतंत्र उपनिवेश का दर्जा स्वीकार करने के रास्ते में यह एक कठिनाई है। कार को रिवर्स गियर में चलाना सदैव कठिन होता है। ऐसा करना और अधिक कठिन होता है जब कार ढलान पर से नीचे जा रही हो।

6. दूसरी कठिनाई मनोवैज्ञानिक स्वरूप की है। क्या हम एक विदेशी सम्राट को अपना सकते हैं? क्या भारत के लोगों और स्वतंत्र उपनिवेशों के लोगों के बीच कोई सामाजिक अथवा सांस्कृतिक समानता है? यदि राष्ट्रमण्डल से पहले जुड़ा "ब्रिटिश" शब्द हटा भी दिया जाए तब भी राष्ट्रमण्डल वफादारी के लिहाज से ब्रिटिश बना रहेगा और उसका रंग भी गोरा ही रहेगा। क्या ऐसे राष्ट्रमण्डल में भारत सहज महसूस कर सकता है? कोई चाहे जितना भी चाहे कि भारत को राष्ट्रमण्डल के साथ संबंध बनाए रखना चाहिए, परन्तु क्या किसी को इस बात पर संदेह है कि भारत राष्ट्रमण्डल के साथ सहज महसूस नहीं कर सकता।

III. औपनिवेशिक दर्जे का संशोधित रूप

7. यदि भारत के स्वतंत्र उपनिवेश बनने से कानूनी तौर पर यदि संबंध नहीं रखा जा सकता तो इसका विकल्प क्या है? इसका जो विकल्प सुझाया गया है वह ब्रिटिश राष्ट्रीयता अधिनियम, 1948 और कनाडा राष्ट्रीयता अधिनियम, 1946 में प्रस्तावित है। इस अधिनियम की धारा 1 में कहा गया है कि :–

"नागरिकता के कारण ब्रिटिश राष्ट्रीयता :–

(1) प्रत्येक व्यक्ति को जो इस अधिनियम के अंतर्गत यूनाइटेड किंगडम तथा उपनिवेशों का नागरिक है अथवा जो आगे उल्लिखित उपधारा में किसी भी देश में लागू कानून के अंतर्गत उस देश का नागरिक है, उस नागरिकता के कारण उसे ब्रिटिश प्रजा का दर्जा प्राप्त रहेगा। उपर्युक्त दर्जा रखने वाला कोई भी व्यक्ति ब्रिटिश प्रजा अथवा राष्ट्रमण्डल नागरिक कहलाएगा और तदनुसार इस अधिनियम में एवं किसी अन्य कानून अथवा दस्तावेज में चाहे उसे यह अधिनियम बनाए जाने से पहले या बाद में पारित किया अथवा बनाया गया हो, "ब्रिटिश प्रजा" शब्द और "राष्ट्रमण्डल नागरिक" शब्द का अर्थ एकसमान होगा।

(2) ऊपर जिन देशों का उल्लेख किया गया है वे देश इस प्रकार हैं, अर्थात् कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, यूनियन ऑफ साऊथ अफ्रीका, न्यूफाऊंडलैण्ड, भारत, पाकिस्तान, दक्षिणी रोडेशिया तथा सीलोन।"

कनाडा राष्ट्रीयता अधिनियम की संबंधित धाराएं हैं धारा 4, 5 और 26 :–

"4 **अधिनियम के प्रारंभ होने से पूर्व उत्पन्न** :– इस अधिनियम के प्रांरभ होने से पूर्व जन्मा व्यक्ति नैसर्गिक कनाडाई नागरिक है :

(क) यदि उसका जन्म कनाडा से बाहर अथवा कैनेडियनशिप में हुआ है और इस अधिनियम के प्रारंभ होने पर वह विदेशी नहीं बना है; अथवा

(ख) यदि उसका जन्म कनाडा से बाहर अथवा कैनेडियनशिप से अन्यत्र हुआ है और यदि उसका पिता अथवा विवाह संबंध से बाहर जन्मे व्यक्ति के मामले में उसकी माता –

(i) का जन्म कनाडा में अथवा कैनेडियनशिप में हुआ था और उस व्यक्ति के जन्म के समय वह विदेशी नहीं बना था, अथवा

(ii) उस व्यक्ति के जन्म के समय ब्रिटिश प्रजा था जिसका अधिवास कनाडा में था।

यदि इस अधिनियम के प्रारंभ होने के समय वह व्यक्ति विदेशी नहीं बना है, और उसे स्थायी रूप से निवास करने हेतु कानूनी तौर पर कनाडा में प्रवेश दिया गया है अथवा वह अवयस्क है।"

"**5 अधिनियम के प्रारंभ होने के बाद उत्पन्न :–** इस अधिनियम के प्रारंभ होने के बाद जन्मा कोई व्यक्ति नैसर्गिक कनाडाई नागरिक है :–

(क) यदि उसका जन्म कनाडा में अथवा कैनेडियनशिप में हुआ है; अथवा

(ख) यदि उसका जन्म कनाडा से बाहर अथवा कैनेडियनशिप से अन्यत्र हुआ है, और

(i) उसका पिता, अथवा विवाह संबंध से बाहर उत्पन्न बच्चे के मामले में उसकी माता यदि उस व्यक्ति के जन्म के समय कनाडा में जन्म होने अथवा कैनेडियनशिप अथवा नागरिकता का प्रमाण पत्र प्रदान किए जाने अथवा इस अधिनियम के प्रारंभ होने के समय कनाडाई नागरिक है, और

(ii) यदि उसके जन्म का पंजीयन वाणिज्य दूतावास अथवा मिनिस्टर के पास जन्म होने के दो वर्ष के भीतर अथवा ऐसी विस्तारित अवधि के भीतर किया गया है जिसे विनियमन के अनुसरण में विशेष मामलों में मिनिस्टर द्वारा प्राधिकृत किया गया है।"

"26 कनाडाई नागरिक का ब्रिटिश प्रजा होना :–

"कनाडाई नागरिक ब्रिटिश प्रजा है।"

8. इन अधिनियमों में निहित योजना का उद्देश्य नागरिकता के दो वर्ग तैयार करना है – (1) राष्ट्रमण्डल नागरिक और (2) किसी विशेष राष्ट्रमण्डल का नागरिक। राष्ट्रमण्डल की नागरिकता स्वतः प्राप्त होगी। कोई भी व्यक्ति किसी विशेष राष्ट्रमण डल का नागरिक होने के कारण एक राष्ट्रमण्डल नागरिक बन जाता है। यह कहा जाता है कि यदि प्रत्येक स्वतंत्र उपनिवेश ने वह किया है जो ब्रिटिश तथा कनाडा नागरिकता अधिनियमों में किया गया है तो एक गणराज्य के लिए भी राष्ट्रमण्डल का सदस्य बनना संभव होगा।

9. इस प्रस्ताव पर सहमति देने से पूर्व हमें इस पर तीन दृष्टिकोणों से विचार करना होगा। क्या यह प्रस्ताव राष्ट्रमण्डल में प्रचलित नागरिकता की मौजूदा प्रणाली में कोई परिवर्तन करने की क्षमता रखता है? यदि कोई प्रस्ताव परिवर्तन की क्षमता रखता है तो भारत को इस परिवर्तन से फायदा होगा या नुकसान होगा? तीसरे, यदि भारत राष्ट्रमण्डल से संबंध रखने का इच्छुक है तो क्या भारत इस प्रस्ताव का प्रारूप संविधान में निहित प्रावधानों के होते हुए स्वीकार कर सकता है?

10. राष्ट्रमण्डल में तीन दोष हैं। एक दोष इसके विदेश मामलों के संचालन से संबंधित है। विदेश मामले युद्ध का सबसे सफल स्रोत है, इसके बावजूद इनका संचालन यूनाइटेड किंगडम की सरकार पर छोड़ दिया गया था, जिसमें स्वतंत्र उपनिवेशों की कोई सक्रिय भागीदारी नहीं थी। यह सच है कि स्वतंत्र उपनिवेशों को तटस्थ रहने का अधिकार है। परन्तु यह कोई हल नहीं है क्योंकि यह ऐसा हल है जिससे राष्ट्रमण्डल के कार्यचालन में सुधार नहीं होता। यह राष्ट्रमण्डल के प्रतिकूल है। दूसरा दोष यह है कि स्वतंत्र उपनिवेशों के बीच विवादों के निपटान हेतु कोई तंत्र नहीं है। स्वतंत्र उपनिवेशों का एक–दूसरे से संबंध अलग–अलग देशों की तरह नहीं है। अतः, निपटान हेतु वे अपने विवाद अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के समक्ष नहीं उठा सकते। इसके बावजूद स्वतंत्र उपनिवेशों के आपसी विवादों के निपटान हेतु कोई न्यायाधिकरण भी नहीं है। राष्ट्रमण्डल का तीसरा दोष यह है कि इसमें

कोई सामान्य नागरिकता नहीं है। एक स्वतंत्र उपनिवेश का नागरिक अन्य सभी उपनिवेशों का नागरिक नहीं है। दरअसल राष्ट्रमण्डल तो राष्ट्रमण्डल नागरिकता का विरोधी है। वह इस बात पर जोर देता है कि प्रत्येक उपनिवेश स्वतंत्र होगा कि उसका नागरिक कौन है और यह कहने के लिए भी स्वतंत्र होगा कि किसी दूसरे उपनिवेश का नागरिक उसका नागरिक नहीं होगा। हमारा सरोकार यहां तीसरे दोष से है। क्या हमारा प्रस्ताव इस प्रणाली में कोई बदलाव कर सकता है? जहाँ तक मेरा मत है, यह कोई बदलाव नहीं कर सकता है। स्वतंत्र उपनिवेशों को अभी भी यह परिभाषित करने का अधिकार है कि कौन उनका नागरिक है और कौन नहीं है; और जैसा पहले होता आया है वैसे ही भविष्य में भी वहाँ रहने वाले भारतीयों को वे नागरिकता के अधिकार से वंचित कर देंगे।

11. अतः स्वतंत्र उपनिवेशों की तुलनात्मक स्थिति की दृष्टि से भारत को इस बदलाव का कोई फायदा या नुकसान नहीं है। परन्तु भारत को अन्य स्वतंत्र उपनिवेशों के मामले पर विचार करने की जरूरत नहीं है क्योंकि यह माना जा सकता है कि वे अपनी नागरिकता भारतीय लोगों और भारत को नहीं देंगे अतः उन्हें भी भारत की नागरिकता के लिए बुलाने की जरूरत नहीं पड़ेगी। परन्तु भारत और यूनाइटेड किंगडम का मामला अलग है। क्योंकि उसके नागरिकता अधिनियम के अंतर्गत वह भारतीय लोगों को अपना नागरिक मानने के लिए तैयार है। वह भारत से भी उसके नागरिकों को भारत का नागरिक मानने की अपेक्षा करता है। परन्तु क्या भारत ऐसा करना चाहता है? मुझे दृढ़ विश्वास है कि भारत ऐसा नहीं कर सकता। इसका कारण भी स्पष्ट है। भारत और ग्रेट ब्रिटेन के बीच एक बार सामान्य नागरिकता लागू होने पर हम ब्रिटिश और भारतीय के बीच भेद करने में समर्थ नहीं हो सकेंगे क्योंकि दोनों ही हमारे नागरिक होंगे। ऐसे तो हम फिर से गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया एक्ट, 1935 धारा 111 से 121 में निहित प्रावधानों को लागू कर देंगे जिसमें ब्रिटिश और भारतीय नागरिकों के बीच ऐसे किसी भेदभाव का निषेध किया गया है, जिससे हम बचने का प्रयास करते रहे हैं। अतः, यह अत्यंत स्पष्ट है कि राष्ट्रमंडल नागरिकता भारत को राष्ट्रमंडल का सदस्य बनाने की एक खतरनाक विधि है।

12. इस प्रस्ताव में शामिल खतरों के अलावा क्या भारत प्रारूप संविधान में निहित प्रावधानों, जिनका हवाला मैंने पहले ही दिया है, के साथ–साथ इसे राष्ट्रमंडल से स्वयं के संबंध के रूप में स्वीकार कर सकता है? राष्ट्रमंडल नागरिकता के समाधान की सिफारिश इस आधार पर की गई है कि इसमें सम्राट का कहीं कोई उल्लेख नहीं आता और इसके द्वारा गणराज्य भी राष्ट्रमंडल के सदस्य बने रहने में समर्थ हैं। परंतु क्या ऐसा है? इस मुद्दे का निर्धारण करने के लिए हमें सबसे पहले

यह जान लेना चाहिए कि राष्ट्रमंडल नागरिक से क्या तात्पर्य है। नागरिकता अब अधिकार और कर्त्तव्य का विषय है। यदि प्रश्न पूछा जाए कि राष्ट्रमंडल के एक नागरिक के अधिकार क्या–क्या हैं तो हम आसानी से उत्तर दे सकते हैं। राष्ट्रमंडल के एक नागरिक के अधिकार वही होते हैं जो उसे राष्ट्रमंडल विशेष के कानून द्वारा प्रदत्त हैं, जिनका वह नागरिक है। लेकिन राष्ट्रमंडल के एक नागरिक के अधिकार एवं कर्त्तव्य क्या हैं? यदि यह कोई नई और मूल अवधारणा है और इसमें कोई तथ्य है तो इस प्रश्न का उत्तर हमें राष्ट्रीयता को परिभाषित करने वाले ब्रिटिश और कनाडा दो अधिनियमों में मिलना चाहिए। दोनों अधिनियम इस विषय पर मौन हैं। इस प्रकार एक राष्ट्रमंडल नागरिक एक ऐसा बोगस व्यक्ति है जिसके पास न खाने के लिए कुछ है और न कुछ पाने के लिए।

13. राष्ट्रमंडल नागरिक शब्द एक खोखला शब्द है। इसमें कोई कानूनी तत्व नहीं है। इसकी तुलना में यूनाइटेड स्टेट्स की नागरिकता कहीं यथार्थपरक है, जो इसके राज्यों की नागरिकता से भिन्न है। इसमें कतिपय विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां है। परन्तु राष्ट्रमंडल नागरिक से ऐसा कुछ भी जुड़ा नहीं है। तब राष्ट्रमंडल नागरिक शब्द प्रयुक्त क्यों किया जाता है? इससे वास्तव में क्या अभिप्रेत है? ब्रिटिश राष्ट्रीयता अधिनियम, जिसका उल्लेख पहले किया गया है की धारा 1 का संदर्भ लेने से ज्ञात होता है कि यह पुराने "ब्रिटिश प्रजा" शब्द का विकल्प मात्र है। यह जानते हुए, क्या भारत इस समाधान को स्वीकार कर सकता है? यदि एक राष्ट्रमंडल नागरिक ब्रिटिश नागरिक होने का ही दूसरा नाम है तो उसकी निष्ठा भी सम्राट के प्रति होनी चाहिए। और जैसा कि मैंने पहले ही उल्लेख किया है सम्राट के प्रति निष्ठा गणराज्य से सुसंगत नहीं है। अतः, यह स्पष्ट है कि यदि भारत को एक गणराज्य बनना है तो राष्ट्रमंडल नागरिकता का यह समाधान वह स्वीकार नहीं कर सकता।

IV. एक नया दृष्टिकोण

14. अपने प्रारूप संविधान को ध्यान में रखते हुए भारत राष्ट्रमंडल में रहने के लिए सम्राट के प्रति सत्यनिष्ठा अथवा राष्ट्रमंडल नागरिकता के तरीके को स्वीकार नहीं कर सकता। हमें कोई और तरीका ढूंढना होगा। मेरे विचार से आयरलैण्ड के मुद्दे के समाधान के लिए डी. वलेरा द्वारा 1921 में की गई कार्रवाई का अनुसरण करना एक उचित तरीका होगा। जिन लोगों ने इस विवाद के बारे में पढ़ा है, वह जानते होंगे कि श्री डी. वलेरा यह नहीं चाहते थे कि आयरलैण्ड राष्ट्रमंडल का स्वतंत्र उपनिवेश के प्रतीकों वाला एक घटक देश बने, जिनका उल्लेख इस नोट के पैराग्राफ 4 में किया गया है। वह आयरलैण्ड को राष्ट्रमंडल के एक घटक देश से

भिन्न राष्ट्रमंडल का एक सहयोगी देश बनाना चाहते थे। राष्ट्रमंडल के सहयोगी देश की अपनी अवधारणा का विवेचन उन्होंने एक दस्तावेज में किया है, जिसे आयरिश बंदोबस्ती के इतिहास में दस्तावेज नं. 2 के रूप में जाना जाता है।

15. मैं सुलभ सन्दर्भ और सहयोगी देश से श्री डी. वलेरा का क्या तात्पर्य था, यह बताने के लिए उक्त दस्तावेज के कुछ उद्धरण नीचे दे रहा हूं :–

"आयरलैण्ड के राज्य

1. आयरलैण्ड के विधायी, कार्यकारी और न्यायिक प्राधिकार केवल आयरलैण्ड की जनता से व्युत्पन्न होंगे।

सहयोग की शर्तें

2. सामान्य सरोकार के प्रयोजनार्थ आयरलैण्ड ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के देशों अर्थात ग्रेट ब्रिटेन साम्राज्य, कनाडा स्वतंत्र उपनिवेश, आस्ट्रेलिया राष्ट्रमंडल, न्यूजीलैंड स्वतंत्र उपनिवेश तथा दक्षिण अफ्रीकी संघ के साथ सम्बद्ध रहेगा।

3. सहयोगी के रूप में कार्य करते समय आयरलैण्ड के अधिकार, दर्जा और विशेषाधिकार ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के घटक देशों को प्रदत्त अधिकारों, दर्जे और विशेषाधिकारों से किसी भी रूप में कम नहीं होंगे।

4. "सामान्य सरोकार" से संबंधित मामलों में रक्षा, शांति एवं युद्ध, राजनैतिक संधियां और वे सभी मामले शामिल होंगे जिन्हें अब ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के देशों के बीच सामान्य सरोकार समझा जाता है और इन मामलों में अनेक सरकारों द्वारा किए गए निर्धारण के अनुसार विचार–विमर्श पर आधारित "आयरलैण्ड और ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के देशों के बीच" एकीकृत कार्रवाई की जाएगी।

5. आयरलैण्ड के ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के देशों से सम्बद्ध होने के कारण आयरलैण्ड का कोई नागरिक इन देशों में ऐसी किसी निर्योग्यता का सामना नहीं करेगा, जिसका सामना ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के घटक देशों में से किसी देश के नागरिक को नहीं करना पड़ता और इन देशों के नागरिकों की पारस्परिक रूप से यही स्थिति आयरलैण्ड में होगी।

6. सहयोग के प्रयोजनार्थ आयरलैण्ड ब्रिटेन के महाराजाधिराज को सहयोग के प्रमुख के रूप में मान्यता देगा।

राष्ट्रमंडल के साथ संबंध स्थापित करने का एक और नया तरीका है।

इसके लिए पैराग्राफ 6, 5 और 4 का अध्ययन किया जाना अपेक्षित है:

पैराग्राफ 6 :— स्वतंत्र उपनिवेशों और सहयोगी देश के बीच संबंध की दृष्टि से अनावश्यक होने के कारण पैराग्राफ 6 को आसानी से हटाया जा सकता है। डी. वलेरा ने स्वयं इसे हटा दिया था, जब उन्होंने कार्यकारी प्राधिकार (विदेश संबंध) अधिनियम, 1936 के अधिनियमन द्वारा उक्त दस्तावेज में निहित सिद्धांतों को लागू किया था।

पैराग्राफ 5 :— पैराग्राफ 5 की शर्तों को यथावत् हम स्वीकार नहीं कर सकते। यदि ऐसा पाया जाता है कि इसे रखना जरूरी है, तो इसकी भाषा में सावधानीपूर्वक संशोधन किया जाना चाहिए। हमें विषमताओं एवं विशेषधिकारों तथा उन्मुक्तियों में भेद करना चाहिए। इस बात पर सहमत होते हुए कि विभिन्न राष्ट्रमंडल निवासियों को भारत में किसी विषमता का सामना नहीं करना पड़ेगा, हमें उन्हें भारतीय नागरिकों के लिए आरक्षित विशेषाधिकारों एवं उन्मुक्तियों का दावा करने का अधिकार नहीं देना चाहिए।

पैराग्राफ 4 :— दस्तावेज का यह पैराग्राफ दस्तावेज का सबसे अहम हिस्सा है। यह दस्तावेज का सर्वोत्तम भाग है। इसमें सहयोगी देश की परिभाषा दी गई है और यह स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि यह राष्ट्रमंडल से कैसे और किस सीमा तक संबंधित है। हमारे प्रयोजन के लिए इतना पर्याप्त है। हमारा संविधान हमें राष्ट्रमंडल से निकट संबंध स्थापित करने की अनुमति नहीं देगा। हमारी जरूरतें भी हमें राष्ट्रमंडल के साथ निकट संबंध रखने की इजाजत नहीं देंगी।

16. अब प्रश्न यह है कि क्या इन शर्तों पर आधारित सहयोग भारत को ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के राष्ट्रों का सदस्य बनाने के लिए पर्याप्त माना जाएगा। जैसाकि मैंने उल्लेख किया है, दस्तावेज नं. 2 के प्रावधान आयरिश संविधान में तब शामिल किए गए थे, जब उसे 1937 में पुनः अधिनियमित किया गया था। तब यह सवाल उठाया गया था कि क्या इन परिवर्तनों के साथ आयरलैण्ड ब्रिटिश राष्ट्रमंडल का सदस्य बना रहता है। इसके उत्तर में ब्रिटिश सरकार ने दिनांक 30 दिसम्बर, 1937 को यह बयान जारी किया था –

"नए संविधान द्वारा निर्मित स्थिति पर यूनाइटेड किंगडम की हिज मजेस्टी सरकार ने विचार किया है, जिसे आयरिश स्वतंत्र देश की संसद द्वारा जून 1937 में अनुमोदित किया गया था और जो 29 दिसम्बर से प्रवष्त हुआ था।

"वे मानने के लिए तैयार है कि नए संविधान से आयरिश स्वतंत्र देश जिसे

भविष्य ने नये संविधान के अंतर्गत "आयर" अथवा "आयरलैण्ड" कहा जाएगा – ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के राष्ट्रों के सदस्य के रूप में उसकी मूलभूत स्थिति में कोई बदलाव नहीं होगा।

"यूनाइटेड किंगडम की हिज मजेस्टी सरकार ने सुनिश्चित कर लिया है कि कनाडा में हिज मजेस्टी सरकार, आस्ट्रेलिया राष्ट्रमंडल, न्यूजीलैंड तथा दक्षिण अफ्रीकी संघ भी नए संविधान को स्वीकार करने हेतु तैयार हैं।"

राष्ट्रमंडल में एक सदस्य के रूप में आयरलैण्ड की स्वीकार्यता को देखते हुए ब्रिटिश सरकार भारत के साथ भी वही व्यवहार करने के लिए बाध्य है, विशेष रूप से जब दोनों मामलों में शर्तें एक समान हैं। न तो ब्रिटिश सरकार और न ही स्वतंत्र उपनिवेश हमसे सहयोगी सदस्यता की मांग कर सकते हैं और यही हमारे लिए जरूरी भी है।

V. नए प्रस्ताव की प्रकृति एवं फायदे

17. इस नए प्रस्ताव से राष्ट्रमंडल दो प्रकार के देशों से मिलकर बनेगा – (1) घटक देश, और (2) सहयोगी देश। घटक देश पुराने उपनिवेश होंगे, जिनका प्रमुख सम्राट था। सहयोगी देशों में भारत जैसे देश शामिल होंगे जो सम्राट को अपने प्रमुख के रूप में मान्यता नहीं देते। इस प्रस्ताव के दो फायदे हैं। इससे भारत एक गणराज्य बना रह सकता है, जिसका संकल्प उसने लिया है। यह भारत और राष्ट्रमंडल दोनों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण क्षेत्रों से जुड़े पारस्परिक लाभ उठाने में समर्थ बनाता है। और अंत में, यह प्रस्ताव भारत को राष्ट्रमंडल नागरिकता के प्रस्ताव को मान्यता प्रदान करने के खतरे से भी बचाता है, जिसमें व्यापार और वाणिज्य से संबंधित मामलों में भारतीयों और ब्रिटिशों से समान व्यवहार किया जाना शामिल है, जिसके विरुद्ध भारत लड़ता रहा है।

VI. स्पष्टीकरण

18. भारत को राष्ट्रमंडल का सहयोगी सदस्य बनाते समय हमें दो बातों को स्पष्ट करने से चूकना नहीं चाहिए। एक तो यह कि भारत चाहे राष्ट्रमंडल का सदस्या हो या न हो, उसे राष्ट्रमंडल की इच्छाओं पर निर्भर नहीं बने रहना चाहिए। इसका निर्धारण भारत द्वारा ही इस संबंध में की गई किसी घोषणा से किया जाना चाहिए। जिस किसी ने आयरलैण्ड के मामले का अध्ययन किया है वह इस स्पष्टीकरणों का महत्व समझेगा। आयरलैण्ड को तब भी स्वतंत्र उपनिवेश बनाए रखा गया जब उसके द्वारा अपने संविधान में यह स्पष्ट किया गया था कि वह स्वतंत्र उपनिवेश नही रहना चाहिए। आयरलैण्ड को राष्ट्रमंडल से इस आधार पर बाहर रहने नहीं

दिया गया कि अन्य स्वतंत्र उपनिवेशों द्वारा उसे विदेश के रूप में मान्यता नहीं दी गई है।

19. मरी बनाम पार्क्स मामले (एईआर 1942 – जिल्द। 558) में किंग्स बेंच डिविजन के हाल में आए निर्णय को देखते हुए यह स्पष्टीकरण अत्यंत आवश्यक हो गया है। प्रश्न यह था कि आयरलैण्ड एक स्वतंत्र उपनिवेश है अथवा नहीं है। विद्वान मुख्य न्यायाधीश ने कहा कि आयरलैण्ड एक स्वतंत्र उपनिवेश नहीं है और अपने इस निर्णय के समर्थन में उन्होंने दो कारण दिए –

(1) उन्हें यह जानकारी नहीं थी कि क्या आयरलैण्ड ने कभी स्पष्ट रूप से संबंध–विच्छेद के अधिकार का प्रयोग किया था, और

(2) यदि उसने ऐसा किया भी हो, तो भी प्रश्न यह है कि क्या आयरलैण्ड का संबंध–विच्छेद प्रभावी होगा जब तक कि राष्ट्रमंडल के अन्य सदस्य आयरलैण्ड को एक विदेशी देश के रूप में मान्यता नहीं देते।

मुझे कोई संदेह नहीं कि यह एक शरारतपूर्ण फैसला है। इसमें कानून से ज्यादा राजनीति है। अतः इस बारे में हमें संदेह का कोई मौका नहीं देना चाहिए कि राष्ट्रमंडल में हमारा बना रहना और उसमें से निकल जाना ऐसा मामला है जो पूर्णतः हमारे ऊपर ही निर्भर है और इस पर राष्ट्रमंडल की सहमति अनावश्यक भी है और अप्रासंगिक भी।

VII. कार्यान्वयन

20. अब मैं कार्यान्वयन के प्रश्न पर आता हूँ। यहाँ दो प्रश्न विचारार्थ उत्पन्न होते हैं। घोषणा का प्रारूप और इसे कानूनी स्वीकृति प्रदान करने की विधि। जहाँ तक प्रारूप का प्रश्न है मैं निम्नलिखित मसौदा प्रस्तुत करता हूँ :–

"भारत को सामान्य सरोकार के मामलों जिनमें व्यापार, वाणिज्य, रक्षा, शांति एवं युद्ध शामिल होंगे, पर विचार विमर्श एवं स्वेच्छा के आधार पर की गई कार्रवाई के प्रयोजनार्थ ब्रिटिश राष्ट्रमंडल का सहयोगी सदस्य इस आधार पर घोषित किया जाता है कि सहयोगी के रूप में कार्य करते समय भारत के अधिकार, दर्जा व विशेषाधिकार राष्ट्रमंडल के अन्य घटक देशों में से किसी को भी प्राप्त अधिकारों, दर्जे एवं विशेषाधिकार से कम नहीं होंगे।

ऊपर उल्लिखित मुद्दों से संबंधित स्पष्टीकरणों सहित ऐसी घोषणा करना पर्याप्त होगा। यदि घोषणा की जाती है तो मुझे नहीं लगता कि हमें संविधान की उद्देशिका में "गणराज्य" शब्द में संशोधन करके उसके स्थान पर "राज्य" शब्द रखना पड़ेगा। "गणराज्य" शब्द यथावत् रहेगा।

21. अगला प्रश्न इसके कार्यान्वयन का है। इसे कार्यान्वित करने के दो तरीके हैं। एक तरीका है संधि द्वारा। दूसरा तरीका है संविधान में एक अनुच्छेद जोड़कर। मुझे दूसरा तरीका सही लगता है।

22. यह बात संविधान की उद्देशिका में संशोधन के सुझाव के विरुद्ध प्रतीत हो सकती है। मैं स्वीकार करता हूँ कि मेरे दृष्टिकोण में बदलाव आया है। यह बदलाव औपनिवेशिक दर्जे हेतु दिए गए राष्ट्रमंडल नागरिकता के नए सुझाव के कारण आया है। मैं स्वतंत्र उपनिवेश के दर्जे के पक्ष में था, क्योंकि यह प्रत्येक उपनिवेश को अपने नागरिकों की परिभाषा निर्धारित करने का अधिकार प्रदान करता है। साझा नागरिकता मुझे भारत की आर्थिक स्वतंत्रता के लिए खतरा महसूस होती है। क्योंकि इसके परिणामस्वरूप राष्ट्रमंडल नागरिकों के विरुद्ध अपने राष्ट्रिकों के संरक्षण की भारत की स्वतंत्रता छिन जाएगी। स्वतंत्र उपनिवेश के दर्जे का मूल आधार अर्थात् सम्राट के प्रति सत्यनिष्ठा मुझे राष्ट्रमंडल नागरिकता के नये आधार की तुलना में कम खतरनाक प्रतीत होता है।

***

30

संविधान और संविधानवाद

भारत का संविधान

सिद्धांतों का विवेचन

प्रस्तावना: संविधान निर्माण का प्रारम्भ एवं प्रगति

भाग I

संवैधानिक प्रणाली के अंतर्निहित सिद्धांत

अध्याय 1 : लोकतंत्र का सिद्धांत

अध्याय 2 : संघवाद का सिद्धांत

अध्याय 3 : शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धांत

भाग II

राज्य के अंग

अध्याय 4 : विधायिका

अध्याय 5 : कार्यपालिका

अध्याय 6 : न्यायपालिका

भाग III

संघ और राज्य

अध्याय 7 : विधायी संबंध

अध्याय 8 : प्रशासनिक संबंध

अध्याय 9 : वित्तीय संबंध

अध्याय 10 : आपात संबंध

भाग IV

राज्य और नागरिक

अध्याय 11 : कानून का शासन

अध्याय 12 : वैयक्तिक स्वतंत्रता का अधिकार

अध्याय 13 : अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार

अध्याय 14 : सार्वजनिक सभा का अधिकार

अध्याय 15 : संगठन का अधिकार

अध्याय 16 : स्वतंत्र आवागमन का अधिकार

अध्याय 17 : सम्पत्ति का अधिकार

प्राप्त पाण्डुलिपि में पुस्तक की अध्याय अनुक्रमणिका एवं आगे दी गईं दो प्रस्तावनाएं शामिल थीं : सम्पादक

संविधान और संविधानवाद

प्रस्तावना

संवैधानिक कानून का स्वरूप एवं दायरा

आगे दिए गए पृष्ठों में मैंने संविधान के अनुच्छेदों का पाठ नहीं दिया है। मेरे विचार से, ऐसा करना उन विद्यार्थियों के लिए अनुपयोगी होता जो संविधान के प्रावधानों और इसमें अंतर्निहित सिद्धांतों का समग्र विवेचन देखना चाहते हैं। इसके बजाए मैंने कुछ शीर्षकों को चुनकर विचार–विमर्श एवं विवेचन के प्रयोजनार्थ संविधान में से इन शीर्षकों से सुसंगत अनुच्छेद एकत्रित किए हैं। ये शीर्षक कौन–कौन से हैं यह विषय सूची तालिका देखने से स्पष्ट हो जाएगा। यह संविधान का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन है जिसका उद्देश्य संविधान का एक वस्तुनिष्ठ चित्र प्रस्तुत करना और तुलनात्मक रूप से अन्य देशों के संविधानों के प्रावधानों को देखना है।

यह असंभव नहीं है कि पाठक यह पूछे कि मैंने विचार–विमर्श हेतु शीर्षकों का चयन किस आधार पर किया है। मेरा उत्तर यह है कि ये वे विषय हैं जो सामान्यतः संवैधानिक कानून के दायरे के भीतर आते हैं। लेकिन इस उत्तर से दूसरे कई प्रश्न उठते हैं। संविधान से क्या तात्पर्य है? संवैधानिक कानून का स्वरूप और दायरा क्या है? अतः इस विषय पर कुछ स्पष्टीकरण देना बहुत जरूरी है। लेकिन यह अत्यंत संक्षिप्त होना चाहिए।

संविधान शब्द से क्या तात्पर्य है? कानूनी अर्थ में संविधान शब्द से कोई विनियम बनाना अथवा इस प्रकार बनाए गए विनियम के संबंध में अध्यादेश देना अभिप्रेत है। प्रोफेसर मॅक्ट्वेन के अनुसार :–

"रोमन साम्राज्य में यह शब्द लैटिन भाषा में सम्राट द्वारा कोई कानून बनाए जाने की क्रिया का तकनीकी शब्द बन गया था, और फिर चर्च ने रोमन विधि से यह शब्द लेकर पूरे चर्च के लिए अथवा किसी विशेष धर्म प्रांत के गिरजे संबंधी विनियमों के लिए लागू कर दिया। चर्च से अथवा संभवतः रोमन कानूनी पुस्तकों से ही यह शब्द उत्तर मध्य काल में फिर प्रयुक्त होने लगा और उस समय के धर्म निरपेक्ष अधिनियमों के लिए प्रयुक्त होने लगा।"

शताब्दियों से संविधान शब्द किसी विशेष प्रशासनिक अधिनियमन का बोध कराता रहा है। रोमन वकीलों के लिए इसका यही अर्थ था। ऐसे विशेष अधिनियमन का

"कॉन्स्यूएट्यूडो" अथवा प्राचीन रिवाज से भेद करने के लिए यह शब्द प्रयुक्त होता था। संविधान का आधुनिक अर्थ इसे 1610 में जाकर मिला, जिसके अनुसार इसका तात्पर्य है कानून के अनुसार परिभाषित नागरिक सरकार की योजना; अथवा दूसरे शब्दों में कहें, तो राज्य का कानूनी कार्यढांचा।

सौ वर्ष बाद संविधान शब्द एक अतिरिक्त और विशेष अर्थ में प्रयुक्त होते हुए देखा गया जो राज्य के कानूनी कार्यढांचे से कहीं बढ़कर है। इसका संकेत बोलिंगब्रोक ने दिया जिसने 1733 में किए गए अपने लेखन में कहा कि :–

> "जब हम औचित्य और सुस्पष्टता से बात करते हैं, तब संविधान से हमारा आशय उन कानूनों, संस्थाओं और रिवाजों से है, जिन्हें तर्क पर आधारित किसी सिद्धांत से प्राप्त किया गया है, जो लोगों की भलाई के लिए निर्देशित हैं, जिनसे मिलकर सामान्य प्रणाली बनती है, जिसके अनुसार समाज शासित होने हेतु सहमत हुआ है।"

संविधान शब्द का यह अर्थ भी संविधान शब्द के आधुनिक अर्थ से कमतर है। आज इस शब्द से किसी राज्य में सरकार के विभिन्न अंगों की शक्तियों एवं कर्त्तव्यों को निर्धारित करने वाला मूल कानून अभिप्रेत है जिसके वह अधीन है। संविधान शब्द का अर्थ निरूपण थॉमस पाइन ने किया, जिन्होंने कहा था कि :–

> "संविधान सरकार द्वारा किया गया कार्य नहीं बल्कि लोगों द्वारा सरकार बनाने का कार्य है और संविधान रहित सरकार अधिकार रहित शक्ति के समान है।"

तो, संविधान शब्द के अर्थ का यह विवेचन है।

संवैधानिक कानून का स्वरूप और दायरा क्या है? संवैधानिक कानून का स्वरूप जानने का एक आसान तरीका है इसके दायरे को समझ लेना। इसलिए बेहतर होगा कि सबसे पहले इसके दायरे को समझ लिया जाए। विश्वभर में जहाँ कहीं लोकतंत्र है, संवैधानिक कानून के दायरे में राज्य अपने नागरिकों से जिन अधिकारों का दावा करता है, उससे संबंधित सभी मामले शामिल हैं अर्थात (1) किसी कानून को सब लोगों पर बाध्यकारी बनाना, (2) कानून का प्रवर्तन कराना और (3) नागरिकों द्वारा राज्य से दावा किए गए कानून और अधिकारों की व्याख्या करना। यदि यह एक मिलाजुला राज्य अर्थात एक संघीय राज्य है, तो संवैधानिक कानून के दायरे में उपर्युक्त मामलों के अलावा संघ को बनाने वाले राज्य तंत्र तथा अन्य राज्य तंत्रों से संबंधित, कानूनी, कार्यकारी एवं वित्तीय मामले भी शामिल होंगे।

इस दायरे को देखते हुए संवैधानिक कानून का कानूनी न्यायशास्त्र में क्या स्थान है? प्रो. हॉलैण्ड ने इसे देश के सार्वजनिक कानून का एक भाग बताया है। इस बात से कोई इंकार नहीं कर सकता कि सही विचारधारा यही है। उनका तर्क हमें तार्किक दृष्टि से इसी निष्कर्ष पर ले आता है। कानून आचरण का एक प्रवर्तनीय नियम है जो अधिकारों से संबंधित है। जब यह एक ही राज्य के नागरिकों से संबंधित होता है यह म्युनिसिपल कानून कहलाता है। जब यह दो विभिन्न राज्यों से संबंधित होता है, यह अन्तर्राष्ट्रीय कानून कहलाता है। किसी राज्य का म्युनिसिपल कानून दो वर्गों में बंटा होता है। एक को निजी कानून कहा जाता है और दूसरे को सार्वजनिक कानून। जिन अधिकारों का प्रवर्तन एक नागरिक द्वारा दूसरे के विरुद्ध किया जाता है वे निजी कानून के अंतर्गत आते हैं। राज्य जिन अधिकारों को स्वयं पर प्रवर्तन हेतु नागरिकों पर लागू करता है, वे सार्वजनिक कानून के अन्तर्गत आते हैं। इसी प्रकार एक संघीय संगठन में राज्यों के विरुद्ध केन्द्र के पास जो अधिकार होते हैं, वे अनिवार्यतः सार्वजनिक कानून के अंतर्गत आते हैं। किसी भी दृष्टिकोण से उन्हें निजी कानून के अंतर्गत नहीं माना जा सकता।

जहाँ तक संवैधानिक कानून का संबंध एक राज्य द्वारा दूसरे राज्य के अधिकारों के दावे से अथवा राज्य द्वारा नागरिकों से और नागरिकों द्वारा राज्य से मांगे गए अधिकारों से है, संवैधानिक कानून को सार्वजनिक कानून की एक शाखा के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। संवैधानिक कानून के स्वरूप और दायरे का यह स्पष्टीकरण स्पष्ट करेगा कि केवल कुछेक शीर्षकों को विचार एवं विवेचन हेतु क्यों चुना गया है। उन्हें इसलिए चुना गया है क्योंकि उन पर किया गया विचार–विमर्श संविधान को सार्वजनिक कानून का भाग बताने और इसके विशेष लक्षणों का विवेचन करने की सर्वोत्तम विधि है।

***

31

भारत के लोग अपने मूल अधिकार पहचानेंगे

भारत सरकार के कानून मंत्री डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने हैदराबाद का निरीक्षण किया। उन्होंने दिनांक 24.5.1950 को हैदराबाद प्रोग्रेसिव ग्रुप के तत्वावधान में बोर क्लब में आयोजित एक बैठक को सम्बोधित किया। संवाददाताओं और उपस्थित श्रोताओं ने उनसे संविधान, लोकतंत्र, अस्पृश्यता आदि के बारे में कुछ प्रश्न किए थे।

भारत में संसदीय लोकतंत्र

कभी–कभी मेरे मन में विचार आता है कि भारत में लोकतंत्र का भविष्य अत्यंत अधकारमय है। परन्तु मैं यह भी नहीं कहता कि ऐसे क्षण नहीं आते जब मैं महसूस करता हूँ कि यदि हम सब मिलकर और एकजुट होकर "संवैधानिक नैतिकता" के प्रति समर्पित रहने की प्रतिज्ञा करें तो हम एक ऐसा नियमित पार्टी तंत्र तैयार करने में समर्थ होंगे जिसमें स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व की भावना हो सकती है।

भारत के संविधान में निहित मूल अधिकार

यह मान लेना गलत होगा कि मूल अधिकारों ने नागरिकों को परम अधिकार प्रदान कर दिए हैं। मूल अधिकारों के संबंध में हमारी कुछ सीमाएँ हैं जो राज्य की सुरक्षा के लिए आवश्यक हैं। संविधान का प्रारूप जब हमने तैयार किया था तो हमने इस बात का ध्यान रखा था कि मूल अधिकारों की सीमा व्यक्तिगत स्वतंत्रता को नाजायज तरीके से प्रभावित न कर सके।

मूल अधिकारों की सर्वोत्तम गारंटी संसद में एक अच्छे विपक्ष का होना है और ऐसा होने पर सरकार अपना व्यवहार उचित रखेगी।

दूसरा रक्षोपाय कानूनी था। उदाहरण के लिए– एक मंत्री ने सी.आई.डी. की रिपोर्ट पर कार्रवाई करते हुए किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करके निवारक अभिरक्षा में रखा है। इस मामले में प्रश्न उठता है कि क्या सी.आई.डी. की रिपोर्ट वास्तविक थी। इस प्रश्न का समाधान बहुत कठिन है।

मुझे यह विचार करना चाहिए था कि कानूनी प्रवीणता से ऐसा कोई तरीका होना

चाहिए जो ऐसी रिपोर्टों पर कार्यवाही करने में मंत्री के अधिकारों पर कुछ प्रतिबंध अथवा कुछ सीमाएं लगाता हो, ताकि कार्यकारी कार्रवाई करने के लिए पर्याप्त आधार हो और पेश की गई रिपोर्ट ठोस और वास्तविक हो। यदि ऐसा किया जाता है तो मेरे विचार से उच्चतम न्यायालय का होना एक अन्य रक्षोपाय है।

भारत अभी संक्रमण की स्थिति में है। जब यू.एस.ए. ने अपना संविधान तैयार किया था और उसमें मूल अधिकारों को शामिल किया था, तब वहाँ लोग नहीं जानते थे कि उन अधिकारों का स्वरूप, दायरा और सीमाएँ क्या हैं। उच्चतम न्यायालय के न्यायिक निर्णयों की लम्बी श्रृंखला के बाद कठिनाइयों का निवारण हुआ और मूल अधिकारों के स्वरूप, दायरे और सीमाओं का निर्धारण किया गया। इसी प्रकार मुझे विश्वास है कि पाँच या दस वर्ष बाद भारत के लोग अपने मूल अधिकार पहचानेंगे और जानेंगे कि संविधान उनके लिए क्या मायने रखता है।

वयस्क मताधिकार

प्रश्न : भारत में वयस्क मताधिकार एक बार में ही क्यों लागू कर दिया गया; क्रमशः क्यों नहीं?

उत्तर : मेरे विचार से तो सत्तारूढ़ दल वयस्क मताधिकार के सिद्धांत के प्रति इतना प्रतिबद्ध था कि विचार–विमर्श के अंत में उन्हें इसकी उपयोगिता के बारे में संदेह महसूस होने के बावजूद वे इससे मुँह नहीं मोड़ सके।

व्यक्तिगत रूप से, मैं वयस्क मताधिकार से कतई भयभीत नहीं हूँ। मैं उन थोड़े से लोगों में से हूँ जो जनता के निरन्तर सम्पर्क में रहते हैं और मुझे दृढ़ विश्वास है कि वयस्क मताधिकार के बारे में किसी प्रकार की गलतफहमी होने या गलतबयानी किए जाने का कोई डर नहीं है। वयस्क मताधिकार के बारे में केवल एक कठिनाई मैं महसूस करता हूँ और वह है इस देश में मतदाताओं की इतनी विशाल संख्या से मतदान कराने की हमारी कमजोर सरकारी मशीनरी की क्षमता। मेरे विचार से, इस कठिनाई से पार पाने का एक ही तरीका है कि सभी निर्वाचन क्षेत्रों में एक दिन मतदान कराने के बजाए विभिन्न चरणों में यह प्रक्रिया सम्पन्न करना ताकि सरकारी मशीनरी की कार्यक्षमता प्रभावित न हो।

प्रश्न : क्या यह सच है कि हैदराबाद अनुसूचित जाति संघ की कार्यसमिति की बैठक में सवर्ण हिन्दुओं को अल्टिमेटम देने का निर्णय लिया गया था कि यदि वे अनुसूचित जातियों का उत्पीड़न बंद नहीं करते और उनके अधिकारों को मान्यता नहीं देते तो अनुसूचित जातियाँ यह मामला संयुक्त राष्ट्र ले जाएंगी ?

उत्तर : इस बैठक का कोई एजेण्डा नहीं था और कोई प्रस्ताव पारित नहीं किया गया था।

बहरहाल, किसी भी देश की जनता का कोई भी तबका यदि उत्पीड़ित महसूस करता है तो उसके लिए मानवाधिकार आयोग जाने का रास्ता खुला है।

अस्पृश्यता

भारत में अस्पृश्यता की समस्या में अब आर्थिक पहलू जुड़ गया है, जबकि पहले ऐसा नहीं था।

मुझे लगता है कि आज अस्पृश्य समझी जाने वाली जातियों की स्थिति पाँच या छह वर्ष पूर्व की स्थिति से कहीं बेहतर है, लेकिन यदि उनके रास्ते में कुछ अड़चनें नहीं होती तो उन्होंने और जल्दी बेहतर तरक्की की होती।

सभी सम्प्रदायों के लिए सामान्य नागरिक संहिता

प्रश्न : क्या भारत में रहने वाले सभी सम्प्रदायों जैसे हिन्दू, मुस्लिम, इसाई, पारसी आदि के लिए सामान्य नागरिक संहिता होना संभव है?

उत्तर : इस देश में सभी के लिए चाहे उनकी जाति और धर्म कुछ भी हो, एक ऐसी सामान्य नागरिक संहिता जो सब पर लागू हो सके, तैयार करना आसान नहीं है। यह बात भी बिल्कुल स्पष्ट है कि हम भारत से बाहर के किसी देश से न्याय के सिद्धांतों का नए सिरे से आयात नहीं कर सकते। हमारी परिस्थितियां स्वच्छ और अप्रतिबंधित नहीं हैं। हमें हिन्दू कानून, मुस्लिम कानून, इसाईयों को नियंत्रित करने वाला कानून और अन्य अधिनियम लेकर उनमें से एकसमान बातें ढूंढनी चाहिए। कानून में एकरूपता लाने के लिए हमें हर सम्प्रदाय के पास जाकर एकसमान बातों को स्वीकार कर लेने का अनुरोध करने की कोशिश करनी चाहिए।

लेकिन सबसे पहले हमें अपना खुद का कानून जानना चाहिए कि यह है क्या। उदाहरण के लिए, हिन्दू कानून एक "जंगल" है। इसे एक संहिता का रूप दिया जाना चाहिए ताकि सामान्य संहिता पर विचार–विमर्श करने से पहले लोग उन्हें नियंत्रित करने वाले कानूनों के बारे में जानें।

***

32

मैं यही कहता हूं कि अडिग और ईमानदार बनो

जालंधर में दिनांक 27 अक्तूबर 1951 को संवाददाताओं ने डॉ. बी. आर. अम्बेडकर के साथ बातचीत के दौरान उनसे कश्मीर, राष्ट्रकुल के साथ भारत के संबंध आदि के बारे में कुछ प्रश्न किए। डॉ भीमराव अम्बेडकर द्वारा दिए गए उत्तर नीचे दिए गए हैं :— सम्पादक

प्रश्न : कश्मीर समस्या के बारे में आपकी क्या राय है?

उत्तर : मुझे डर है कि जम्मू कश्मीर में जनमतसंग्रह भारत के विरुद्ध होगा। जम्मू और लद्दाख से हिन्दू और बौद्ध आबादी को पाकिस्तान जाने से बचाने के लिए जम्मू, लद्दाख और कश्मीर में क्षेत्रवार जनमत संग्रह कराया जाना चाहिए।

प्रश्न : ब्रिटेन में चर्चिल की सत्ता में वापसी क्यों हुई है?

उत्तर : ईरान के तेल और मिस्र का प्रश्न अचानक खड़े होने के कारण संभवत लेबर पार्टी चुनाव हार गई।

ब्रिटिश आम मतदाता का शायद यह विचार रहा होगा कि यदि लेबर पार्टी फिर सत्ता में आती है तो मि. बीवन का वर्चस्व रहेगा, जिसका मतलब है कि ग्रेट ब्रिटेन की सुरक्षा कमजोर हो जाएगी।

प्रश्न : कंजर्वेटिव पार्टी की वापसी का भारत पर क्या प्रभाव पड़ेगा?

उत्तर : शायद चर्चिल स्टर्लिंग संतुलन का प्रश्न उठाऐंगे और शायद पाकिस्तान के प्रति ब्रिटिश दृष्टिकोण में कुछ बदलाव हो सकता है; इसे छोड़कर मुझे नहीं लगता कि कोई प्रभाव पड़ेगा। चर्चिल को भारत के हिन्दुओं से कोई खास लगााव नहीं है, उनकी सहानुभूति स्वाभाविक रूप से पाकिस्तान के साथ है।

प्रश्न : क्या आपकों लगता है कि चर्चिल के सत्ता में रहते हुए भारत को राष्ट्रमंडल में बने रहना चाहिए?

उत्तर : हम राष्ट्रमंडल में शामिल हैं? मैं अपने प्रधानमंत्री को समझ नहीं पाया हूँ।

उन्होंने 1929 में जोर देकर कहा था कि भारत स्वतंत्र उपनिवेश के दर्जे से संतुष्ट नहीं होगा। जब 1942 में "भारत छोड़ो आन्दोलन" शुरू हुआ तब वही थे जिन्होंने भारत छोड़ो आन्दोलन का विरोध किया। उनकी यह वैचारिक स्थिति लाहौर की वैचारिक स्थिति के विरुद्ध थी। जब मैंने संविधान तैयार किया तो उन्होंने भारत के स्वतंत्र उपनिवेश होने का कड़ा विरोध किया और अचानक वार्ता करने लन्दन चले गए और वापस आकर घोषणा कर दी कि भारत को राष्ट्रमंडल में होना चाहिए।

प्रश्न : लेकिन आपका क्या विचार है कि भारत को अब क्या करना चाहिए?

उत्तर : मैं कुछ नहीं कह सकता। यह बहुत जटिल प्रश्न है। भारत को वही करना चाहिए जो उसके लिए फायदेमंद हो। यदि देश सोचता है कि राष्ट्रमंडल में रहने से कोई लाभ नहीं है तो उसे बाहर निकल जाना चाहिए। मैं यही कहता हूं कि अडिग और ईमानदार बनो।

***

33

ताकत बढ़ाए बिना स्वतंत्र विदेश नीति की बातें करने का कोई औचित्य नहीं

"डॉ. अम्बेडकर पत्रकारों को पसंद नहीं करते। शनिवार* को बम्बई में एक अनौपचारिक चर्चा में उन्होंने यह बात कहीं। जब उन्हें प्रेस के सहयोग की पेशकश की गई तो इसे उन्होंने ठुकरा दिया।

जो कुछ भी उन्होंने कहा, उसमें से ज्यादातर "ऑफ द रिकार्ड" था। उन्होंने स्पष्ट किया कि वह महसूस करते हैं कि पं. नेहरू भारत को विनाश के रास्ते पर ले जा रहे है। उनका सुझाव था कि और लोगों के मामलों में दखल देने के बजाए हमें अन्य देशों से अलग रहना चाहिए और अपनी चरमराती अर्थव्यवस्था को उबारना चाहिए। चीन के आक्रमण के खतरे का साया डॉ. अम्बेडकर को पीछा करता हुआ लग रहा था। उन्होंने कहा कि चीन हमारी दहलीज तक आ पहुंचा है और हम अपनी सुरक्षा करने की स्थिति में नहीं हैं। ताकत बढ़ाए बिना स्वतंत्र विदेश नीति की बातें करने का कोई फायदा नहीं है।

डॉ. अम्बेडकर एक उच्च कोटि के विद्वान हैं। कोई उनके विचारों से पूरी तरह असहमत होते हुए भी उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। वह अपनी बात बेबाक होकर कहते हैं; वह प्रश्नों के उत्तर तत्परता से देते हैं। चुटकियाँ लेने में वह सिद्धहस्त हैं।"[1]

***

* 24 नवम्बर, 1951

[1] द नेशनल स्टैण्डर्ड, दिनांक 25 नवम्बर, 1951

34

अमेरिका का झुकाव पाकिस्तान की ओर

"अनुसूचित जातियों के नेता और पूर्व केन्द्रीय कानून मंत्री डॉ. भीमराव अम्बेडकर अमेरिका में कोलम्बिया विश्वविद्यालय से डॉक्टर ऑफ लॉ की मानद डिग्री से सम्मानित होने के बाद टी. डब्ल्यू. ए कॉन्स्टीलेशन से शनिवार* को बम्बई वापस आए।

डॉ. अम्बेडकर को भारत के संविधान के निर्माण में योगदान के लिए दिनांक 5 जून को आयोजित एक विशेष दीक्षांत समारोह में डॉक्टर ऑफ लॉ से अलंकृत किया गया।"[1]

बम्बई, 14 जून 1952 (पीटीआई)

"अनुसूचित जातियों के नेता डॉ. बी. आर. अम्बेडकर ने आज यहां कहा कि संयुक्त राज्य अमेरिका की आम जनता भारत के बजाए पाकिस्तान और उसकी नीतियों से प्रभावित है। उसका झुकाव पाकिस्तान के पक्ष में कहीं अधिक है।"

डॉ. अम्बेडकर जो कोलम्बिया विश्वविद्यालय से एल.एल.डी. की डिग्री प्राप्त करने अमेरिका गए थे, उस देश के विभिन्न तबकों के लोगों से हुई बातचीत के आधार पर अमेरिकी जनता की आम राय पर अपने विचार व्यक्त कर रहे थे।"[2]

***

* दिनांक 14 जून, 1952

[1] द संडे स्टैंडर्ड, दिनांक 16 जून, 1952

[2] द बॉम्बे क्रॉनिकल, दिनांक 15 जून, 1952

35

अंग्रेजी को किसी भी कीमत पर बनाए रखें

औरंगाबाद, 13 जुलाई, 1953

"भारत के पूर्व कानून मंत्री डॉ. बी. आर. अम्बेडकर ने किसी भी कीमत पर महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में अंग्रेजी को शिक्षा के माध्यम के रूप में बनाए रखने की पैरवी की है।

एक बातचीत में डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि अंग्रेजी सभी भाषाओं में सबसे समृद्ध है। उन्होंने कहा कि "मुझे नहीं लगता कि स्कूलों और कालेजों में हिन्दी सहित किसी भारतीय भाषा का प्रयोग अंग्रेजी के स्थान पर किया जा सकता है।"

डॉ. अम्बेडकर औरंगाबाद की पीपुल्स एजुकेशन सोसाइटी के संस्थापक अध्यक्ष हैं। उन्होंने कहा कि वह औरंगाबाद कॉलेज में हिन्दी या किसी क्षेत्रीय भाषा को शिक्षा का माध्यम नहीं बनाएंगे। उन्होंने कहा कि अंग्रेजी ही शिक्षा का माध्यम रहेगी।

भारतीय भाषाओं की बात करते हुए डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि हिन्दी का स्थान कोई अन्य भाषा नहीं ले सकती। उन्होंने स्पष्ट किया कि हिन्दी भाषा में विस्तार की क्षमता होने के कारण इसका चयन किया गया था।

लेकिन उन्होंने यह भी कहा कि हिन्दी में "साहित्य और गहनता" का अभाव है, जबकि अंग्रेजी में ये दोनों मौजूद हैं।

डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि हिन्दी को समृद्ध बनाने के लिए एक हिन्दी अकादमी का गठन किया जाना चाहिए जिसमें विद्वानों को शामिल किया जाए और शब्दकोष तैयार किया जाना चाहिए – यूपीआई।"[1]

***

[1] द नेशनल स्टैंडर्ड, दिनांक 4 जुलाई, 1953

36

....................सार्वजनिक मामलों में एकतरफा यातायात

पूना से प्रकाशित केसरी और मराठा के सम्पादकों ने डॉ. अम्बेडकर को दिनांक 5.7.1954 को पत्र भेजे थे, जिसका उत्तर डॉ अम्बेडकर ने दिनांक 15.7.1954 को भेजा था। डॉ अम्बेडकर का जवाब नीचे दिया गया है – सम्पादक।

26, अलीपुर रोड,
दिल्ली,
15 जुलाई, 1954

सेवा में,
सम्पादक,
केसरी और मराठा कार्यालय
पूना–2
प्रिय महोदय,

आपका दिनांक 5 जुलाई, 1954 का पत्र मुझे प्राप्त हुआ जिसमें कुछ पूछे गए प्रश्नों पर मुझे अपने विचार बताने के लिए कहा गया था। मुझे खेद है कि बम्बई में रहते हुए मैं पत्र का उत्तर नहीं भेज सका क्योंकि मैं कॉलेज के कार्यों में अत्यंत व्यस्त था। इसके तुरंत बाद मुझे मिलिट्री स्टाफ कॉलेज में भारतीय संविधान पर भाषण देने के लिए कुन्नूर रवाना होना पड़ा था। मैं कल ही वहां से लौटा हूँ।

इस समय सार्वजनिक मामलों में एक ही व्यक्ति के यातायात के कारण विदेश से जुड़े मामलों में दिलचस्पी बनाए रखना बहुत कठिन हो गया है क्योंकि देश ऐसा कोई विचार सुनने के लिए तैयार नहीं है जो प्रधानमंत्री जी के विचार से न मिलता हो। मेरे साथ भी कमोबेश ऐसा ही है और मेरा कहना है कि विदेशी मामलों में मैं एक समय जितनी दिलचस्पी लेता था उतनी दिलचस्पी लेना अब मैंने बंद कर दिया है। वस्तुस्थिति को देखते हुए मैं महसूस करता हूँ कि आपके द्वारा उल्लिखित विषय पर टिप्पणी करने में मैं सक्षम नहीं हूँ।

सादर,

आपका,
(ह/–)
बी. आर. अम्बेडकर

***

पुनर्मुद्रण : खैरमोडे, खण्ड 11, पृ. 69

37

बाढ़ नियंत्रण

परमाणु शक्ति का उपयोग

डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

भारत में आई बाढ़ और बाढ़ नियंत्रण की विधियों के बारे में हमने हाल ही में काफी कुछ सुना और पढ़ा है। वायसराय की कार्यकारी परिषद का सदस्य होने के नाते सिंचाई का प्रभार मेरे पास था। तब मैंने सिंचाई और जहाजरानी आयोग नामक एक विभाग का गठन किया था, जिन्हें मेरे ख्याल से अब नदी नियंत्रण बोर्ड, केन्द्रीय जल विद्युत आयोग आदि, नाम दिए गए हैं।

इन संगठनों ने बाढ़ नियंत्रण हेतु प्रस्ताव प्रस्तुत किए हैं जिनके बारे में समय–समय पर समाचार आते रहते हैं। उम्मीद की जाती थी कि इन संगठनों द्वारा समस्या का कोई न कोई निर्णायक समाधान ढूंढ लिया जाएगा। किन्तु अब हम यह पाते हैं कि चाहे जो भी प्रस्ताव आए हों, उनका कार्यान्वयन बाढ़ पर नियंत्रण करने में पूर्णतः असफल रहा है। शिलांग से भी यह सूचना आई है कि क्या–क्या कदम उठाकर ब्रह्मपुत्र की बाढ़ पर नियंत्रण किया जा सकता है, इंजीनियरों के लिए भी यह बता पाना कठिन या लगभग असंभव हो रहा है और प्रयोग के तौर पर 14,00,000 रुपये की लागत से एक पुश्ता बनाया गया था और वह भी बाढ़ में बह गया।

तटबंध

यह भी सुनने में आया है कि सरकार ने नदियों पर बांध बनाकर बाढ़ नियंत्रण के नए विचार को त्याग दिया है और तटबंध मजबूत करने का पुराना तरीका अपनाया है और इसके लिए बड़े पैमाने पर लोगों को काम पर लगाकर उनकी सहायता ली जा रही है।

इस संबंध में मैं भारत सरकार और इस मामले से जुड़े इंजीनियरों का ध्यान एक प्रस्ताव की ओर दिलाना चाहता हूं, जिसे एक विद्वान इंजीनियर ने पेश किया है और यह बॉम्बे कंटेम्प्ररी के दिनांक 10 सितम्बर, 1954 के अंक में "एटॉमिक साइन्स टू द रेस्क्यू रिटन बाई ऑब्जर्वर" शीर्षक से प्रकाशित हुआ है।

जिस प्रस्ताव पर मैं ध्यान आकृष्ट कराना चाहता हूँ वह एक सरल प्रस्ताव है अर्थात बाढ़ नियंत्रण के लिए परमाणु शक्ति का प्रयोग। ''ऑब्जर्वर'' समाचार पत्र पढ़ते ही मैं इस प्रस्ताव से बहुत प्रभावित हुआ और मैंने इसके लेखक के बारे में उनसे पूछताछ की। मुझे ज्ञात हुआ कि यह लेखक श्री सी.एस. पिल्लै हैं। मुझे पता चला कि वह तीस वर्षों से सिविल इंजीनियरिंग के क्षेत्र में हैं और ऐसे कार्य का उन्हें काफी कुछ तजुर्बा है। उनका कहना है कि वर्तमान स्थिति तक परमाणु अनुसंधान का विकास होने तक पुश्तो, तटबंधों और पलस्तर विज्ञान में अत्यंत सामान्य विधियों का प्रयोग किया जाता रहा है। लेकिन नदी नियंत्रण विज्ञान में हाल ही में हुई प्रगति के परिणामस्वरूप नई–नई बातें और तकनीकें सामने आई हैं, जिन्हें साल दर साल विनाश लीला लेकर आने वाली नदियों के नियंत्रण में कारगर तरीके से प्रयुक्त किया जा सकता है। उन्होंने आगे कहा है कि "इन विधियों और तकनीकों को केवल अस्थायी उपाय के तौर पर प्रयुक्त किया जा सकता है। लेकिन इसका स्थायी समाधान हमें कहीं और ढूंढना पड़ेगा।"

मैंने उनसे पूछा था कि नदियों की बाढ़ पर नियंत्रण की अपनी स्थायी योजना के बारे में मुझे समझाएँ। उन्होंने जो कुछ मुझे बताया वह इस प्रकार है :

"परमाणु विज्ञान के विकास से एक स्थायी समाधान मिलने की उम्मीद जागी है। न्यूक्लियर फिशन नामक एक प्रक्रिया है जिसके प्रयोग से दुःखदायी नदी पर नियंत्रण किया जा सकता है, उन्हें शान्त किया जा सकता है, हमारी इच्छानुसार साधा जा सकता है और उससे अपना प्रयोजन सिद्ध किया जा सकता है। इस विधि का अनुप्रयोग वे लोग आसानी से समझ सकते हैं जिन्होंने न्यूट्रॉन्स के प्रक्षेप पथ पर संतृप्तता, विद्युत धारा और विच्छेदक विसर्जन एवं संघनन संबंधी ओह्म के नियम पर कार्य किया हो।

"ओह्म का नियम किस प्रकार कार्य करता है और परमाणु विज्ञान से इसका क्या संबंध है?

न्यूट्रान

परमाणु–भौतिकी वैज्ञानिक ही इसका पूरा उत्तर दे सकता है। आज परमाणु रिएक्टरों द्वारा न्यूट्रॉन की धाराएं उत्पन्न करना संभव है। न्यूट्रॉन की इन धाराओं को नदी की गहराइयों में प्रविष्ट करके जलस्तर और जलग्रहण क्षेत्रों को नियंत्रित किया जा सकता है। इस प्रकार बाढ़ का प्रवाह हमारी सिंचाई और विद्युत परियोजनाओं

की जरूरतों को पूरा करने के लिए नियंत्रित और विनियमित किया जा सकता है। बाढ़ का शेष जल शीघ्र वाष्पीकृत हो जाता है।

यह पूछा जा सकता है कि द्रव्य के मूल कण के रूप में न्यूट्रॉन इतने प्रभावी क्यों हैं? इसका उत्तर सरल है। न्यूट्रॉन में कोई विद्युत आवेश नहीं होता। परमाणु नाभिक के चारों ओर घूमते इलेक्ट्रॉनों के ऋणावेश से अप्रभावित रहते हुए न्यूट्रॉन नदी की गहराइयों में आसानी से समा जाते हैं और हमारी इच्छानुसार कुछ घंटों में न सही, लेकिन कुछ ही दिनों में गाद और रेत का खनन करके और नदी तल को खुरच कर समस्त सामग्री नदी के दोनों तटों पर या समुद्र में डाल सकते हैं। इस प्रक्रिया से प्रक्षेप पथ पर आने वाला नदी तल और नदी के तट मजबूत बन जाते हैं।"

बाढ़ की समस्या बार–बार उत्पन्न होने वाली समस्या है और इससे ज्यादा विनाशकारी बल कोई दूसरा नहीं है। इस समस्या के समाधान में सरकार को केवल अपने अधिकारियों के ज्ञान और वैज्ञानिक जानकारी पर ही निर्भर नहीं रहना चाहिए।

किसी भी क्षेत्र से आने वाले सुझाव का स्वागत करना और उसके गुण–दोषों की जांच करना उनका कर्त्तव्य है। अधिक से अधिक प्रस्ताव आने पर ही सुरक्षा उपाय किए जा सकते हैं।"[1]

***

---

[1] द टाइम्स ऑफ इंडिया, दिनांक 18 जनवरी, 1955

38

अखण्ड विशालकाय राज्यों के निर्माण का प्रबल विरोध

भाषाई आधार पर राज्यों के निर्माण के संबंध में डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने पं. जवाहर लाल नेहरू को एक तार भेजा था। तार इस प्रकार है : सम्पादक।

17.1.1956

तार

पंडित जवाहरलाल नेहरू

नई दिल्ली

खेद है कि संसद में उपस्थित रहने में असमर्थ हूं, डॉक्टरों ने मेरे यात्रा करने पर आपत्ति की है। भाषाई आधार पर राज्यों के गठन के मुद्दे पर संसद में अपने विचार रखना चाहता था। ऐसा करने में असमर्थ होने के कारण इस तार द्वारा अपने विचार आप तक पहुंचा रहा हूँ। मैं अपने संघ की ओर से बोल रहा हूँ। संघ चाहता है कि बम्बई महाराष्ट्र में जाए, लेकिन मैं बम्बई को अलग राज्य बनाने के विरोध में भी नहीं हूँ। लेकिन मैं उत्तर प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र जैसे अखण्ड विशालकाय राज्य बनाने का प्रबल विरोधी हूँ। फेडरेशन चाहता है कि इन राज्यों से केवल केन्द्रीय सरकार को भारी खतरा नहीं होगा बल्कि अल्पसंख्यकों और अनुसचित जातियों को भी भारी खतरा होगा। फेडरेशन चाहता है कि उत्तर प्रदेश, बिहार को तीन राज्यों में बाँटा जाए। महाराष्ट्र को भी तीन राज्यों में बाँट दिया जाए। ऐसे राज्य के तत्वावधान में अनुसूचित जातियों को कोई संरक्षण नहीं मिलेगा जहां बहुमत अनुसूचित जातियों को मनुष्य मानने के लिए तैयार नहीं है। मेरा आपसे अनुरोध है कि इस प्रश्न पर गंभीरता से विचार करें। मुझे डर है कि इसके परिणाम बहुत गंभीर होंगे। अनुसूचित जातियों के पास अब कोई राजनीतिक संरक्षण नहीं है। निराशा की स्थिति में वे हिंसा पर उतारू हो सकते हैं।

अम्बेडकर[1]

***

[1] खैरमोडे, खण्ड 10 पृष्ठ सं. 56–57

39

महाराष्ट्र के लिए अम्बेडकर का फार्मूला

जनता की आवाज

मुझे प्राप्त पत्रों को देखकर महसूस होता है कि महाराष्ट्रवादी महाराष्ट्र – बम्बई मुद्दे पर हाल ही में राज्य सभा में पेश किए गए मेरे प्रस्ताव से पूरी तरह संतुष्ट नहीं हैं। उन्हें डर है कि बम्बई शहर में उनका बहुमत नहीं रहेगा।

दूसरी ओर, गुजराती भाई महसूस करते हैं कि 15 प्रतिशत गुजराती आबादी के चलते 100 सदस्यों के सदन में उन्हें ज्यादा से ज्यादा दो से चार सीटें हासिल हो पाएंगी। दोनों समुदाय असहाय रहते हुए एक–दूसरे पर झुंझलाएंगे। अतः मैं एक और प्रस्ताव पेश करता हूँ।

मेरा सुझाव है कि महाराष्ट्र राज्य को दो राज्यों में बांट दिया जाए, जिसमें से एक राज्य में (1) वृहत्तर बम्बई; (2) ठाणा जिला; (3) कोलाबा; (4) रत्नागिरि; (5) कोल्हापुर; और (6) सूरत जिले के मराठी भाषी इलाके, बेलगांव और कारवार जिले शामिल हों। विभाजन रेखा सह्याद्रि पर्वत होगा।

इस बंटवारे के फायदे इस प्रकार हैं : (1) इससे उत्तर बम्बई के जरिए बम्बई पर महाराष्ट्रीय लोगों का बहुमत होगा; (2) यह एक अलग सांस्कृतिक इकाई है; (3) यह एक अलग भाषाई इकाई है; (4) इस इकाई का कुल क्षेत्रफल 19,800 वर्ग मील और कुल आबादी 9,067,413 है जिसे देखते हुए यह पर्याप्ततः बड़ा राज्य है। यहाँ के लोग समुद्र और सैन्य परम्परा दोनों से जुड़े हैं।

मैं समझ नहीं पाता कि क्यों ब्राह्मण लोग संयुक्त महाराष्ट्र पर जोर दे रहे हैं। इसके बावजूद सत्ता पर दावा करने वाले दो प्रतिद्वंद्वी होंगे : श्री बी. एस. हीरे और श्री रामराव एम. देशमुख। संभव है कि डॉ. पंजाबराव देशमुख का अपना अलग दृष्टिकोण हो।

कठिनाई पैदा करने वाली एक और बात है और वह महाराष्ट्र के दूसरे हिस्से की राजधानी से संबंधित है। दक्षिणी ब्राह्मण पूना को राजधानी के रूप में चाहते

हैं जबकि मध्य प्रदेश के ब्राह्मण, नागपुर चाहते हैं। और लोग भी हैं जो तीसरा विकल्प पेश कर रहे हैं कि विधानसभा का सत्र इन दानों शहरों में बारी–बारी से आहूत किया जाए। मुझे विश्वास है कि कहीं संयुक्त महाराष्ट्र के नाम पर हम पेशवा राज्य की वापसी तो नहीं कर रहे। मेरा सुझाव है कि संयुक्त महाराष्ट्र की राजधानी औरंगाबाद को बनाया जाए। इसी के नजदीक दौलताबाद भी है जो मुस्लिमों द्वारा इसे नष्ट किए जाने तक यह महाराष्ट्र की राजधानी थी। यहाँ का मौसम बहुत सुहावना होता है।

इस प्रश्न का निपटारा तुरंत किया जाना चाहिए। कांग्रेस आला कमान चाहे जो कुछ कहे, इस बात की जरा भी संभावना नहीं है कि कोई गुजराती महाराष्ट्रीय उम्मीदवार को वोट देगा और कोई महाराष्ट्री किसी गुजराती उम्मीदवार को।

डॉ. बी. आर. अम्बेडकर (नई दिल्ली)"[1]

[1] दि फ्री प्रेस जर्नल, दिनांक 31 मई, 1956

परिच्छेद–IV
संस्थाएं, संगठन और उनके संविधान

खण्ड–17

भाग 2

हिंदी वाल्यूम–36

केबिनेट मिशन और सत्ता का हस्तांतरण

संपादकीय–टिप्पणी

"इंडियन नेशनल आर्मी के विद्रोह और उनके विरुद्ध मुकदमों से उत्पन्न देशभक्ति की लहर, शाही भारतीय नौसेना के नाविकों और शाही भारतीय वायु सेना द्वारा किए गए विद्रोह से शाही तंत्र का विघटन होना प्रतीत है। यह एक स्पष्ट संकेत था कि भारतीय सेना स्वतंत्रता की टीस महसूस और अनुभव कर रही थी। राजनीतिक और राष्ट्रीयता की भावनाएं अपने चरम पर थीं और उनके ह्रदयों को अपनी ओर खींच रही थीं। अंग्रेज जानते थे कि अब अधिक समय तक भारत को बंधनों में जकड़े रखना संभव नहीं था। अतः 15 मार्च, 1946 को ब्रिटिश प्रधानमंत्री क्लीमेंट एटली ने ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के अंतर्गत अथवा उसके बिना भी भारत के पूर्ण स्वतंत्रता के अधिकार को स्वीकार किया और माना कि अल्पसंख्यकों को बहुसंख्यकों की प्रगति की कीमत पर अपनी वीटो का इस्तेमाल करने की अनुमति नहीं देंगे।

ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने अपने तीन केबिनेट मंत्रियों का एक प्रतिनिधि मंडल भेजा, जिसमें सर स्टेफॉर्ड क्रिप्स, ए.वी. एलेक्जेंडर और तत्कालीन सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इंडिया लॉर्ड पैथिक लॉरेंस, शामिल थे। इन्हें राजनीतिक गतिरोध समाप्त करने के लिए भारतीय दलों के नेताओं से ऑन द स्पॉट वार्ता करनी थी। ब्रिटिश केबिनेट प्रतिनिधि मंडल *24 मार्च, 1946 को नई दिल्ली पहुंचा।"

"केबिनेट मिशन के समक्ष ज्ञापन प्रस्तुत करने और अनुसूचित जाति के मामले को पूरी शक्ति और दूरदर्शिता से उठाने के लिए अनुसूचित जाति संघ ने डॉ.अम्बेडकर को प्राधिकृत किया था। उन्होंने दलित वर्गों के उम्मीदवारों को अलग निर्वाचन क्षेत्रों के माध्यम से चुने जाने के लिए संविधान में उपबंध किए जाने की आवश्यकता पर बल दिया और केंद्रीय तथा प्रांतीय विधान मंडलों लोक सेवाओ और संघ के साथ–साथ प्रांतीय लोक सेवा आयोगों में उनके पर्याप्त प्रतिनिधित्व की मांग की। डॉ. अम्बेडकर ने अनुसूचित जातियों की शिक्षा के लिए राशि आबंटित किए जाने का भी आग्रह किया और उनके लिए नई बस्तियां बनाने की आवश्यकता पर बल दिया।

केबिनेट मिशन ने भारतीय गतिरोध को अंतिम रुप से निपटाने के लिए राजकीय

1. कीर, पृष्ठ 378

पत्र के रुप में अपनी स्कीम 16 मई, 1946 को घोषित की, जिसमें तीन प्रांतों के समूह के साथ एक औपचारिक

ब्रिटिशक केबिनेट मिशन की भूमिका के लिए परिशिष्ट– देखें।

भारतीय संघ एक अंतरिम सरकार की योजना और संविधान सभा का गठन अनुध्यात किया गया था, जिसके सदस्यों को जातिगत आधार पर प्रांतीय विधान परिषदों और संघ में शामिल होने वाले राज्यों के प्रतिनिधियों द्वारा चुना जाना था। तथापि, राजकीय पत्र में अनुसूचित जातियों के लिए डॉ. अम्बेडकर द्वारा रखी गई मांगों का कोई उल्लेख नहीं था।

डॉ. अम्बेडकर ने प्रस्तावित संविधान में अनुसूचित जातियों के लिए संवैधानिक अधिकार प्राप्त करने हेतु सतत् प्रयास किए। इन सभी का उल्लेख आगामी दस्तावेजों में किया गया है जो स्वतः स्पष्ट है........संपादक मंडल

कार्यकारी परिषद में अनुसूचित जातियों के प्रतिनिधित्व के लिए प्रस्ताव

नई दिल्ली, 7 जून 1945

प्रिय लॉर्ड वावेल,

मैं आपका आभारी हूं कि आपने मुझे अनुसूचित जाति के नेता के रुप में उस सम्मेलन के लिए सदस्य के रुप में आमंत्रित किया है, जो आपने कार्यकारी परिषद के भारतीयकरण के प्रस्ताव को आगे बढ़ाने के लिए आयोजित की है। मैंने आपको बताया था कि कुछ कारणों से, जिनका यहां दोहराया जाना आवश्यक नहीं है, आपका प्रस्ताव स्वीकार नहीं कर सकता। जिस पर आपने किसी प्रतिस्थापन व्यक्ति का नाम सुझाने को कहा है। यद्यपि मैं आपके प्रस्तावों के संबंध में अपनी सहमति व्यक्त कर चुका हूं, फिर मैं ऐसी सहायता के लिए मना नहीं करना चाहता जिससे सम्मेलन में किसी अनुसूचित जाति के प्रतिनिधि की मौजूदगी से आप कोई परिणाम निकाल सकें। अतः मैं कोई और नाम सुझाने के लिए तैयार हूं। मेरे ध्यान में आने वाले विभिन्न नामों की उपयुक्तता के आधार पर, मैं राव बहादुर एन. शिवराज, बी.ए., बी.एल.के अलावा किसी और नाम पर विचार नहीं कर सकता। वह अखिल भारतीय अनुसूचित जाति फेडरेशन के अध्यक्ष हैं और केन्द्रीय विधान सभा तथा राष्ट्रीय रक्षा परिषद के सदस्य भी हैं। यदि आप चाहें, तो अनुसूचित जाति के एक प्रतिनिधि के रुप में आप उन्हें सम्मेलन में आमंत्रित कर सकते हैं।

2. एक मुद्दा और है, जिस पर मैं समझता हूं कि इस समय आपका ध्यानाकर्षण जरूरी है। यह कार्यकारी परिषद के पुनर्गठन के लिए हिज मेजेस्टी की सरकार के प्रस्तावों में अनुसूचित जातियों को दिए गए प्रतिनिधित्व की नितान्त अपर्याप्ता के संबध में है। 9 करोड़ मुसलमानों को पांच सीटें (स्थान) 5 करोड़ अछूतों को एक सीट और 60 लाख सिखों को एक सीट आश्चर्यजनक है और अनर्थकारी राजनैतिक गणित है, जो मेरे न्यायवादी और सहज बुद्धि वाले विचारों से बिल्कुल विपरीत है। मैं इसका भाग नहीं बन सकता। यदि आवश्यकताओं को देखें तो अछूतों को, यदि अधिक नहीं तो, मुस्लिमों के बराबर प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए। आवश्यकताओं को छोड़ भी दें तो केवल संख्या के आधार पर अछूतों को कम से कम तीन सीटें मिलनी

चाहिए। इसके बजाय, पन्द्रह सदस्यीय परिषद् में उन्हें केवल एक सीट दी गई है। यह असहनीय स्थिति है।

इस मामले पर मैंने 5 जून को आयोजित कार्यकारी परिषद की बैठक में आपका ध्यानाकर्षित किया था, जब आपने परिषद के समक्ष हिज मेजेस्टी की सरकार के प्रस्तावों का उल्लेख किया था। 6 तारीख की सुबह बैठक में आपने प्रस्तावों के संबंध में पूर्व संध्या पर परिषद के सदस्यों द्वारा की गई आलोचनाओं का क्रमवाद उत्तर दिया था। मैं सहज ही उम्मीद करता था कि मैंने जो मुद्दा उठाया था आप उस पर भी कार्यवाही करेंगे। किंतु मुझे आश्चर्य है कि आपने इसे पूरी तरह नजर अंदाज किया और इसका कोई उल्लेख भी नहीं किया। ऐसा नहीं कि मैं इस बारे में सुस्पष्ट नहीं था बल्कि मैं अधिक सुस्पष्ट था। आपके द्वारा उल्लेख न करने की भूल पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि या तो इस मुद्दे को पर्याप्त महत्व का नहीं माना गया कि इसे आपके ध्यान में लाया जाए या आपने सोचा कि मेरा उद्देश्य एक विरोध दर्ज करने से अधिक और कुछ नहीं था। मैं इस छाप को मिटाना चाहता हूं और बिल्कुल निभान्त रूप से यह बताना चाहता हूं कि यदि हिज मेजेस्टी की सरकार इस गलती को सधारने में असफल रहती है, तो मैं निश्चित रुप से इस पर कार्रवाई करुंगा। अतः मैं यह पत्र लिखना आवश्यक समझता हूं।

यदि ऐसा कोई प्रस्ताव कांग्रेस या हिंदू महासभा की ओर से आया होता तो मैं इतना आहत महसूस नहीं करता। किंतु यह निश्चय हिज मेजेस्टी की सरकार का है। यहां तक कि आम हिन्दुओं की राय भी विधान सभा और कार्यकारी परिषद में अनुसूचित जातियों का प्रतिनिधित्व बढ़ाए जाने के पक्ष में है। यदि आम हिंदू राय को सप्रू समिति के प्रस्तावों के सूचक के रूप में लिया जाए तो हिज मेजेस्टी की सरकार के प्रस्ताव को अवनति समझा जाना चाहिए। इस संबंध में सप्रू समिति ने कहा हैः–

''भारत शासन अधिनियम में सिक्खों और अनुसूचित जातियों को दिया गया प्रतिनिधित्व सुस्पष्ट रूप से अपर्याप्त और अन्यायपूर्ण है तथा इसे पर्याप्त मात्रा में बढ़ाया जाना चाहिए। उनका प्रतिनिधित्व कितना बढ़ना चाहिए, यह बात संविधान तैयार करने वाले निकाय पर छोड़ देनी चाहिए।''

''धारा (ख) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, संघ की कार्यपालिका इस रूप में एक समेकित केबिनेट होगी, कि इसमें निम्नलिखित समुदायों का प्रतिनिधित्व हो, अर्थात्

(i) अनुसूचित जातियों के अलावा, हिंदू

(ii) मुस्लिम

(iii) अनुसूचित जाति

(iv) सिक्ख

(v) भारतीय ईसाई

(vi) आंग्ल भारतीय

(ख) कार्यकारी परिषद् में इन समुदायों का प्रतिनिधित्व, जहां तक संभव है विधायिका में उनकी शक्ति का परिचायक है।

मैं बताना चाहूंगा कि कार्यकारी परिषद् में मेरे दो हिंदू साथियों ने आज सुबह आपको दिए गए ज्ञापन में यह व्यक्त किया है कि हिज मेजेस्टी की सरकार के प्रस्तावों में अनुसूचित जातियों को दिया गया प्रतिनिधित्व अपर्याप्त और अनुचित है। मुझे यह जानकर दुख पहुंचा है कि अपनी वृत्ति से अनुसूचित जातियों की विश्वासपात्र बनने वाली और अपनी बारंबार की जाने वाली घोषणाओं के विपरीत काम करने वाली हिज मेजेस्टी की सरकार ने अपने आश्रितों के साथ अस्वतांत्रय, अन्यायपूर्ण और अनैतिक तरीके से बर्ताव किया है और जागृत हिंदू वर्ग की राय से भी परे रहकर कार्य किया है। अतः, मैं समझता हूं कि यह मेरा आबद्ध और पवित्र कर्तव्य है कि मुझे सभी साधनों और पूर्ण शक्ति से विरोध करना है। इस प्रस्ताव का आशय अछूतों के लिए मृत्युनाद है और इससे पिछले 50 वर्षों से अपने उद्धार के लिए उनके प्रयासों पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा। अनेक घोषणाओं के होते हुए यदि हिज मेजेस्टी की सरकार अछूतों का भाग्य हिंदू–मुस्लिम गठबंधन को हस्तांतरित करना चाहें तो वह निश्चित रुप से कर सकती है। किन्तु मैं अपने लोगों को दबाये जाने के लिए इसका हिस्सा नहीं बन सकता। मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि हिज मेजेस्टी की सरकार अपनी गलती को सुधारे और नई कार्यकारी परिषद् में अछूतों को कम से कम 9 सीटें दें। यदि हिज मेजेस्टी की सरकार इसके लिए तैयार नहीं है तो उसे यह जान लेना चाहिए कि यदि मुझे स्थान दिए जाने का प्रस्ताव भी मिला होता तो भी मैं नव–गठित कार्यकारी परिषद का सदस्य नहीं बनता। काफी समय से अछूत वर्ग अपने राजनैतिक अधिकारों को पूर्ण मान्यता प्रदान किए जाने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। मुझे कोई संदेह नहीं है कि हिज मेजेस्टी की सरकार के निर्णय से वे हतप्रभ रह जाएंगे और मुझे आश्चर्य नहीं होगा यदि समस्त अनुसूचित जातियां विरोध प्रकट करने के लिए नई सरकार के साथ कोई भी सहयोग न करें। मुझे विश्वास है कि उनका मोह भंग होने से रास्ते अलग–अलग हो जाएंगे। मेरा अनुमान हैं कि हिज

मेजेस्टी की सरकार के प्रस्तावों का, यदि उन्हें संशोधित न किया गया तो, यही परिणाम होगा। जहां तक मेरा स्वयं का संबंध है, मैं निर्णय ले चुका हूं। मुझे बताया जा सकता है कि यह कार्रवाई की अंतिम रुपरेखा नहीं है। यह केवल एक अंतरिम व्यवस्था है। मैं काफी लंबे समय से राजनीति में हूं और यह जानता हूं कि रियायतें और समायोजन जितने अधिक (एक बार) किए जाते हैं, वे निहित अधिकार बन जाते हैं और एक बार गलत समझौतों पर सहमति हो जाने पर वे भविष्य में होने वाले समझौतों के लिए उदाहरण बन जाते हैं। अतः मैं यह अन्याय होते नहीं देख सकता। यदि मुझमें सही निर्णय लेने की क्षमता है, तो मैं यह देख रहा हूं कि सीटों का यह वितरण, हालांकि एक अस्थायी व्यवस्था के तौर पर आरंभ हुआ है, स्थायी होने के साथ अपने अंत पर पहुंचेगा। अंतिम समय आने पर पछताने के बजाए मैं आरंभ से ही इसके विरुद्ध अपना विरोध दर्ज करता हूं।

ऐसा हो सकता है कि हिज मेजेस्टी की सरकार द्वारा मुझे और यहां तक कि भावी भारत सरकार में अनुसूचित जातियों के प्रतिनिधित्व को अनदेखा किया जाएः न ही इस देश में हिज मेजेस्टी की सरकार और अनुसूचित जातियों के बीच पैदा होने वाली दरारों से उपजने वाले परिणामों पर कोई खेद प्रकट किया जाए, परन्तु मुझे विश्वास है कि उचित केवल यही है कि हिज मेजेस्टी की सरकार यह जान ले कि मैं इस विषय पर क्या कहना चाहता हूं। अतः मेरा अनुरोध है कि आप कार्यकारी परिषद में अनुसूचित जातियों के प्रतिनिधित्व को बढ़ाने के मेरे प्रस्ताव और यदि यह प्रस्ताव निरस्त कर दिया जाता है, तो मेरी प्रस्तावित कार्रवाई की जानकारी हिज मेजेस्टी की सरकार तक पहुंचा दें।

आपका,

डॉ. भीमराव अम्बेडकर

2
केबिनेट मिशन को प्रस्तुत ज्ञापन

"अंग्रेज जानते थे कि उनके लिए भारत को बंधनों में जकड़े रखना अधिक समय तक संभव नहीं था। अतः 15 मार्च, 1946 को ब्रिटिश प्रधानमंत्री क्लीमेंट एटली ने ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के अंतर्गत अथवा उसके बिना भी भारत के पूर्ण स्वतंत्रता के अधिकार को माना और कहा कि वे किसी अल्पसंख्यक को बहुसंख्यकों की प्रगति की कीमत पर अपनी वीटो का इस्तेमाल करने की अनुमति नहीं देंगे।

ब्रिटिश प्रधान मंत्री ने अपने तीन केबिनेट मंत्रियों का एक प्रतिनिधि मंडल भेजा, जिसमें सर स्टेफॉर्ड क्रिप्स, ए.वी. अलेक्जेंडर और तत्कालीन सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इंडिया लार्ड पैथिक लॉरेंस शामिल थे। इन्हें राजनीतिक गतिरोध समाप्त करने के लिए भारतीय दलों के नेताओं से ऑन द स्पॉट वार्ता करनी थी। ब्रिटिश केबिनेट प्रतिनिधि मंडल 24 मार्च, 1946 को भारत पहुंचा, जहां वाइसरीगल लॉज में अनेक साक्षात्कार, उच्च स्तरीय वार्ताएं और संवेदनशील विचार–विमर्श हुए।

उस माहौल के बीच मिशन द्वारा 5 अप्रैल, 1946 को अल्पसंख्यक समुदायों के दो प्रतिनिधियों का साक्षात्कार किया गया। वे दो थे डॉ. भीमराव अम्बेडकर और मास्टर तारा सिंह। डॉ. अम्बेडकर ने कमीशन के समक्ष एक ज्ञापन प्रस्तुत किया..... ."। ज्ञापन का विवरण इस प्रकार हैः–

अखिल भारतीय
अनुसूचित जाति संघ
5 अप्रैल, 1946 को
डॉ. भीमराव अम्बेडकर द्वारा
केबिनेट मिशन के समक्ष प्रस्तुत

ज्ञापन

अखिल भारतीय अनुसूचित जाति संघ की कार्य–समिति द्वारा 2 अप्रैल, 1946 को दिल्ली में आयोजित बैठक में पारित संकल्प।

भाग–1

सामान्य

1. अखिल भारतीय अनुसूचित जाति संघ की कार्य–समिति की बैठक 2 अप्रैल, 1946 को दिल्ली में आयोजित हुई, जिसमें केबिनेट मिशन के उद्देश्य, अर्थात् भारत को एक स्व–शासित देश बनाने की लक्ष्य प्राप्ति में सहायता देने के प्रश्न पर सर्वोत्तम रूप से विचार करते हुए:

यह संकल्प किया गया कि इस समस्या के बारे में मिशन के समक्ष अपना सुविचारित दृष्टिकोण प्रस्तुत किया जाए कि कैसे उक्त प्रस्ताव के सर्वश्रेष्ठ परिणाम प्राप्त किए जाएं, जिससे न केवल हिंदू बहुसंख्यक वर्ग को ही स्वतंत्रता प्राप्त हो बल्कि अल्पसंख्यक वर्गों और विशेष रुप से अनुसूचित जातियों को बहुसंख्यक समुदायों के अन्याय से भी मुक्ति मिले, जिसमें राजनीतिक परिणाम के न होने से परिवर्तन किए जाने की बाध्यता न हो और जो सांप्रदायिक होने के कारण बहुसंख्यकों के लिए नियम हो।

2. कार्य–समिति अनुसूचित जातियों के प्रति भेदभाव किए जाने को स्वीकार करने से बच नहीं सकती कि वे भारत की राजनीतिक प्रगति पर रोक लगा रही हैं। कार्य–समिति की राय में इसमें कोई संदेह नहीं है कि भारत की राजनीतिक प्रगति को बनाए रखने की जिम्मेदारी पूरी तरह से बहुसंख्यक समुदायों पर है जिन्होंने रोषपूर्वक और अनौचित्यपूर्वक यह जानने का अधिकार जताया है कि अल्पसंख्यक समुदायों और विशेषकर अनुसूचित जातियों को क्या–क्या सुरक्षा मिलनी चाहिए और वास्तव में, उसने अल्पसंख्यक समुदायों और अनुसूचित जातियों के लिए सुरक्षा के सवाल पर अपना ब्लू–प्रिंट जारी करना टाला है। अनुसूचित जातियों ने अब तक जिस बात पर जोर दिया है और भविष्य में भी ऐसा करने से हिचकना नहीं है, वह है–सर्वप्रथम उन्हें अपने अधिकारों और स्वतंत्रता की रक्षा के लिए संविधान में ही समुचित रक्षोपायों को शामिल कराना और दूसरे अपने अपने अधिकारों की प्रकृति और जो सुरक्षा वे चाहते हैं उसके लक्षणों के बारे में बहुसंख्यकों की स्वीकृति प्राप्त करना।

3. कार्य–समिति मिशन को यह बताना अनावश्यक समझती है कि अनुसूचित जातियों द्वारा उठाया गया यह कदम एक बाध्यता के रुप में हिज मेजेस्टी की सरकार द्वारा स्वीकार कर लिया गया है, जैसा समय–समय पर हिज मेजेस्टी की सरकार के प्रतिनिधियों द्वारा दी गई प्रतिज्ञाओं में देखा जा सकता है और

जिन्हें इस संकल्प के परिशिष्ट 1 में उद्धृत किया गया है। कार्य–समिति को विश्वास है कि मिशन वार्ताओं के फलस्वरुप किन्हीं अंतिम निष्कर्षों पर पहुंचते समय, अनुसूचित जातियों को दी गई प्रतिज्ञाओं से विचलित नहीं होगा और किसी जल्दबाजी में फैसला नहीं लेते हुए, किसी अन्य दल को अनुसूचित जातियों को यह बताने की अनुमति नही देगा कि उन्हें कौन से रक्षोपाय दिए जाएं।

4. मिशन के उद्देश्यों से उत्पन्न होने वाले विभिन्न मुद्दों पर अपने विचार तय करने से पूर्व, कार्य–समिति विभिन्न प्रांतों में हाल ही में हुए प्रारंभिक चुनावी परिणामों पर मिशन का ध्यान आकर्षित करना चाहती है, विशेषकर इसलिए कि इन चुनावों के निष्कर्षों से यह सिद्ध हुआ है कि केवल अखिल भारतीय अनुसूचित जाति संघ ही एक ऐसा संगठन है, जो भारत की अनुसूचित जातियों की ओर से बोलने का दावा कर सकता है, और न तो कांग्रेस और न ही कोई अन्य छोटे–छोटे संगठन उनकी ओर से बात करने का अधिकार रखते हैं।

भाग–II

स्वतंत्र भारत के लिए अंतिम संविधान पर विचार–बिन्दु

5. स्वतंत्र भारत के अंतिम रूप से तैयार संविधान के संबंध में, फेडरेशन की कार्य–समिति मिशन को यह बताना चाहती है कि अनुसूचित जातियां ऐसा कोई संविधान कभी स्वीकार नहीं करेंगी जिसमें निम्नलिखित रक्षोपाय प्रदान न किए जाएं:

(i) सभी विधान मंडलों– केन्द्रीय और प्रान्तीय, में सही और पर्याप्त प्रतिनिधित्वय

(ii) सभी कार्य–पालिकाओं–केन्द्रीय और प्रान्तीय, में सही और पर्याप्त प्रतिनिधित्व;

(iii) अलग निर्वाचन–क्षेत्रों के माध्यम से निर्वाचनों का उपबंध;

(iv) लोक सेवाओं में पर्याप्त प्रतिनिधित्व;

(v) लोक सेवा आयोग–संघीय और प्रान्तीय, में पर्याप्त प्रतिनिधित्व;

(vi) प्रान्तीय और केन्द्रीय सरकार के वार्षिक बजटों में अनुसूचित जातियों की उच्चतर शिक्षा के लिए पर्याप्त राशि का उपबंध; और

(viii) नई और अलग बस्तियों का उपबंध।

6. किसी भी प्रकार से मिलने वाले किसी रक्षोपाय के महत्व और आवश्यकता को कम किए बिना, कार्य–समितिः

    (1) अलग निर्वाचन–क्षेत्रों के उपबंध, (2) विधायिकाओं, कार्य पालिकाओं में और सेवाओं में पर्याप्त प्रतिनिधित्व के उपबंधों, और (3) सर्वाधिक मौलिक अधिकार के रूप में नई और अलग बस्तियों का उपबंध।

7. अलग निर्वाचन क्षेत्रों के उपबंध के संबंध में, कार्य–समिति निम्नलिखित तथ्यों पर मिशन का ध्यान आकर्षित करना चाहती हैः–

    (i) यह मांग कोई नई मांग नहीं है। यह मांग गोल मेज सम्मेलन के दौरान भी अनुसूचित जाति के प्रतिनिधियों द्वारा रखी गई थी।

    (ii) गांधी जी ने इसका कड़ा विरोध किया था। किन्तु उनके विरोध के होते हुए भी, हिज मेजेस्टी की सरकार ने अनुसूचित जातियों के लिए अलग निर्वाचन क्षेत्रों पर सहमति की आवश्यकता महसूस की थी, और उसने 1932 के अपने कॉम्यूनल अवार्ड के द्वारा, अनुसूचित जातियों को अलग निर्वाचन क्षेत्रों का अधिकार दिया था।

    (iii) अलग निर्वाचन क्षेत्रों का उपबंध लागू होने से पहले गांधी जी ने घोषणा की कि यदि अनुसूचित जातियों को अलग निवार्चन क्षेत्रों का अधिकार वापस नहीं लिया गया तो वह आमरण अनशन करेंगे और जिसके कारण अनुसचित जातियों ने गांधी जी के आमरण–अनशन के दबाव में अपने अलग निर्वाचन क्षेत्र का अधिकार छोड़ दिया।

    (iii) कॉम्यूनल अवार्ड का स्थान लेने वाले पूना समझौते ने।

    (iv) अनुसूचित जातियों पर दो निर्वाचनों का भार डाल दियाः (क) प्रारंभिक, और (ख) अंतिम, जिसमें प्रारंभिक दौर का चुनाव अलग निर्वाचन क्षेत्रों के माध्यम से होना था, और

    (v) संयुक्त निर्वाचन क्षेत्रों में अनुसूचित जाति के मतदाताओं को कम संख्या में रखा, जो बड़ी संख्या में स्वर्ण हिंदू मतदाताओं की दया पर निर्भर थे।

    (vi) प्रारंभिक चुनावों की तुलना में, जिनका उल्लेख परिशिष्ट में किया गया है, अंतिम चुनावों के परिणामों ने निष्कर्षतः सिद्ध किया है कि संयुक्त चुनावों और आरक्षित सीटों की प्रणाली से विधान मंडल में अपना सच्चा प्रतिनिधि भेजने के लिए अनुसूचित जाति को मिले अधिकार की एक विडम्बना हुई है और उन्हें अपने साथ धोखा हुआ प्रतीत होता है।

8. यदि अनुसूचित जातियां प्रान्तीय विधान मंडलों में अपना एक भी ऐसा प्रतिनिधि नहीं भेज पातीं, जो अनुसूचित जातियों के मतों से चुना जाए और इस कारण उसे अनुसूचित जातियों का सच्चा प्रतिनिधि कहा जाता हो तो ऐसा संयुक्त निर्वाचन क्षेत्रों के कारण है, जहां अनुसूचित जातियों के लिए सींटें आरक्षित की गई हैं, वहां अनुसूचित जातियों और सवर्ण हिन्दुओं के बीच मतदाताओं की संख्या में बहुत अधिक विषमता के चलते अनुसूचित जातियों की दृष्टि में वह स्थान रॉटेन–बॉरो और सवर्ण हिन्दुओं की दृष्टि में पाकेट–बॉरो बन चुका है, जो अनुसूचित जाति के उम्मीदवारों को खड़ा करने में सक्षम हो चुके हैं, उन्हें अपने हाथों की कठपुतली बनाना चाहते हैं और संयुक्त निर्वाचन क्षेत्रों में विशेष रूप से सवर्ण हिन्दुओं के मतों के द्वारा उन्हें निर्वाचित करते हैं।

9. संयुक्त निर्वाचन क्षेत्रों की प्रणाली जो पहले अनुसूचित जातियों के मामले में होती थी, के संबंध में कड़वे अनुभव को देखते हुए, कार्य समिति मिशन को अनुसूचित जातियों के इस सुदृढ़ विश्वास के बारे में बताना चाहती है कि अलग निर्वाचन क्षेत्रों की बहाली परम आवश्यक हो चुकी है, क्योंकि उनका विश्वास है और यही सत्य भी है कि अलग निर्वाचन क्षेत्रों का स्वरूप ही अनुसूचित जातियों के संवैधानिक रक्षोपायों के लिए सवर्ण हिन्दुओं के वर्चस्व के विरुद्ध गारंटी है और यह कि अलग निर्वाचन क्षेत्रों के बिना अनुसूचित जातियां किसी भी राजनैतिक रक्षोपाय का लाभ नहीं उठा सकेंगी।

10. विधान मंडल कार्य पालिका और सेवाओं में अनुसूचित जातियों के पर्याप्त प्रतिनिधित्व के उपबंध के प्रश्न पर, कार्य–समिति सीधे तौर पर अनुसूचित जातियों को प्रायः सांकेतिक प्रतिनिधित्व दिए जाने के प्रस्ताव का विरोध करती है और अन्य अल्पसंख्यक जातियों को लाभ दिए जाने का कड़ा विरोध व्यक्त करती है, जो अनुसूचित जातियों का उचित अंश छीन तो नहीं सकतीं, किन्तु उससे वंचित तो कर सकती हैं। कार्य–समिति इस तथ्य पर जोर देना चाहती है कि अनुसूचित जातियां भारत के राष्ट्रीय जीवन में एक तीसरा महत्वपूर्ण अंश हैं और यह कि वे तब तक संतुष्ट नहीं होंगे, जब तक उनकी आवश्यकताओं और संख्या के अनुरुप उन्हें पर्याप्त प्रतिनिधित्व न दे दिया जाए।

कार्य–समिति को प्रसन्नता होगी यदि वह मिशन को अनुसूचित जातियों के उस खौफ से अवगत करा सके, जो उन्हें पुलिस और राजस्व सेवाओं के कर्मचारियों से है, क्योंकि वहां पूरी तरह सवर्ण हिन्दुओं का वर्चस्व है, जो ब्रिटिश सरकार के अधीन कार्यरत रह कर भी अनुसूचित जातियों को सता, दबा रहे हैं और उनसे भेदभाव करते हैं, साथ ही वे हिन्दुओं की बहुलता वाले विधान मंडल और कार्यपालिका से अपनी

अत्याचार और उत्पीड़न वाली गतिविधियों के लिए और समर्थन जुटा रहे हैं। जब तक विधान मंडल कार्य पालिका और लोक सेवाओं में अनुसूचित जातियों के पर्याप्त प्रतिनिधित्व का उपबंध नहीं किया जाएगा, क्योंकि वे एक अनुसूचित जाति विरोधी नीति वाले उदासीन विधान मंडल और हिंदू समर्थक कार्य पालिका से घिरे रहेंगे।

11. जहां तक अलग बस्तियां बसाने का प्रश्न है, कार्य–समिति की यह सुविचारित राय है कि:–

(क) वर्तमान ग्राम प्रणाली ने गांवों में रहने वाले अनुसूचित जाति के लोगों को हिंदू जाति का दास बना दिया है। और इस तथ्य के होते हुए भी कि दण्ड संहिता दास प्रथा को मान्यता नहीं देती पूरे भारत के प्रत्येक गांव में अनुसूचित जातियां ग्राम प्रणाली के फलस्वरुप, वास्तव में सवर्ण हिन्दुओं के दास हैं। वास्तव में, अछूतों को दास बनाए जाने का कोई और प्रभावी तरीका तक ईजाद नहीं किया जा सकता था।

(ख) वर्तमान ग्राम प्रणाली, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि कौन अछूत है और कौन नहीं, अस्पृश्यता को स्थायी बनाने कोई और प्रभावी तरीका अभी तक मिल नहीं सका है।

(ग) ग्राम प्रणाली के अंतर्गत............

(i) अनुसूचित जातियों को गांव के भीतर रहने की अनुमति नहीं होती। उन्हें बाहरी क्षेत्र में रहना होता है। उन्हें गांव के कुंए से पानी भरने की अनुमति नहीं होती। उन्हें अपने बच्चों को गांव के स्कूल में भेजने की अनुमति नहीं होती है। गांव का कोई भी नाई उनके बाल नहीं काटता। वे समाज से कटे होते हैं, उनका गांव के सवर्ण हिन्दुओं से किसी प्रकार का संपर्क नहीं होता।

(ii) उनके जीवन–यापन के लिए कोई स्वतंत्र माध्यम नहीं होता वे किसी भूमि के स्वामी नहीं होते। उन्हें आजादी से जीवन जीने के लिए आय का कोई साधन नहीं मिलता। उनके लिए केवल हिंदू उनसे कुछ खरीदारी नहीं कर सकता। उनमें से अधिकांशतः गांव में अपने हिंदू संरक्षकों से भोजन मांगकर गुजारा करते हैं। वे भूमिहीन मजदूरों का एक बड़ा वर्ग हैं, पूरी तरह से दबे–कुचले, वंशानुगत भिक्षुक बने रहने और अपने जीवन–यापन के लिए हिंदू भूस्वामियों द्वारा उनकी इच्छानुसार काम और इच्छानुसार मजदूरी पाने के लिए प्रतीक्षारत रहने वाला वर्ग है।

(iii) उन्हें हिंदू भूस्वामियों द्वारा अपने मकानों से निकाले जाने के डर से दिन–रात जबरन मजदूरी करनी पड़ती है, जो उन्हें सस्ते श्रम का माध्यम मानते हैं, इस कारण

वे सभी अनुसूचित जातियों के विरुद्ध एकजुट होने को सदा तैयार रहते हैं।

(iv) उन्हें पीढ़ी दर पीढ़ी दबा–कुचला, अपमानित और नीचता भरा जीवन जीना पड़ा है। यह एक अनन्त नरक वाली स्थिति है। वे साफ कपड़े नहीं पहन सकते, वे आभूषण नहीं पहन सकते, वे अच्छा भोजन नहीं कर सकते, वे किसी हिंदू की उपस्थिति में कुर्सी पर नहीं बैठ सकते और उन्हें हर गन्दा काम करना पड़ता है।

(v) ग्रामीण हिन्दुओं का अनुसूचित जातियों पर इतना अधिक दबदबा है और वह इतना गहरा बैठ चुका है, जैसा पिछले चुनाव से स्पष्ट है, कि अनुसूचित जाति के मतदाता, यदि हिंदू ग्रामीण पसंद न करें तो, अपनी पंसद के उम्मीदवार को अपना वोट तक नहीं दे सकते।

(vi) ग्रामीण प्रणाली ने अनुसूचित जातियों के लिए किसी भी प्रगति के विचार को इस हद तक असंभव बना दिया है कि हिंदू वर्ग सामाजिक बहिष्कार को सबसे विश्वसनीय हथियार के रुप में उपयोग करता है, जिसके सहारे वह सदैव अनुसूचित जातियों को धमकाता है, और उन्हें नीचा दिखाने तथा अनुसूचित जातियों के लाभ के लिए किसी भी ऐसी गतिविधि अथवा कार्य को रोकता है जिससे हिन्दुओं के हितों और हिंदू भावनाओं को ठेस पहुंचे।

12. जब तक यह ग्रामीण संगठन नहीं टूटेगा इसमें कोई संदेह नहीं है कि अनुसूचित जातियां अछूत बनी रहेंगी, सवर्णों के अत्याचार और उत्पीड़न जारी रहेंगे, वे एक स्वतंत्र, पूर्ण और सम्मानजनक जीवन नहीं जी सकेंगे। कार्य–समिति लंबे और बहुत विचार–विमर्श के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंची है कि सवर्ण हिन्दुओं, जो स्वराज के अंतर्गत काफी महत्ता पा सकते हैं और जो हिंदू राज का दूसरा नाम है, अत्याचार और उत्पीड़न से अनुसूचित जातियों के बेहतर संरक्षण के लिए और अनुसूचित जातियों को आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए ताकि वे अपने मानवीय मूल्यों का विकास कर सकें, साथ ही अस्पृश्यता को समाप्त करने का मार्ग प्रशस्त करने के लिए ग्राम प्रणाली में मूलभूत परिवर्तन लाना आवश्यक है, ताकि अनुसूचित जातियां उस वैमनस्य से मुक्त हो सकें जो वे हिन्दुओं के द्वारा अनेक शताब्दियों से सहन करते आ रही हैं। ग्राम प्रणाली में बदलाव की आवश्यकता को महसूस करते हुए, कार्य–समिति यह अभिनिर्धारित करती है कि भारत के संविधान में निम्नलिखित बातों के साथ उपबंध करना अनिवार्य है:–

(i) संविधान में अनुसूचित जातियों को उनके वर्तमान निवास–स्थानों से स्थानांतरित करके नए अनुसूचित जाति गांवों में, जो हिंदू गांवों से दूर और स्वतंत्र हों, भेजने का उपबंध किया जाना चाहिए।

(ii) अनुसूचित जातियों को नए गांवों में बसाने के लिए संविधान में एक बंदोबस्त आयोग स्थापित करने के लिए उपबंध किया जाना चाहिए।

(iii) समस्त सरकारी भूमि जो कृषि योग्य हो और जिस पर कब्जा न हो, आयोग को सौंपी जाए, जो अनुसूचित जातियों को बसाने के लिए नई बस्तियां बनाने हेतु उसे एक न्यास में धारित करेगा।

(iv) अनुसूचित जातियों को बसाने की स्कीम को पूरी तरह लागू करने के लिए आयोग को निजी भूस्वामियों से नई भूमि खरीदे जाने का अधिकार दिया जाना चाहिए।

(v) संविधान द्वारा केन्द्र सरकार पर यह बाध्यता डाली जानी चाहिए कि वह बंदोबस्त आयोग को प्रति वर्ष न्यूनतम पांच करोड़ रुपये की राशि प्रदान करे ताकि इस मामले में आयोग अपना कर्तव्य निभा सके।

भाग III

भारत और हिज मेजेस्टी की सरकार के बीच संधि

13. कार्य–समिति ने स्वतंत्र भारत और हिज मेजेस्टी की सरकार के बीच एक संधि का प्रस्ताव रखते हुए, अपनी सर्वश्रेष्ठ राय दी है। कार्य–समिति समझती है कि संधि का उद्देश्य अल्पसंख्यकों और उनके अन्य हितों को सुरक्षा प्रदान करना है जिनके संबंध में हिज मेजेस्टी की सरकार ने भारत सरकार की स्वतंत्रता के बाद भी प्रतिज्ञा की है। संधि के प्रस्ताव के आशय की सराहना करते हुए कार्य–समिति, यह समझ नहीं सकी है कि यह कैसे संभव होगा कि ऐसी कोई संधि संविधान से आगे बढ़कर कार्य कर सकती है, जबकि भारत एक मुक्त और स्वतंत्र देश बनने वाला है, और यदि संधि संविधान से शक्तिशाली नहीं हो सकती, तो क्या यह अल्पसंख्यकों और उनके अन्य हितों को सुरक्षा प्रदान करना है जिनके संबंध में हिज मेजेस्टी की सरकार ने भारत की स्वतंत्रता के बाद भी प्रतिज्ञा की है।

संधि के प्रस्ताव के आशय की सराहना करते हुए कार्य–समिति, यह समझ नहीं सकी है कि यह क्रैसे संभव होगा कि ऐसी कोई संधि संविधान से आगे बढ़कर कार्य कर सकती है, जबकि भारत एक मुक्त और स्वतंत्र देश बनने वाला है, और यदि संधि संविधान से शक्तिशाली नहीं हो सकती, तो क्या यह अल्पसंख्यकों के लिए अच्छी सिद्ध हो सकती है। कार्य–समिति इस निष्कर्ष पर पहुंची है कि अनुसूचित जातियां अपने संवैधानिक रक्षापायों को एक संधि के रुप में रखे जाने, जिसे लागू

करने की कोई बाध्यता नहीं हो की बजाय संविधान में इसका उल्लेख किए जाने को प्राथमिकता देगी।

भाग–IV

संविधान सभा

14. कार्य–समिति की निश्चित रूप से राय हैः–

(i) पूर्णतया संवैधानिक प्रश्नों पर विचार करने के लिए संविधान सभा अनावाश्यक और असक्षम है।

(ii) कि संविधान सभा सांप्रदायिक प्रश्नों पर विचार करने में अनुपयोगी सिद्ध होगी, क्योंकि कोई भी अल्पसंख्यक वर्ग बहुसंख्यक वर्ग का निर्णय मानने को तैयार नहीं होगा।

(iii) कि संविधान सभा से भ्रष्ट गतिविधियां बढ़ेंगी और यह मजबूत तथा समृद्ध दल को आजादी प्रदान करेगी कि वह अपने पक्ष में मतदान करने के लिए अनुसूचित जाति के सदस्यों को खरीद सके।

(iv) कि संविधान सभा में, अनुसूचित जाति के सदस्यों की संख्या पूर्णतया नगण्य हो जाएगी और इस प्रकार, वे इसके निर्णयों में अपना कोई प्रभाव नहीं रख सकेंगे। इन कारणों से, कार्य–समिति संविधान सभा के गठन की संभावना का विरोध करती है।

भाग–V

अतंरिम सरकार पर राय

15. अनुसूचित जातियों को कोई अंतरिम सरकार स्वीकार्य नहीं होगी जब तक निम्नलिखित पूर्व शर्तें पूरी नहीं की जाती।

(i) कि केंद्रीय विधान सभा में अनुसूचित जातियों को उचित प्रतिनिधित्व दिया जाए, जिसके लिए नामित अधिकारियों के समूह को समाप्त करके रिक्त हुई सीटों को पर्याप्त संख्या में अनुसूचित जाति के प्रतिनिधियों के नामांकन द्वारा भरा जाए।

(ii) कि कार्यकारी परिषद में अनुसूचित जाति के प्रतिनिधित्व का उपबंध किया जाए जिसमें उन्हें मुस्लिम प्रतिनिधियों की तुलना में कम से कम

उनकी आधी सीटें दी जाती हों।

(iii) कि भारत सरकार के 1943 के संकल्प में गर्वनर जनरल की सहमति के बिना लोक सेवाओं में अनुसूचित जातियों के प्रतिनिधित्व को लेकर ऐसा कोई परिवर्तन न किया जाए, जो अनुसूचित जाति को बुरी तरह प्रभावित करे।

(iv) कि अनुसूचित जातियों की उच्चतर शिक्षा के लिए भारत सरकार द्वारा किया गया वित्तीय उपबंध गर्वनर जनरल की सहमति के बिना रद्द अथवा अनुसूचित जाति को हानि पहुंचाने के लिए आशोधित न किया जाए।

(v) कि स्वतंत्र भारत के लिए अंतिम रुप से संविधान में अनुसूचित जातियों को रक्षोपाय प्रदान करने वाले सिद्धांत पार्टियों द्वारा अग्रिम रूप से स्वीकार किए जायें, जैसा कि लार्ड वावेल ने गांधी जी को लिखे अपने 15 अगस्त, 1944 के पत्र में उल्लेख किया था।

भाग–VI

पाकिस्तान पर राय

16. कार्य–समिति को पाकिस्तान की मांग के बारे में जानकारी है। इस मांग से उत्पन्न मुद्दों से अनुसूचित जातियां बहुत चिंतित हैं। तथापि, कार्य–समिति महसूस करती है कि इस स्तर पर अनुसूचित जातियों की राय को जाहिर करना उपयुक्त नहीं होगा, और वह अपने विचार तब तक आरक्षित रखना चाहती है जब तक यह मालूम न हो जाए कि अब इससे छुटकारा संभव नहीं है।

परिशिष्ट 1

प्रतिज्ञाएं और घोषणाएं

1. "लेखक कहते हैं कि दलित वर्गों को भी आत्म–रक्षा का सबक सीखना चाहिए। यह उम्मीद करना वास्तव में काल्पनिक होगा कि एक असेम्बली में जहां साठ या सत्तर सदस्य सवर्ण हिंदू हैं, वहां दलित समुदाय के एक सदस्य को शामिल करके ऐसा परिणाम प्राप्त किया जाए। रिपोर्ट के पैरा 51, 152, 154 और 155 के सिद्धांतों के बेहतर उपयोग के लिए हमें अनुसूचित जातियों से खुले मन से व्यवहार करना चाहिए। हमारा विचार है कि प्रत्येक परिषद में दलित वर्गों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व होना चाहिए ताकि उन्हें पूरी तरह समाहित होने से बचाया जा सके, और साथ

ही सामूहिक प्रयास के लिए उनकी संख्या वृद्धि के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। मद्रास के मामले में, हमारा सुझाव है कि उन्हें छह सींटे दी जानी चाहिए; बंगाल, संयुक्त प्रांतों तथा बिहार और उड़ीसा में हम उन्हें चार सीटें देंगे; मध्य प्रातों और बम्बई में दो और अन्य जगह एक सीट देंगे। इस संबंध में हमारा मत है कि समिति की रिपोर्ट में स्पष्ट आशोधन की आवश्यकता है।''

फ्रेन्चाइजी पर साउथबॉरो कमेटी की रिपोर्ट पर भारत सरकार की दिनांक 23 अप्रैल, 1919 को पांचवे डिस्पैच से उद्धरण।

2. हमें भारतीय एकता के हित में भारतीय राज्यों को किसी संवैधानिक योजना में शामिल करने की महत्वपूर्ण आवश्यकता को भूलना नहीं चाहिए।

मैं इनमें से केवल दो का उल्लेख करना चाहूंगा—बृहत्त मुस्लिम अल्पसंख्यक और अनुसूचित जाति————पूर्व समय में अल्पसंख्यकों को गारंटी दी गई हैं; कि उनकी स्थिति को सुरक्षा प्रदान की जाएगी और उन दी गई गारंटियों का सम्मान किया जाएगा। लॉर्ड लिनलिथगो द्वारा ओरिएंट क्लब, बम्बई में 10 जनवरी 1940 को दिए गए भाषण का उद्धरण।

3. दो बिन्दु मुख्य रुप से उभरे हैं। इन दो बिन्दुओं पर अब हिज़ मेजेस्टी की सरकार चाहती है कि मैं उनकी स्थिति को स्पष्ट करुं। पहला बिन्दु, भविष्य की किसी संवैधानिक स्कीम के संबंध में अल्पसंख्या कों की स्थिति को लेकर है.............

स्पष्ट है कि वे (हिज मेजेस्टी की सरकार) भारत की शांति और कल्याण हित्त के लिए अपनी वर्तमान जिम्मेदारियों को सरकार के की ऐसे तंत्र को सौंपने पर विचार नहीं कर सकती, जिसके प्राधिकार को प्रत्यक्ष तौर पर भारतीय जीवन में बड़ी संख्या बल और शक्तिशाली तत्वों द्वारा नकार दिया जाए। न ही वे ऐसे तत्वों को बलपूर्वक ऐसी सरकार के अधीन करने में भागीदार बन सकते हैं।

————लॉर्ड लिनलिथगो के 8 अगस्त, 1940 को दिए गए बयान से उद्धरण।

4. कांग्रेसी नेताओं.......ने एक उल्लेखनीय संगठन का निर्माण किया है, जो भारत में सर्वाधिक शक्तिशाली राजनीतिक तंत्र है..........यदि केवल वे ही सफल हुए होते, यदि कांग्रेस वास्तव में कहती, जैसा इसकी घोषणाओं में भारत की राष्ट्रीय जीवन धारा के समस्त मुख्य कारकों के बारे में कहा जाता है, तो उनकी मांगों में वृद्धि के होते हुए भी कई मामलों में हमारी समस्या आज की तुलना में कहीं आसान

होती। यह सत्य है कि संख्या की दृष्टि से वे ब्रिटिश भारत का सबसे बड़ा एकल दल है, किन्तु भारत का प्रतिनिधित्व करने के तथ्य के आलोक में उनका दावा भारत के जटिल जीवन में महत्वपूर्ण कारकों द्वारा पूरी तरह से अस्वीकार किया जाता है। ये अन्य कारक अपने अधिकार को दृढ़ता पूर्वक रखते हैं कि उन्हें अधिसंख्य अल्पसंख्यक न माना जाए बल्कि भविष्य की किसी भारतीय नीति में एक अलग सांविधानिक कारक माना जाए। इन कारकों में सबसे पहले वृहत्त मुस्लिम समुदाय आता है। उन्हें भौगोलिक निर्वाचन क्षेत्रों में बहुमत के वोट से चुनी गई संविधान सभा द्वारा बनाए गए संविधान से कुछ लेना–देना नहीं है। वे दावा करते है कि किसी भी सांविधानिक विचार–विमर्श के समय उन्हें केवल संख्यात्मक आधार पर बहुसंख्यक न मानकर उनके अस्तित्व को समझा जाए। यही सब उस अन्य महान निकाय पर भी लागू होता है, जिसे अनुसूचित जाति के रूप में जाना जाता है, जो उनकी ओर से गांधी जी के सतत् प्रयासों के बावजूद, यह महसूस करता है कि एक समुदाय के रूप में वे हिंदू समुदाय, जिनका कांग्रेस द्वारा प्रतिनिधित्व किया जाता है, के मुख्य निकाय से बाहर रहते हैं।

–––––मा.मि.एल.एस.एमरी, सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इंडिया द्वारा 14 अगस्त, 1940 को हाउस ऑफ कॉमन्स में दिए गए भाषण का उद्धरण।

(5) ''3. समस्त*............ कारणों की विस्तार में पुनरावृत्ति किए बिना मैं आपको याद दिलाना चाहूंगा कि हिज मेजेस्टी की सरकार ने *...............के समय स्पष्ट किया था;

(ख) कि विरोध समाप्त कर दिए जाने के बाद अनर्हित आजादी के उनके प्रस्ताव पर यह शर्त रखी गई थी कि भारतीय जीवन के हिज मेजेस्टी की सरकार के साथ आवश्यक संधि व्यवस्थाओं पर बातचीत की सहमति दी जाएगी।

कि विरोध अवधि के दौरान संविधान में कोई परिवर्तन करना असंभव है, जिसके द्वारा जैसा आपका सुझाव है, केवल ''राष्ट्रीय सरकार'' को सेंट्रल असेम्बली के लिए जिम्मेदार बनाया जा सकता है।

इन शर्तों का उद्देश्य यह सुनिश्वित करना था कि जातीय और धार्मिक अल्पसंख्यकों, दलित वर्गों के हितों और भारतीय राज्यों के साथ उनकी संधि की बाध्यताओं की रक्षा का उनका कर्तव्य पूरा होता हो।''

...लॉर्ड वॉवेल द्वारा 15 अगस्त, 1944 को गांधी जी को लिखे गए पत्र से उद्धरण।

परिशिष्ट II

निर्वाचन क्षेत्र	प्रारंभिक चुनाव		अंतिम चुनाव	
	कांग्रेस के उम्मीदवार के पक्ष में पड़े मत	फेडरेशन के उम्मीदवार के पक्ष में पड़े मत	कांग्रेस के उम्मीदवार के पक्ष में पड़े मत	फेडरेशन के उम्मीदवार के पक्ष में पड़े मत
I. बम्बई शहर				
1. बम्बई (परेल, भायखला)	2,096	11,096	43,456	39,498
2. बम्बई शहर (उत्तर और उपनगर)	2,088	12,899	59,646	42,510
II- मध्य प्रांत				
1. नागपुर–उमरे	270	1,933	अंतिम चुनावों के परिणाम उपलब्ध नहीं	
2. हिंगनघाट–वर्धा	342	1,339		
3. भांदरा–सकोली	976	3,187		
4. येवतमल–दखा	514	452		
III.पंजाब				
1. करनाल	519	1,691	गैर–कांग्रेस उम्मीदवार निविरोध चुना गया	
2. अंबाला–शिमला	1,392	6,509	10,503	7,533
3. होशियारपुर (प.)	641	6,577	16,307	19,134
4. जलंधर	775	7,750	18,018	21,476
5. लुधियाना–फिरोजपुर	812	5,986	24,352	आंकड़े उपलब्ध नहीं

परिशिष्ट – II – जारी

IV	मद्रास		प्रारंभिक चुनाव		अंतिम चुनाव	
		1	2	अन्य	1	2
1.	अमालापुरम	2,683	10,540	2,321		
2.	कोकोनाडा	1,411	7,590	–		
3.	बांदर	4,914	12,182	11,442		
4.	गुडप्पाह	3,482	1,360	–		
5.	पेनुकोण्डा	2,564	2,567	–		
6.	थिरुवन्नोमाला	1,960	1,874	–		
7.	टिंडीवानम	2,785	2,679	209	परिणाम ज्ञात नहीं	
8.	मन्नारगुडी	2,893	कोई उम्मीदवार	6,505		
			नहीं			
9.	पोलाची	2,430	791	337		
10.	नामाकल	2,336	2,069			

टिप्पणीः– प्रारंभिक चुनाव में एक मतदाता का केवल एक मत होता है, जबकि अंतिम चुनाव में एक मतदाता कई मत दे सकता है क्योंकि वहां कई सीटों पर चुनाव होते हैं। मद्रास प्रेसीडेंसी के सिवाय, जहां वितरण प्रणाली अनिवार्य है, अन्य सभी प्रांतों में मतदाता अपनी इच्छानुसार अपने मतों का वितरण करने के लिए स्वतंत्र है।

परिशिष्ट–III

बम्बई प्रांत में अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षित सीटों वाले निर्वाचन क्षेत्रों में सवर्ण हिन्दुओं के और अनुसूचित जाति के मतदाताओं की आनुपातिक संख्या

क्रम सं.	सामान्य निर्वाचन क्षेत्र का नाम	मतदाताओं की कुल संख्या	कुल सामान्य मतदाता	अनुसूचित जाति के कुल मतदाता
1.	बम्बई शहर उत्तर एवं बम्बई उपनगर जिले	2,10,268	1,67,002	34,266
2.	बम्बई शहर (पायखला और परेल)	1,70,511	1,52,991	28,520
3.	कैरा जित्मा	1,46,584	1,39,266	7,318
4.	सूरत जिला	90,435	85,670	4,765
5.	थाणे दक्षिण	72,416	67,749	4,667
6.	अहमदनगर दक्षिण	82,989	75,607	7,382
7.	पूर्व खानदेश पूर्व	1,01,486	91,377	10,109
8.	नासिक पश्चिम	1,11,969	99,271	12,698
9.	पुणे पश्चिम	11,368	77,389	13,979
10.	सतारा उत्तर	1105,352	94,200	11,152
11.	सोलापुर–पूर्वोत्तर	74,296	64,583	9,713
12.	बेलगाम–पूर्वोत्तर	97,725	79,422	18,303
13.	बीजापुर उत्तर	69,478	60,485	8,993
14.	कोलाबा जिला	1,07,638	1,02,637	5,001
15.	रत्नागिरी उत्तर	36,531	33,02	3,329

टिप्पणी:– उपर्युक्त तालिका में सामान्य मतदाता से अभिप्राय सवर्ण हिन्दुओं के मतदाता से है। इस तालिका में दिखाया गया है कि कैसे अनुसूचित जाति के मतदाता, बड़ी संख्या में सवर्ण हिन्दुओं के मतदाताओं की संख्या से कम हैं और अनुसूचित जाति के मतदाता संयुक्त चुनाव में अपनी संख्या के कम आरक्षित सीट पर कैसे नहीं जीत पाते हैं, भले ही अनुसूचित जाति का प्रत्येक मतदाता मत डालने आए। अन्य प्रांतों में भी बिल्कुल समान स्थिति है।

3

केबिनेट मिशन के साथ डॉ. अम्बेडकर का साक्षात्कार

केबिनेट मिशन द्वारा अखिल भारतीय अनुसूचित जाति संघ के एक प्रतिनिधि के रुप में डॉ. भीम राव अम्बेडकर का साक्षात्कार लिया गया इसी प्रकार बाबू जगजीवन राम, राधानाथदास और या पृथ्वी सिंह आजाद के साक्षात्कार अखिल भारतीय वर्ग संघ के सदस्य के रूप में लिये गये। –संपादक मंडल

"अनुसूचित जाति संघ की ओर से डॉ. अम्बेडकर का साक्षात्कार लिया गया था। संविधान सभा में अनुसूचित जाति के प्रतिनिधित्व के तरीके के बारे में की गई पूछताछ के उत्तर में उन्होंने कहा कि वे बिल्कुल नहीं चाहते कि संविधान सभा का गठन हो। इसमें सवर्ण हिन्दुओं का वर्चस्व रहेगा और अनुसूचित जाति केवल एक छोटा अल्पसंख्यक होकर रह जाएगी और सदैव मतों के आधार पर हारेगी। हिज मेजेस्टी की सरकार ने अल्पसंख्यकों को सुरक्षा के जो आश्वासन दिए थे, उन्हें बोर्ड द्वारा छोड़ दिया जाएगा।

उनका अपना प्रस्ताव यह था कि संविधान सभा के लिए निर्धारित कार्य दो श्रेणियों में बांट दिए जाएं, अर्थात्

(क) समुचित रुप से संवैधानिक प्रश्न कहे जाने वाले यथा विधायिका और कार्यपालिका के बीच संबंध और उनका गठन तथा संबंधित कार्य, और (ख) सांप्रदायिक प्रश्न। (क) के अंतर्गत आने वाले मामले कमीशन को निर्दिष्ट किए जाएं जिसकी अध्यक्षता ग्रेट ब्रिटेन अथवा अमेरिका के किसी प्रसिद्ध संवैधानिक अधिवक्ता द्वारा की जाए। अन्य सदस्यों में दो भारतीय विशेषज्ञ होने चाहिएं और हिंदू तथा मुस्लिम समुदायों से एक–एक प्रतिनिधि होना चाहिए। भारत शासन अधिनियम, 1935 विचारणीय मद होनी चाहिए और आयोग को यह सिफारिश करनी चाहिए कि विद्यमान अधिनियम में क्या–क्या बदलाव किए जाने चाहिए। मद (ख) के अंतर्गत मामले विभिन्न समुदायों के नेताओं के सम्मेलन को निर्दिष्ट किए जाने चाहिए। यदि सम्मेलन किसी सहमत हल पर नहीं पहुंच पाए तो हिज मेजेस्टी की सरकार को अपना अधिनिर्णय देना चाहिए।

डॉ. अम्बेडकर ने दावा किया कि भारत छोड़ने से पहले अंग्रेजों को सुनिश्चित करना चाहिए कि नए संविधान में अनुसूचित जातियों को जीवन के मौलिक मानवाधिकार, स्वतंत्रता और खुशी के अवसर, तथा उनके लिए अलग निर्वाचन क्षेत्रों की बहाली और उनकी मांग के अनुसार उन्हें अन्य रक्षोपाय प्रदान किए जाएं। सेक्रेटरी ऑफ स्टेट का सुझाव था कि भारतीय राजनीति पर दो मुद्दे हावी रहे हैं, एक तो ब्रिटिश राज से स्वतंत्रता प्राप्त करना और दूसरा हिन्दू–मुस्लिम समस्या। एक बार इन समस्याओं का हल हो जाने पर, दल संभवतः आर्थिक मामलों पर बंट जाएगा। निश्चित रूप से अनुसूचित जातियों को अपने अधिकार सुरक्षित कराने का एक बेहतर मौका मिलेगा कि वे अंग्रेजों पर विश्वास करने की बजाय, जो सत्ता हस्तांतरण करने वाले हैं, वाम पंथ के साथ रहें। डॉ. अम्बेडकर ने दोहराया कि जब तक संयुक्त निर्वाचन क्षेत्र रहेंगे, अनुसूचित जातियों के मतदाताओं की संख्या इतनी कम रहेगी कि हिंदू उम्मीदवार आराम से उनकी इच्छाओं को अनदेखा कर सकेंगे। सवर्ण हिंदू अनुसूचित जाति के उम्मीदवारों का कभी समर्थन नहीं करेंगे। अलग निर्वाचन क्षेत्र मौलिक अधिकार था, जिनके बिना अनुसूचित जातियों को कभी भी अपने स्वयं के प्रतिनिधि नहीं मिलेंगे।

1 भारत में सत्ता का हस्तातंरण, पृ. 243–44 कोटेड, खैरमॉडे जिल्द 8, पृ. 62–64, जगजीवन राम, राधानाथ दास और पृथ्वी सिंह आजाद के साक्षात्कारों के लिए परिशिष्ट सं. IV देखें।

4

डॉ. भीमराव अम्बडेकर और फील्ड मार्शल विस्काउंट वॉवेल के बीच बैठक पर टिप्पणी

डॉ. भीम राव अम्बेडकर ने अनुसूचित जाति संघ की नीति पर केबिनेट मिशन को 5 अप्रैल, 1946 को एक ज्ञापन सौंपा और उसी दिन दोपहर 12 बजे डॉ. भीम राव अम्बेडकर और फील्ड मार्शल विस्काउंट वॉवेल सहित केबिनेट मिशन के बीच एक बैठक हुई। बैठक के बाद एक टिप्पणी तैयार की गई, जो इस प्रकार है.....संपादक मंडल

अप्रकाशित

डॉ. अम्बेडकर ने अखिल भारतीय अनुसूचित जाति संघ और कार्य–समिति की 2 अप्रैल को आयोजित बैठक में इस पारित संकल्प की प्रति देते हुए कहा कि प्रतिनिधि मंडल को दी गई ज्ञापन की प्रतियों में उन्हें थोड़ा कुछ जोड़ना था।

इस ज्ञापन के पैरा 5 में निहित सूची में सरकारी और सार्वजनिक सेवाओं में अनुसूचित जाति के पर्याप्त प्रतिनिधित्व दिए जाने के लिए वृद्ध स्तर पर तैयार किए गए रक्षोपायों का उल्लेख है। संघ ऐसा कोई संविधान कभी भी स्वीकार नहीं करेगा। जिनमें इन्हें शामिल नहीं किया गया हो।

पाकिस्तान के प्रश्न पर, डॉ. अम्बेडकर ने शंका जताई कि क्या मुस्लिम समुदाय को नए देश से कुल मिलाकर वास्तव में लाभ होगा। उनमें से अनेक हिन्दुस्तान में रहना चाहेंगे और अनेक देश छोड़ने को अनिच्छुक अथवा असक्षम होंगे।

उन्होंने आश्चर्य जताया कि मुस्लिमों के संदर्भ में पाकिस्तान का रुख स्थायी था अथवा कामचलाऊ। काफी हद तक यह कामचलाऊ होगा। किंतु इस बारे में अधिक देर तक विचार करना असंभव था और मुस्लिम मांग इतनी अधिक बढ़ गई थी कि किसी रूप में उसे पूरा करना आवश्यक हो गया था। इस विषय पर अपनी पुस्तक में उन्होंने प्रस्ताव रखा था कि इस दुविधा को उस हल को अपनाते हुए सुलझाया जाना चाहिए, जो वर्ष 1920 में श्री अश्कीथ ने आयरिश समस्या के लिए खोजा था।

श्री अश्कीथ ने सुझाया था कि उल्सटर को शेष आयरलैण्ड से छह वर्ष के लिए अलग कर दिया जाए किन्तु इस अवधि के दौरान सामान्य हितों के मामलों का निबटाने के लिए देश के दोनों भागों के प्रतिनिधियों वाली एक परिषद गठित कर दी जाए। छठे वर्ष की समाप्ति के बाद उल्सटर को यह चुनना होगा कि क्या वह अलग रहना चाहेगा अथवा फिर से दक्षिण आयरलैण्ड के साथ मिल जाना चाहेगा। इसी प्रकार, डॉ.अम्बेडकर का प्रस्ताव था कि पाकिस्तान को दस वर्ष के लिए स्वतंत्रता दी जानी चाहिए, इस अवधि के बाद यह पता चल जाएगा कि क्या यह एक स्वस्थ प्रतिपादना थी। उन्होंने स्वीकार किया कि यदि उस समय पाकिस्तान के लोग हिन्दुस्तान में मिलना चाहेंगे तो वे बातचीत के लिए कमजोर स्थिति में होंगे और समस्त मजबूत पक्ष दूसरी ओर होगा। दस वर्ष की इस अवधि में एक सामान्य परिषद बनाई जा सकती है, किन्तु यह पूर्णतया परामर्शी होगी और इसे कोई कार्यपालक शक्तियां प्राप्त नहीं होगी। ऐसी कोई भी अखिल भारतीय केन्द्र सरकार, जिसे अपनी वर्तमान मनःस्थिति के चलते मुस्लिम लाने को सहमत हों, इतनी कमजोर होगी कि वह अनुपयोगी सिद्ध होगी। पाकिस्तान के लिए मुस्लिम मांग के अलावा अनेक अन्य प्रवृत्तियां काम कर रही थीं, और केवल एक शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार देश को एक साथ संभाल सकती थी।

संविधान सभा में अनुसूचित जातियों के प्रतिनिधित्व के तरीके पर पूछताछ के उत्तर में, डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि वे बिल्कुल नहीं चाहते कि संविधान सभा का गठन हो। इसमें सवर्ण हिन्दों का वर्चस्व रहेगा और अनुसूचित जाति के सदस्य केवल अल्पसंख्यक होकर रह जाएंगे और सदैव मतों के आधार पर हारेंगे, चाहे सभा के निर्णयों के लिए तीन–चौथाई अथवा दो–तिहाई बहुमत की ही आवश्यकता हो। हिज मेजेस्टी की सरकार ने अल्पसंख्यकों की सुरक्षा के लिए जो आश्वासन दिए थे, उन्हें बोर्ड द्वारा अनदेखा किया जाएगा। इसके अतिरिक्त, सभा के सदस्यों में इतना भ्रष्टाचार व्याप्त होगा कि वे अपने समुदायों के हितों के विरुद्ध मतदान करने लगेंगे।

उनका अपना यह प्रस्ताव था कि संविधान सभा के लिए निर्धारित कार्य दो श्रेणियों में बांट दिए जाएं, अर्थात्–

(क) समुचित रूप से संवैधानिक प्रश्न कहे जाने वाले यथा विधायिका और कार्य पालिका के बीच संबंध और उनका गठन तथा संबंधित कार्य। इन मामलों पर कोई ऐसा बड़ा विवाद नहीं था, जिसने कोई भावनाएं उत्पन्न नहीं कीं। उनके साथ काम करना उस व्यक्ति की बौद्धिक क्षमता से परे की बात थी, जिन्हें भेजने की प्रान्तीय सभाएं उम्मीद करती थी, और यह एक विशेषज्ञता वाला काम था।

(ख) सांप्रदायिक विवाद

प्रश्न शीर्षक के अंतर्गत प्रश्न आयोग को निर्दिष्ट किए जाने चाहिए जिसकी अध्यक्षता ग्रेट ब्रिटेन अथवा अमेरिका के किसी प्रतिक संवैधानिक अधिवक्ता द्वारा की जाए। अन्य सदस्यों में दो भारतीय विशेषज्ञ होने चाहिए और हिंदू तथा मुस्लिम समुदायों से एक–एक प्रतिनिधि होना चाहिए। भारत शासन अधिनियम, 1935 विचारणीय विषय होना चाहिए और आयोग क्या–क्या बदलाव किए जाए।

मद (ख) के अंतर्गत प्रश्न विभिन्न समुदायों के नेताओं वाले सम्मेलन को निर्दिष्ट की जाएं। यदि सम्मेलन किसी सहमत हल पर नहीं पहुंच सके, तो हिज मेजेस्टी की सरकार को अधि निर्णय देना होगा। यदि अधिनिर्णय युक्तियुक्त हों, तो इन्हें निसंदेह स्वीकार किया जाएगा।

डॉ. अम्बेडकर ने तब जाकर अनुसूचित जातियों की वर्तमान स्थिति का उल्लेख किया। यह अनुमान लगाया गया कि उनकी संख्या 6 करोड़ थी, यद्यपि यह संख्या संभवतः सही नहीं थी, क्योंकि सर्वप्रथम तो देश में कोई विश्वसनीय आंकड़े उपलब्ध नहीं थे, दूसरे जनगणना के कार्य को राजनीति के साथ मिला दिया गया। ये सभी व्यक्ति गंभीर अक्षमताओं के शिकार थे। गांवों में वे भूमिहीन थे और वास्तव में वहां वे सवर्ण हिन्दूओं के गुलाम थे। हिंदू शक्ति के उदाहरण के रुप में, उन्होंने बताया कि जब कुछ अछूत सेना प्राधिकारियों के अधीन अच्छा वेतन मिलने पर काम के लिए अपने गांवों से भाग लिए, तो सवर्ण हिन्दुओं के लोगों ने उन्हें जबरदस्ती वापस लाकर अपने कामों में लगा दिया। अधीनस्थ पुलिस और राजस्व सेवाओं में सवर्ण हिंदुओं के प्रभुत्व को देखते हुए, अछूतों की दृष्टि में सरकार भी ब्रिटिश नहीं बल्कि हिंदू थी। इसका एक हालिया उदाहरण बम्बई में गांधी जी पर पत्थर फेंके जाने पर उनके 100 लड़कों को गिरफ्तार किया जाना था, जबकि पुलिस ने भी अवसर पाकर शहर के अनुसूचित जाति वाले क्षेत्रों में पर्याप्त नुकसान किया था।

राजनीतिक तौर पर, यद्यपि अन्य जातियों के समान अनुसूचित जातियों को 1932 में अलग निर्वाचन क्षेत्रों का अधिकार दे दिया गया था, वस्तुतः उन्हें पूना समझौते के कारण उससे वंचित रखा गया था। इसकी बजाय उनके लिए दोहरी निर्वाचन प्रणाली लागू कर दी गई, जिसका अर्थ था कि दूसरे निर्वाचन में, जिसमें सभी हिंदू वोट डालते, सवर्ण हिंदू पहले चुनाव के परिणाम को जिसमें केवल अछूत ही मतदाता थे नाकारा बना सकते थे। उन्होंने कार्य–समिति के 2 अप्रैल के संकल्प में जोड़े गए आंकड़ों का हवाला दिया, जिसमें सबसे पहले यह दिखाया गया है कि कई मामलों में कांग्रेस के अनुसूचित जाति के उम्मीदवार, यद्यपि प्रारंभिक चुनावों में फेडरेशन के

उम्मीदवारों द्वारा पराजित कर दिए गए थे, अंतिम चुनावों में वे जीते थे और, दूसरे सामान्य जाति के मतदाताओं की संख्या की तुलना मे अनुसूचित जाति के मतदाताओं की संख्या कितनी कम थी। तो भी, अपने उम्मीदवारों की जीत सुनिश्चित करने के लिए कांग्रेस ने लूटपाट और आगजनी जारी रखी; कांग्रेस ने क्या–क्या किया यह दिखाने के लिए उन्होंने अनेक फोटो प्रस्तुत किए।

केंद्रीय विधान मंडल का अस्तित्व 1919 से है, किन्तु अनुसूचित जाति की सहायता के उद्देश्य से कभी कोई प्रश्न नहीं पूछा गया, कभी कोई संकल्प नहीं रखा गया और न ही ऐसा अन्य कोई कार्य किया गया।

अनुसूचित जातियों की स्थिति विशेषकर भारत के राज्यों में खराब थी। यहां तक कि कुछ ऐसी खाद्य सामग्रियां थी, जिन्हें खाने की उन्हें अनुमति तक नहीं थी। प्रतिनिधित्व रखने वाले संस्थानों, जो अब कुछ राज्यों में स्थापित हो रहे थे, मुस्लिमों के अलावा किसी अन्य जाति को अलग प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया था। राजनीतिक विभाग को इन संवैधानिक परीक्षणों में बहुत रुचि दिखानी चाहिए थी और यह देखना चाहिए था कि अनुसूचित जातियों को अलग निर्वाचन क्षेत्र दिए जाएं। प्रतिनिधि मंडल को अखिल भारतीय अनुसूचित जाति राज्य सम्मेलन के अध्यक्ष से मिलना चाहिए।

अनुसूचित जातियां ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना की जन–शक्ति की प्रारंभ से ही स्रोत रहीं है, और उनकी सहायता से ही अंग्रेज भारत को फतह कर सके थे। तभी से अंग्रेजों के मित्र रहे हैं। फिर भी अंग्रेजों ने कभी भी अपने होशो–हवास में और जानबूझ कर उनकी मदद नहीं की, जबकि 1892 से उन्होंने मुस्लिमों की बहुत मदद की थी।

उनका विचार था कि यदि भारत स्वतंत्र हो जाता है तो यह एक बहुत बड़ी आपदा जैसा होगा। भारत छोड़ने से पूर्व अंग्रेजों को सुनिश्चित करना चाहिए कि नए संविधान में अनुसूचित जातियों को जीवन के मौलिक मानवाधिकार, स्वतंत्रता और खुशी और के अवसर, तथा उनके लिए अलग निर्वाचन क्षेत्रों की बहाली की गारंटी और उनकी मांग पर उन्हें अन्य रक्षोपाय प्रदान किए जाएं। इस समय उनका अनुसरण करने वाले मायाजाल से मुक्त होकर होकर आंतकवाद और सांप्रदायिकता की ओर रुख कर रहे थे। वह संविधानिक तरीकों की प्रभावोत्पादकता के लिए उनके साथ विचारण पर थे।

लॉर्ड पेथिक लॉरेन्स ने कहा कि भारतीय राजनीति पर दो मुद्दे हावी रहे हैं, एक तो अंग्रेजी शासन से स्वतंत्रता प्राप्त करना और दूसरा हिंदू–मुस्लिम समस्या। एक बार इन समस्याओं का हल हो जाने पर, दल संभवतः आर्थिक मामलों पर बंट जाएगा। निश्चित रुप से अनुसूचित जातियों को अपने अधिकार सुरक्षित कराने का

एक बेहतर मौका मिलेगा कि वे अंग्रेजों पर विश्वास करने की बजाय, जो शक्ति हस्तांतरण करने वाले थे, शांत होकर वाम पंथ के साथ जुड़े। इसके उत्तर में डॉ. अम्बेडकर ने दोहराया कि जब तक संयुक्त निर्वाचन क्षेत्र रहेंगे, अनुसूचित जातियों के मतदाताओं की संख्या इतनी कम रहेगी कि हिंदू उम्मीदवार आराम से उनकी इच्छाओं को अनदेखा कर सकेंगे। सवर्ण हिंदू, अनुसूचित जाति के उम्मीदवारों का कभी समर्थन नहीं करेंगे। स्वीकृत रूप से, वर्तमान प्रणाली के अधीन अंतिम निर्वाचनों में उन्हें अछूतों के लिए मतदान करना होता था; किंतु ऐसा करने में उनका उद्देश्य कभी भी अपने उम्मीदवार का पक्ष लेनें का नहीं होता था बल्कि अपने संघ द्वारा खड़े किए गए उम्मीदवार को मात्र हराना होता था। अलग निर्वाचन क्षेत्र मौलिक अधिकार था, जिनके बिना अनुसूचित जातियों को कभी भी अपने स्वयं के प्रतिनिधि नहीं मिलते।

सत्ता का हस्तांतरण, जिल्द VII, सं. 58, पृ. 144–147

5

अछूतों के लिए पृथक बस्तियां

डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने केबिनेट मिशन को एक ज्ञापन सौपा जिसमें अछूतों के लिए अलग गांव बसाने की मांग की गई थी। प्रेस को दिए अपने साक्षात्कार में उन्होंने इस विषय पर अपने विचार स्पष्ट किए——————संपादक मंडल

"अनुसूचित जातियों के लिए अलग गांवों की मांग करना किसी दल के अधिकारों पर अतिक्रमण करना नहीं था, ये विचार एक साक्षात्कार में डॉ. भीम राव अम्बेडकर, श्रम सदस्य, भारत सरकार द्वारा व्यक्त किए गए थे।

डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि देश में खेती योग्य भूमि का बहुत बड़ा भाग काश्तकारी के बिना बेकार पड़ा है, जिसका उपयोग अनुसूचित जातियों को बसाने के लिए किया जा सकता है। इस प्रस्ताव को लागू करने के लिए सरकार एक न्यास बना सकती है।

उनके विचार में, आपत्ति केवल उनकी ओर से आएगी, जो अनुसूचित जातियों को श्रम के स्रोत के रुप में उपयोग करने के आदी थे, क्योंकि ये श्रमिक समस्त गंदे काम करने के लिए उपलब्ध होते थे और जिन्हें सस्ती मजदूरी देकर काम करने पर मजबूर किया जा सकता था। वे इस दासता से मुक्त होना चाहेंगे क्योंकि बंबई और मद्रास जैसे प्रांतों में अनुसूचित जातियों को असहनीय परिस्थितियों में रहना पड़ता है, अतः उनके लिए अलग गांवों का होना आवश्यक था।

डॉ. अम्बेडकर ने स्पष्ट किया कि गांवों के समाज की आर्थिक इकाई न होकर एक सामाजिक इकाई होने के कारण, इन अलग गांवों से किसी आर्थिक अवरोध जैसा डर नहीं था। इन क्षेत्रों के उत्पाद अन्य स्थानों पर जाने पर उन्हें सहर्ष स्वीकार किया जाएगा।

यह पूछे जाने पर कि क्या यह मांग पाकिस्तान के क्षेत्रों पर भी लागू होगी, डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि यह लागू होगी। इस समय पाकिस्तान के बारे में कोई

ठोस योजना नहीं है। अलग गांव स्थापित करने का प्रश्न तभी उठेगा, जब कोई ठोस योजना बनेगी।

उन्होंने कहा कि अनुसूचित जातियों की स्थिति दक्षिण अफ्रीका में बन्टू और अन्य जनजातियों के समरुप थी। उन्हें ऐसा कुछ प्रतीत नहीं होता कि अनुसूचित जातियों के हितों की रक्षा के लिए भविष्य के भारतीय संविधान में ऐसे उपबंध क्यों नहीं किए जाएं, जैसा बन्टूस के मामले में दक्षिण अफ्रीकी संविधान में व्यवस्था की गई है——————

ए.पी.आई.

6

1 जय भीमः 7 मई, 1946

केबिनेट मिशन के प्रस्तावों के विरुद्ध विरोध पत्र

भीमराव अम्बेडकर

एम.पी.एच.डी., डी.एस.सी.

बेरिस्टर–एट–लॉ,

सदस्य, गवर्नर कार्यकारी परिषद।

22, पृथ्वी राज रोड,

नई दिल्ली

दिनांक 3 मई, 1946

प्रिय लार्ड वॉवेल,

केबिनेट मिशन की आरे से शिमला में आयोजित अपने सम्मेलन में अनुसूचित जाति के प्रतिनिधि को आमंत्रित नहीं किए जाने की भूल ने अनुसूचित जातियों के मस्तिष्क में ऐसी अनेक शंकाएं पैदा कर दी हैं कि उनकी संवैधानिक सुरक्षा की मांग के निपटान के लिए केबिनेट मिशन कैसे प्रस्ताव प्रस्तुत करती है। चूंकि स्थिति संवेदनशील है, मैं इस संबंध में आपको अनुसूचित जाति की प्रतिक्रियाओं से अवगत करना चाहता हूं।

शिमला सम्मेलन में अनुसूचित जाति के प्रतिनिधि को आमंत्रित नहीं करने की भूल के लिए अनेक स्पष्टीकरण दिए जा सकते हैं। मेरी दृष्टि में एक सुखद स्पष्टीकरण यह प्रतीत होता है कि अनुसूचित जातियों की मांगें ऐसी हैं कि उन्हें अन्य दलों की सहमति की आवश्यकता नहीं है, जब तक कि वे उनके न्यायिक अधिकारों पर कोई हमला न कर दें। यह वस्तुतः उनकी कम से कम तीन मांगों के संबंध में है, अर्थात् (1) पृथक निर्वाचन क्षेत्र, (2) केंद्रीय कार्य पालिका में समुचित प्रतिनिधित्व, और (3) भविष्य के संविधान में अनुसूचित जातियों के हितों के रक्षोपायों के संबंध में कुछ सामान्य सिद्धांत स्वीकार करने के लिए दलों से एक अंतरिम सरकार के लिए पूर्व शर्त के रूप में वचन बद्धता।

यह कि अनुसूचित जातियों की मांगों के लिए अन्य दलों की सहमति का अपेक्षित न होना एक ऐसा विचार है जिसे मैंने मिशन के समक्ष अपने 5 अप्रैल, 1946 को दिए गए साक्षात्कार में बड़े सशक्त ढंग से रखा था।

एक बहुसंख्यक समुदाय द्वारा अलग निर्वाचन क्षेत्रों की मांग, जैसा पंजाब, उत्तर

पश्चिम सीमांत प्रांत, सिंध और बंगाल में मुस्लिमों के मामले में है की तुलना में एक अल्पसंख्यक समुदाय जैसे अनुसूचित जाति, द्वारा अलग निर्वाचन क्षेत्रों की मांग का आधार है। एक बहुसंख्यक समुदाय द्वारा अलग निर्वाचन क्षेत्रों की मांग के लिए अल्पसंख्यक समुदाय की सहमति आवश्यक होती है। किन्तु किसी अल्पसंख्यक समुदाय द्वारा अलग निर्वाचन क्षेत्रों की मांग बहुसंख्यक समुदाय की इच्छा पर निर्भर नहीं हो सकती। निर्वाचन क्षेत्र प्रमुख रूप से अल्पसंख्यकों को बहुसंख्यकों से सुरक्षा प्रदान करने के लिए बनाया गया एक तंत्र है। अतः निर्वाचन क्षेत्र संयुक्त हो या पृथक पूर्णतः अल्पसंख्यकों पर छोड़ देना चाहिए, ताकि अल्पसंख्यक यह जान सकें कि उनके हित के लिए क्या अच्छा है। बहुसंख्यक इस मामले में कुछ नहीं कह सकते और उन्हें वास्तव में अल्पसंख्यकों का निर्णय स्वीकार करना चाहिए। इसके अनुपालन में, हिन्दुओं के पास कहने को कुछ अधिक नहीं है कि क्या अनुसूचित जातियों के लिए अलग निर्वाचन क्षेत्र होने चाहिए अथवा नहीं।

अलग निर्वाचन क्षेत्रों की अनुसूचित जातियों की मांग किसी अन्य समुदाय पर विपरीत प्रभाव नहीं डालती, यहां तक कि हिन्दुओं पर भी नहीं इसीलिए यह मांग अन्य सभी समुदायों को स्वीकार्य है। हिन्दुओं की यह राय की अनुसूचित जातियां हिंदू हैं और इसलिए उन्हें अलग निर्वाचन क्षेत्र नहीं मिलने चाहिए, साधारणतया धर्मवादी सोच है और यह आवश्यक मुद्दा नहीं है कि पृथक निर्वाचन क्षेत्र अल्पसंख्यकों की सुरक्षा के लिए वस्तुतः एक तंत्र है और इसका धर्म से कोई लेना–देना नहीं है। यदि इसके किसी साक्ष्य की आवश्यकता है तो यूरोपीय, एंग्लो–इंडियन और इंडियन क्रिश्चियन के मामले देखे जा सकते हैं, जो सभी धर्म के मामले में तो एक हैं, किन्तु उनके निर्वाचन क्षेत्र अलग–अलग हैं।

यदि केबिनेट मिशन इन तथ्यों तथा तर्कों पर विचार करे तो इसमें कुछ भी अस्वाभाविक नहीं होगा कि अनुसूचित जातियों की यह राय स्वीकार कर ली जाए कि हिन्दुओं की सहमति आवश्यक नहीं है, और इस मामले में पूरी तरह केबिनेट मिशन को निर्णय करना है, विशेषकर तब, जबकि यह सिद्ध हो चुका है कि संयुक्त निर्वाचन क्षेत्रों ने अनुसूचित जातियों की मांग को मज़ाक बना दिया है।

अनुसूचित जातियों की दूसरी मांग कि अंतरिम सरकार में उनका प्रतिनिधित्व मुस्लिमों को दिए गए प्रतिनिधित्व के 50 प्रतिशत के बराबर किया जाना चाहिए, एक ऐसी मांग है जिसे लागू करने से पूर्व हिन्दुओं की सहमति लेना आवश्यक नहीं है। अनुसूचित जातियों की संख्या और उनकी अक्षमताओं को देखते हुए और स्वयं को अन्य विकसित समुदायों के समकक्ष लाने के लिए वे क्या प्रयास करते हैं, यह देखते

हुए, मिशन को यह निर्णय लेना है कि केन्द्रीय कार्य पालिका में अनुसूचित जातियों को कितना प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए। आपको याद होगा कि मैंने पिछले शिमला सम्मेलन के दौरान यह प्रश्न उठाया था और आप अनुसूचित जातियों को दो सीट देने के लिये तैयार थे जो मुस्लिमों के 50 प्रतिशत से थोड़ी कम थीं।

तीसरी मांग कोई नई नहीं है। इसमें आपकी उस राय को मात्र दोहराया गया है जो आपने अपने 15 अगस्त, 1944 के पत्र में गांधी जी को जाहिर की थी। उक्त पत्र के पैरा 5 में आपने कहा था——————

"इन परिस्थितियों में यह स्पष्ट है कि आपने जो आधार सुझाया है उस पर विचार करने से किसी उद्देश्य की प्राप्ति नहीं होगी। हालांकि, यदि हिंदू, मुस्लिम और अन्य महत्वपूर्ण अल्पसंख्यक समुदायों के नेता सांक्रांतिक सरकार में सहयोग करने और वर्तमान संविधान के अंतर्गत कार्य करने के इच्छुक हों तो मेरा विश्वास है कि इस संबध में अच्छी प्रगति हो सकती है। ऐसी सांक्रतिक सरकार की सफलता के लिए, इसके गठन से पूर्व, सिद्धांतों के संबंध में हिन्दुओं और मुस्लिमों तथा सभी महत्वपूर्ण तत्वों के बीच समझौता होना चाहिए कि किस तरीके से नया संविधान बनाया जाना चाहिए।"

आपने जिस सिद्दांत का उल्लेख किया है, वह हिज मेजेस्टी की सरकार द्वारा बनाया गया प्रतीत होता है और इसीलिए यह केबिनेट मिशन पर बाध्यकारी होना चाहिए। इस सिद्धांत को जो अनुसूचित जातियों द्वारा की गई मांगें हैं, लागू करने के लिए मिशन को दलों की सहमति लेना अनावश्यक प्रतीत होता है।

यदि अनुमति हो तो मैं बताना चाहूंगा कि यह निष्कर्ष निकालने के पर्याप्त आधार हैं कि मिशन यह नहीं सोचता कि अनुसूचित जातियों की मांगों पर निर्णय लेने से पहले हिन्दुओं की सहमति लेना आवश्यक है और इसीलिए अनुसूचित जातियों को शिमला सम्मेलन में अपने प्रतिनिधि भिजवाने के लिए आमंत्रित नहीं किया गया है।

किन्तु दुर्भाग्यवश मस्तिष्क में आने वाला केवल यही अकेला स्पष्टीकरण नहीं है। इसका अन्य स्पष्टीकरण भी संभव है। इसमें केबिनेट मिशन अंतरिम संविधान के गठन के लिए कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच हुए समझौते को मंजूरी देने के साथ–साथ अनुसूचित जातियों के मामले में विचार किए बिना इन्हें भविष्य के भारतीय संविधान का स्वरुप तय करने के लिए एक पर्याप्त तंत्र माने जाने का भी सम्मान करता है।

अनुसूचित जातियों में बेचैनी है, क्योंकि निश्चित रूप से वे नहीं जानते कि

मिशन की क्या योजना है। यदि मिशन दूसरी योजना अपनाता है, तो इस तथ्य पर मैं समझता हूं कि यदि मैं अनुसूचित जातियों के साथ हुए विश्वासघात के विरोध में अपना विरोध दर्ज नहीं कराता हूं और मिशन को यह सूचित नहीं करता हूं कि वे भविष्य में सामने आने वाले परिणामों के लिए पूर्णतः जिम्मेदार होंगे तो मैं अपना कर्तव्य निबाहने में असफल रहूंगा।

यह पत्र मैं अनुसूचित जातियों के प्रतिनिधि की हैसियत से लिख रहा हूं। यह पत्र मैंने आपको केबिनेट मिशन के सदस्य होने के नाते लिखा है। यदि आप इसे अपने सहयोगियों को परिचालित कर सकें तो मैं अभारी रहूंगा।

आपका,

भीम राव अम्बेडकर

माननीय फील्ड मार्शल

मान्यवर विस्काउंट वॉवेल ऑफ

सिरेनाइका एंड विनचेस्टर, शिमला

जी.सी.वी., जी.एम.एस.आई.ई.

सी.एम.जी., एम.सी.

वायसराय एवं गर्वनर जनरल ऑफ इंडिया

7
केबिनेट मिशन के प्रस्तावों के संबंध में ए.वी.अलेक्जेंडर को पत्र

भीम राव अम्बेडकर

एम.ए.पीएच.डी., डी.साइंस, बैरिस्टर–एट–लॉ,

सदस्य, गवर्नर जनरल कार्यकारी परिषद

22, पृथ्वी राज रोड,

नई दिल्ली

दिनांक 14 मई, 1946

प्रिय मि. एलेक्जेंडर,

दुख का विषय है कि कांग्रेस और लीग के बीच समझौता कराने के आपके प्रयास विफल हुए हैं। मैं जानता हूं कि आप सहानुभूति और कृतज्ञता के पात्र हैं। साथ ही, समझौते के प्रयास के लिए मिशन के प्रयास से मुझे उस बूढ़े बनिये की कहानी याद आ गई है, जिसके कोई बेटा नहीं था और उसने अपनी संपत्ति के वारिस की चाह में एक युवा लड़की से विवाह किया था। दुल्हन गर्भवती हो गई, किन्तु दुल्हा गंभीर रूप से बीमार पड़ गया। तथापि, वह बच्चे की शक्ल देखे बिना मरना नहीं चाहता था और उसके जन्म की प्रतीक्षा भी नहीं कर सकता था, क्योंकि उसमें अभी काफी समय था। वह इतना व्यग्र हो उठा कि उसने डॉक्टर को बुलवाया और अपनी पत्नी का पेट चीर देने को कहा, ताकि वह देख सके कि बच्चा लड़का है या लड़की। आपरेशन के परिणामस्वरुप बच्चे और मां दोनों की मृत्यु हो गई। यदि अनुमति हो, तो मैं कहना चाहूंगा कि मिशन वैसा ही करना चाहता था, जैसा उस बनिये ने किया। आपको शायद ज्ञात न हो, मेरी तरह, कई अन्य महसूस करते हैं कि मिशन गर्भाधान की प्राकृतिक अवधि से पहले ही जबरदस्ती डिलीवरी कराना चाहता था।

2. मैं सोचता हूं कि यह कहना ही उचित है कि इस समय हिंदू और मुस्लिम देश के भाग्य निर्धारण के लिए मानसिक तौर पर अक्षम हैं। हिंदू और मुस्लिम दोनों एक भीड़ की तरह हैं। आपको अनुभव होगा कि भीड़ किसी भौतिक लाभ के कारण आगे नहीं बढ़ती, एक सामूहिक आवेश उसे आगे बढ़ाता है। मनुष्यों के किसी समूह को कुर्बानी के लिए राजी करना, किसी लाभ को गिनाने की अपेक्षाकृत अधिक आसान है। भीड़ असानी से लाभ और हानि को भूलती है, भीड़ के उद्देश्य महान या निम्न हो सकते हैं, सामाजिक अथवा बर्बर, करुण अथवा क्रूर भी, किन्तु सदैव विवेक से इसका कोई वास्ता नहीं होता। सामूहिक भावनाओं में बहकर व्यक्ति अपना सोचना–समझना भूल जाता है। भीड़ को अपनी विरासत स्वीकार करने के लिए तैयार करने की बजाय आत्महत्या के लिए उकसाना अधिक आसान है। मैं आपको सलाह नहीं दूंगा कि आपको कैसे आगे बढ़ना चाहिए। मिशन को भंगी बस्ती और 10, औरगंजेब रोड में जाकर अधिक विवेक और अधिक प्रेरणा मिली है। मै संभवतः ऐसा अंतिम व्यक्ति हूं, जो उक्त विवेक और प्रेरणा के ह्रास के बारे में कुछ कहना चाहता है। किन्तु मैं सोचता हूं कि यदि मिशन ने आयरिश होम रुल के लिए अपने अभियान में लगे ग्लेडस्टोन के लिए चैम्बरलिन द्वारा उपयोग की गई कहावत अनुसार जल्दबाजी में जा रहे बढ़े की करुण ऐनक के समान स्थिति नहीं दिखाई थी और वह डिप्लोमेसी में, जिसे 'कूलिंग पीरियड' कहा जाता है की अनुमति देता है, तो वे पाएंगे कि उनके सामने एक आसान स्थिति है।

3. मिशन प्रमुख दलों और उनके लिए यह एक मुद्दा है, जो प्रमुख दलों में विश्वास रखते हैं।

मैं यह जानने के लिए चिंतित हूं कि अछूतों की समस्या और उनके संवैधानिक रक्षोपायों की मांग को आप कैसे हल करेंगे।

शिमला वार्ता के अंतिम दिन मिशन द्वारा जारी आधिकारिक बयान में यह कहा गया है कि दिल्ली लौटने के बाद कुछ दिनों के भीतर मिशन अपने प्रस्तावित अगले कदम की घोषणा करेगा। वास्तव में, सभी अनुसूचित जाति वर्गों की आंखें इस घोषणा की ओर लगी हैं। मिशन क्या कदम उठाएगा, वहीं उनका भाग्य तय करेगा। मिशन का निर्णय या तो अछूतों के लिए प्रगति, स्वतंत्रता और खुशियों का मार्ग प्रशस्त करेगा अथवा उनके ताबूत में एक कील का काम करेगा। जीवन और मृत्यु का प्रश्न होने के नाते यह अनुचित न होगा कि मैं कुछ क्षणों के लिए आपका ध्यान अछूतों की समस्या की ओर आकर्षित कर सकूं।

4. अछूत जिस समस्या का सामना कर रहे हैं वह बहुत उग्र रूप धारण कर

चुकी है। किन्तु भाग्यवं?श यदि निम्नलिखित तथ्यों को ध्यान में रखा जाए तो इसे समझना आसान है। अछूत चारों ओर से एक बड़ी हिंदू जनसंख्या से घिरे हुए हैं जो उनके विरुद्ध है और जिन्हें उनके विरुद्ध भेदभाव और क्रूर व्यवहार करने में कोई लज्जा नहीं होती। इन बुराइयों, जो रोजाना की बात है, के हल के लिए अछूतों के प्रशासन की सहायता की मांग करनी होगी। इस प्रशासन का स्वभाव और गठन किस प्रकार का है? संक्षेप में, भारत में प्रशासन पूरी तरह से हिंदुओं के हाथ में है। यह उनका एकाधिकार है। ऊपर से नीचे तक सभी कुछ उनके द्वारा नियंत्रित है। ऐसा कोई विभाग नहीं है जहां इनका दबदबा नहीं है। पुलिस, मेजिस्ट्रेसी और राजस्व सेवाओं में वास्तव में किसी भी और प्रशासन की प्रत्येक शाखा में इनका दबदबा है। अगली याद रखने लायक बात यह है कि प्रशासन में शामिल हिंदू केवल गैर–सामाजिक ही नहीं, वास्तव में वे अछूतों के प्रति असामाजिक और शत्रुभाव रखते हैं। अछूतों के प्रति भेदभाव बरतना और उन्हें न केवल कानूनी सुविधाएं दिए जाने से मना करना और वंचित रखना, किन्तु साथ ही उन्हें अन्याय और उत्पीड़न के विरुद्ध बने कानूनों का संरक्षण प्रदान न करना ही उनका उद्देश्यक है। परिणाम यह है कि अछूत, हिंदू जनसंख्या और हिंदू–आधारित प्रशासन के बीच घिर गए हैं, एक उनके विरुद्ध अत्याचार करता है और दूसरा पीड़ितों की बजाय गलती करने वालों को सुरक्षा प्रदान करता है।

5. इस पृष्ठभूमि में अछूतों के लिए कांग्रेस के स्वराज का क्या अर्थ हो सकता है। इसका केवल एक ही अर्थ हो सकता है, जबकि आज समस्त प्रशासन हिन्दुओं के हाथ में है, स्वराज के अंतर्गत विधायिका और कार्यपालिका में भी हिंदू ही भर जायेंगे। यह कहना अनुचित न होगा कि स्वराज में अछूतों की कठिनाइयां और बढ़ जाएंगी। इसके अतिरिक्त उन्हें अपने विरोधी या उदासीन विधायिका, एक कड़ी कार्यपालिका और अछूतों के प्रति अनियंत्रित और असभ्य तथा व्यवहारिक रूप से कठोर प्रशासन का सामना करना पड़ेगा। कांग्रेस के स्वराज में यदि अन्य दृष्टि से देखें तो, अछूतों का उस अमाननीय उत्पीडन से छुटकारा संभव नहीं है, जो हिन्दुओं और हिन्दुत्व ने उनके लिए निर्धारित किया हुआ है।

6. मैं आशा करता हूं कि इससे आपको कुछ पता लग सकेगा कि अछूत क्यों इस बात पर जोर दे रहे हैं कि केवल एक ही ऐसा उपाय है जिससे अछूत इस स्वराज को अपने लिए आपदा बनने से रोक सकते हैं, कि विधायिका में उनके प्रतिनिधि हो ताकि वे हिन्दुओं द्वारा अपने प्रति किए जाने वाले गलत कार्यों और अन्याय का विरोध जारी रख सकें, कार्यपालिका में अछूतों के अपने प्रतिनिधि हों ताकि वे अपनी बेहतरी की योजनाएं तैयार करवा सकें और सेवाओ में अछूतों के अपने प्रतिनिधि हों ताकि प्रशासन पूरी तरह उनके विरुद्ध न हो सके। यदि आप अछूतों के सांवैधानिक रक्षोपायों के लिए उनकी न्यायिक मांग को स्वीकार करते हैं, तो आपको यह समझने

में कोई कठिनाई नहीं होगी कि अछूत पृथक निर्वाचन क्षेत्र क्यों चाहते हैं। विधायिका में अछूत अल्पसंख्यक हो जाएंगे। अल्पसंख्यक रहना उनके भाग्य में है। वह उस बहुसंख्यक होने के कारण, कहा जाए तो, निर्धारित और पूर्व–नियत है। वे मात्र यह कर सकते हैं कि स्वयं को ऐसी स्थिति में रखें कि वे अपनी इच्छानुसार, बहुसंख्यकों द्वारा अपने काम करने की शर्तें तय करवा सके और बहुसंख्यकों द्वारा निर्धारित शर्तों को स्वीकार करने को बाध्य न हों तथा दूसरे, यदि बहुसंख्यक उनके साथ काम करने को राजी नहीं होते और उनकी गलतियों का निपटान करने की मनाही करते हैं, तो कम से कम वे विधायिका में बहुसंख्यकों के विरुद्ध अपना विरोध दर्ज करने के लिए तो स्वतंत्रता बनाए रख सकते है। ऐसा तभी हो सकता है जब विधायिका में उनका प्रतिनिधित्व अपने चुनाव के लिए बहुसंख्यकों को मतों पर निर्भर न हो। यही पृथक चुनाव क्षेत्रों की मांग के लिए उनका आधार है।

7. जब तक अछूतों को एक अलग निर्वाचन क्षेत्र नहीं मिलता अछूतों को मिले रक्षोपायों का उनके लिए कोई मूल्य नहीं रहेगा। पृथक निर्वाचन क्षेत्र इस मामले में एक प्रमख विषय है। केबिनेट मिशन ने 9 अप्रैल, 1946 को जिन तीन कांग्रेसी हरिजनों का साक्षात्कार लिया था, मेरे सामने उनके द्वारा केबिनेट मिशन को प्रस्तुत प्रतिवेदन की एक प्रति रखी हुई है। वे टूली स्ट्रीट के तीन टेलर्स से अधिक कुछ नहीं थे, जिन्होंने पालियामेंट को संबोधित करते हुए 'हम इग्लैण्ड के लोग' कहने की साहसिकता की थी। इसके अलावा, यह ध्यान देने योग्य है कि अनुसूचित जाति संघ की ओर से मेरे द्वारा उठाई गई मांगों और इन कांग्रेसी हरिजनों द्वारा उठाई गई मांगों में कोई अंतर नहीं हैं। केवल एक अंतर जो सामने आता है, वह पृथक निर्वाचन क्षेत्रों का प्रश्न है। मैं नहीं जानता कि आप कांग्रेसी हरिजनों की मांगों का क्या मतलब लगाते हैं। वास्तव में वे मांगें नहीं है। वे मात्र उसी का प्रतिनिधित्व हैं जो राजनैतिक रक्षोपायों के तौर पर अछूतों का देने के लिए कांग्रेस ने तैयार की हैं। यह केवल मेरी सोच नहीं है। यह मेरा ज्ञान है। इस संबंध में मुझे ऐसे व्यक्ति द्वारा जानकारी दी गई, जो कांगेस की विचारधारा को जानता है कि यदि मैं संयुक्त निर्वाचन क्षेत्र स्वीकार करने को तैयार होता तो कांग्रेस अपनी ओर से मेरी अन्य समस्त मांगों को स्वीकार करने के लिए बिल्कुल तैयार रहती। आप आश्चर्यचकित होंगे कि कांग्रेस अनुसूचित जातियों की समस्त मांगों को स्वीकार करने को तैयार होती और केवल एक मांग अर्थात् पृथक निर्वाचन क्षेत्र का विरोध करती। यदि आप सोचें तो कोई आश्चर्य नहीं होगा कि कांग्रेस क्या खेल, खेल रही है। यह बहुत गहरा खेल है। यह महसूस करके कि अछूतों को कुछ रक्षोपाय प्रदान करने से नहीं बचा जा सकता, कांग्रेस ऐसा कोई मार्ग खोजना चाहती है, जिससे वह अछूतों का निष्प्रभावी बना सके। इसी कारण कांग्रेस संयुक्त निर्वाचन क्षेत्रों पर जोर दे रही है। संयुक्त निर्वाचन क्षेत्रों का अभिप्राय है अछूतों को बिना शक्ति के कुर्सी प्रदान करना। अछूत

चाहते हैं कुर्सी के साथ–साथ उन्हें शक्ति भी मिले। ऐसा, वह पृथक निर्वाचन क्षेत्रों के माध्यम से प्राप्त कर सकते हैं और इसी कारण वे इस पर जोर दे रहे हैं।

8. मेरा विश्वास है कि अनुसूचित जातियों के पक्ष में पृथक निर्वाचन क्षेत्रों का मामला कच्चे लोहे के समान है। कांग्रेस के अलावा अन्य सभी दल इसे स्वीकार करते हैं। मैंने पृथक निर्वाचन क्षेत्रों के बारे में अपने विचार लॉर्ड वॉवेल को 3 मई, 1946 को लिखे अपने पत्र में रखे, जो उन्होंने आपको अवश्य दिखाए होंगे अतः उन्हें यहां दोहराना अनावश्यक होगा। प्रश्न यह है कि अनुसूचित जातियों की मांग को लेकर मिशन क्या करने जा रहा है। क्या वे अछूतों को हिन्दुओं की राजनैतिक दासता से मुक्त करने वाले बहुसंख्यक हिन्दुओं से मित्रता करने के क्रम में संयुक्त निर्वाचन क्षेत्रों की व्यवस्था का पक्ष लेकर अनुसूचित जातियों को भेड़ियों को सौंपने जा रहे हैं? अनुसूचित जाति को हिज मेजेस्टी की सरकार से यह पूछने का हक है कि अग्रेजों के जाने से पहले, सरकार हिज मेजेस्टी की यह सुनिश्चित करे कि स्वराज अछूतों के लिए गले का फंदा नहीं बने।

9. मैं यह कहने की अनुमति चाहूंगा कि अनुसूचित जातियों के प्रति अंग्रेजों की एक नैतिक जिम्मेवारी है। समस्त अल्पसंख्यकों के लिए भी उनकी नैतिक जिम्मेदारी बनती है। किंतु वे अछूतों के प्रति अपनी जिम्मेदारी से मुंह नहीं मोड़ सकते। यह दुखद है कि केवल कुछ अंग्रेजों को इसकी जानकारी है और कुछ ही इसका निर्वाह करने को तैयार हैं। अछूतों ने आरंभ से ही भारत में ब्रिटिश राज को सहायता प्रदान की है। अनेक अंग्रेज समझते हैं कि क्लाइव, हेस्टिंग्स, कूट्स आदि ने भारत को जीता था। इससे बड़ी कोई भूल नहीं हो सकती। भारत को भारतीयों की एक सेना ने जीता था और जिन भारतीयों से मिलकर वह सेना बनी थी, वे सभी अछूत थे। यदि अछूतों ने भारत की फतह में अंग्रेजों की सहायता नहीं की होती तो भारत में ब्रिटिश शासन संभव ही नहीं होता। प्लासी की लड़ाई का उदाहरण लें, जहां से ब्रिटिश शासन की नींव पड़ी या किरकी के युद्ध का उदाहरण लें जहां से भारत की फतह का काम पूरा हुआ। इन दोनों भाग्य–निर्णायक युद्धों में अंग्रेजों की ओर से लड़ने वाले समस्त सैनिक अछूत ही थे।

10. अंग्रेजों ने उन अछूतों के साथ क्या किया, जो कि उनकी ओर से लड़े यह एक शर्मनाक कहानी है। सर्वप्रथम, उन्होंने सेना में अछूतों की भर्ती बंद कर दी। इससे अधिक कठोर, अधिक अनुदारता, अधिक क्रूर कार्य इतिहास में मुश्किल से ही पाया जा सकता है। अछूतों को सेना से निकालते हुए अंग्रेजों ने यह ध्यान नहीं दिया कि उन्होंने ही ब्रिटिश शासन की स्थापना में सहायता की थी और 1857 में सहयोगी बलों के संयुक्त विद्रोह की स्थिति में भी अछूतों ने ही उनका बचाव किया था। यह विचार किए बिना कि अछूतों पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा अंग्रेजों ने कलम के ज़रा

से इस्तेमाल से ही उन्हें जीवन–यापन के अपने स्रोत से वंचित कर दिया और उन्हें बर्बादी की खाई में धकेल दिया। क्या अंगेजों ने किसी भी तरह से उन्हें सामाजिक अक्षमताओं से उबर पाने में सहायता प्रदान की? पुनः इसका उत्तर नकारात्मक ही होगा। अछूतों के लिए विद्यायालय' कुंए और सार्वजनिक स्थल बंद हो गए। यह देखना अंग्रेजों की जिम्मेदारी थी कि नागरिक होने के नाते सार्वजनिक निधि से चलाए जाने वाले समस्त संस्थानों में उन्हें प्रवेश का हक है। किन्तु अंग्रेजों ने ऐसी कोई दयालुता नहीं दिखाई और इससे भी खराब यह रहा कि उन्होंने कार्रवाई न करने का अपना औचित्य सही ठहराते हुए कहा कि अस्पृश्यता उनका सृजन नहीं है। ऐसा हो सकता है कि अस्पृश्यता अंग्रेजों की देन नहीं थी। किन्तु आज की सरकार होने के नाते, यह उनकी जिम्मेदारी थी कि वह अस्पृश्यता को समाप्त करें। कोई भी सरकार जिसे अपनी गतिविधियों और कर्तव्यों की जानकारी हो, इसे समाप्त कर सकती है। ब्रिटिश सरकार ने क्या किया? उन्होंने हिंदू समाज के किसी भी सुधार से संबंधित कार्य को करने से मना कर दिया। जहां तक समाज सुधार का संबंध था, अछूतों ने स्वयं को ऐसी सरकार के अधीन पाया, जो उस सरकार से भिन्न थी जिसके लिए पूरे समर्पण से उन्होंने कुर्बानियां दी थी, जिए और मरे थे और इसने इतिहास को भुला दिया। राजनीतिक दृष्टि से, परिवर्तन बहुत मामूली था। हिन्दुओं की घृणा पहले की तरह जारी रही। ब्रिटिश आला कमान द्वारा रोक लगाए जाने की बजाए, संतुष्टि की नीति चलती रही। सामाजिक दृष्टि से देखें तो, अंग्रेजों ने जैसी व्यवस्था व्याप्त की उसी को स्वीकार किया और पूरी ईमानदारी से उसे वैसे ही संरक्षित रखा, जैसे एक चीनी दर्जी ने एक पुराने कोट को फैशन का रूप दिया, बड़े गर्व से उसके जैसा एकदम दूसरा कोट तैयार किया, उसे किराये पर चलाया और सिलता रहा और ऐसे ही सिलसिला चलता रहा। और परिणाम क्या हुआ? परिणाम है कि भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना से लेकर 200 वर्ष बीत जाने के बाद भी अछूत, अछूत ही बने हुए हैं, उनकी कमियों को सुधारा नहीं गया है और उनकी प्रगति को प्रत्येक चरण में रोका गया है। वास्तव में, यदि ब्रिटिश शासन ने भारत में कुछ किया है तो वह है शक्तिशाली और अनियंत्रित ब्राहमणवाद, जो अछूतों का चिर–स्थायी शत्रु है और जो उन सभी कुरीतियों का जनक है, जिनसे अछूत सदियों से पीड़ित रहे हैं।

11. आप यहां यह घोषणा करने आए हैं कि अंग्रेज भारत को छोड़ने वाले हैं। अछूतों द्वारा यह पूछा जाना गलत न होगा कि प्राधिकार सचा और शक्ति की यह संपत्ति आप किसे सौंप रहे हैं? ब्राहमणवाद के उस प्रधान को, अर्थात् जो अछूतों पर अन्याय करता है और उनका उत्पीड़न करता है। भारत में ब्रिटिश साम्राज्य दूसरे हाथों में सौंपे जाने के लिए अन्य दलों के सदस्यों के अंतकर्ण में पछतावा पैदा करने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु ब्रिटिश लेबर पार्टी के बारे में क्या कहेंगे? लेबर पार्टी दावा करती है कि वह दलितों और दबे–कुचलों के पक्ष में है। यदि वह अपनी

बात पर सही है, मुझे कोई संदेह नहीं कि वह भारत के छह करोड़ अछूतों को पक्ष में होगी और उनकी सुरक्षा के लिए प्रत्येक आवश्यक कार्य करेगी और उनके हाथ में शक्ति नहीं जाने देगी जो अपने धर्म और जीवन दर्शन के कारण शासन करने योग्य नहीं है, और वास्तव में अछूतों के शत्रु हैं। यह अंग्रेजों की ओर से अनुसूचित जातियों, जिनके वे सदैव विश्वासपात्र होने का दावा करते हैं, को अनदेखा करना प्रायश्चित करने से अधिक कुछ नहीं होगा।

12. अछूतों द्वारा उठाए गए सांवैधानिक रक्षोपायों के प्रश्न पर मिशन की स्पष्ट चुप्पी के कारण बढ़ी व्यग्रता ने मुझे अपना मानसिक बोझ उतारने के लिए प्रेरित किया है। यह व्यग्रता अछूतों और अल्पसंख्यकों को हिज मेजेस्टी की सरकार द्वारा दी गई प्रतिज्ञाओं पर मिशन के रवैये से और गहराई है। इन प्रतिज्ञाओं के संबंध में मिशन का रवैया मुझे लार्ड पार्मस्टन की याद दिलाता है, जिन्होंने कहा था, हमारे कोई स्थायी शत्रु नहीं हैं हमारे कोई स्थाई मित्र नहीं हैं हमारे केवल स्थायी हित हैं। आप कल्पना कर सकते हैं कि यदि अछूतों को ऐसा लगे कि मिशन इस पार्मस्टन उक्ति को अपने मार्गदर्शन के रूप में अपना रहा है तो उसका उन पर कैसा भयावह प्रभाव पड़ेगा। आप ग्रेट ब्रिटेन के शोषित वर्ग से हैं और मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप भारत के छह करोड़ शोषित लोगों के साथ संभावित विश्वासघात को टालने के लिए अपना सर्वश्रेष्ठ प्रयास करेंगे। इसलिए मैंने उनका मामला आपके समक्ष रखने पर विचार किया। यदि आप अनुमति दें तो मैं बताना चाहूंगा कि अछूत यह महसूस करते हैं कि मिशन में आपसे बढ़कर उनका कोई और मित्र नहीं है।

भवदीय,

डॉ. भीम राव अम्बेडकर

माननीय ए.वी. एलेक्जेंडर,

सी.एच.एम.पी., सदस्य, केबिनेट मिशन,

वॉयसराय हाउस,

नई दिल्ली

स्रोतः डॉ. अम्बेडकर द्वारा निजी रूप से मुद्रित लीफलेट

8

केबिनेट मिशन द्वारा जारी बयान के संबंध में लॉर्ड पैथिक–लॉरेन्स को पत्र

22, पृथ्वी राज रोड,

नई दिल्ली।

दिनांक 22 मई, 1946

प्रिय लॉर्ड पैथिक–लॉरेन्स,

केबिनेट मिशन द्वारा जारी बयान के बारे में मैंने पाया है कि मुद्दों पर काफी अनिश्चितता बनी हुई है। उनका उल्लेख नीचे किया गया है:–

(1) बयान के पैराग्राफ 20 में ''अल्पसंख्यक शब्द'' में क्या अनुसूचित जातियां भी शामिल हैं।

(2) पैराग्राफ 20 में उल्लेख है कि नागरिकों, अल्पसंख्यकों और जनजातीय अधिकारों और अलग रखे गए क्षेत्रों पर सलाहकार को प्रभावित हितों का पूरा प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए। यह कौन देखेगा कि सलाहकार समिति में क्या वास्तव में प्रभावित हितों का पूरा प्रतिनिधित्व रहता है।

(3) यह देखने के लिए कि क्या समिति में प्रभावित हितों का पूरा प्रतिनिधित्व है, हिज मेजेस्टी की सरकार संविधान सभा से बाहर के उक्त हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों को नामांकन द्वारा समिति में शामिल करने का अधिकार अपने पास सुरक्षित रखने का प्रस्ताव करती है? बाहर के व्यक्तियों के नामांकन की आवश्यकता महत्वपूर्ण दिखाई पड़ती है, अन्यथा जनजातीय और अलग रखे गए क्षेत्रों से संविधान सभा के लिए प्रतिनिधित्व पाने का कोई अन्य तरीका नहीं है। यदि नामांकन की आवश्यकता मान ली जाती है, तो क्या संविधान सभा के बाहर से अनुसूचित जाति के सदस्यों के नामांकन के सिद्धांत का पालन किया जाएगा ताकि सलाहकार समिति में अनुसूचित जातियों का पूरा प्रतिनिधित्व हो सके?

(4) बयान के पैराग्राफ 22 में संघीय संविधान सभा और यूनाइटेड किंग्डम के बीच एक संधि का प्रस्ताव है ताकि शक्ति के हस्तांतरण के कारण उत्पन्न होने वाले मुद्दों को निपटाया जा सके। क्या इस प्रस्तावित संधि में अल्पसंख्यकों की सुरक्षा का कोई प्रावधान है, जैसा क्रिप्स के सुझावों में उल्लिखित था? यदि संधि में ऐसा कोई उपबंध नहीं है, तो हिज मेजेस्टी की सलाहकार समिति के निर्णयों को संविधान सभा के लिए बाध्यकारी होने का प्रस्ताव कैसे कर सकती है?

(5) बयान में यूरोपियनों को "सामान्य" श्रेणी में शामिल किया गया है। इससे यह माना जा सकता है कि संविधान सभा में प्रतिनिधियों के चुनाव के लिए यूरोपियनों को भी मत देने का अधिकार होगा। क्या यूरोपियनों को अधिकार है कि वे संविधान सभा के लिए होने वाले चुनावों के लिए किसी यूरोपियन को उम्मीदवार के रूप में उतारें? बयान में यह स्पष्ट नहीं किया गया है।

इन प्रश्नों के स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। यदि आप इन प्रश्नों के उत्तर दें तो मैं आभारी रहूंगा। मैं आज रात दिल्ली से बम्बई जा रहा हूं। यदि आप उपर्युक्त प्रश्नों के उत्तर देना चाहें तो कृपया उन्हें मेरे बम्बई के पते पर भिजवा दें, जो नीचे दिया गया है।

भवदीय,

डॉ. भीम राव अम्बेडकर

पताः बी.बी.एंड सी.आई.रेलवे*

सैलून नं. 27, सेन्ट्रल स्टेशन, बम्बई।

* बम्बई–बड़ौदा एवं सेन्ट्रल इंडिया रेलवे।

1: सत्ता का हस्तांतरण, खण्ड–VII, सं. 359, पृ. 661–662

9

लॉर्ड पैथिक–लॉरेन्स द्वारा डॉ. भीमराव अम्बेडकर को भेजा गया स्पष्टीकरण

28 मई, 1946

आपके 22 मई के पत्र के लिए आपका धन्यवाद, जिसमें आपने हालिया बयान में कुछ मुद्दों के स्पष्टीकरण के लिए कहा है।

आप इस बात की सराहना करेंगे कि प्रतिनिधि मंडल का लक्ष्य एक ऐसा तंत्र स्थापित करना है, जहां स्वतंत्र भारत के लिए भारतीय स्वयं अपना संविधान तैयार कर सकें। हमारे बयान का लक्ष्य एक ऐसा आधार तैयार करना है जहां दल उस उद्देश्य को लेकर एक साथ आएं और हम उम्मीद करते हैं कि इसे स्वीकार किया जाएगा और सर्व संबंधित इस पर काम करेंगे। हमने अपने बयान को छोटा करते हुए इतना सीमित रखा है, जितना हमें उक्त उद्देशीय के लिए आवश्यक प्रतीत हुआ है। अन्य उठने वाले मुद्दों पर संविधान सभा द्वारा किया जाएगा।

हमारा आशय वास्तव में यही था कि बयान के पैरा 20 में उल्लिखित शब्द ''अल्पसंख्यकों'' में अनुसूचित जातियां भी शामिल हैं। दूसरी ओर, सलाहकार समिति का गठन संविधान सभा द्वारा ही किया जाएगा तथा हमारा अनुमान है कि ऐसी अपेक्षा रखी जाएगी कि यह समिति पूरी तरह प्रतिनिधित्व वाली होनी चाहिए। संविधान सभा के कार्यों में हस्तक्षेप करने का हमारा कोई इरादा नहीं है। सलाहकार समिति के कार्मिक हमारे बयान के कारण संविधान सभा के सदस्यों की तुलना में सीमित नहीं होंगे।

मैं सोचता हूं कि शनिवार सायं को प्रतिनिधि मंडल द्वारा जारी अगले बयान ये आपके अन्य प्रश्नों का उत्तर भी मिल गया होगा, जिसकी एक प्रति मैं संलग्न कर रहा हूं।

श्री अलेक्जेंडर ने मुझे आपके पत्र की पावती और धन्यवाद देने को कहा है, जो हाल ही में आपने उन्हें भेजा है। वह कुछ दिनों के लिए दिल्ली से बाहर सिलोन के दौरे पर गए हैं और वापस आने पर आपको उत्तर भिजवाएंगे।

1: सत्ता का हस्तांतरण, खण्ड–VII सं. 399, पृ. 723

10

अम्बेडकर ने चर्चिल को चैम्पियन माना

लंदन, 30 मई (रयूटर) : एक प्रतिज्ञा की कंजर्वेटिव पार्टी 6 करोड़ अछूतों के भविष्य की रक्षा के लिए अपने सर्वश्रेष्ठ प्रयास करेगी ''जिसका उनके समान धर्मवलांसियों द्वारा दुखदायी अवसाद माना। ''जाना भारतीय उप–महाद्वीप की समस्याओं का एक गंभीरतम कारक है''। यह वाक्य एक तार संदेश के रूप में श्री विंस्टन चर्चिल द्वारा वॉयसराय की कार्यकारी परिषद के सदस्य डॉ. अम्बेडकर को भेजा गया था।

श्री चर्चिल ने आगे कहा किः हम अमेरिकी स्वतंत्रता की घोषणा में निर्धारित व्यापक सिद्धांतों का पालन करें कि सभी व्यक्ति स्वतंत्र और समान पैदा होते हैं तथा उन्हें जीवन जीने, स्वतंत्र रहने और प्रसन्न रहने का अधिकार है।

डॉ. अम्बेडकर ने श्री चर्चिल को तार भेजा किः ''केबिनेट मिशन के प्रस्ताव 6 करोड़ अछूतों के लिए एक शर्मनाक विश्वासघात हैं। भारत का प्रत्येक अस्पृश्य नागरिक संसद में दिए गए आपके भाषण के लिए आपका आभारी है। अछूतों का भविष्य बहुत अंधकारमय है। हम उनके हितों की सुरक्षा के लिए आप पर निर्भर हैं।''

1ः दि बॉम्बे क्रानिकल, दिनांक 31 मई, 1946

11

बम्बई में हिन्दुओं– अनुसूचित जातियों के बीच संघर्ष

1 जून, 1946

वरली क्षेत्र में, जहां पिछले चार दिन के दौरान अनुसूचित जाति के सदस्यों और सवर्ण हिन्दुओं के बीच बारंबार हुए संघर्षों के फलस्वरुप अब तक पांच व्यक्ति मारे गए हैं। और लगभग सत्तर घायल हुए हैं, आज सुबह से स्थिति शांतिपूर्वक बनी हुई है, क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थानों पर भारी संख्या में पुलिस बल तैनात किया गया है और सशसत्र पुलिस प्रभावित क्षेत्र में लगातार गश्त कर रही हैं। आज दोपहर तक मात्र तीन हमलों की घटनाएं हुई हैं।

बम्बई के प्रधान मंत्री श्री बी.जी. खेर आज सांयकाल में अनूसूचित जाति के नेता डॉ. अम्बेडकर के साथ बैठक करके इस विषय पर बातचीत करने वाले हैं कि वरली क्षेत्र में सामान्य स्थिति कैसे बहाल की जाए।

पिछले चार दिनों की घटनाओं से कुछ मिलों का कामकाज प्रभावित हुआ है– क्योंकि बहुत से कामगार पत्थरबाजी की घटनाओं के डर से अपने काम पर नहीं आए हैं। पिछली रात चार मिलों ने अपनी रात्रि–शिफ्ट बंद रखी और अन्य मिलों ने कम स्टाफ के साथ ही कार्य किया।

आपात काल की घोषणा

बम्बई सरकार ने वरली और डेल्जली रोड के दंगाग्रस्त श्रम क्षेत्रों में आपात स्थिति लगाने की घोषणा की है, जहां सवर्ण हिन्दुओं के कामगारों और अनुसूचित जाति के कामगारों के बीच संघर्ष हुए हैं।

इससे स्थिति को संभालने के लिए पुलिस को, विशेषकर बदमाश लोगों की घेराबन्दी करने और उन्हें शहर की सीमाओं से बाहर निकालने की व्यापक शक्तियां मिल गई हैं। कल चाकू के घाव से घायल हुए जिस व्यक्ति को अस्पताल में भर्ती कराया गया था, उसकी आज मृत्यु हो गई, जिससे मरने वालों की कुल संख्या 6 हो गई है।

डॉ. अम्बेडकर ने स्थिति पर खेद जताया

बम्बई सरकार के गृह विभाग ने वरली चॉल और डेल्जली रोड क्षेत्रों में कानून व्यवस्था में सुधार के लिए सख्ती बरतने का निर्णय किया है।

जबकि सरकार ने इस संबंध में प्रांतीय कांग्रेस कमेटी, अनुसूचित जाति संघ और स्थानीय हिदू संगठनों जैसे गैर–सरकारी संगठनों से प्रभावित क्षेत्रों में शांति बहाल करने के उपायों पर विचार–विमर्श करने का निर्णय किया है।

इस कदम के अनुसरण में डॉ. भीमराव अम्बेडकर, श्रम सदस्य, भारत सरकार ने श्री मोरारजी देसाई, गृह मंत्री, बम्बई सरकार और बाद में आज सुबह श्री बी.जी. खेर, प्रधानमंत्री से साक्षात्कार के दौरान, डॉ. अम्बेडकर ने वरली की स्थिति की जानकारी मिलने पर स्थिति के प्रति खेद जताया और शांति बहाली के लिए उन्होंने कुछ उपाय सुझाए। उन्होंने मंत्रियों को यह आश्वासन भी दिया कि वे अपने अनुयायियों को शांत रहने को कहेंगे और उन पर अधिक नियंत्रण लागू करेंगे।

उल्लेखनीय है कि डॉ. अम्बेडकर, श्री नगीनदास टी. मास्टर और श्री एस.के.पाटिल ने एक संयुक्त बयान जारी करने का निर्णय किया, जिसमें उस क्षेत्र के सवर्ण हिन्दुओं के व्यक्तियों, कांग्रेसी कार्यकर्ताओं और अनुसूचित जाति के व्यक्तियों से शांत रहने और सामान्य स्थिति बहाल करने के संयुक्त प्रयास किए जाने की अपील की गई।

माना जाता है कि गृह मंत्री ने डॉ. अम्बेडकर को वरली में चॉल समितियां बनाने का सुझाव दिया, जिसे शांति भंग होने के लिए जिम्मेदार ठहराया जाएगा और वहीं शांति स्थापित करने के लिए जिम्मेदार होंगी। यदि स्थिति हाथ से बाहर चली जाती है, तो समितियों के सदस्य जिम्मेदार ठहराए जाएंगे।

गृह मंत्री से निर्देश मिलने पर, पुलिस प्राधिकारी स्थिति से निबटने के लिए कुछ आदेश लागू कर रहे हैं। यदि स्थिति में गिरावट दिखाई दे तो अपेक्षित उपायों में क्षेत्र के बदमाश व्यक्तियों को पकड़ना और आपात शक्तियों का प्रयोग करना शामिल है।

हालिया स्थिति के अनुसार, चार दिन चले आंदोलन में छह व्यक्ति मारे गए हैं और 70 घायल हुए हैं तथा मिल क्षेत्र के एक बड़े हिस्से में अभी भी तनाव बना हुआ है।

श्री राजभोज का बयान

पी.एन.मा. राजभोज, महासचिव, अखिल भारतीय अनुसूचित जाति संघ ने वरली चॉल का दौरा करने के बाद अपने बयान में कहा है कि इस प्रभावित क्षेत्र में उनके अनुयायियों की स्थिति बहुत कठिन बनी हुई थी। वे मारे जाने के डर से मिलों में

काम करने के लिए नहीं जा पाए। उनमें से अनेक उस हफ्ते खाने का सामान तक नहीं ले पाए। उन्होंने शिकायत की कि उन्हें आसानी से पुलिस सुरक्षा उपलब्ध नहीं हुई, और अनेक बेकसूर व्यक्ति जेल भेज दिए गए।

श्री राजभोज ने कहा कि हालिया संघर्ष में उनके दल के लगभग 130 व्यक्तियों को चोटें आई और दो व्यक्तियों की मृत्यु हो गई।

बम्बई के हिंदू नेताओं पर अधिक जिम्मेदारी जनता से अपील

वरली और आसपास के श्रमिक क्षेत्रों में हुए संघर्षों पर 3 जून को जारी एक संयुक्त बयान में डॉ. भीमराव अम्बेडकर, श्री नगीनदास टी. मास्टर और श्री एस.के. पाटिल ने कहा कि, "एक प्रमुख समुदाय होने के नाते, हिन्दुओं के कंधों पर एक बड़ी जिम्मेदारी है। बहुमत लिए वर्ग को उत्तेजना के क्षणों में भी नियंत्रित रहने को बाध्य होना पड़ता है और अल्पसंख्यक समुदाय जैसे अनुसूचित जाति, को यह सिद्ध करके दिखाना होता है कि उसे जीवन, स्वतंत्रता और गरीबी जैसे मुद्दों पर डरने की जरूरत नहीं, जबकि राजनैतिक प्रश्नों पर वह बहुसंख्यक समुदाय से सहमत नहीं होता।"

बयान में उल्लेख है: हमें बम्बई शहर के वरली, नैगाम और डेल्जी रोड क्षेत्रों में अनुसूचित जाति के सदस्यों और सवर्ण हिन्दुओं के सदस्यों के बीच कुछ समय के लिए घटित दुर्भाग्यशाली घटनाओं से गहरा आघात पहुंचा है। लोगों के इन वर्गो के बीच बार–बार हुए संघर्षों के फलस्वरूप तीन व्यक्ति मारे जा चुके हैं और अनेक घायल हुए हैं। हमारी राय में ऐसा कोई कारण नहीं है कि ये दो वर्ग आपस में क्यों एक–दूसरे पर आक्रमण कर रहे हैं और इससे इन क्षेत्रों की शांति भंग कर रहे हैं। यहां तक कि यह मानना कि किन्हीं मुद्दों पर अथवा अन्य बातों पर राय का कोई सच्चा और सशक्त अंतर हो सकता है, ऐसे पथभ्रष्ट प्रतिशोधनों से कुछ फैसले नहीं हो सकते। विवादों के निपटान और न्याय पाने के कुछ अन्य तथा अधिक प्रभावी उपाय भी हो सकते हैं। हिंसा की इन घटनाओं और गलत स्वभाव के कारण शहर का अच्छा–खासा नाम बदनाम होता है और इससे निदोर्षों को चोट पहुंचती हैं, यहां तक कि लोगों की जान की हानि भी होती है। यद्यपि हम घटित गतिविधियों के लिए दोषारोपण नहीं करना चाहते, हम इस बात पर जोर देना चाहेंगे कि एक प्रमुख समुदाय होने के नाते, हिन्दुओं पर भारी–भरकम जिम्मेदारी है।

हम हिंसा के इन संज्ञाहीन प्रदर्शनों की कड़ाई से और जोर देकर निन्दा करते हैं और संबंधित दलों से गंभीरतापूर्वक अपील करते हैं कि वे इस पागलपन लिए गतिविधियों को रोकने की कार्रवाई करें। हमें विश्वास है कि एक–दूसरे के प्रति जिम्मेदार नागरिक सा बर्ताव करेंगे और अपना सामान्य तथा शांतिपूर्ण कामकाज बहाल करेंगे।

12

प्रत्यक्ष कार्रवाई पर संघ कार्यकारिणी का संकल्प

केबिनेट मिशन द्वारा निर्दोष साक्ष्य की अनदेखी

"अखिल भारतीय अनुसूचित जाति संघ की कार्य–समिति अपने दो हजार शब्दों के संकल्प में हिज मेजेस्टी की सरकार और इंग्लैण्ड में लेकर पार्टी से अनुसूचित जाति का मामला सही दिशा में ले जाने और केबिनेट मिशन द्वारा उनके प्रति किए गए गलत काम को सुधारने का निवेदन करती है। संकल्प के अनुसार, 'ऐसा न होने की स्थिति में,' कार्य–समिति समझती है कि 'अनुसूचित जातियों के लिए कोई सीधी कार्रवाई करने के अलावा और कोई विकल्प नहीं है।' संकल्प में आगे कहा गया है कि: "यदि अनुसूचित जातियों को सन्निकट विध्वंस से बचाने के लिए ऐसी किसी प्रत्यक्ष कार्रवाई के हालात अपेक्षित होंगे, तो कार्य–समिति यह कार्य अनुसूचित जातियों से कराने से नहीं हिचकेगी"।

अखिल भारतीय अनुसूचित जाति संघ की कार्य–समिति की बैठक 4 जून, 1946 को राव बहादुर एन. शिवराज की अध्यक्षता में डॉ. भीमराव अम्बेडकर, श्रम सदस्य, भारत सरकार के आवास राज गृह पर आयोजित हुई।

4 जून की सुबह समिति के अध्यक्ष बम्बई सेन्ट्रल पहुंचे और सैलून में जाकर डॉ. अम्बेडकर से मुलाकात की। देश के विभिन्न हिस्सों से आए संघ के कार्यकर्ता अपने नेताओं से मिले और उनके साथ देश और समुदाय से संबंधित विभिन्न विषयों पर बातचीत की। उन्होंने नेताओं से अपने अनकहे दुख–दर्द बयान किए और उस अकल्पनीय खौफ के बारे में बताया जो अनुसूचित जातियों को सवर्ण हिन्दुओं से मिला था।

अपराह्न दो बजे कार्य–समिति के सदस्य वार्ता के लिए बैठे। कमेटी के 20 सदस्यों में से 11 सदस्य बैठक में शामिल हुए। इनमें पांच बम्बई से थे, चार मध्य प्रांत से और एक–एक मद्रास और संयुक्त प्रांतों से थे। डॉ. अम्बेडकर विशेष आमंत्रिती के रुप में उपस्थित थे। बैठक में संघ के महासचिव, श्री पी.एन. राजभोज

द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट पर विचार–विमर्श हुआ, जिसमें ब्रिटिश केबिनेट मिशन के प्रस्तावों पर अनुसूचित जाति के लोगों की आम प्रतिक्रियाएं थीं। ऐसा माना जाता है, कि रिपोर्ट में समुदाय की ओर से असंतोष व्यक्त किया गया था कि प्रस्तावित संविधान सभा में उन्हें कोई प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया था। कार्य–समिति ने अन्तरिम सरकार के संबंध में ब्रिटिश केबिनेट के प्रस्तावों पर दस महत्वपूर्ण संकल्प पारित किए।

समिति ने मांग रखी कि अनसूचित जातियों को पृथक निर्वाचन क्षेत्रों के माध्यम से विधायिका में प्रतिनिधित्व का अधिकार मिलना चाहिए और संविधान में सरकार की ओर से अनुसूचित जातियों के लिए अलग बस्तियां बनाए जाने की बाध्यता संबंधी उपबंध होना चाहिए।

समिति ने अनुसूचित जातियों को अश्वस्त किया कि ऐसा कोई कारण नहीं है, जिससे आपको घबराना पड़े और हतोत्सोहित होना पड़े। उन्हें अपने संघर्ष में जो कि न्याय और मानवता का संघर्ष है उनके शत्रुओं के तंत्र के होते हुए भी विजय प्राप्त होगी।

कार्य–समिति ने अध्यक्ष को एक कार्रवाई परिषद के गठन के लिए प्राधिकृत किया, जिसे प्रत्यक्ष कार्रवाई की जांच करने और कार्रवाई को सर्वाधिक प्रभावी तरीके से निर्धारित करने तथा इसे आरंभ करने का समय तय करने का कार्य सौंपा गया था।

अनुसूचित जाति संघ के संकल्प की प्रतिलिपियां सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इंडिया तथा वॉयसराय को नई दिल्ली में और प्रधानमंत्री एटली तथा श्री चर्चिल को लंदन भिजवाई गई।

"उक्त सुरक्षा प्राप्त किए जाने के संबंध में उनकी मांग न माने जाने की स्थिति में समिति ने अध्यक्ष, राव बहादुर एन. शिवराज को कार्रवाई परिषद की स्थापना करने के लिए प्राधिकृत किया ताकि उनकी मांगें मनवाए जाने के लिए प्रत्यक्ष कार्रवाई के सबसे प्रभावी माध्यम" के संबंध में निर्णय किया जा सके।

कार्य–समिति की ओर से अनुसूचित जाति संघ के एक प्रवक्ता ने स्पष्ट किया कि समिति ने भावी संविधानिक समझौते पर ध्यान केन्द्रित किया था क्योंकि वे अंतरिम सरकार के गठन की बजाय अनुसूचित जाति के लिए आवश्यक वैधानिक सुरक्षा के प्रति अधिक चिंतित थे। उन्होंने कहा कि: "हालांकि, हम अंतरिम सरकार के गठन के बाद किसी के भी साथ सहयोग के लिए इच्छुक रहेंगे, बशर्तें हमारा सहयोग सम्मानीय शर्तों के साथ मांगा जाता हो"।

प्रवक्ता ने बताया कि केबिनेट मिशन ने अपने दूसरे बयान में यह घोषणा करके ब्रिटिश सरकार की प्रतिष्ठा को आंशिक रूप में बहाल किया है कि इंडो–ब्रिटिश संधि का निष्कर्ष अल्पसंख्यकों के अधिकारों को पर्याप्त रूप से संरक्षित किए जाने पर आधारित होगा। तथापि, अनुसूचित जाति संघ की मांग थी कि इसमें उपयुक्त संशोधन किए गए थे और अब केबिनेट मिशन के प्रस्तावों में इन्हें सुनिश्चित किया जाना है। उन्हें ऐसा किए जाने में कोई कठिनाई नज़र नहीं आती, जैसा मुस्लिमों के मामले में किया गया है।

अपने निष्कर्ष में प्रवक्ता ने स्पष्ट किया कि संकल्प में प्रत्यक्ष कार्रवाई की शर्त तभी काम कर सकेगी, जब संघ अपने लक्ष्य की प्राप्ति में असफल हो जाए। हड़बड़ी में कार्रवाई करने का कोई आशय नहीं था।

अखिल भारतीय अनुसूचित जाति संघ की केबिनेट मिशन को चेतावनी

[जून के प्रथम सप्ताह में बम्बई में आयोजित अखिल भारतीय अनुसूचित जाति संघ की कार्य–समिति की बैठक में पारित संकल्प का पूर्ण मूल–पाठ निम्नलिखित है।]

अखिल भारतीय अनुसूचित जाति संघ की कार्य–समिति ने दो बातों पर विचार किया (1) भारत के संविधान के संबंध में केबिनेट मिशन द्वारा जारी पहला बयान; (2) मिशन के सदस्यों द्वारा अपने बयान को विस्तार देने के लिए प्रेस से साक्षात्कार; (3) केबिनेट मिशन का दूसरा बयान; और (4) केबिनेट मिशन और माननीय डॉ. भीमराव अम्बेडकर के बीच पत्राचार। केबिनेट मिशन के बयान से कई मुद्दे उठे, जिस पर कार्य–समिति अपने विचार प्रकट करना चाहती है। इस समय, कार्य–समिति केबिनेट मिशन की भारत के भावी संविधान के निर्माण के लिए योजना को इस प्रकार लागू करने को प्राथमिकता देना चाहती है जिससे अनुसूचित जातियां प्रभावित हो सकें।

2. कार्य–समिति ने इस पर बहुत रोष जताया है कि केबिनेट मिशन ने अपने 5000 शब्दों के बयान में एक बार भी अनुसूचित जातियों का उल्लेख नहीं किया है। केबिनेट मिशन की कार्यप्रणाली की मनोस्थिति को समझना कठिन है। यहां तक कि मिशन को अस्पृश्यता के होने की जानकारी, उनकी अक्षमताओं, पूरे भारत में सवर्ण हिन्दुओं द्वारा दिन–प्रतिदिन उन पर होने वाले अन्यायों, उत्पीड़न की जानकारी तक नहीं है। केबिनेट मिशन संभवत ब्रिटिश सरकार की उस घोषणा से अनभिज्ञ नहीं होगा कि अछूत हिंदू जाति से अलग थे और भारत के राष्ट्रीय जीवन में वे

एक भिन्न तत्व की तरह थे। केबिनेट मिशन हिज मेजेस्टी की सरकार की उस घोषणा से भी अनभिज्ञ नहीं होगा कि अनुसूचित जातियों पर ऐसा कोई संविधान थोपा नहीं जाएगा, जिस पर उनकी सहमति न हो। केबिनेट मिशन इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं होगा कि एक वर्ष पहले लॉर्ड वॉवेल की अध्यक्षता में संपन्न शिमला सम्मेलन में अनुसूचित जातियों को सवर्ण हिन्दुओं से अलग प्रतिनिधित्व दिया गया था। इन परिस्थितियों को देखते हुए, कार्य–समिति को यह कहने में कोई हिचक नहीं है कि जिस तरह से अनुसूचित जाति को अनदेखा किया गया है, उससे केबिनेट मिशन ने ब्रिटिश राष्ट्र का नाम बदनाम किया है।

3. प्रेस साक्षात्कार में कार्य–समिति ने केबिनेट मिशन के बयान में यह पाया कि संविधान सभा और सलाहकार समिति में अनुसूचित जातियों के प्रतिनिधित्व के लिए उन्होंने दोहरा उपबंध किया था। कार्य–समिति यह कहने को बाध्य है कि गंभीर विचार–विमर्श के लिए ये उपबंध नितांत भ्रमक और बेकार हैं। उनके द्वारा निर्धारित योजना में, मिशन ने संविधान सभा के लिए प्रान्तीय विधान सभाओं द्वारा चुनाव के लिए अनुसूचित जातियों के लिए कोई सीट आरक्षित नहीं की है, जैसा उन्होंने सिक्खों और मुस्लिमों के लिए किया है। प्रान्तीय विधान सभाओं पर ऐसी कोई बाध्यता नहीं है कि वे संविधान सभा के लिए विनिर्दिष्ट संख्या में अनुसूचित जाति के सदस्यों का चुनाव करें। यह भी संभव है कि संविधान सभा में अनुसूचित जाति का कोई प्रतिनिधित्व ही न हों। और यदि संविधान सभा में, सवर्ण हिन्दुओं के मतों से चुने जाने पर, अनुसूचित जाति को थोड़ा बहुत प्रतिनिधित्व मिल भी जाता है तो वे अनुसूचित जाति के सच्चे हितों का कभी प्रतिनिधित्व नहीं कर सकते। जहां तक सलाहकार समिति का प्रश्न है, यह संविधान सभा से पर्याप्त रूप से भिन्न नहीं हो सकता। यह केवल संविधान सभा की छाया मात्र होगी।

4. कार्य–समिति को यह समझना बहुत कठिन जान पड़ता है कि केबिनेट मिशन यह विश्वास कैसे कर सकता है कि उन्होंने संविधान सभा और सलाहकार समिति में अनुसूचित जाति की प्रभावी आवाज उठाने के लिए पर्याप्त और अच्छा उपबंध किया है। केबिनेट मिशन को अनुसूचित जाति का सच्चा प्रतिनिधित्व दिखाने के लिए प्रचुर और अकाट्य साक्ष्य प्रस्तुत किए गए थे कि जिसमें प्रारंभिक चुनावों, जिनके लिए अनुसूचित जातियों के लिए पृथक निर्वाचन क्षेत्र थे, में चुने गए प्रतिनिधियों के बारे में दर्शाया गया कि प्रान्तीय विधान सभाओं के वर्तमान अनुसूचित जाति के सदस्य जिन्होंने प्रारंभिक चुनाव लड़ा, वे चुनाव परिणामों में सबसे नीचे रहे थे और संयुक्त निर्वाचन क्षेत्रों की जटिल प्रणाली के कारण जो सदस्य प्रारंभिक चुनावों में सबसे निचले स्तर पर थे, वे केवल सवर्ण हिन्दुओं के मतों के कारण अंतिम चुनावों में शीर्ष

पर आ गए थे और इस प्रकार प्रान्तीय विधान सभाओं के अनुसूचित जाति सदस्य किसी भी तरह अनुसूचित जाति का प्रतिनिधित्व नहीं करते, किन्तु वे सवर्ण हिन्दुओं के हाथों की कठपुतली हैं। संविधान सभा और सलाहकार समिति में अनुसूचित जातियों के प्रतिनिधित्व के लिए दोहरा उपबंध करने के बजाय, मिशन ने बिना खेद प्रकट किए इस अकाट्य साक्ष्य को अनदेखा किया है और किसी औचित्य के बिना गंभीर विश्वासघात करते हुए अनुसूचित जातियों को सवर्ण हिन्दुओं की दया पर छोड़ दिया है। कार्य–समिति मिशन को यह बताना चाहती है कि अनुसूचित जातियां न तो उनके तर्क से अथवा न ही उनकी नैतिक जिम्मेदारी के विचार से सहमत हैं।

5. जहां तक केबिनेट मिशन का प्रस्ताव है कि मुस्लिम क्षेत्रों में गैर–मुस्लिम अल्पसंख्यकों को सुव्यवस्थित करके मुस्लिम बहुसंख्यकों को आजादी देते हुए अल्पसंख्यकों की समस्या हल की जाए और हिंदू क्षेत्रों में अनुसूचित जाति वर्गों सहित गैर–हिंदू अल्पसंख्यकों को सुव्यवस्थित किया जाए, केबिनेट मिशन की यह पूरी योजना ही विवादित है। कार्य–समिति को लगता है कि केबिनेट मिशन मुस्लिम समुदाय की सुरक्षा के लिए अपनी बड़ी चिन्ता दर्शाने के लिए यह योजना बना रहा है, किन्तु अनुसूचित जाति के हितों की सुरक्षा के लिए उसने कोई ध्यान नहीं दिया है। अपनी योजना के पैरा 15 में इस उपबंध के पीछे यह योजना बना रहा है, किन्तु अनुसूचित जाति के हितों की सुरक्षा के लिए उसने कोई ध्यान नहीं दिया है। अपनी योजना के पैरा 15 में केबिनेट मिशन ने उन मुद्दों का हवाला दिया है जो संविधान सभा की पहुंच से बाहर हैं। पैरा 15 में इस उपबंध के पीछे यह उद्देश्य है कि हिंदू समुदाय मुस्लिम समुदाय पर हावी न हो पाए। अनुसूचित जातियों को हिंदू जाति से जो डर है, वह इससे बड़ा है और वह डर मुस्लिम जाति के डर या जो डर उसे हो सकता है से कहीं अधिक वास्तविक है। अनुसूचित जाति इस बात पर जोर दे रही है कि केवल पृथक बस्तियों के उपबंध के माध्यम से प्रतिनिधित्व करके ही वे प्रभावी सुरक्षा पा सकते हैं। केबिनेट मिशन को इन मांगों और उनके समर्थन वाले समस्त साक्ष्यों की जानकारी थी। उपर्युक्त संदर्भित तरीके से हिंदू बहुमत के प्रभाव से मुक्त कराने की गारंटी के साथ केबिनेट मिशन ने पैरा 15 में दिए गए सिद्धांत का पालन करते हुए संविधान सभा की शक्तियों को और सीमित करते हुए यह निर्धारित किया कि अनुसूचित जाति को पृथक निर्वाचन क्षेत्रों के माध्यम से संविधान सभा में प्रतिनिधित्व का अधिकार मिलना चाहिए और उन्हें हिंदू बहुसंख्यकरों के प्रभाव से मुक्त कराने के लिए पृथक बस्तियों का एक कानूनी उपबंध होना चाहिए।

6. कार्य–समिति ने पाया कि केबिनेट मिशन ने अपने दूसरे बयान में यह उपबंध किया था कि यूनाइटेड किंगडम और भारतीय संविधान सभा के बीच हुई संधि का अनुसमर्थन अल्पसंख्यकों सहित अनुसूचित जातियों की सुरक्षा के लिए तैयार किए

जा रहे उचित रक्षोपायों के अधीन होगा। केबिनेट मिशन ने जल्दबाजी में कांग्रेस को अधिकार देते हुए अपने पहले बयान के खंड 22 में इस उपबंध को शामिल करने का साहस नहीं जुटाया यद्यपि यह 1942 में क्रिप्स मिशन के प्रस्तावों का अंश बना था।

जबकि कार्य–समिति प्रसन्न थी कि मिशन ने अपनी साख पुनः स्थापित की है और उन अंग्रेजों का सम्मान बचाया है, जिनके नाम से अनुसूचित जातियों के प्रति प्रतिज्ञाएं दी गई थी, तथापि कार्य–समिति की मांग है कि निम्नलिखित संदर्भों में केबिनेट मिशन को अपनी योजना में संशोधन करना चाहिएः–

(1) बयान के पैरा 15 में निम्नलिखित खंड को रूप में जोड़ा जाएः–

"(7) अनुसूचित जातियों को पृथक निर्वाचन क्षेत्रों के माध्यम से संविधान सभा में प्रतिनिधित्व करने का अधिकार दिया जाना चाहिए।"

(8) संविधान में एक ऐसा उपबंध शामिल किया जाए कि सरकार अनुसूचित जातियों के लिए अलग बस्तियां बनाने के लिए बाध्य हो।

पहले बयान के पैरा 20 को इस प्रकार संशोधित किया जाए कि अनुसूचित जाति सदस्यों जिन्होंने प्रारंभिक चुनावों में सर्वाधिक मत प्राप्त किए हों, को सलाहकार समिति का सदस्य बनाया जाए और उन्हें अनुसूचित जाति के पांच अन्य प्रतिनिधियों को सलाहकार परिषद में निर्वाचित करने के लिए अनुज्ञात किया जाए।

7. कार्य–समिति हिज मेजेस्टी की सरकार और ब्रिटिश लेबर पार्टी को सूचित करना चाहती है कि वे अनुसूचित जातियों के लिए किए जाने वाले कार्यों को सही दिशा दें और केबिनेट मिशन द्वारा उनके प्रति की गई भूलों का तत्काल सुधार किया जाए। कार्य–समिति महसूस करती है कि, ऐसा न होने की स्थिति में, अनुसूचित जातियों द्वारा प्रत्यक्ष कार्रवाई किए जाने के अलावा कोई और विकल्प नहीं रह जाएगा। यदि परिस्थिति की मांग हुई, तो अनुसूचित जातियों को इस मकड़जाल से निकालने के लिए कार्य–समिति अनुसूचित जातियों को ऐसा कदम उठाने से कहने में हिचकेगी नहीं।

8. कार्य–समिति, केबिनेट मिशन द्वारा प्रस्तावित योजना के कारण अनुसूचित जातियों में व्याप्त भय से अवगत है। कार्य–समिति अनुसूचित जातियों को बताना चाहती है कि वे अपनी वही हिम्मत और पराक्रम बनाए रखें जो उन्होंने पिछले चुनावों में अकेले दम पर कांग्रेस के विरुद्ध लड़ते हुए और वह भी कांग्रेस द्वारा हिंसा, बल–प्रयोग और जानबूझ कर नीचा दिखाने की घटनाओं के बावजूद दिखाया है,

जबकि अन्य सभी दलों ने चुप्पी साधे रखी थी, और उन्हें विश्वास दिलाया था कि भयाक्रांत होने, हिम्मत छोड़ने और एकता खोने की कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि वे न्याय और मानवता के लिए अवाज उठा रहे हैं और शत्रुओं के समूह होते हुए भी उनकी विजय सुनिश्चित है।

9. अतः कार्य–समिति एक कार्रवाई–परिषद के गठन के लिए अध्यक्ष को प्राधिकृत करती है और उसे प्रत्यक्ष कार्रवाई करने और उसे आरंभ करने का सबसे प्रभावी समय निर्धारित करने का कार्य सौंपती है।

10. कार्य–समिति ने पाया है किः

(1) सवर्ण हिन्दुओं द्वारा अनुसूचित जातियों के प्रति अन्याय और उत्पीड़न का कार्य पूरे भारत के गांवों और शहरों में इस कारण किया जा रहा है कि उन्होंने कांग्रेस के विरुद्ध चुनाव लड़ा है, और जिस कारण से अनेक लोगों की मृत्यु हुई है और जख्मी हुए हैं;

(2) सवर्ण हिन्दुओं का पक्ष लेते हुए पुलिस एक शर्मनाक भूमिका अदा कर रही है और अनुसूचित जाति के निर्दोष पुरुषों और महिलाओं को रोककर उन्हें गिरफ्तार कर रही है।

(3) राशन की दुकानों से अनुसूचित जाति के लोगों को राशन देने से इन्कार किए जाने की भूमिका;

(4) समाचार–पत्रों द्वारा भी चुप्पी साधे रखे जाने का षडयंत्र खेला जा रहा है, जो निर्दोष पुरुषों और महिलाओं पर होने वाले अत्याचारों के बारे में कुछ नहीं कहते।

(5) अनुसूचित जातियों के जान–माल की रक्षा करने में प्रान्तीय सरकारों ने सबसे अधिक भेदभाव दिखाया है।

कार्य–समिति यह महसूस करते हुए कोई सहायता नहीं कर सकती कि बहुसंख्यक समुदाय का कार्य इस शक के दायरे से बाहर नहीं जा सकता कि हिन्दू समुदाय को शक्ति मिलने पर उस पर कैसे विश्वास किया जा सकेगा कि यदि बहुसंख्यक वर्ग अपनी नैतिकता में सुधार नहीं लाता है, तो अनुसूचित जातियों को अपनी सुरक्षा के लिए कोई भी रास्ता अपनाने के लिए बाध्य होना पड़ेगा''।

1ःजय भीम, दिनांक 11 एवं 18 जून, 1946

13

ब्रिटिश केबिनेट की योजना पर प्रतिक्रियाएं डॉ. अम्बेडकर का चर्चिल को विरोध

केबिनेट मिशन ने 16 मई, 1946 को ''राज्य–पत्र'' प्रकाशित किया, जिसमें अछूतों की सुरक्षा के लिए कोई उपबंध नहीं किया गया था। डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने इसे गंभीरता से लिया और इस मामले में हस्तक्षेप के लिए श्री चर्चिल को पत्र लिखा। डॉ. अम्बेडकर के पत्र के उत्तर में, श्री चर्चिल ने सकारात्मकता दिखाई। डॉ. भीमराव अम्बेडकर द्वारा लिखा गया पत्र निम्नानुसार है–

''श्री विंस्टन चर्चिल ने आशाजनक रूप से अमेरिकी स्वतंत्रता की घोषणा का दृष्टांत देते हुए कहा कि कंजर्वेटिव पार्टी'' भारत के 6 करोड़ अछूतों के भविष्य की सुरक्षा के लिए अपना सर्वश्रेष्ठ प्रयास करेगी।

''वॉयसराय की कार्यकारी परिषद के सदस्य डॉ. भीमराव अम्बेडकर से मिले विरोध पत्र के उत्तर में, कि स्वतंत्र भारतीय सरकार के लिए केबिनेट मिशन के प्रस्ताव अछूतों के लिए एक शर्मनाक विश्वासघात की तरह थे,'' विपक्ष के नेता ने एक तार संदेश के माध्यम से डॉ. अम्बेडकर को बतायाः ''हम अमेरिकी स्वतंत्रता की घोषणा में तय व्यापक सिद्धांतों पर अपना रुख कायम रखेंगे कि सभी व्यक्ति स्वतंत्र और समान पैदा होते हैं तथा उन्हें जीवन जीने, स्वतंत्र रहने और प्रसन्न रहने का अधिकार है।''

डॉ. अम्बेडकर के संदेश का उद्धरण इस प्रकार हैः

''केबिनेट मिशन के प्रस्ताव 6 करोड़ अछूतों के प्रति एक शर्मनाक विश्वासघात है। संविधान सभा में कोई प्रतिनिधित्व नहीं, सलाहकार, समिति में कोई प्रतिनिधित्व नहीं, संधि के द्वारा कोई सुरक्षा नहीं, अर्थात् इसका अभिप्राय होगा अछूतों के हाथ और पैर बांध दिए जाना। भारत का प्रत्येक अछूत नागरिक संसद में दिए गए आपके भाषण के लिए आपका आभारी है। अछूतों का भविष्य बहुत अंधकारमय है। हम उनके हितों की सुरक्षा के लिए आप पर निर्भर हैं।''

श्री चर्चिल ने उत्तर दिया कि ''आप निश्चिन्त हो सकते हैं कि कन्जर्वेटिव पार्टी 6 करोड़ अछूतों के भविष्य की रक्षा के लिए अपने सर्वश्रेष्ठ प्रयास करेगी, जिसका उनके समान धर्मावलंबियों द्वारा दुखदायी अवसाद माना जाना भारतीय उप–महाद्वीप की समस्याओं का एक गंभीरतम कारक है। हम अमेरिकी स्वतंत्रता की घोषणा में तय व्यापक सिद्धांतों पर अपना रुख कायम रखेंगे कि सभी व्यक्ति स्वतंत्र और समान पैदा होते हैं तथा उन्हें जीवन जीने, स्वतंत्र रहने और प्रसन्न रहने का अधिकार है''।

1: जय भीम, दिनांक 18 जून, 1946

14

मैं अनुसूचित जाति के अधिकारों के लिए लड़ रहा हूं प्रधानमंत्री एटली को लंदन भेजा गया तार संदेश

केबिनेट मिशन ने भारत की अंतरिम सरकार में अनुसूचित जातियों को अपर्याप्त प्रतिनिधित्व दिए जाने की सिफारिश की थी। डॉ. भीवराव अम्बेडकर द्वारा ग्रेट ब्रिटेन के तत्कालीन प्रधानमंत्री मिस्टर एटली को भेजा गया तार संदेश।

पिछले वर्ष आयोजित शिमला सम्मेलन में मेरे विरोध करने पर वॉयसराय ने होम गर्वन्मेंट की सहमति से यह वायदा किया था कि अंतरिम सरकार की 14 सीटों की परिषद में से 2 सीटें अनुसूचित जाति को दी जाएंगी, जबकि मैंने तीन की मांग की थी किन्तु मैंने 2 सीटें स्वीकार कर लीं। कल अपने नए प्रस्तावों में अंतरिम सरकार ने घोषणा की कि अनुसूचित जाति को केवल एक सीट दी जाएगी। विचार–विमर्श के बाद एतर्द् द्वारा किए गए वचन के बाद यह उस वचन का उल्लंघन है। केवल एक सीट बहुत बड़ा अन्याय होगा, जबकि मिशन प्रतिनिधित्व के मामले में 6 करोड़ अछूतों को चालीस लाख सिक्खों और तीस लाख ईसाईयों के बराबर मानकर व्यवहार कर रहा है। अनुसूचित जाति का नामित, अनुसूचित जाति का प्रतिनिधित्व नहीं करता, क्योंकि वह पूर्णतया हिन्दू मतों द्वारा चुना जाता है और वह कांग्रेस की देन होता है। एक अनुसूचित जाति का कांग्रेसी अनुसूचित जाति का प्रतिनिधि नहीं है। यह कांग्रेस का प्रतिनिधित्व करता है। केबिनेट मिशन अनुसूचित जातियों पर एक के बाद एक गलतियां थोपे जा रहा है, जिससे वह कांग्रेस की कृतज्ञता तले दबी जा रही हैं और देश के सार्वजनिक जीवन में अपनी स्वतंत्र हैसियत को नष्ट कर रही हैं। कृपया इसमें हस्तक्षेप करें और गलती को सुधारते हुए मिशन को अनुसूचित जातियों के संघ के नामांकित व्यक्तियों द्वारा दो सीटें भरने के निर्देश दें, जैसा कि मिशन को ज्ञात है कि तभी अनुसूचित जातियों का प्रतिनिधित्व हो सकता है। अनुसूचित जातियां दो अन्यथा शून्य सीटें देने का आग्रह करती हैं। मेरे उद्देश्य को आप गलत न समझें इससे बचने के लिए मैं बताना चाहूंगा कि अंतरिम सरकार में शामिल होने की मेरी कोई इच्छा नहीं है और मैं इससे बाहर ही रहूंगा। मैं अनुसूचित जाति के अधिकारों के लिए संघर्ष कर रहा हूं। उम्मीद करता हूं कि ब्रिटिश सरकार में न्याय की कुछ समझ अवश्य होगी।

......डॉ. अम्बेडकर

दिनांकः 17–06–1946

डॉ. भीम राव अम्बेडकर
22, पृथ्वी राज रोड़
नई दिल्ली।

15

क्या भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस भारत के अछूतों का प्रतिनिधित्व करती है?

चूंकि केबिनेट मिशन ने अपने प्रस्ताव में अछूतों को समुचित प्रतिनिधित्व और सुरक्षा उपलब्ध नहीं कराई है, डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने तार संदेश भेजे जाने के तत्काल बाद मि. एटली, मि. चर्चिल और लेबर पार्टी के अन्य नेताओं को एक ज्ञापन भेजा है। इस ज्ञापन का पाठ इस प्रकार है– सम्पादक मंडल

भारतीय संविधान में बदलावों के प्रस्तावों का जिनसे अनूसूचित जातियां प्रभावित होती हैं। आलोचनात्मक विवरण

(अस्पृश्य)

सौजन्य

डॉ. भीमराव अम्बेडकर

भारत में राजनैतिक गतिरोध के हल के लिए लेबर पार्टी की सरकार ने इस वर्ष के आरंभ में केबिनेट मिशन को भारत भेजा, जिसने एक संविधान सभा द्वारा संविधान के निर्माण के लिए एक योजना तय की। इस संविधान सभा में शामिल प्रतिनिधि एक एकल हस्तांतरणीय वोट के माध्यम से प्रान्तीय विधान सभाओं के सदस्यों द्वारा चुने जाने थे। संविधान सभा के गठन के उद्देश्य से केबिनेट मिशन की योजना ने प्रान्तीय विधान सभाओं को तीन श्रेणियों में बांट दिया (1) मुस्लिम (2) सिक्ख और (3) सामान्य, जिसमें प्रत्येक के लिए सींटे निर्धारित थीं। प्रत्येक श्रेणी का पृथक निर्वाचन क्षेत्र है, जबकि संविधान सभा के मुस्लिम प्रतिनिधि प्रान्तीय विधान सभाओं के मुस्लिम सदस्यों द्वारा चुने जाएंगें, सिक्ख प्रतिनिधि सिक्ख सदस्यों द्वारा और सामान्य प्रतिनिधि शेष सदस्यों द्वारा चुने जाएंगे। सामान्य श्रेणी में (1) हिन्दू, (2) अनुसूचित जातियां, (3) भारतीय ईसाई, और (4) एंग्लो–इंडियन शामिल हैं।

2. भारत की अनुसूचित जातियों को यह देखकर बहुत आश्चर्य हुआ कि उन्हें हिन्दुओं के साथ मिला दिया गया है। हिज मेजेस्टी की सरकार द्वारा बार–बार यह घोषणा की

गई है कि हिज मेजेस्टी की सरकार यह मानती है कि अनुसूचित जातियां भारत के राष्ट्रीय जीवन का एक अलग तत्व हैं और हिज मेजेस्टी की सरकार ऐसा कोई संविधान लागू नहीं करेगी, जिसके लिए अनुसूचित जातियां इच्छुक नहीं होंगी। यह प्रश्न पूछा जाता है कि केबिनेट मिशन ने मुस्लिमों और सिक्खों को अलग तत्व क्यों माना और अनुसूचित जातियों को समान स्थिति में रखने के लिए उसने क्यों मना कर दिया?

केबिनेट मिशन के प्रस्तावों पर 18 जुलाई, 1946 को संसद में हुई बहस में सर स्टेफॉर्ड क्रिप्स, श्री अलेक्जेंडर और लॉर्ड पैथिक–लॉरेन्स ने अपने आपको इस आलोचना से बचाने का प्रयास किया। बहस के दो मुद्दे थेः–

(1) कि, फरवरी के अंत में संपन्न प्रांतीय विधान सभा चुनावों में अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षित सीटों पर कांग्रेस ने कब्जा कर लिया, जिससे यह प्रतीत होता है कि अनुसूचित जातियां कांग्रेस के साथ थीं और वे कांग्रेस अर्थात् हिन्दुओं को ही अपना भाग्य मानने लगी थीं और यह भी कि उन्हें अलग करने का कोई आधार नहीं था।

(2) कि, अल्पसंख्यकों के लिए एक सलाहकार समिति होनी चाहिए, जिसमें अनुसूचित जातियों का प्रतिनिधित्व होगा और वे अपने लिए आवश्यक रक्षोपाय तैयार करने के लिए आवाज उठा सकेंगे।

दूसरी प्रतिरक्षा अनुपायोगी से भी बेकार थी। कारण स्पष्ट हैं। सलाहकार समिति की प्रास्थिति और शक्तियों को पारिभाषित नहीं किया गया है। अनुसूचित जातियों के प्रतिनिधित्व की निर्धारित संख्या का उल्लेख नहीं किया गया है। सलाहकार समिति के निर्णय लागू करने का अधिकार बहुमत को है। और समिति संविधान सभा की छवि मात्र के अलावा और कुछ नहीं हो सकती। संविधान सभा में अनुसूचित जाति से संबंधित सभी प्रतिनिधि कांग्रेस दल के हैं और वे अनुसूचित जातियों का प्रतिनिधित्व नहीं करते। अतः, वे कांग्रेस दल के आदेश पर निर्भर हैं। उनमें से जिन्हें सलाहकार समिति में लिया जाएगा, वे भी दल के आदेश पर निर्भर होंगे। वे अनुसूचित जातियों के वास्तविक विचारों को न तो संविधान सभा में और न ही सलाहकार समिति में रख सकेंगे।

केबिनेट मिशन के सदस्यों द्वारा अनुसूचित जातियों को पृथक और स्वतंत्र प्रतिनिधित्व देने में विफलता के औचित्य के लिए इस मुद्दे को मुख्य रुप से इस्तेमाल किया गया कि पिछले चुनाव में अनुसूचित जाति की सीटें कांग्रेस ने जीती थीं। तो भी उनके बचाव में यह बात काफी नहीं है। यह सत्य है कि अंतिम चुनाव में कांग्रेस ने अनुसूचित जाति की सीटों पर कब्जा किया था। किन्तु उत्तर यह है कि इस चुनाव के परिणाम विभिन्न कारणों की परीक्षा के तौर पर लिए जाने चाहिए।

सर्वप्रथम, पार्टियां, जैसे अनुसूचित जातियां, जिन्होंने ब्रिटिश सरकार के साथ सहयोग किया था, अन्य लोगों की तुलना में घाटे में थीं।

दूसरे, इंडियन नेशनल आर्मी का मुकदमा चुनाव के साथ ही शुरू हो गया जिससे कांग्रेस लाभ की स्थिति में रही और अन्य दलों को नुकसान हुआ। यदि इंडियन नेशनल आर्मी का मुकदमा चुनाव के समय आरंभ न हुआ होता तो कांग्रेस का अपना स्टॉक इतना कम था, कि वह चुनाव पूरी तरह से हार जाती।

इन दो कारणों के अलावा, चुनाव परिणामों को परीक्षण के तौर पर क्यों नहीं लिया गया, इसका एक विशेष कारण है, इसका उपयोग यह जानने के लिए क्यों नहीं किया गया कि क्या कांग्रेस ने अनुसूचित जातियों का प्रतिनिधित्व किया अथवा नहीं। वह कारण ऐसा है कि अनुसूचित जातियों की सीटों को संयुक्त निर्वाचन क्षेत्रों में, जहां हिन्दू भी मत देते हैं, को अंतिम रूप से महत्व देता। हिन्दू मत प्रभावशाली होने के कारण कांग्रेस के लिए आसान है कि वह अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित सीटों पर चुनाव लड़ने वाले अनुसूचित जाति के उम्मीदवार को पूरी तरह हिन्दू मतों से जिता दे। प्रान्तीय विधान सभा के चुनावों में कांग्रेस के टिकट पर खड़े हुए अनुसूचित जाति उम्मीदवार, हिन्दू मतों के द्वारा विजयी हुए, न कि अनुसूचित जातियों के मतों से यह एक ऐसा तथ्य है, जिसे केबिनेट मिशन भी मना करने को सक्षम नहीं हो पाएगा।

असली परीक्षा, जिसमें यह पता लगाया जा सके कि क्या कांग्रेस अनुसूचित जातियों का प्रतिनिधित्व करती है, प्रारंभिक चुनावों के परिणामों की जांच के द्वारा होगी, जिसके उपरांत अंतिम चुनाव हुए, प्रारंभिक चुनावों में अनुसूचित जातियों के लिए पृथक निर्वाचन क्षेत्र थे, जिनमें हिन्दुओं को मत डालने का कोई अधिकार नहीं है। अतः प्रारंभिक चुनाव अनुसूचित जातियों की सच्ची भावनाओं को प्रदर्शित करते हैं। प्रारंभिक चुनावों का परिणाम क्या दर्शाता है? क्या यह दर्शाता है कि अनुसूचित जातियां कांग्रेस के साथ हैं?

अनुसूचित जातियों को प्रान्तीय विधान मंडलों में 151 सीटें आवंटित की गई थीं। इन सीटों को सिंध और उत्तर–पश्चिम सीमांत प्रांतों के अलावा विभिन्न प्रान्तों में बांटा गया है।

प्रारंभिक चुनाव बाध्यकारी नहीं है। यह तभी बाध्यकारी होते हैं जब एक सीट पर चार से अधिक उम्मीदवार खड़े हों। पिछले प्रारंभिक चुनावों में, जिनके बाद अंतिम चुनाव हुए, 151 चुनाव क्षेत्रों में से 40 बाध्यकारी बने।

उन्हें निम्नानुसार बांटा गया था:–

मद्रास	10
बम्बई	03

बंगाल	12
संयुक्त प्रांत	03
मध्य प्रांत	05
पंजाब	07

बिहार और उड़ीसा के प्रांतों में कोई प्रारंभिक चुनाव नहीं हुए।

40 चुनाव क्षेत्रों में हुए प्रारंभिक चुनावों के परिणाम इस के टिप्पणी के साथ संलग्न परिशिष्ट में तालिकाबद्ध किए गए हैं। परिणामों ने सिद्ध कर दियाः

(i) कि 283 उम्मीदवारों में से कांग्रेस ने अपने टिकट पर केवल 46 उम्मीदवार खड़े किए (तालिका I देखें) और 168 सफल उम्मीदवारों में से इसकी ओर से केवल 38 उम्मीदवार जीत सके (तालिका V देखें)।

(ii) प्रारंभिक चुनावों में भाग लेने वाले किसी दल का उद्देश्य अंतिम चुनाव में अपने दल के टिकट पर कम से कम चार उम्मीदवारों को खड़ा करके अपने सभी विरोधी दलों को बाहर का रास्ता दिखाना रहता है। क्या कोई दल अपने टिकट पर चार उम्मीदवारों को खड़ा कर सकता है, यह इस बात पर निर्भर करता है कि उसे अपने मतदाताओं पर कितना विश्वास है, कि वे उसके दल को ही मत देंगे। कांग्रेस ने प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में एक से अधिक उम्मीदवार खड़ा करने का साहस नहीं दिखाया। यह दर्शाता है कि कांग्रेस को विश्वास नहीं था कि अनुसूचित जातियों के मतदाता कांग्रेसी उम्मीदवार को वोट देंगे। यदि किसी दल ने एक निर्वाचन क्षेत्र में चार उम्मीदवार खड़े करने का साहस दिखाया, वह अनुसूचित जाति संघ है। (तालिका–II, भाग–I, V, स्तभ 3 एवं 4 देखें)।

(iii) कांग्रेस के पक्ष में पड़े मतों की संख्या देखी जाए, तो बिना किसी विवाद के यह सिद्ध हो जाता है कि प्रारंभिक चुनावों में पड़े कुल वोटों में से कांग्रेस ने केवल 28% मत प्राप्त किए (तालिका IV देखें)।

(iv) यदि किसी व्यक्ति को अंतिम चुनाव में हिन्दू मतों को मदद से जीतने का लालच नहीं होता तो सभी स्वतंत्र उम्मीदवार अनुसूचित जाति संघ के ही सदस्य होते। इस अनुमान की कि केवल अनुसूचित जाति संघ ही ऐसा दल है जो अनुसूचित जातियों को प्रतिनिधित्व करता है, गैर–कांग्रेसी दलों के पक्ष में पड़े 72% मत इस आशय की पुष्टि करेंगे (तालिका IV देखें)।

केबिनेट मिशन के सदस्यों ने बहस की कि डॉ. अम्बेडकर की प्रसिद्धि केवल बम्बई प्रेसिडेंसी और मध्य प्रांतों की अनुसूचित जातियों तक ही सीमित है।

इस बयान का कोई आधार नहीं है। अनुसूचित जाति संघ अन्य प्रान्तों में भी अपना कार्य उसी प्रकार कर रहा है और उसने बम्बई और मध्य प्रातों की भांति ही अन्य स्थानों पर भी उल्लेखनीय चुनावी सफलताएं हासिल की हैं। यह बयान देते हुए मिशन डॉ. अम्बेडकर द्वारा संविधान सभा के चुनाव में उनकी अकेली विजय पर विचार करने में असफल रहा। वह बंगाल प्रान्तीय विधान सभा के उम्मीदवार के रूप में खड़े हुए। उन्होंने प्राथमिक पसंद वाले 7 मत अपने हक में प्राप्त किए और चुनाव में, जहां तक सामान्य सीटों का संबंध था, सर्वाधिक वोट प्राप्त किए, यहां तक कि उन्होंने कांग्रेस दल के नेता श्री शरत चन्द्र बोस को भी पराजित कर दिया था। यदि बम्बई और मध्य प्रातों के बाहर डॉ. अम्बेडकर का प्रभाव नहीं है, तो वे बंगाल से कैसे चुने गए? यह भी याद रखा जाए कि बंगाल प्रान्तीय विधान सभा की 30 सीटें अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित हैं। इन 30 में से कुल मिलाकर 28 सदस्य कांग्रेस के टिकट पर चुने गए थे। 2 सदस्य इनके दल के थे, जिनमें से एक चुनाव के दिन बीमार पड़ गया था। इसका अर्थ यह हुआ कि कांग्रेस के टिकट पर जीते अनुसूचित जाति के 6 सदस्यों ने कांग्रेस के आज्ञापत्र का विरोध किया और डॉ. अम्बेडकर के पक्ष में वोट दिया। इससे यह परिलक्षित होता है कि कांग्रेस से संबद्ध अनुसूचित जाति के ये सदस्य अनुसूचित जाति के नेता के रूप में डॉ. अम्बेडकर का सम्मान करते हैं। यह तथ्य मिशन के बयान को पूरी तरह झुठलाता है। कांग्रेस मिशन के आत्मसमर्पण से इतनी उत्साहित है कि मिशन को संबोधित अपने एक पत्र में कांग्रेस ने अनुसूचित जातियों को अल्पसंख्यक मानने से ही मना कर दिया है। इसका यह अभिप्राय है कि कांग्रेस अनुसूचित जातियों को वे रक्षोपाय प्रदान किए जाने को तैयार नहीं है, जैसा वह अन्य अल्पसंख्यकों के मामले में तैयार है। मिशन ने कांग्रेस के इस सुझाव का खण्डन किया है। इसमें एक बहुत बड़ी आशंका छिपी है और बहस के दौरान मिशन के विचारों का ठीक–ठीक पता लगाना तथा उन्हें बाध्य करना आवश्यक है कि क्या वे अनुसूचित जातियों को अल्पसंख्यक मानते हैं अथवा नहीं।

अपने प्रस्तावों में मिशन ने कहा है कि सत्ता के हस्तांतरण से पहले संसद को यह स्वयं सुनिश्चित करना होगा कि अल्पसंख्यकों के लिए प्रदत्त रक्षोपाय पर्याप्त हैं। मिशन ने कहीं भी इन रक्षापायों की जांच के लिए किसी तंत्र का उल्लेख नहीं किया है। क्या संसद के दोनों सदनों की संयुक्त समिति अल्पसंख्यकों के रक्षोपायों की जांच करेगी, इस बारे में कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है। मिशन ने यह उल्लेख तक नहीं किया है कि हिज मेजेस्टी की सरकार रक्षापायों की पर्याप्तता के अपने निष्कर्षों पर पहुंचने के लिए अपने स्वतंत्र निर्णय का उपयोग करेगी। इन मुद्दों को स्पष्ट करना आवश्यक है, क्योंकि यह उपबंध मिशन द्वारा बाद में सोचा गया और यह उसके मूल प्रस्तावों का हिस्सा नहीं था, जिससे यह लगता है कि इसका आशय केवल अल्पसंख्यकों की गतिविधियों को रोकना मात्र था।

भारत के प्रान्तीय विधान मंडलों में अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षित सीटों पर अनुसूचित जातियों (अछूतों) से उम्मीदवार चुने जाने हेतु दिसंबर, 1945 में

(भारत में फरवरी 1946 के आम चुनावों से पहले संपन्न प्रारंभिक चुनाव)

संपन्न प्रारंभिक चुनावों के परिणामों का विश्लेषण

टिप्पण: इस विश्लेषण में तालिकाएं शासकीय आंकड़ों के आधार पर तैयार की गई हैं।

तालिका–I

अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षित सीटों पर चुनाव में हिस्सा लेने वाले दलों का प्रान्त–वार विवरण

क्रम सं.	दल का नाम जिसने प्रारंभिक चुनावों में अपने उम्मीदवार खड़े किए	प्रत्येक दल द्वारा खड़े किए गए उम्मीदवारें की संख्या						सभी प्रान्तों में दलों द्वारा खड़े किए गए उम्मीदवारों की कुल संख्या
		मद्रास	बम्बई	बंगाल	संयुक्त प्रांत	मध्य प्रांत	पंजाब	
1.	कांग्रेस	10	3	13	11	5	4	40
2.	अनुसूचित जाति संघ	35	6	8	9	12	कोई नही	70
3.	हरिजन लीग	कोई	कोई	कोई	1	3	कोई	4
4.	आज़ाद उम्मीदवार	नहीं 5	नहीं 9	नहीं 76	3	8	नहीं 52	153
5.	(किसी दल से संबद्ध नहीं) हिन्दू महासभा	कोई	कोई	1	1	कोई	कोई	2
6.	कम्यूनिस्ट	नहीं 6	नहीं कोई	1	कोई नहीं	नहीं कोई	कोई	7
7.	रेडिकल डेमोक्रेटिक पार्टी	कोई नहीं	कोई नहीं	1	कोई नहीं	नहीं कोई	नहीं कोई	1
कुल	56	18	100	25	28	56	283	

तालिका–II

अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षित सीटों पर चुनाव में हिस्सा लेने वाले दलों का निर्वाचन–क्षेत्रवार विवरण भाग– मद्रास

भाग–I मद्रास

क्रम सं.	जिन निर्वाचन क्षेत्रों में प्रारंभिक चुनाव हुए	चुनाव में भाग लेने वाले कुल उम्मीदवार	जिन दलों ने चुनाव–लड़ा और प्रत्येक द्वारा खड़े किए गए उम्मीदवारों की संख्या			
			कांग्रेस	अनुसूचित जाति संघ	कम्यूनिस्ट	किसी दल से संबद्ध नहीं (आजाद)
1.	अमलापुरम	7	1	4	2	कोई नहीं
2.	कोकोनाडा	5	1	4	कोई नहीं	कोई नहीं
3.	बांदर	5	1	1	कोई नहीं	कोई नहीं
4.	कुडप्पाह	5	1	4	3	कोई नहीं
5.	चेनुकोण्डा	5	1	4	कोई नहीं	कोई नहीं
6.	तिरुवन्नामाली	6	1	5	कोई नहीं	कोई नहीं
7.	टिंडीवरम	6	1	5	कोई नहीं	कोई नहीं
8.	मन्नारगुडी	5	1	कोई नहीं	1	3
9.	पोइलाची	7	1	4	कोई नहीं	2
10.	नम्माकल	5	1	4	कोई नहीं	कोई नहीं
कुल	56	10	35	6	5	

भाग–II बम्बई

जिन निर्वाचन क्षेत्रों में प्रारंभिक चुनाव हुए	चुनाव में भाग लेने वाले कुल उम्मीदवार	जिन दलों ने चुनाव लड़ा और प्रत्येक द्वारा खड़े किए गए उम्मीदवारें की संख्या		
		कांग्रेस	अनुसूचित जाति संघ	किसी दल से संबद्ध नहीं (आज़ाद)
बम्बई सिटी (नार्थ)	7	1	1	5
बम्बई सिटी (भाग्यखला एवं परेल)	6	1	1	4
पूर्व खानदेश (पूर्व)	5	1	4	कोई नहीं
कुल	18	3	6	9

तालिका II
भाग III——बंगाल

क्रम सं.	जिन निर्वाचन क्षेत्रों में प्रारंभिक चुनाव हुए	चुनाव में भाग लेने वाले कुल उम्मीदवार	जिन दलों ने चुनाव लड़ा और प्रत्येक द्वारा खड़े किए गए उम्मीदवार					
			कांग्रेस	अनुसूचित जाति संघ	हिंदू महासभा	किसी दल से संबद्ध नहीं (आज़ाद)	कम्यूनिस्ट	रेडिकल डेमोक्रेटिक पार्टी
1.	हुगली	5	1	कोई नहीं	कोई नहीं	3	कोई नहीं	1
2.	हवड़ा	7	3	कोई नहीं	कोई नहीं	4	कोई नहीं	कोई नहीं
3.	नाडिया	12	1	कोई नहीं	कोई नहीं	11	कोई नहीं	कोई नहीं
4.	जेसोर	7	1	2	कोई नहीं	4	कोई नहीं	कोई नहीं
5.	खुलना	11	कोई नहीं	कोई नहीं	कोई नहीं	11	कोई नहीं	कोई नहीं
6.	दिनाजपुर	16	2	कोई नहीं	कोई नहीं	13	1	कोई नहीं
7.	बोगरा	6	1	कोई नहीं	कोई नहीं	5	कोई नहीं	कोई नहीं
8.	मेमानसिंग	7	1	कोई नहीं	कोई नहीं	6	कोई नहीं	कोई नहीं
9.	फरीदपुर	18	2	3	कोई नहीं	13	कोई नहीं	कोई नहीं
10.	बाकरगंज	6	कोई नहीं	3	1	2	कोई नहीं	कोई नहीं
11.	टिपेरा	5	1	कोई नहीं	कोई नहीं	4	कोई नहीं	कोई नहीं
कुल	100	13	8				1	1

तालिका–II
भाग– संयुक्त प्रांत

जिन निर्वाचन क्षेत्रों में प्रारंभिक चुनाव हुए	चुनाव में भाग लेने वाले कुल उम्मीदवार	जिन दलों ने चुनाव लड़ा और प्रत्येक द्वारा खड़े किए गए उम्मीदवारों की संख्या				
		कांग्रेस	अनुसूचित जाति संघ	हरिजन लीग	हिंदू महासभा	किसी दल से संबद्ध नहीं (आज़ाद)
आगरा शहर	11	1	5	1	1	3
इलाहबाद शहर	6	1	4	कोई नहीं	कोई नहीं	3
अल्मोड़	8	3	कोई नहीं	कोई नहीं	कोई नहीं	3
कुल	25	5	9	1	1	9

भाग–V मध्य प्रांत

जिन निर्वाचन क्षेत्रों में प्रारंभिक चुनाव हुए	चुनाव में भाग लेने वाले कुल उम्मीदवार	जिन दलों ने चुनाव लड़ा और प्रत्येक द्वारा खड़े किए गए उम्मीदवारों की संख्या			
		कांग्रेस	अनुसूचित जाति संघ	कम्यूनिस्ट	किसी दल से संबद्ध नहीं (आज़ाद)
नागपुर–सह–सकोली	5	1	2	1	1
हिंगनघाट	6	1		1	2
भांदरा	5	1	3	1	कोई नहीं
येतमल	6	1	2	कोई नहीं	3
चिखली	6	1	3	कोई नहीं	2
कुल	28	5	12	3	8

भाग–VI पंजाब

जिन निर्वाचन क्षेत्रों में प्रारंभिक चुनाव हुए	चुनाव में भाग लेने वाले कुल उम्मीदवार	जिन दलों ने चुनाव लड़ा और प्रत्येक द्वारा खड़े किए गए उम्मीदवारों की संख्या		
		कांग्रेस	यूनियनिस्ट	किसी दल से संबद्ध नहीं (आज़ाद)
गुड़गांव	10	कोई नहीं	1	9
करनाल	10	1	कोई	9
अंबाला	8	कोई नहीं	कोई नहीं	8
होशियारपुर	9	1	1	7
जलंधर	6	1	1	4
लुधियाना	10	1	कोई नहीं	9
लायलपुर	6	कोई नहीं	कोई नहीं	6
कुल	59	4	3	52

तालिका–III

विभिन्न दलों, जिन्होंने प्रारंभिक चुनावों में हिस्सा लिया, द्वारा प्रान्त–वार प्राप्त मतों की स्थिति

क्रम सं.	दल का नाम	प्रत्येक दल द्वारा प्राप्त मत											
		मद्रास		बम्बई		बंगाल		संयुक्त प्रांत		मध्य प्रांत		पंजाब	
		कुल	प्रति	कुल	प्रति	कुल	प्रति	कुल	प्रति	कुल	प्रति	कुल	प्रति
1.	कांग्रेस	27,838	33	5,333	14	56,848	32.7	4,101	41.8	1,131	10.7	8,298	17.6
2.	अनुसूचित जाति संघ	30,199	36	28,489	74	21,129	12.2	3,093	30.5	8,685	82.8	शून्य	53
3.	आज़ाद	4,648	4.5	3,814	10	83,869	47	1,773	18.8	551		24,618	
4.	हरिजन लीग	शून्य		शून्य		शून्य		370		113		शून्य	
5.	हिन्दू महासभा	शून्य		शून्य		760		452		शून्य		शून्य	
6.	यूनियनिस्ट	शून्य		शून्य		शून्य		शून्य		शून्य		13,521	
7.	कम्यूनिस्ट	20,814	25	शून्य	10,049		5.8	शून्य		शून्य		शून्य	
कुल		83,499		37,636		1,72,655		9,789		10,480		46,437	

तालिका–IV

संपूर्ण भारत में प्रारंभिक चुनावों में पड़े कुल मतों का वितरण तथा कांग्रेस और गैर–कांग्रेसी दलों के बीच उनका वितरण

प्रारंभिक	कांग्रेसी दलों के पक्ष में				गैर–कांग्रेसी दलों के पक्ष में							
चुनावों में संपूर्ण भारत में पड़े कुल मत	कांग्रेस	हरिजन लीग	कुल	प्रतिशत	अनुसूचित जाति संघ	आज़ाद	हिंदू महा सभा	कम्यूनिस्ट	यूनियनिस्ट	रेडिकल डेमोक्रेटिक पार्टी	कुल	प्रति.
3,59,532	1,03,449	483	1,03,932	28	91,595	1,19,273	1,212	30,863	13,521	136	2,56,600	72

तालिका—V

विभिन्न प्रांतों में प्रारंभिक चुनावों में सफल हुए उम्मीदवारों की संख्या उनके संबंधित दलों के अनुसार वर्गीकरण

क्रम स.	दल का नाम	मद्रास	बम्बई	बंगाल	संयुक्त प्रांत	मध्य प्रांत	पंजाब	कुल
1.	कांग्रेस	10	3	12	4	5	4	38
2.	अनुसूचित जाति संघ	24	5	6	5	11		51
3.	आज़ाद	3	4	36	2	3	21	69
4.	हिंदू महासभा	कोई नहीं	कोई नहीं	1	1	1	कोई नहीं	3
5.	हरिजन लीग	कोई नहीं	कोई नहीं	कोई नहीं	कोई नहीं	कोई नहीं	कोई नहीं	कोई नहीं
6.	कम्यूनिस्ट	3	कोई नहीं	1	कोई नहीं	कोई नहीं	कोई नहीं	4
7.	रेडिकल डेमोक्रेटिक पार्टी	कोई नहीं	कोई नहीं	कोई नहीं	कोई नहीं	कोई नहीं	कोई नहीं	कोई नहीं
8.	यूनियनिस्ट	कोई नहीं	कोई नहीं	कोई नहीं	कोई नहीं	कोई नहीं	कोई नहीं	3
	कुल	40	12	56	12	20	28	168

16

किसी अन्य की तुलना में, मैं बड़ा राष्ट्रवादी हूँ

डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर ने अब अपने लोगों का आहान किया है कि वे न्याय और मानवता के हित में युद्ध के लिए उठ खड़े हों, और अपने लोगों के अधिकारों के विरोध में होने वाली चालबाजियों और षड़यंत्रों को उजागर करें। वे जानते हैं कि अपने लोगों के अधिकारों और इच्छा के लिए दावा करने का यह अंतिम अवसर था। उन्हें डर था कि स्वतंत्र भारत में पुरानी परंपराएं बदल सकती हैं, और उनके लोग कंगाल हो जाएंगे, उन्हें नकार दिया जाएगा और वे समाज तथा लोक सेवाओं से बहिष्कृत कर दिए जाएंगे।

29 जून 1946 को एक कामचलाऊ सरकार की घोषणा की गई और ब्रिटिश मिशन लंदन लौट गया, और अन्य कामकाज वॉयसराय के द्वारा निपटाने के लिए छोड़ गया।

15 जुलाई, 1946 को पूना में संग्राम की शुरूआत हुई, उसी समय बम्बई विधान सभा के पूना सत्र की शुरूआत हुई। 17 जुलाई, 1946 को ए.पी.ए. के साथ हुए अपने एक साक्षात्कार में डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर ने कहा था, "हम चाहते हैं कि यह देश उतनी ही प्रगति करे, जैसा कोई अन्य देश करता है। हम उसका रास्ता अवरुद्ध नहीं करना चाहते। हम मात्र यह चाहते हैं कि भावी भारत में हमारी स्थिति को सुरक्षा प्रदान की जाए"।

"इसे प्राप्त करने के लिए हम 16 मई के ब्रिटिश प्रस्तावों के विरुद्ध होने वाले प्रत्येक संघर्ष में हिस्सा लेंगे। यदि मुस्लिम लीग अंग्रेजों के विरुद्ध कोई सीधा संघर्ष शुरु करती है– तो मैं इस समय सिक्खों द्वारा उठाए गए कदम को पूरी तरह समर्थन दूंगा– फिर इस कार्रवाई में उन्हें भी हमारा समर्थन मिलेगा।"

उन्होंने यह भी चेतावनी दी कि अखिल भारतीय अनुसूचित जाति संघ के प्रतिनिधियों द्वारा पूना में चलाए जा रहे सत्याग्रह आंदोलन का रूप अंततः उसी देशव्यापी संग्राम का रूप धारण कर लेगा "जैसा अगस्त, 1942 में कांग्रेस द्वारा आरंभ किया गया था"।

"हमारे संघर्ष की यह मात्र शुरुआत है," डॉ. अम्बेडकर ने कहाः "जब यह संघर्ष कांग्रेसी आंदोलन का रूप लेने लगेगा, तो हम वही सब कुछ करेंगे जैसा अगस्त की घटनाओं के दौरान कांग्रेस ने किया था।"

"डॉ. अम्बेडकर ने पूना में अनुसूचित जाति द्वारा चलाए जा रहे प्रदर्शनों का उल्लेख करते हुए कहा कि "यह विरोध ब्रिटिश सरकार द्वारा पिछले 28 वर्षों के दौरान अनुसूचित जातियों को दिए गए हर तरह के आश्वासनों को तोड़े जाने के विरुद्ध है।"

"जब तक हमें एक अल्संख्यक वर्ग, जो संविधान में सुरक्षा और रक्षा का पात्र हो, की मान्यता नहीं मिल जाती, यह संघर्ष कहीं और, किसी भिन्न रूप में जारी रहेगा। तब प्रांतों को ब्रिटिश सरकार के अन्यायपूर्ण प्रस्तावों के विरुद्ध देशव्यापी संघर्ष शुरु करना पड़ेगा।"

यह पूछे जाने पर कि क्या उन्होंने प्रांतीय संगठनों को कोई दिशानिर्देश जारी किए हैं? कि अपने प्रदर्शन करने के लिए उन्हें क्या करना चाहिए? डॉ. अम्बेडकर ने उत्तर दियाः "हम यह प्रांतों पर छोड़ देंगे कि वे अपने संघर्ष के लिए कौन सा रास्ता चुनते हैं। इन सब पर सैद्धांतिक रूप से बात नहीं की जा सकती। प्रत्येक प्रांत की अपनी पृष्ठभूमि है और एक प्रांत में संघर्ष का प्रभावी रूप हो सकता है, कि दूसरे प्रांत के लिए उपयुक्त न हो"।

डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि संघ का आशय पूना में संघर्ष जारी रखना था, जिसमें छोटे समूहों को सत्याग्रह के लिए भेजा जाता था। "पूना में बड़े–स्तर के संघर्ष में इस समय राशन की मुख्य समस्या है, डॉ. अम्बेडकर ने आगे कहा, "अन्यथा, हम बहुत बड़े स्तर का प्रदर्शन कर सकते थे"।

यह पूछे जाने पर कि निकट भविष्य में क्या सत्याग्रह किए जाने की उनकी कोई योजना है, अनुसूचित जाति नेता ने कहा, किसी जनरल के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह युद्ध स्थल पर मौजूद रहे। मेरे विश्वासपात्र सहयोगी संघर्ष का काम देखेंगे और जब कभी किसी काम के लिए मेरी आवश्यकता होगी और मेरा संघर्ष में भाग लेना आवश्यक होगा, तो मैं वहां मौजूद हो जाऊंगा।

"इस समय मुझे संघर्ष के बारे में एक व्यक्तिगत संदेशवाहक द्वारा पूना से प्रतिदिन अद्यतन जानकारी भेजी जाती है"।

गांधी की ओर से कोई निमंत्रण नहीं

डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि उन्होंने व्यक्तिगत रूप से ध्यान देने के लिए अस्थाई रूप से रविवार को पूना जाना तय किया था। उन्होंने कहा कि उन्हें समस्या के हल के लिए बातचीत हेतु गांधी जी अथवा किसी अन्य शीर्ष कांग्रेसी से कोई निमंत्रण नहीं मिला था।

उन्होंने आगे कहा कि फिर भी, संघ संबंधित दलों से बातचीत शुरू करना चाहता

है। डॉ. अम्बेडकर ने बताया : मैं यह बात स्पष्ट करना चाहूँगा कि इस देश की अनुसूचित जातियाँ सोचती हैं कि गांधी जी ब्रिटिश केबिनेट के दीर्घावधि प्रस्तावों को स्वीकार करने को मुख्य रूप से इस आधार पर सहमत थे कि ब्रिटिश मंत्री अनुसूचित जातियों की अनदेखा करने को सहमत थे। ऐसा इसलिए है कि उनके संदिग्ध चरित्रा, जिसके बारे में कांग्रेसी नेताओं ने भी हाल ही में काफी कुछ कहा है, के होतेहुए भी गांधी जी ने दीर्घावधि प्रस्तावों में बहुत लाभ देखा। ब्रिटिश सरकार कांग्रेस का विस्त्रास जीतने के लिए अनुसूचित जातियों की कुर्बानी के लिए सहमत हो गई, और उन्होंने दृढ़तापूर्वक स्वीकार किया मैं इसे पूर्णतया विश्वासघात मानता हूँ।

"हम चाहते हैं– यह देश उतनी ही प्रगति करे, जैसा कोई अन्य देश करता है। हम इसका रास्ता अवरूद्ध नहीं करना चाहते है। हम चाहते हैं कि भावी भारत में हमारी स्थिति को सुरक्षा प्रदान की जाए।"

21 जुलाई, 1946 को पूना स्थित अहिल्याश्रम में अछूतों की बैठक का आयोजन किया गया। बैठक के बाद में डॉ. अम्बेडकर ने एक प्रेस सम्मेलन को संबोधित किया। प्रेस सम्मेलन की रिपोर्ट इस प्रकार है– संपादक मंडल

अनुसूचित जातियों का भविश्य कांग्रेस से ब्लू–प्रिंट के लिए कहा गया

डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने आज पूना में एक प्रेस सम्मेलन को संबोधित करते हुए, कांग्रेस से एक खुली घोषणा की माँग की कि भारत के भावी संविधान में 6 करोड़ अछूतों के हितों की रक्षा के लिए उसने क्या प्रस्ताव रखे हैं। उन्होंने ब्लू–प्रिंट जारी करने और साधारण शब्दों में कोई वादे न किए जाने की माँग की।

पुना में शुरू किया गया सत्याग्रह देशव्यापी संघर्ष की एक शुरूआत थी, ताकि अनुसूचित के राजनैतिक अधिकार सुरक्षित किए जा सकें। उन्हांने दावा किया कि पूना कि सत्याग्रह एक उच्च नैतिक तथ्य को लेकर चलाया जा रहा था और स्वयंसेवी लोगों के समस्त समूहों का अहिंसावादी व्यवहार गाँधी जी तक के लिए एक सबक था, जो स्वयं को 'सत्याग्रह में स्नातक' मानते थे। तथापि, उन्होंने एक चेतावनी जारी की कि जब नैतिक संसाधन समापत हो जाएगे तो वे अपना विरोध दर्ज करने के लिए 'अन्य साधन खोजेंगे।'

सत्ता के उत्तराधिकारी"

केबिनेट मिशन ने किया था कि इस देश में ब्रिटिश सत्ता, प्राधिकार और प्रभुसत्ता के उत्तराधिकारी केवल दो समुदाय–मुस्लिम और सवर्ण हिन्दू ही थे प्रस्तावित संविधान सभा में सभी प्रश्नों का केवल सवर्ण हिंदुओं के साधारण बहुमत वाले मतों

के द्वारा निर्णय किया जाना था। अंग्रेजों ने भारत छोड़ने और अपनी शक्तियों को सवर्ण हिन्दुओं और मुस्लिमों को सौंपे जाने का निर्णय ले लिया था। क्या उस समय अनुसूचित जातियां सवर्ण हिन्दुओं से यह पूछने की हकदार नहीं थी कि उन्होंने 6 करोड़ अछूतों की सुरक्षा के लिए क्या प्रस्ताव रखे हैं।

डॉ. अम्बेडकर का दावा था कि बम्बई सरकार और बम्बई विधान सभा कांग्रेस का ही अभिन्न अंग थीं तथा सत्याग्रह का उद्देश्य कांग्रेसी नीति का विरोध करना था।

डॉ. अम्बेडकर ने घोषणा की कि पंजाब और बंगाल जैसे मुस्लिम प्रांतों में सत्याग्रह शुरू करने की उनकी कोई इच्छा नहीं थी क्योंकि "मुस्लिमों से हमारा कोई झगड़ा नहीं है। उन्होंने हमें आश्वस्त किया है कि हमारे हितों की सुरक्षा की जाएगी।"

क्रोध में आकर यह अस्वीकार करते हुए कि सत्याग्रह आंदोलन हताशा से प्रेरित था, डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि पिछले चुनाव में अनुसूचित जाति उम्मीदवारों ने शत–प्रतिशत सींटे जीती थीं। हताशा तो तब होती, यदि अनुसूचित जाति के मतदाताओं ने कांग्रेसी हरिजन उम्मीदवारों को चार प्रतिशत मत भी नहीं दिए थे, जो पूरी तरह सवर्ण हिन्दुओं के मतों से जीते थे। वह हारे नहीं थे। यह उनकी विजय थी कि 90 प्रतिशत अनुसूचित जातियां उनके संघ के साथ थीं।

पूना समझौता

पूना समझौता, जिसने अनुसूचित जातियों के सच्चे प्रतिनिधियों को विधान सभा में लौटने से रोका, समाप्त होना चाहिए। इसके फलस्वरूप 6 करोड़ अछूत नागरिक अधिकारों से वंचित हो गए थे। यहां तक कि अंतर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार इस समझौते की तरह किसी संधि को अंतिम रूप नहीं दिया गया था अथवा वह अनुलंघनीय नहीं बनी थी, जैसा अब पूना समझौता अनुसूचित जातियों के लिए हानिकारक बन चुका था, अतः अनुसूचित जातियां इसके संशोधन के लिए संघर्ष करने की हकदार थीं।

आज सायं बम्बई लौटने से पूर्व, डॉ. अम्बेडकर ने पूना में अनुसूचित जातियों के बहुत बड़ी संख्या में एकत्र लोगों को संबोधित किया, जहां उन्होंने कहा कि संघर्ष जारी रहेगा चाहे उसका अंत कुछ भी हो।

पूना सत्याग्रह के चलते अब तक कम से कम 569 अनुसूचित जाति स्वयंसेवक गिरफ्तार किए गए हैं और उन पर मुकदमा चलाया गया है।

हम न्याय और निष्पक्षता चाहते हैं

आज सायं ''बॉम्बे क्रानिकल'' के प्रतिनिधि के साथ हुई 60 मिनट की वार्ता में डॉ. भीम राव अम्बेडकर, अध्यक्ष, अखिल भारतीय अनुसूचित जाति संघ ने कहा कि उनकी यह धमकी कि उनके तरकश में कई तीर हैं, ''सही'' समय आने पर वे इतना घातक रूप धारण कर लेंगे, कि ''ब्रिटिश सत्ता की उत्तराधिकारी हिन्दू कांग्रेस'' के किले को हिला देंगे।

कोई स्वांग प्रदर्शन नहीं

डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि, ''मैंने अभी तक अपनी पूरी शक्ति नहीं दिखाई। यह कल्पना नहीं करें कि हम पूना में कोई स्वांग कर रहे हैं। यह संघर्ष की केवल शुरुआत है जो दिन–प्रतिदिन उग्र और प्रचण्ड होता जाएगा तथा अंततः पूरे देश को हिला देगा''।

अपनी शक्ति के विवरण का एक नमूना पेश करते हुए उन्होंने उल्लेख किया कि ''उदाहरण के लिए, मैं और मेरे लोग आमरण अनशन तक कर सकते हैं''।

यदि बम्बई शासन ने आवश्यक राशन का वादा किया होता तो लाखों 'सत्याग्रही' पूना जाने के लिए तैयार थे। यह संघर्ष शीघ्र ही अखिल भारतीय संघर्ष का रूप ले लेगा। पूना के प्रदर्शनों ने उनके लोगों की ''अत्यधिक क्षमताओं'' की एक झलक दिखाई।

कांग्रेस का हितकारी

यह कहे जाने पर कि वे कांग्रेस के लिए हितकारी थे, डॉ. अम्बेडकर ने दावा किया कि यह उनके अधिकार क्षेत्र में है कि वे उस संगठन के प्रादुर्भाव को पूर्णतया नकार सकते हैं। उन्होंने दृढ़ता से कहा ''क्या मैं और मेरा समुदाय मुस्लिम धर्म अपनाने का निर्णय नहीं लें सकते? यदि मैं श्री जिन्नाह का धर्म अपना लेता हूं, तो मुझे किसी भी तरह कोई हानि नहीं होगी, और वास्तव में, वे मुझे कार्यकारी परिषद में एक मुस्लिम सदस्य के रूप में नामित कर सकते हैं। मैंने यह तीखा कदम नहीं उठाया है क्योंकि मैं कांग्रेस को पूरी तरह नष्ट होने से बचाना चाहता हूं।''

''मैंने वह तीक्ष्ण काम करने का साहस क्यों नहीं किया?'' डॉ. अम्बेडकर ने आगे कहा ''ऐसा इसलिए क्योंकि मैं कांग्रेस को एक और मौका देना चाहता था। हमने जो लड़ाई आरंभ की है, उससे पता चलता है कि मेरे दल ने कम प्रतिरोध का रास्ता चुना है''।

वह सही अवसर पर स्वयं ''सत्याग्रह'' में भाग लेंगे। इस समय आंदोलन के ''जनरल स्टाफ'' में कंमाडरों की संख्या कम है। जब शीर्षस्थ कमांडरों और हजारों अनुयायियों का ''आत्मविश्वास'' साथ होगा, तो डॉ. अम्बेडकर इसे आवश्यक नहीं मानते कि न्यायालय द्वारा उन्हें गिरफ्तार किया जा सकेगा। ''किन्तु'', उन्होंने कहा, ''मैं जेल के जीवन से डरता नहीं हूं। मैं केवल शानदार दिखने वाली और गैर–नियोजित कार्रवाई में विश्वास नहीं करता''।

यह पूछे जाने पर कि उन्हें कांग्रेस से किस तरह के ब्लू–प्रिंट जारी किए जाने की उम्मीद है, डॉ. अम्बेडकर ने उत्तर दिया किः पिछले बीस वर्षों में कांग्रेस ने हमारे लिए क्या रचनात्मक कार्य किया है। अब वे ब्रिटिश सत्ता और प्रभाव के उत्तराधिकारी हैं। हमें उनसे यह पूछने का अधिकार है कि नए संविधान में उन्होंने हमारे लिए क्या प्रस्ताव रखे हैं। हमें झूठे वायदों और अनर्थक बातों में कोई विश्वास नहीं है। हम कांग्रेस की निष्ठा का ठोस सबूत चाहते हैं कि वह हमारे साथ न्यायप्रिय और सही बर्ताव करेगी। पहले उन्हें आसमानों की ऊंचाई से नीचे तो आने दें।

'संतोषजनक ब्लू–प्रिंट' के लिए दलील–

क्या कांग्रेस को एक पूर्णतया संतोषजनक ब्लू–प्रिंट जारी करना चाहिए, क्या आप अपने लोगों से उस निकाय में शामिल होने को कहने के लिए तैयार होंगे? डॉ. अम्बेडकर से अलग प्रश्न पूछा गया।

'बिल्कुल नहीं' उन्होंने उत्तर दिया। ''कांग्रेस की तुलना में हमारी सामाजिक और राजनीतिक स्थिति में मूलतः अधिक गिरावट आई है। हम गरीब वर्गों में से भी सबसे गरीब का प्रतिनिधित्व करते हैं। हम धरती मां के बेटे हैं, सच्चे जन हैं। अतः एक कपटी–सामाजिक संगठन में शामिल होने, जैसा कांग्रेस ने किया है, पर विचार नहीं कर सकते''।

तथापि, यदि कांग्रेस ने अनुसूचित जाति–वर्गों से निष्कपट व्यवहार किया हो, और देश के भले के लिए सच्चा संघर्ष करने को तैयार थी, तो वह बेहिचक उनके सहयोग के प्रस्ताव को स्वीकार करेंगे।

डॉ. अम्बेडकर ने यह अस्वीकार किया कि उन्होंने अपने पूना के प्रेस सम्मेलन में कहा था कि उनके दल को मुस्लिम लोग की ओर से किसी भी मुद्दे पर किसी भी रूप में कोई आश्वासन दिए गए थे। मुस्लिम प्रान्तों में सत्याग्रह अभियानों की शुरुआत के लिए उनकी अनिच्छा इस पक्ष में आगे बढ़ती है कि मुस्लिमों ने अनुसूचित जाति वर्गों को कोई हानि नहीं पहुंचाई थी।

मत पाए किन्तु सींटे खोई

हालिया आम चुनाव में अनुसूचित जाति के उम्मीदवारों के भाग्य के संबंध में संकेत देते हुए, उन्होंने इस बात को समझाया कि यह शक्ति का वास्तविक परीक्षण नहीं था। उनके लोगों ने मत तो सभी जीते किन्तु सीटें गंवा दी क्योंकि हिन्दू मतों ने उनकी जीत के अवसर धूमिल कर दिए।

हम अपनी स्वतंत्रता अपने वजूद के लिए लड़ रहे हैं, डॉ. अम्बेडकर ने अंत में महसूस करते हुए कहा। एक बड़ा समुदाय होते हुए भी, हमें दशकों से मूलभूत न्याय से वंचित रखा गया है। हमारे साथ दुर्व्यवहार किया गया है, हमारी हर मांग की उपेक्षा की गई है। किसी भी ओर से हमें कोई सहानुभूति नहीं मिली है। हमने न्याय और निष्पक्षता चाही है। आओ हम इनकी प्राप्ति का प्रयास करें, नहीं तो ईश्वर गवाह है, परिणाम बहुत भयंकर होंगे, तस्वीर का रुख चाहे कुछ भी हो।

बाबा साहेब नेतृत्व करने को तैयार हैं

एसोसिएटिड प्रेस को दिए गए एक साक्षात्कार में भीमराव अम्बेडकर ने आज कहा कि अनुसूचित जाति संघ पर सत्याग्रहियों की संख्या घटाकर बहुत थोड़ी करने के लिए दबाव डाला गया था, क्योंकि उनके भोजन आदि की दिक्कतें थीं, "हमें भारत के प्रत्येक भाग से, और यहां तक कि बर्मा और मलाया से भी, टेलीग्राम और पत्र मिले हैं– जिनमें पूना आकर सत्याग्रह आंदोलन में शामिल होने के प्रस्ताव हैं। किन्तु उनके भोजन और आवास की व्यवस्था में वास्तव में दिक्कते हैं। राशन की समस्या के कारण, "यह संभव नहीं है।" आज से लेकर आगे के लिए व्यक्तियों के जो छोटे–छोटे समूह, जिला न्यायधीश के द्वारा विधान सभा के लिए लगाए गए प्रतिबंध को तोड़ते हुए, विधान सभा परिक्षेत्र में सत्याग्रह करेंगे, पूना में उन पर मुश्ती फंड से खर्च किया जाएगा। इसके अलावा, लोगों को अपने साथ चार–पांच दिन का राशन लाने का अनुरोध किया गया है।

डॉ. अम्बेडकर ने आंदोलन के आयोजकों से कहा है कि जब कभी उन्हें उनकी आवश्यकता जान पड़े, तो वे पूना आने के लिए तैयार रहेंगे।"

लखन में सत्याग्रह का आरंभ, 140 गिरफ्तार

अखिल भारतीय अनुसूचित जाति संघ की लखनऊ शाखा के 140 से अधिक सदस्य आज उस समय गिरफ्तार कर लिए गए जब वे पूना समझौते का विरोध करने के लिए जन सत्याग्रह कर रहे थे।

संघ के 140 सदस्यों में से 80 को काउंसिल हाउस के निकट तथा शेष को शहर के विभिन्न क्षेत्रों से गिरफ्तार किया गया।

पुलिस ने दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 144 के अंतर्गत प्रतिबंधों का कड़ाई से पालन किया।

अनुसूचित जातियों द्वारा धैर्यपूर्ण प्रतिरोध की शुरुआत महासचिव की घोषणा

अनुसूचित जाति संघ के सदस्य और उसके अनुयायी, केबिनेट मिशन के प्रस्तावों में उनके प्रति किए गए कथित अन्याय के विरुद्ध, जिसके परिणामस्वरुप राजनीतिक शक्ति के रुप में अनुसूचित जातियों के वजूद को अनदेखा किया गया है, पूरे भारत में एक अहिंसात्मक सत्याग्रह आंदोलन की शुरुआत करके अपना विरोध दर्ज करेंगे।

इसकी शुरुआत 15 जुलाई को पूना में की जाएगी, जहां बम्बई विधान सभा के सत्र के दौरान जिला न्यायाधीश पूना के आदेशों, जिसमें काउंसिल हॉल और सचिवालय क्षेत्र के आधे मीले के दायरे में बैठकों, प्रदर्शनों और जुलूसों पर प्रतिबंध लगाया गया है, का उल्लघंन किया जाएगा।

महासचिव का स्पष्टीकरण

एक बयान के दौरान इस निर्णय का स्पष्टीकरण देते हुए अनुसूचित जाति संघ के महासचिव, श्री पी.एन. राजभोज ने कहा कि समय आ गया है कि अखिल भारतीय अनुसूचित जाति संघ की कार्य समिति द्वारा 4 जून, 1946 को बम्बई में पारित संकल्प के अनुसार एक धैर्यपूर्ण विरोध आंदोलन की शुरुआत की जाए। अब सीधी कार्रवाई करने के अलावा हमारे पास कोई और विकल्प नहीं है। परिस्थिति की मांग है कि अनुसूचित जातियों को इस बढ़ते मकड़—जाल से बचाने के लिए अब संघर्ष किया जाए।

श्री राजभोज ने आगे कहा कि ब्रिटिश सरकार और उनकी बयानबाजी ने विश्वास तोड़ा है, जबकि उन्होंने अनुसूचित जाति को एक अलग शक्ति के रुप देखे जाने को अनदेखा किया और राजनैतिक सुरक्षा के लिए डॉ. अम्बेडकर और राव बहादुर एन. शिवराज की मांगों को अस्वीकार किया है। उन्होंने कहा, अतः "संघ ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध सीधी कार्रवाई करने के लिए बाध्य है। वे इस नीच कार्य में कांग्रेस की शरारतपूर्ण भूमिका को भी नहीं भूल सकते। संघ आश्वस्त है कि एक बहुमत वाले दल के रूप में और अनुसूचित जातियों की एक अलग राजनैतिक शक्ति वाली स्थिति में जाने से रोकने के लिए ब्रिटिशों द्वारा कांग्रेस को उकसाने में कांग्रेस ने

अपनी हैसियत का दुरूपयोग किया है। केबिनेट मिशन ने अनुसूचित जातियों के प्रति जो रवैया अपनाया वह कांग्रेस के षडयंत्र का सीधा परिणाम है और, इसलिए संघ कांग्रेस के विरुद्ध भी सीधी कार्रवाई करने के लिए बाध्य है''।

श्री राजभोज ने बताया कि संघर्ष की शुरुआत के लिए मार्ग सुझाने के लिए जून में नियुक्त की गई कार्रवाई परिषद प्रत्येक प्रान्तीय इकाई को संघर्ष के तरीकों के बारे में जानकारी देगी। किन्तु इस दौरान उन्होंने आगे बताया कि बम्बई प्रान्त अनुसूचित जाति संघ ने निर्णय किया है कि संघर्ष के पहले कदम के रूप में 15 जुलाई को पूना में जिला न्यायाधीश के आदेश को तोड़ा जाएगा। श्री राजभोज ने सभी का आह्वन किया कि आंदोलन में भाग लेने को इच्छुक व्यक्ति अपना नाम पूना स्थित बम्बई प्रान्त अनुसूचित जाति संघ कार्यालय को भिजवा दें, जहां श्री बी.के. गायकवाड़, अध्यक्ष इस कार्य के प्रभारी हैं।

16 दिसंबर, 1946 को जय भीम में प्रकाशित एक अन्य प्रेस साक्षात्कार में डॉ. अम्बेडकर ने अन्य विचारों का हवाला दिया जिनमें कुछ मुद्दे उनके प्रारंभिक साक्षात्कारों में दिए गए विचारों से मेल खाते हैं————————————संपादक गण।

बाबा साहेब ने सत्याग्रह का उद्देश्य स्पष्ट किया

एक प्रेस साक्षात्कार के दौरान डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने मांग की कि कांग्रेस को एक ब्लू–प्रिंट जारी करना चाहिए, जिसमें यह स्पष्ट किया गया हो कि वह देश के अनुसूचित जाति के 6 करोड़ लोगों के भविष्य के लिए क्या करने जा रही है। उन्होंने स्पष्ट किया कि अनुसूचित जाति संघ द्वारा पूना में शरू किए गए सत्याग्रह का उद्देश्य कांग्रेस से इस प्रश्न का उत्तर जानना था कि भारत के भावी संविधान में अनुसूचित जातियों के हितों की रक्षा के लिए कांग्रेस अपनी योजना की खुली घोषणा करे।

डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि ब्रिटिश केबिनेट मिशन ने सही अथवा गलत जो भी निर्णय किया———————अनुसूचित जाति ने उसे गलत और अन्याय ही समझा है—————कि मुस्लिम और सवर्ण हिदू भारत में ब्रिटिश सत्ता, प्राधिकार और प्रभुत्व के केवल दो ही उत्तराधिकारी थे।

अनुसूचित जातियों का मुस्लिम वर्गों से कोई झगड़ा नहीं था, क्योंकि वे अनुसूचित जातियों के अधिकारों की रक्षा के लिए अपने आशय की घोषणा करने के लिए तैयार थे, और इसलिए, ऐसे प्रान्तों में जहां मुस्लिम सत्ता में थे, वहां कोई सत्याग्रह नहीं होगा। हालांकि, इस प्रश्न पर कांग्रेस ने अब तक चुप्पी साध रखी थी। संविधान सभा

में तीन–चौथाई बहुमत के साथ कांग्रेस अपने बहुमत के साथ अनुसूचित जातियों के अधिकारों और हितों को प्रभावित करने वाले मुद्दों पर निर्णय ले सकेगी। अतः अनुसूचित जातियां कांग्रेस से अपने प्रश्न का उत्तर मांगने की पात्र थीं।

डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि यदि अनुसूचित जातियां बम्बई सरकार को तंग कर रही थीं, तो इसका कारण उसका कांग्रेसी तंत्र का अभिन्न हिस्सा होना था। श्री बी.जी. खेर ने अपने बयान में सुझाव दिया था कि वर्तमान सत्याग्रह का कारण संघ का हतोत्साहित होना था क्योंकि पिछले चुनाव में उनकी हार हुई थी। डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि "आंदोलन के लिए श्री खेर अपने, उच्च अथवा निम्न, कारणों की सूचना देने के लिए स्वतंत्र थे, किन्तु जहां तक उनका संबंध था, वे यह स्पष्ट करना चाहते थे कि वह राजनीति अथवा सार्वजनिक जीवन में ऐसा कुछ नहीं करेंगे जिसे वह सार्वजनिक तौर पर न्यायोचित न ठहरा सकें"। हालांकि, यह कहना गलत होगा कि अनुसूचित जाति वर्गों में एक प्रकार की निराशा का भाव उत्पन्न हो चुका था। उन्होंने शत–प्रतिशत सीटें गंवाई थीं।

"यदि अनुसूचित जातियों में हमारे उम्मीदवारों के विरूद्ध और कांग्रेस द्वारा नामित उम्मीदवारों के पक्ष में वोट डाला होता, तो निराश होती। वह हमारे पतन का कारण होता। किन्तु कांग्रेस के उन उम्मीदवारो को चार प्रतिशत से अधिक मत नहीं मिले, जो सवर्ण हिन्दुओं के मतों के बल पर आ पाए थे। वह हमारी पराजय नहीं बल्कि हमारी विजय थी। परन्तु वास्तविकता यह है कि हम इन चुनावों में हारे, इसका यह अर्थ नहीं कि हम हर बार हारने जा रहे हैं"।

अनुसूचित जातियों की मांगों पर आते हुए डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि उनमें से एक मांग पूना समझौते को समाप्त किया जाना था, उन्होंने पूछा "हमें इसके विरुद्ध प्रदर्शन क्यों नहीं करना चाहिए?" "विश्व की कोई भी संधि पवित्र रूप में स्वीकार नहीं की जा सकती। पूना समझौता उन्हीं लोगों के लिए राजनैतिक अधिकार छीने जाने का माध्यम बनकर आया, जिनके हित में यह बना था। हम चाहते हैं कि समुदाय की जबरदस्ती की राय दूसरे समुदाय पर न थोपी जाए। जब भी देश में प्रारंभिक चुनाव हुए संघ के उम्मीदवार के सामने कोई कांग्रेसी उम्मीदवार जीत नहीं पाया। किंतु आम चुनावों में समुदाय विशेष द्वारा चुने गए उम्मीदवार नकार दिए गए और वे दूसरे दल के हाथों की कठपुतली बनकर "हिदू मतों" के कारण शीर्ष पर आ गए।" डॉ. अम्बेडकर ने मांग की कि समुदाय के राजनैतिक संरक्षण के लिए की गई कोई भी व्यवस्था "मूल–रहित और घूर्तता–रहित" होनी चाहिए।

डॉ. अम्बेडकर ने ऐसे लोगों से अनुसूचित जाति के सत्याग्रह अभियान से जुड़ने

को कहा, जिन्हें आम जनता के हितों की चिंता है। यह आवश्यक नहीं कि स्वतंत्रता का अर्थ सभी को आजादी और स्वतंत्रता ही हो। शक्ति उस थोड़ी थानाशाही जनता के हाथ में भी जा सकती जो अधिक उत्पीडन करे जिसका उन्होंने पहले अनुभव किया हो। डॉ. अम्बेडकर ने घोषणा की कि हम संघर्ष करने के लिए तैयार हैं, चाहे नैतिक तौर पर उसका अंत होने तक हमें मदद मिले चाहे नहीं मिले। यदि नैतिक साधन समाप्त हो जाते हैं, तो हम अन्य उपायों का सहारा लेंगे। एक जनता की स्वतंत्रता उसकी प्राप्ति के लिए किए जाने वाले साधनों की पवित्रता से बड़ी होती है।

डॉ. अम्बेडकर ने अपने लोगों के संघर्ष को अंत तक ले जाने के लिए उहैलित किया। कांग्रेस के हरिजन नेता जिन्होंने सदैव अम्बेडकर के श्रम और संघर्ष का फायदा उठाया, डॉ. अम्बेडकर के विद्रोह के विरोध में बोले और उनका समर्थन किया जो सदैव हरिजनों की मांगों के विरोधी थे। यह अपने लाभ पहुंचाने वाले को आंखे दिखाने जैसा था।

इस सत्याग्रह के संबंध में गांधी ने हरिजन में लिखा कि अम्बेडकर द्वारा प्रदर्शित तमाशे में सत्याग्रह की पैरोडी थी; और यदि इसका माध्यम अहिंसा थी तो उद्देश्य वास्तव में संदिग्ध था।

सत्याग्रह आंदोलन निर्बाध रूप से एक पखवाड़े तक चला, और इसके दबाव के चलते सरकार को अपना पूना असेम्बली सत्र रद्द करना पड़ा। कांग्रेसी नेताओं को अम्बेडकर के साथ बैठकर बात करने की आवश्यकता महसूस हुई। अतः बम्बई प्रान्तीय कांग्रेस समिति के प्रमुख एस.के. पाटिल सिद्धार्थ कालेज में डॉ. अम्बेडकर से मिलने पहुंचेः और एन.एस. जोशी के साथ वे दोनों 27 जुलाई को सरदार पटेल से मिले। बातचीत एक घंटे से अधिक चली, यह बातचीत संविधान सभा में अनुसूचित जाति के प्रतिनिधित्व और पूना सत्याग्रह के संबंध में थी। ऐसा लगा कि उनके बीच कोई सहमति नहीं बन सकी क्योंकि 8 अगस्त को अनुसूचित जाति के प्रमुख नेताओं यथा गायकवाड़ और राजभोज के नेतृत्व में अनुसूचित जातियों का एक जुलूस अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक के लिए चला, यह बैठक वर्धा में आयोजित हुई थी।

कुछ समय बाद, डॉ. अम्बेडकर ने सरदार पटेल को पत्र लिखा कि वह समझते हैं कि देश किसी भी व्यक्ति से बड़ा होता है, चाहे वह कितना ही महान क्यों न हो उन्होंने यह भी कहा कि कोई भी व्यक्ति एक कांग्रेसी हुए बिना बड़ा राष्ट्रवादी बन सकता है और उन्होंने आगे कहा कि वह किसी भी कांग्रेसी नेता की तुलना में बड़े राष्ट्रवादी थे।

17

श्री एटली द्वारा डॉ. भीमराव अम्बेडकर को लिखा गया पत्र

पेरिस, 1 अगस्त 1946

प्रिय अम्बेडकर,

मैंने आपके 1 जुलाई के पत्र और संबंधित संलग्न कागजात पर ध्यानपूर्वक विचार किया है।

मुझे खेद है कि मैं यह तथ्य स्वीकार नहीं कर सकता कि केबिनेट मिशन और वॉयसराय अनुसूचित जातियों के प्रति अन्याय कर रहे थे। 1945 में शिमला सम्मेलन में अपनाई गई नीति को उनके द्वारा संशोधित करने का कारण, जैसा आपने बताया, पिछले बसंत में आयोजित प्रान्तीय विधान सभाओं के चुनाव परिणाम थे। मिशन ने मतों के आंकड़ों का सावधानी पूर्वक अध्ययन किया और मैंने स्वयं भी उनकी जांच की है। हम मानते हैं कि इस तथ्य का यह आधार है कि वर्तमान चुनाव प्रणाली उन अनुसूचित जाति उम्मीदवार के साथ न्याय नहीं करती जो कांग्रेस के विरोधी हैं। दूसरी ओर, मुझे ऐसा कुछ प्रतीत नहीं होता कि प्रस्तुत आंकड़े आपके कहे अनुसार प्रारंभिक चुनावों में आपके संघ के उम्मीदवारों की उपलब्धियों का समर्थन करते हैं। जबकि मैं यहां इस मामले के विस्तार में नहीं जाना चाहता कि प्रारंभिक चुनाव अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित 151 सीटों में से केवल 43 सीटों के लिए हुए थे। प्रारंभिक चुनावों में इन 43 सीटों पर अनुसूचित जाति संघ ने 22 उम्मीदवार खड़े किए जिनमें से केवल 13 उम्मीदवार शीर्ष स्थान पा सके।

अपने पत्र में आपने तीन विशिष्ट अनुरोध किए हैं। पहले अनुरोध के संबंध में,

---

1 जुलाई को डॉ. अम्बेडकर ने श्री एटली को एक लंबा पत्र भेजा था जिसमें उन्होंने अपने हालिया पत्राचार, एक ज्ञापन और एक भाषण तथा कुछ अन्य मदों से संबंधित प्रतिलिपियां संलग्न की थीं। डॉ. अम्बेडकर का यह पत्र श्री एटली को 17 जून को भेजे गए तार संदेश के क्रम में था जिसमें समान पृष्ठभूमि पर बात की गई थी। तार संदेश के लिए पृष्ठ 224 देखें।

* सत्ता का हस्तातंरण, खण्ड VIII, सं. 105, पृ.170–72

* अपने 1 जुलाई के पत्र में डॉ. अम्बेडकर ने लिखा किः प्रारंभिक चुनावों' के परिणाम– जब भी भारत में इनका आयोजन हुआ सिद्ध करते हैं कि संघ द्वारा खड़े किए गए उम्मीदवार शीर्ष पर पहुंचते हैं और कांग्रेसी उम्मीदवार सबसे निचले पायदान पर चले जाते हैं। एल/पीएंडजे/10/50ः एफ 81

हिज मेजिस्टी की सरकार चिन्तित है कि संविधान सभा को केबिनेट मिशन के 16 और 25 मई के बयानों में उल्लिखित शर्तों के अनुसार कार्यवाही करने की पूर्ण संभावित स्वतंत्रता होनी चाहिए। वास्तव में हम स्वयं भी सोचते हैं कि एक महत्वपूर्ण अल्पसंख्यक वर्ग होने के नाते अनुसूचित जातियों को अल्पसंख्यक सलाहकार समिति में प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए। किंतु आपने जो घोषणा करने के लिए कहा है, उसे अनुसूचित जातियों तक सीमित नहीं किया जा सकता और वह घोषणा उन सभी तत्वों की बात करेगी जिन्हें, हम समझते हैं कि, सलाहकार समिति में शामिल होना चाहिए। तो भी यह केवल हिज मेजेस्टी की सरकार की ओर से केवल एक राय मात्र होगी, जो अपरिहार्य रूप से विधान सभा की आजादी में हस्तक्षेप होगा और जिससे गंभीर असंतोष फैलेगा। इन परिस्थितियों में मैं यह विश्वास नहीं कर सकता कि ऐसी कोई घोषणा अनुसूचित जातियों के लिए महत्वपूर्ण होगी।

आपके दूसरे अनुरोध को देखें, तो मुझे अपने पिछले 15 मार्च को हाउस ऑफ कॉमन्स में दिए गए भाषण में वे शब्द दिखाई नहीं पड़ते, जिनकी आपने मुझे जानकारी दी है। मैंने कहा था कि हम अल्पसंख्यकों के अधिकारो के प्रति बहुत सचेत हैं और अल्पसंख्यकों को बिना डरे रहना चाहिए। ये हिज मेजेस्टी की सरकार के विचार थे, जिनका उल्लेख केबिनेट मिशन के 25 मई के बयान के पैरा 4 में किया गया है। मैं नहीं समझता कि उक्त पैराग्राफ में जो कहा गया था, इस स्थिति में हिज मेजेस्टी की सरकार द्वारा उसकी कुछ और व्याख्या करना बुद्धिमानी होगी।

आपका अंतिम अनुरोध है कि अंतरिम सरकार में अनुसूचित जाति के कम से कम 2 प्रतिनिधि होने चाहिए। मुझे खेद है कि मुझे ऐसा संभव होने की कोई उम्मीद नज़र नहीं आती। आपके संविधान सभा के लिए चुने जाने पर मुझे बहुत खुशी हुई थी।

@ जो इस प्रकार थे:

(1) यह खुलासा करना कि हिज मेजेस्टी की सरकार यह मानती है कि केबिनेट मिशन के बयान के पैरा 20 का अभिप्राय यह है कि अनुसूचित जाति वर्ग अल्पसंख्यक हैं।

(2)कि हिज मेजेस्टी की सरकार यह देखेगी कि प्रभुसत्ता सौंपे जाने के लिए संधि पर हस्ताक्षर करने को सहमत होने से पूर्व अनुसूचित जातियों को संतोषजनक सुरक्षा प्रदान की जाती हो ताकि वे बहुसंख्यक वर्गों के डर से मुक्त होकर जीवन जी सकें।

(3) कि अंतरिम सरकार में अनुसूचित जातियों के कम से कम दो प्रतिनिधि होने चाहिए, जो अनुसूचित जाति संघ द्वारा नामित होने चाहिए।

उसी स्थान सेः 82

डॉ. अम्बेडकर ने टिप्पणी की थी कि केबिनेट मिशन ने पहले ही यह बात उठाई थी कि अल्पसंख्यकों की सुरक्षा के लिए पर्याप्त उपबंध होने चाहिए। यदि बयान में ये शब्द शामिल हो जाते तो उनका दूसरा अनुरोध पूरा हो जाएगाः सुरक्षाए, जिससे अनुसूचित जातियां बहुसंख्यक वर्गों के डर से मुक्त होकर जीवन जी सकें। डॉ.अम्बेडकर का दावा था कि, यह वही शब्द थे, जो श्री एटली ने स्वयं अपने 15 मार्च के भाषण में उपयोग किए थे।

18

डॉ.अम्बेडकर का श्री एटली को लिखा गया विरोध पत्र

'राजगृह'

दादर, बम्बई–14

12 अगस्त, 1946

प्रिय एटली,

आपके 1 अगस्त, 1946 के पत्र के लिए आपको धन्यवाद। मुझे आशा नहीं थी कि आप मेरे 1 जुलाई, 1946 के पत्र के उत्तर के लिए समय निकाल सकेंगे। अतः मैं आपका आभारी हूं कि आपने मेरे उठाए गए मद्दों पर मुझे अपने विचारों से अवगत कराने के लिए समय निकाला।

2. मुझे खेद है कि मैं 1945 के शिमला सम्मेलन हिज मेजेस्टी की सरकार द्वारा अपनाई गई नीति के संशोधन के लिए न तो आपके औचित्य को स्वीकार कर सकता हूं और न ही अनुसूचित–जातियों के प्रति मिशन के बर्ताव के तरीके को स्वीकार कर सकता हूं। मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं कि मि. अलेक्जेंडर के हाउस ऑफ कॉमन्स में दिए गए कपटपूर्ण बयान में कोई सच्चाई नहीं है कि अधिसंख्य अनुसूचित जातियां कांग्रेस के साथ हैं। यह केवल मेरा विचार नहीं है, अपितु भारत में रहने वाले प्रत्येक अंग्रेज का विचार है। यदि आप केवल सर एडवर्ड बेंथक से राय लें, जो इस समय इंग्लैण्ड में हैं, तो मुझे विश्वास है कि वह मेरा समर्थन करेंगे।

3. प्रारंभिक चुनाव में संघ की उपलब्धियों के परिणाम पर आपके विश्लेषण के संबंध में, मैं कह सकता हूं कि आपने परिस्थितियों का गलत आकलन किया है और मुझे खेद है कि कोई भी बाहरी व्यक्ति, जिसे तथ्यों के महत्व की जानकारी नहीं है या चुनाव के तरीकों का पता नहीं है, वह उचित स्पष्टीकरण के बिना उनका अभिप्राय नहीं समझ सकता। मिशन के विरुद्ध आरोप का मेरा मुख्य आधार यह था कि जब तस्वीर का दूसरा पहलू कांग्रेस द्वारा प्रस्तुत किया गया था, तो उनका कर्तव्य था कि वे मुझे बुलाते और मुझसे स्पष्टीकरण देने को कहते। मिशन ने ऐसा नहीं किया, जिसे करने के लिए वे कानूनी तौर पर बाध्य थे। यदि मैं अपना संतोषजनक स्पष्टीकरण

देने में असफल रहता तो वे अपने इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए न्योयोचित ठहराए जाते। मिशन को पूरी तरह बरगलाया गया था, यह संविधान सभा में मेरे बंगाल से चुने जाने से सिद्ध हो गया है। केबिनेट मिशन ने हाउस ऑफ कॉमन्स में बताया है कि मेरा प्रभाव बम्बई और मध्य प्रांतों तक सीमित रह गया था। तो यह कैसे हुआ कि मैं बंगाल से चुनकर आया? अपने चुनाव के संबंध में मैं आपको तीन तथ्यों से अवगत कराना चाहूंगाः पहला यह कि मैं चुनाव सिर्फ थोड़े मतों से नहीं बल्कि सर्वाधिक मत लेकर जीता हूं, जहां मैंने कांग्रेस दल के सबसे बड़े बंगाली नेता श्री शरत चन्द्र बोस तक को पराजित किया है। दूसरे, मैं किसी भी रूप में बंगाल की अनुसूचित जातियों के साथ किसी तरह के सांप्रदायिक समझौतों से नहीं जुड़ा हूं। वे विभिन्न जातियों के हैं, जिनसे मैं संबद्ध नहीं हूं। वास्तव में मेरी जाति के लोग बंगाल में नहीं रहते, तो भी बंगाली अनुसूचित जातियों ने इतने जोरदार रूप में मेरा समर्थन किया कि मैं प्रथम स्थान प्राप्त कर सका। तीसरे, यद्यपि बंगाल में अनुसूचित जातियां कांग्रेस के टिकट पर जीती थी, तथापि उन्होंने अपने दल का यह नियम तोड़ा कि उन्हें कांग्रेसी उम्मीदवार के अलावा किसी अन्य को मत नहीं देना है, और उन्होंने मुझे मत दिये। क्या इससे यह सिद्ध होता है कि बंगाल में मेरे कोई अनुयायी नहीं है? मुझे विश्वास है कि यदि केबिनेट मिशन अपने निष्कर्ष में ईमानदार है, तो उन्हें अपनी गलत राय में सुधार करना चाहिए, जो उन्होंने हाउस ऑफ कॉमन्स में व्यक्त की है और उन्हें अपने विचार में संशोधन करते हुए संघ को उचित मान्यता देनी चाहिए।

4. अल्पसंख्यक सलाहकार समिति में अनुसूचित जातियों की प्रस्थिति के बारे में, यह आश्वासन पाकर मुझे हर्ष हुआ है कि ब्रिटिश केबिनेट अनुसूचित जातियों को एक महत्वपूर्ण अल्पसंख्यक वर्ग मानती है। मुझे खेद है कि मैं इसे तब तक बार–बार दोहराता रहूंगा जब तक केबिनेट मिशन के द्वारा इसकी सार्वजनिक घोषणा नहीं होगी। मैं ऐसा इसलिए कह रहा हूं, क्योंकि, आप देखेंगे कि बातचीत टूटने से पहले कांग्रेस की ओर से मौलाना अबुल कलाम आजाद ने वॉयसराय को लिखे अपने पत्र में इस विचार को जोरदार चुनौती दी, कि अनुसूचित जातियां अल्पसंख्यक वर्ग थीं। अनुसूचित जातियों को डर है कि ब्रिटिश केबिनेट द्वारा यह विचार यदि समय पर सही नहीं किया गया, तो सलाहकार समिति में अनुसूचित जातियों के मामले पर विचार नहीं किया जाएगा, क्योंकि उनमें अधिकांश कांग्रेसी सदस्य होंगे। उन्हें अल्पसंख्यक वर्ग से अलग हिन्दुओं में से एक सामाजिक समूह की हैसियत में निष्कासित कर दिया जाएगा, जैसा गांधी जी की हालिया घोषणा से होना निश्चित लगता है, क्योंकि वह सोचते हैं कि वे सरकार ने अनुसूचित जातियों के साथ कुछ भी कर सकते हैं चूंकि ब्रिटिश सरकार ने अनुसूचित जातियों को अपना समर्थन देने से इन्कार कर दिया है।

5. इन परिस्थितयों में, मैं आप से यह उम्मीद करता हूँ कि आप मामले का पुनः अवलोकन करें और यह घोषणा करें कि अनुसूचित जाति एक महत्वपूर्ण अल्पसंख्यक समूह है जिससे कि संभावित खतरे को टाला जा सके।

6. मुझे यह पढ़कर दुख पहुंचा है कि आपको ऐसी कोई उम्मीद नहीं है कि अनुसूचित जातियों को अंतरिम सरकार में दो सीटें भी मिल सकती हैं। मुझे इस मनाही का कोई औचित्य नज़र नहीं आता। अपनी संख्या के आधार पर और 1945 के पिछले शिमला सम्मेलन के समय दिए गए आश्वासनों की तुलना दोनों के कारण अनुसूचित वर्ग बेहतर व्यवहार के हकदार थे, जैसा इसकी तुलना में सिक्ख और अन्य छोटे अल्पसंख्यक वर्गों के साथ व्यवहार किया गया था। मेरी राय में मैंने जो दावा किया था वह न्यायोचित था।

सादर,

आपका

भीमराव अम्बेडकर

सत्ता का हस्तांतरण जिल्द सं. 142 पृ. 221–23

19

हम अधीन तो हो सकते हैं किन्तु हम आत्मसमर्पण नहीं करेंगे

डॉ. भीम राव अम्बेडकर, जो अखिल भारतीय अनुसूचित जाति संघ की बैठक के सिलसिले में पूना में थे, द्वारा केंद्र में नव–गठित अंतरिम सरकार में अनुसूचित जातियों को ''अपर्याप्त प्रतिनिधित्व दिए जाने पर अंसतोष व्यक्त किया गया था''।

अंतरिम सरकार के गठन के संबंध में साक्षात्कार देते समय डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने कहा ''कार्यकारी परिषद में अनुसूचित जातियों के प्रतिनिधित्व के बारे में कांग्रेस द्वारा अपनाए गए रवैये को देखते हुए वायसराय द्वारा गठित अंतरिम सरकार न तो अनुसूचित जातियों से अपनी आज्ञा मनवाने और न ही आदर कराने की हकदार है''।

डॉ. अम्बेडकर ने कहाः ब्रिटिश सरकार और कांग्रेस के बीच एक सोची–समझी साजिश दिखाई पड़ती है कि अनुसूचित जातियां कार्यकारी परिषद के बारे में कुछ न बोल सकें। हम सोचते हैं कि पाकिस्तान की मांग का औचित्य है, किंतु इसमें कोई औचित्य नहीं है कि मुस्लिमों की तुलना सवर्ण हिन्दुओं से की जाए, और यह औचित्य भी दिखाई नहीं पड़ता कि अन्य अल्पसंख्यकों का प्रतिनिधित्व केवल चार सीटों तक सीमित कर दिया जाए, जबकि उनमें से एक अर्थात अनुसूचित जाति की संख्या मुस्लिमों की कुल जनसंख्या के 50 प्रतिशत से भी अधिक है। इससे भी अधिक ब्रिटिश सरकार ने, जहां तक मुस्लिमों के दावे का संबंध है, उन्हें 331/3 प्रतिशत का दावा करें।

डॉ. अम्बेडकर ने आगे कहा कि ''शिमला सम्मेलन में वायसराय ने सहमति दी थी कि उन्हें दो सीटें दी जानी चाहिए, और अनुसूचित जाति ने यद्यपि तीन सीटों के लिए दबाव दिया था, अंतरिम व्यवस्था के लिए वह दो सीटें स्वीकार करने के लिए तैयार थी। उस समय कांग्रेस अनुसूचित जातियों को दो सीटें देने को तैयार थी। इस परिप्रेक्ष्य में अनुसूचित जातियों के लिए यह गहन चिन्ता का विषय है कि क्या वह कांग्रेस द्वारा प्रायोजित अंतरिम सरकार को सहयोग दें, जबकि वे जानते हैं कि कांग्रेस ने उनके साथ बहुत अन्याय किया है। संघ का यह विचार है कि कार्यकारी परिषद में अनुसूचित जाति के प्रतिनिधित्व के संबंध में कांग्रेस के हालिया रवैये को

देखते हुए, वायसराय द्वारा गठित यह सरकार न तो अनुसूचित जातियों से अपनी आज्ञा मनवाने और न ही आदर कराने की हकदार है''।

डॉ. अम्बेडकर ने कहा ''इससे भी अधिक आश्चर्य की बात यह है कि मि. जगजीवन राम ने कार्यकारी परिषद में शामिल होने के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया है। जब मैंने कार्यकारी परिषद में अनुसूचित जाति के अपर्याप्त प्रतिनिधित्व के बारे में प्रधानमंत्री को एक विरोध भरा तार संदेश भेजा, तो मि. जगजीवन राम ने स्वयं भी प्रेस के लिए एक बयान जारी किया जिसमें कार्यकारी परिषद में अनुसूचित जाति का प्रतिनिधित्व बढ़ाने के मेरे दावे का समर्थन किया गया था। इस तथ्य के होते हुए भी कि कांग्रेस अनुसूचित जाति का प्रतिनिधित्व बढ़ाए जाने के लिए सहमत नहीं थी, क्या मि. जगजीवन राम को आमंत्रण स्वीकार करना चाहिए था। यह इस बात को दर्शाता है कि अनुसूचित जाति के अधिकारों की लड़ाई में उनसे कितनी उम्मीद की जा सकती है। यह ईमानदारी एवं निष्ठा परखने का उचित अवसर है जो जगजीवन राम कांग्रेस पार्टी में हैं और अनुसूचित के प्रतिनिधि होने का यह दिखावा करते हैं कि उन पर यह देखे जाने का भरोसा किया जा सकता है कि कांग्रेस अनुसूचित जातियों से गलत बर्ताव न करे''।

संघ द्वारा शुरू किए गए आंदोलन का हवाला देते हुए डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि अपने उचित अधिकारो की प्राप्ति के लिए उनका संघर्ष जारी रहेगा। उन्होंने घोषणा की कि ''हम अधीन तो हो सकते हैं, किन्तु हम आत्मसमर्पण नहीं करेंगे''।

जय भीमः दिनांक 16 सितंबर, 1946

20

लार्ड पैथिक–लॉरेन्स द्वारा प्रधानमंत्री श्री एटली को लिखा गया पत्र

इंडिया ऑफिस,

3 सितंबर, 1946

सेक्रेटरी ऑफ स्टेट्स का कार्यवृत्तः क्रम सं. 48/46

प्रधान मंत्री महोदय,

आपने डॉ. अम्बेडकर द्वारा आपको लिखे गए 12 अगस्त, 1946 के पत्र पर मेरे विचार जानने चाहे हैं।

2. उनके दूसरे पैरा के संबंध में आप ज्ञापन में दलित वर्गों के चुनाव परिणामों का विश्लेषण देख सकते हैं, जो मेरे निजी सचिव ने डॉ. अम्बेडकर के पिछले पत्र के उत्तर के रूप में आपको 26 जुलाई को भेजा था। संक्षेप में, तथ्य यह है कि प्रारंभिक चुनावों में कांग्रेस को डॉ. अम्बेडकर के संघ की तुलना में अधिक मत मिले, जबकि आजाद उम्मीदवारो ने भी बड़े अनुपात में मत प्राप्त किए, जो डॉ. अम्बेडकर के समर्थक हो भी सकते हैं और नहीं भी किन्तु, इसके अलावा, कांग्रेस ने दो–तिहाई सीटें निर्विरोध रूप से जीत लीं। आंकड़े, वास्तव में, निष्कर्षात्मक नहीं हैं किन्तु कॉमन्स में प्रथम लॉर्ड का बयान में "सच्चाई की कोई बुनियाद नहीं है" कहना न्यायसंगत न होगा जबकि मेरा मानना है कि यह अधिक सकारात्मक था।

3. डॉ. अम्बेडकर के पत्र के पैरा 3 के संबंध में, हाउस ऑफ कॉमन्स में यह नहीं बताया गया था कि उनका प्रभाव बम्बई और मध्य प्रांतों तक सीमित था। वह प्रेजिडेंट ऑफ बोर्ड ऑफ ट्रेड के भाषण का हवाला दे रहे हैं, जिसमें वास्तविक शब्दों का उपयोग किया गया था कि "डॉ. अम्बेडकर का संगठन अपने स्वभाव को लेकर काफी हद तक स्थानीय स्तर का है (कांग्रेसी संगठन की तुलना में) जो मुख्यतः बम्बई और मध्य प्रांतों तक केन्द्रित है"। मैंने पूछताछ कराई है कि संविधान सभा के लिए बंगाल में हुए चुनावों में क्या हुआ था, जिसमें वास्तव में, आनुपातिक प्रतिनिधित्व रहा। डॉ. अम्बेडकर ने प्रथम प्राथमिकता वाले पांच मत प्राप्त किए। शरत चन्द्र बोस ने भी प्रथम प्राथमिकता वाले पांच मत प्राप्त किए। बंगाल में चुनाव के लिए चार सीट

का कोटा था। वस्तुतः कांग्रेस अपने प्रत्येक उम्मीदवार के लिए जहां तक संभव हो प्रथम प्राथमिकता वाले कम से कम चार मत प्राप्त करने के लिए अपने मतदाताओं को संगठित करने का प्रयास करेगी। आनुपातिक चुनाव में ''चुनाव में शीर्षस्थ'' वाक्य का वास्तव में कोई अर्थ नहीं है। कोई भी इससे इंकार नहीं कर सकता कि बंगाल के दलित वर्गों में डॉ. अम्बेडकर का प्रभाव है। बंगाल विधान सभा में अनुसूचित जाति के पच्चीस सदस्य हैं, जिनमें से चार आजाद उम्मीदवार बन गए है और एक डॉ. अम्बेडकर के उम्मीदवार के तौर पर खड़ा हुआ। मैं नहीं जानता कि संविधान सभा के चुनाव के लिए क्या सभी आजाद उम्मीदवारों ने डॉ. अम्बेडकर को मत दिया या उन्हें कुछ एंग्लों–इंडियन मत भी मिले।

4. डॉ. अम्बेडकर के पत्रा के पैरा 4 के संबंध में, मैं आश्वस्त हूं कि हम यह सार्वजनिक घोषणा नहीं कर सकते कि हम अनुसूचित जाति को एक अल्पसंख्यक वर्ग मानते हैं, और इसे अल्पसंख्यक सलाहकार समिति में प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए। वास्तव में यह सही है कि पृथक राजनैतिक प्रतिनिधित्व को लेकर कांग्रेस उन्हें अल्पसंख्यक नहीं मानती, जबकि हम हमेशा ऐसा मानते रहे हैं। किन्तु हम इस स्थिति में नहीं हैं कि हम डॉ. अम्बेडकर के संगठन को अल्पसंख्यक सलाहकार समिति में प्रतिनिधित्व दिला सकें।

5. मैं डॉ. अम्बेडकर को उद्धार भिजवाना आवश्यक नहीं समझता किंतु यदि आपको ऐसा करना अधिक सौहार्दपूर्ण लगे तो मैं एक संक्षिप्त मसौदा संलग्न कर रहा हूं यदि यदि आप देखना चाहें, तो मैंने हाउस ऑफ कॉमन्स में प्रथम लार्ड और प्रेसिडेन्ट ऑफ दि बोर्ड ऑफ ट्रेड के भाषणों के उदाहरण भी संलग्न कर दिए हैं। मेरे भाषण में भी उक्त पत्र के समान किन्तु उससे तनिक छोटा पैरा दिया गया है।

पैथिक–लारेन्स

---

* मुद्रित नहीं है

@ मुद्रित नहीं है

1: सत्ता का हस्तांतरण, खंड.VIII, सं..VIII, सं. 250, पृ. 441–412

II

इंडिया ऑफिस, 9 सिंतबर, 1946

सेक्रेटरी ऑफ स्टेट का कार्यवृत्तः क्र.स.51/46

प्रधान मंत्री महोदय,

संविधान सभा की सलाहकार समिति में अनुसूचित जाति के प्रतिनिधित्व के संबंध में आपका व्यक्तिगत कार्यवृत्त सं.एम.296/46, दिनांक 4 सितंबर।

2. यह वस्तुतः मिशन की राय थी कि सलाहकार समिति में अनुसूचित जाति का प्रतिनिधित्व होना चाहिए और मैंने इस बारे में भारत में डॉ. अम्बेडकर को एक पत्र द्वारा जानकारी दी है। उन्हें आपके 1 अगस्त को भेजे गए उत्तर के तीसरे पैरा में आपने डॉ. अम्बेडकर को स्पष्ट किया है, यद्यपि हिज मेजेस्टी की सरकार स्वयं अनुसूचित जाति को एक महत्वपूर्ण अल्पसंख्यक वर्ग मानती है, जिसे अल्पसंख्यक सलाहकार समिति में प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए, वे इस बारे में सार्वजनिक घोषणा किए जाने के उनके अनुरोध को नहीं मान सकते, क्योंकि ऐसी किसी भी घोषणा में:

(क़) उन अन्य सभी तत्वों का उल्लेख होना चाहिए जिन्हें हिज मेजेस्टी की सरकार समझती है कि अल्पसंख्यक होने के नाते सलाहकार समिति में शामिल किया जाना चाहिए; और

(ख) संविधान सभा की कार्रवाई की स्वतंत्रता के साथ हस्तक्षेप के प्रयास के रूप में समझा जा सकता है।

3. तथापि, स्थिति यह है कि हमने सलाहकार समिति के गठन का निर्णय संविधान सभा पर छोड़ दिया है और अब हम इसका वर्णन नहीं कर सकते। मैं नहीं सोचता कि हम हाउस को बहकाने के दोषी हैं, बोर्ड ऑफ ट्रेड के अध्यक्ष के 18 जुलाई के भाषण में जैसा कि स्पष्ट उल्लेख था, जिसका संबंधित पैरा मेरे 3 सितंबर को आपको भेजे गए कार्यवृत्त में संलग्न था।

4. क्या पृथक राजनैतिक प्रतिनिधित्व के उद्देश्य के लिए अनुसूचित जाति को एक अल्पसंख्यक वर्ग मानते रहना जारी रखा जाए, इस प्रश्न के विवाद का एक लम्बा इतिहास है। गांधी ने अपने जीवन का एक बड़ा हिस्सा बाद वाले विचार के

प्रचार में बताया। किन्तु जब मैंने अपने 3 सितंबर के कार्यवृत्त के पैरा 4 में यह उल्लेख किया, कि पृथक राजनैतिक प्रतिनिधित्व के उद्देश्य से कांग्रेस अनुसूचित जाति को अल्पसंख्यक नहीं मानती, तो उस समय आजाद के वायसराय को भेजे गए 25 जून* (हमारे 25 मई के बयान के कुछ सप्ताह बाद) के पत्र का अंश विशेष रूप से मेरे मस्तिष्क में था जिसका डॉ. अम्बेडकर ने आपको भेजे गए अपने दोनों पत्रों में उल्लेख किया है। इसमें आजाद ने कहा है कि कांग्रेस ने ''इस विचार को अस्वीकार किया है कि अनुसूचित जातियां एक अल्पसंख्यक वर्ग हैं और उन्हें पूर्ण रूप से हिन्दू समाज का एक हिस्सा माना है'' (कमा.6861 के पृ.23 का दूसरा पैरा)। यह बयान मि. जिन्ना को दिए वायसराय के आश्वासन का संदर्भ था कि वह अंतरिम सरकार में अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधियों को आबंटित सीटों की किन्हीं रिक्तियों को भरने के पहले मुख्य दलों से परामर्श करेंगे। कुल मिलाकर यह अस्वाभाविक नहीं था कि कांग्रेस द्वारा अनुसूचित जातियों को अपना उत्तरदायित्व मानकर उनका सम्मान किया जाए और एक अनुसूचित जाति के प्रतिनिधि की नियुक्ति में मुस्लिम लीग के प्रभाव पर आपत्ति की जाए।

5. यह माने जाने का कोई सकारात्मक कारण नहीं है कि कांग्रेस सलाहकार समिति में पर्याप्त संख्या में अनुसूचित जाति के प्रतिनिधियों को शामिल नहीं करना चाहेगी। उन्हें चिंता है कि उन्हें भारत और विदेश दोनों जगहों से आलोचना का सामना करना पड़ेगा; और वे अपने स्वयं के स्तर से और ऊपर उठने को अधिक उत्सुक होंगे, अथवा कम से कम उन्हें इस बात की सांत्वना रहेगी कि, यदि जैसा कि संभावित है कि अनुसूचित जाति के एक बड़े हिस्से को मुस्लिम लीग से मैत्री करने से रोक सकेंगे। समिति का कार्य नागरिक अधिकारों के साथ–साथ अल्पसंख्यक वर्गों का काम देखना है, ताकि अनुसूचित जाति के प्रतिनिधियों से ऐसे किसी पक्षपात की आवश्यकता न रहे कि वे अल्पसंख्यक हैं अथवा नहीं। दूसरी ओर, ऐसी कोई गारंटी नहीं है कि डॉ. अम्बेडकर अथवा अनुसूचित जाति का कोई अन्य सदस्य, जो कांग्रेस का विरोध करता हो, समिति में अपना स्थान सुरक्षित कर सकेगा।

6. मैं अभी भी यह महसूस करता हूं कि हमें इस सार्वजनिक घोषणा के लिए डॉ. अम्बेडकर के अनुरोध के प्रति उत्तर में स्वैच्छा से यह घोषणा नहीं करनी चाहिए कि मिशन के 16 मई के बयान के पैरा 20 का अभिप्राय यह है कि अनुसूचित जाति एक अल्पसंख्यक वर्ग है। ऐसा करने से काफी हद तक वास्तव में गांधी के साथ एक विवाद उठ खड़ा होगा जिसके फलस्वरूप कांग्रेस अनुसूचित जातियों को शामिल करने का एक प्रदर्शन के रूप में विरोध करेंगे। यहां तक कि यदि हम यह नहीं कहते कि अनुसूचित जाति अल्पसंख्यक है, किन्तु यह कहते हैं कि उन्हें समिति

में शामिल किया जाए, हमारे बयान से एंग्लो–इंडियन और अन्य समूहों के पक्ष में भी समान बयान जारी करने की मांगे उठेंगी, और इन बयानों को संविधान सभा में हस्तक्षेप के रूप में माना जाएगा, हम ऐसी स्थिति से बचने के लिए बहुत चिन्तित हैं। ऐसी कोई संभावना नहीं है कि ऐसी किसी घोषणा से प्रभावित होकर कांग्रेस सलाहकार समिति में अनुसूचित जातियों से कोई बेहतर व्यवहार करेगी, जैसा वह अन्य स्थिति में करती, न ही इससे डॉ. अम्बेडकर की कोई मदद होगी, क्योंकि यह घोषणा साधारणतया अनुसूचित जातियों से संबद्ध होगी, जिससे कांग्रेस के पक्षधरों और विरोधियों के बीच कोई अंतर स्पष्ट नहीं हो सकता।

पौथिक-लॉरेन्स

श्री एटली ने इस कार्यवृत में टिप्पणी की थी: आगे कोई कार्रवाई नहीं।

एटली पेपर्स, यूनिवर्सिटी कालेज, ऑक्सफोर्ड

केबिनेट मिशन और अछूत

केबिनेट मिशन ने किस प्रकार अछूतों की अनदेखी की?

'कराची, 14 अक्तूबर, 1946

डॉ. भीमराव अम्बेडकर, अनुसूचित जाति नेता और वायसराय की कार्यकारी परिषद् के पूर्व सदस्य हवाई मार्ग से बम्बई से लंदन जाते हुए आज कराची पहुंचे।

डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि वह एक राजनैतिक मिशन के लिए दौरे पर हैं और वह मि. सी.आर. एटली, प्रधान मंत्री, और मि. चर्चिल से भेंट करेंगे तथा उनके साथ भारत के संवैधानिक मामलों पर चर्चा करेंगे। उन्होंने अपने मिशन के बारे में और कोई बात करने अथवा किसी स्पष्टीकरण के लिए मना कर दिया–

ए.पी.आई.''

डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने निम्नलिखित ज्ञापन तैयार किया तथा पारिचालित करने के लिए उसे अपने साथ लेकर गए————————————संपादक।

केबिनेट मिशन ने अपने 10 मई के बयान में अपने अंतरिम और दीर्घावधि वाले प्रस्ताव रखे थे ताकि भारत में राजनीतिक गतिरोध को हल किया जा सके। उनके प्रस्तावों की सबसे कटु और भयभीत करने वाली विशेषता उनके द्वारा भारत के लोगों के बीच अछूतों को एक पृथक और विशिष्ट तत्व की पहचान देने से मनाही करना था। मिशन ने अछूतों को इस प्रकार पूरी तरह से अनदेखा किया था कि अपने

लंबे बयान में उन्होंने एक बार भी अछूतों का कहीं उल्लेख नहीं किया। केबिनेट मिशन ने किस सीमा तक अछूतों को अनदेखा किया वह निम्नलिखित से स्पष्ट हो जाएगाः—

(i) जैसा सिक्खों और मुस्लिमों के मामले में किया गया है, अछूतों को केन्द्रीय कार्यकारिणी में अपने प्रतिनिधि नामित करने का अधिकार नहीं दिया गया है। वर्तमान अंतरिम सरकार में उन्हें अनुसूचित जाति के दो प्रतिनिधि मिले हैं, दोनों ही अनुसूचित जातियों के प्रति कोई राजभक्ति अथवा बाध्यता नहीं रखते। इनमें से एक कांग्रेस द्वारा तथा दूसरा प्रतिनिधि मुस्लिम लीग द्वारा नामित किया गया है।

(ii) अंतरिम सरकार में, अछूतों के प्रतिनिधित्व के लिए कोई कोटा निर्धारित नहीं किया गया है, जबकि मुस्लिमों के मामले में ऐसी व्यवस्था है। 1945 के शिमला सम्मेलन में इस बात पर सहमति हुई थी, कि 14 सदस्यों वाली केबिनेट में अनुसूचित जाति के कम से कम दो सदस्य होने चाहिए। 1945 से 1946 के बीच बदले रुख के कारण ज्ञात नहीं हैं।

(iii) उन्हें संविधान सभा में पृथक प्रतिनिधित्व का अधिकार नहीं दिया गया है। केबिनेट मिशन का प्रस्ताव हिज मेजेस्टी की सरकार की स्थापित नीति से कैसे अलग हो सकता है?

2. केबिनेट मिशन के प्रस्ताव से अछूतों के साथ न केवल बहुत—बुरा बर्ताव हुआ है किन्तु इससे हिज मेजेस्टी की सरकार के सिद्धांत भी गंभीर रूप से विचलित हुए हैं। जिनसे उन्होंने भारतीय राजनीति के संबंध में और अछूतों की स्थिति के संबंध में नीतियां निर्धारित की थीं।

(i) 1920 से पहले, ब्रिटिश सरकार ने अपने स्वयं के प्राधिकार पर और अपनी इच्छानुसार भारत सरकार में संवैधानिक बदलाव किए थे। ऐसा पहली बार हुआ था, कि 1920 में ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों के परामर्श से भारत का संविधान बनाए जाने का निर्णय लिया। तदनुसार, एक गोलमेज सम्मेलन का आयोजन किया गया, जिसमें भारतीयों को भी आमंत्रित किया गया। भारतीयों में, अछूतों के प्रतिनिधि भी थे, जिन्हें कांग्रेस अथवा अन्य राजनैतिक दलों से अलग और स्वतंत्र रूप से आमंत्रित किया गया था।

(ii) कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में, मि. गांधी गोलमेज सम्मेलन में अछूतों को अलग समुदाय के रूप में पहचान दिए जाने का विरोध किया और इस बात पर जोर दिया कि वे हिन्दुओं का ही हिस्सा हैं और इसीलिए वे अलग प्रतिनिधित्व के पात्र नहीं हैं। ब्रिटिश सरकार ने मि. गांधी की बात नहीं मानी थी और अपने अधिनिर्णय

से उन्होंने अछूतों को भारत में एक पृथक तथा विशिष्ट तत्व की पहचान दी और इसलिए उन्हें भारत के अन्य अल्पसंख्यक वर्गों जैसे मुस्लिमों, भारतीय ईसाइयों आदि की भांति समान रक्षोपाय पाने का पात्र बताया था।

(iii) ब्रिटिश सरकार जून, 1945 में आयोजित शिमला सम्मेलन में इस सिद्धांत पर दृढ़ थी। उस सम्मेलन में आमंत्रित भारतीयों में, अछूतों का एक प्रतिनिधि भी था, जिसे पुनः कांग्रेस अथवा अन्य किसी राजनैतिक दल से अलग और स्वतंत्र रूप से आमंत्रित किया गया था।

(iv) यह कहा जा सकता है कि 1942 में क्रिप्स प्रस्तावों के भाग के रूप में गठित की गई संविधान सभा में अछूतों के लिए पृथक प्रतिनिधित्व का कोई उपबंध नहीं था और इसलिए, केबिनेट मिशन के प्रस्तावों को नीति को विचलित करने वाला नहीं माना जा सकता। उत्तर है कि उन्होंने ऐसा किया है। 1942 के क्रिप्स प्रस्तावों में, ऐसा नहीं था कि केवल अछूतों को ही पृथक प्रतिनिधित्व का अधिकार नहीं मिला था। वास्तविकता यह है कि संविधान सभा में किसी भी अल्पसंख्यक वर्ग को पृथक प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया था। किन्तु केबिनेट मिशन की संविधान सभा के गठन में मुस्लिमों और सिक्खों को पृथक पहचान और पृथक प्रतिनिधित्व दिया गया है, जबकि अछूतों के मामले में मनाही कर दी गई है। इसी पक्षपात को लेकर कि अछूतों के प्रति भेदभाव किया गया है वे शिकायत कर रहे हैं।

3. केबिनेट मिशन के प्रस्तावों की असमानता इस तथ्य में निहित है कि वह भारत में अछूतों को एक अलग तत्व के रूप में पृथक पहचान देने की नीति से हटता है और उन्हें मुस्लिमों तथा सिक्खों के समान मान्यता न देकर उनके साथ पक्षपातपूर्ण व्यवहार करता है।

केबिनेट मिशन का निर्णय कैसे हिज मेजेस्टी की सरकार द्वारा अछूतों से किए गए वायदों को तोड़ता है?

4. केबिनेट मिशन द्वारा अछूतों को एक पृथक तत्व के रूप में पहचान नहीं दिया जाना उन्हें ब्रिटिश सरकार द्वारा और उसकी ओर से किए गए वायदों के विपरीत है। कुछ निम्नलिखित वायदों का उल्लेख आवश्यक है:

(I)

हमें भारतीय एकता के हित में भारतीय राज्यों को किसी संवैधानिक योजना में शामिल करने की महत्वपूर्ण आवश्यकता को भूलना नहीं चाहिए।

मैं इनमें से केवल दो का उल्लेख करना चाहूंगा–मुस्लिम अल्पसंख्यक और अनुसूचित जाति–––––––––पूर्व समय में अल्पसंख्यकों को गारंटी दी गई है;

कि उनकी स्थिति को सुरक्षा प्रदान की जाएगी और उस दी गई गारंटी का सम्मान किया जाना चाहिए।

—लॉर्ड लिनलिथगो द्वारा ओरिएंट क्लब, बम्बई में 10 जनवरी, 1940 को दिए गए भाषण का उद्धरण

(ii)

दो बिन्दु मुख्य रूप से उभरे हैं। इन दो बिन्दुओं पर, हिज मेजेस्टी की सरकार चाहती है कि मैं उसकी स्थिति को स्पष्ट करुं। पहला बिन्दु, भविष्य की किसी संवैधानिक स्कीम के संबंध में अल्पसंख्यकों की स्थिति को लेकर है——————

स्पष्ट है कि वे (हिज मेजेस्टी की सरकार) भारत की शांति और हित के लिए अपनी वर्तमान जिम्मेदारियों को सरकार के किसी ऐसे तंत्र को सौंपने पर विचार नहीं कर सकते, जिसके प्राधिकार को प्रत्यक्ष तौर पर भारतीय जीवन में बड़े और शक्तिशाली तत्वों द्वारा नकार दिया जाए। न ही वे ऐसे तत्वों को बलपूर्वक अपने अधीन करके ऐसी सरकार में शामिल करने का कार्य ही कर सकते हैं।

—लॉर्ड लिनलिथगो 8 अगस्त, 1940 को दिए गए का बयान से उदाहरण

(iii)

कांग्रेसी नेताओं———————ने एक मजबूत संगठन का निर्माण किया है, जो भारत में सर्वाधिक दक्ष राजनीतिक तंत्र है——————यदि केवल वे ही सफल हुए होते। यदि कांग्रेस वास्तव में वह कहती, जैसा वह भारत की राष्ट्रीय जीवनधारा के समस्त मुख्य कारकों के प्रवक्ता के रूप में दावा करती है, तो उनकी मांगों में वृद्धि होते हुए भी कई मामलों में हमारी समस्या आज की तुलना में कहीं आसान होती। यह सत्य है कि संख्या की दृष्टि से वे ब्रिटिश भारत का एकल सबसे बड़ा दल है। पूरे किंतु भारत के बारे में बोलने के तथ्य के आलोक में उनका दावा भारत के जटिल जीवन में महत्वपूर्ण कारकों द्वारा पूरी तरह से अस्वीकार किया जाता है कि उन्हें संख्यात्मक रूप में न सिर्फ अल्पसंख्यक माना जाए बल्कि भविष्य की किसी भी भारतीय नीति में एक अलग सांविधिक कारक माना जाए। इन कारकों में सबसे पहले बहुत मुस्लिम समुदाय आता है। उन्हें भौगोलिक निर्वाचन क्षेत्रों में बहुमत के मत से चुनी गई संविधान सभा द्वारा बनाए गए संविधान से कुछ लेना–देना नहीं है। वे इस अधिकार का दावा करते हैं कि किसी भी सांविधानिक विचार–विमर्श के समय उन्हें

केवल संख्यात्मक आधार पर बहुसंख्यक न मानकर उनके अस्तित्व को समझा जाए। यही सब उस अन्य महान निकाय पर भी लागू होता है, जिसे अनुसूचित जाति के रूप में जाना जाता है, जो उनकी ओर से गांधी जी के सतत् प्रयासों के बावजूद, यह महसूस करता है कि एक समुदाय के रूप में वे हिन्दू समुदाय, जिनका कांग्रेस द्वारा प्रतिनिधित्व किया जाता है, के मुख्य निकाय से बाहर रहते हैं।

——मा. मि.एल.एस. एमरी, सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इंडिया द्वारा 14 अगस्त, 1940 को हाउस ऑफ कॉमन्स में दिए गए भाषण का उदाहरण

(iv)

''इन समस्त कारणों की विस्तार में पुनरावृत्ति किए बिना, मैं आपको याद दिलाना चाहूंगा कि हिज मेजेस्टी की सरकार ने उस समय स्पष्ट किया थाः—

(क) कि, उनकी पूर्ण स्वतंत्रता की प्रस्थापना भारतीय जीवन के मुख्य कारकों द्वारा संविधान तैयार करने और हिज मेजेस्टी की सरकार के साथ आवश्यक संधि व्यवस्थाओं पर बातचीत की सहमति युद्ध के पश्चात ही सर्शत हो गई थी;

(ख) कि, विद्वेष की अवधि के दौरान संविधान में कोई परिवर्तन करना असंभव है, जिसके द्वारा, जैसा आपका सुझाव है, केवल ''राष्ट्रीय सरकार'' को सेंट्रल असेम्बली को जवाबदेह बनाया जा सके।

इन शर्तों का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना था कि जातीय और धार्मिक अल्पसंख्यकों, दलित वर्गों के हितों और भारतीय राज्यों के साथ उनकी संधि की बाध्यताओं की रक्षा का उनका कर्तव्य पूरा होता हो''।

.....लार्ड वावेल द्वारा 15 अगस्त, 1944 को मि. गांधी को लिखे गए पत्र से उद्धृत

5. केबिनेट मिशन द्वारा अछूतों को पृथक प्रतिनिधित्व नहीं दिए जाने का प्रस्ताव संबंधित तथ्यों के ईमानदारी से किए गए परीक्षण से निकाला गया उनके व्यक्तिगत निर्णय का परिणाम नहीं है। दूसरी ओर मिशन ने जो कुछ किया, वह गांधी जी की पूर्वाधारणाओं के प्रति स्नेह व्यक्त करना है। मि. गांधी अछूतों को भारत के राष्ट्रीय जीवन मे एक अलग पहचान दिए जाने के घोर विरोधी हैं। उन्होंने गोलमेज सम्मेलन में उनके प्रतिनिधित्व का विरोध किया। जब उन्होंने देखा कि उनके विरोध के होते हुए भी अनुसूचित जाति को एक अलग तत्व के रुप में श्री रामसे मॅकडोनाल्ड के सांप्रदायिक अधिनिर्णय द्वारा उन्हें मान्यता प्रदान की गई है तो उन्होंने आमरण

अनशन की धमकी दी कि यदि अछूतों को दी गई पृथक मान्यता वापस नहीं ली गई। केबिनेट मिशन अपने प्रस्तावों को सफल बनवाने को उत्सुक था। जब तक वे गांधी जी की सहमति न प्राप्त करते यह संभव नहीं था। गांधी जी ने अपनी मांग रखी और मिशन ने उसे मान लिया। वह मांग थी अछूतों की पृथक राजनैतिक प्रभुता की कुर्बानी। वस्तुतः कोई भी कह सकता है कि जहां तक अल्पसंख्यकों का संबंध है, केबिनेट मिशन के प्रस्तावों में कुछ नया नहीं था, बल्कि गांधी के फार्मूले की पुनरावृत्ति थी जो उन्होंने दूसरे गोलमेज सम्मेलन में सुझाए थे। गांधी जी ने कहा कि राजनैतिक प्रयोजनों से वे केवल तीन समुदायों को मान्यता देते हैं (1) हिन्दू, (2) मुस्लिम और (3) सिक्ख। मिशन का फार्मूला गांधी जी के फार्मूले की प्रतिलिपि मात्र है। इस संबंध में अन्य कोई स्पष्टीकरण नहीं है।

III

अपने निर्णयों के औचित्य में केबिनेट मिशन द्वारा लिये गये आधार

6. अछूतों को एक पृथक तत्व के रूप में मान्यता नहीं दिए जाने के अपने निर्णय के औचित्य के लिए केबिनेट मिशन ने फरवरी, 1948 में हुए प्रान्तीय विधान सभाओं के चुनावों के परिणामों को आधार बनाया। 18 जुलाई, 1946 को केबिनेट मिशन के प्रस्तावों पर संसद में हुई बहस के दौरान, मिशन के सदस्यों ने निम्नलिखित बिन्दु खोजने का प्रयास कियाः—

(i) कि, चुनावों में, कांग्रेस ने अनुसूचित जातियों के लिए सभी आरक्षित सीटों पर कब्जा कर लिया; फलस्वरुप कांग्रेस अछूतों का प्रतिनिधित्व करती है। ऐसी स्थिति में अछूतों को पृथक प्रतिनिधित्व दिए जाने का कोई औचित्य नहीं है।

(ii) कि, अखिल भारतीय अनुसूचित जाति संघ और मेरी अपनी पहचान केवल बम्बई और मध्य प्रातों तक सीमित रह गई थी।

आधारों की निरर्थकता

7. ये आधार अद्‌भुत रूप से गढ़े गए हैं और एक सत्यनिष्ठ छानबीन की तुलना में टिकते नहीं हैं। केबिनेट मिशन ने आरंभ में ही भारी गलती कर दी कि उन्होंने कांग्रेस के प्रतिनिधि रूप के आकलन के लिए चुनावों के परिणामों को आधार बनाया। इस काम में, मिशन निम्नलिखित परिस्थितियों का ध्यान रखने में असफल रहाः—

(i) हिन्दू निर्वाचन क्षेत्र पूरी तरह से युद्ध की उत्तेजना में ब्रिटिश—विरोधी बना

रहा और यद्यपि इस क्षेत्र ने युद्ध के लिए सहायता तो दी किन्तु अनिच्छा से कार्य किया। कांग्रेस दल, ब्रिटिश–विरोधी था और युद्ध संबंधी कार्यों में उसका असहयोग हिन्दू निर्वाचन क्षेत्र की सबसे बड़ी पंसद थी। अन्य दल विशेषकर अनुसूचित जातियों ने चुनाव में हानि सही क्योंकि वे ब्रिटिश–समर्थक थे और युद्ध के प्रयासों में उनके सहयोगी थे।

(ii) चुनाव की तारीख निर्धारित होने से ठीक पहले, वायसराय और कमांडर–इन–चीफ ने इंडियन नेशनल आर्मी का ट्रायल रख दिया। कांग्रेस ने तुरन्त इंडियन नेशनल आर्मी के इस प्रयोजन को चुनाव का मुद्दा बना लिया। ट्रायल मुख्य कारक था, जिसने कांग्रेस का प्रभाव बढ़ाया जबकि वह अभी तक घाटे की स्थिति में थी।

;(iii) वह मुद्दा जिस पर चुनाव लड़ा गया, वह स्वतंत्रता और भारत छोड़ो का मुद्दा था। भारत के भावी संविधान किस तरह का होगा, यह कोई मुद्दा नहीं था। यदि यह मुद्दा होता तो कांग्रेस को वह बहुमत कभी प्राप्त न होता जो इसने पाया।

(iv) केबिनेट मिशन ने रिटर्निंग आफिसर्स और पोलिंग आफिसर्स की खुली शत्रुता पर ध्यान नहीं दिया–जिनमें सभी सवर्ण हिन्दू थे–और वे कांग्रेस के विरोध में खड़े होने वाले अनुसूचित जाति के उम्मीदवारों के विरुद्ध थे। वे उनके नामांकन पत्र निरस्त करने और मत–पत्र जारी करने के लिए मना करने की हद तक चले गए थे। केबिनेट मिशन ने आंतकवादी और धमकी देने जैसी घटनाओं पर ध्यान नहीं दिया, कि सवर्ण हिन्दुओं द्वारा अछूतों को इस आधार पर डराया–धमकाया जाता था कि वे कांग्रेसी उम्मीदवार को मत देने को तैयार नहीं थे। आगरा शहर में अछूतों के 40 घर जला दिए गए। बम्बई में एक अछूत व्यक्ति की हत्या कर दी गई और सैंकड़ो गांवों में असहाय अछूतों को मतदाता–केंद्रो तक जाने की अनुमति नहीं दी गई। नागपुर में एक पुलिस अधिकारी इस कदर कांग्रेस का पक्षधर बन गया कि न्यायाधीश की अनुमति के बिना ही अछूतों को डराने के उद्देश्य से अछूत मतदातों की भीड़ पर गोली चला दी। पूरे भारत में ऐसे अनेक मामले हुए।

8. यदि केबिनेट मिशन ने इन परिस्थितियों पर ध्यान दिया होता, तो उन्हें ज्ञात होता कि चुनावों में कांग्रेस की सफलता पूर्णतया लाभकारी परिस्थितियों का परिणाम थी। इन संपन्न चुनावों के परिणामों को, संविधान सभा में अछूतों को पृथक प्रतिनिधित्व नहीं दिए जाने के औचित्य के रूप में नहीं लिया जाना चाहिए।

अपने निर्णय के लिए मिशन ने झूठे मानदण्डों को कैसे अपनाया।

9. मिशन द्वारा निर्णय के लिए यह मानदण्ड अपनाया गया कि अंतिम चुनाव में कांग्रेस ने अनुसूचित जातियों के लिए कितनी आरक्षित सीटों पर विजय प्राप्त की तथा क्या कांग्रेस अछूतों का प्रतिनिधित्व करती है अथवा नहीं। यह मानदण्ड एक झूठा मानदण्ड था क्योंकि अंतिम चुनावों के परिणाम अछूतों की पहुंच के परे थे। पूना समझौते के तहत अंतिम–चुनावों का निर्धारण हिन्दू वोटों द्वारा होना था। मिशन को जो सच्चा मानदण्ड अपनाना चाहिए था, वह यह मालूम करना था। कि अछूतों ने कैसे मतदान किया, कांग्रेस के पक्ष में कितने मत पड़े और विपक्ष में कितने। इसका आकलन केवल प्रारंभिक चुनाव परिणामों से किया जा सकता है, अंतिम–चुनाव परिणामों से नहीं। प्रारंभिक चुनावों ने केवल अछूतों के वोटों से आकलन किया जा सकता है। यदि प्रारंभिक चुनावों के परिणाम का आधार बनाया जाता है, तो केबिनेट मिशन का निर्णय, तथ्यों के विपरीत हास्यास्पद जान पड़ेगा। प्रारंभिक चुनावों में कुल मतदान में से कांग्रेस के पक्ष में केवल 28 प्रतिशत मत डाले गए तथा 72 प्रतिशत मत इसके विरोध में डाले गए थे।

10. यह कहा जाता है कि यदि अछूत यह महसूस करते हैं कि वे कांग्रेस में नहीं थे, तो उन्हें चुनावों में अपने लिए आरक्षित सभी 151 सीटों पर प्रारंभिक चुनाव करवाने चाहिए थे। तथ्यात्मक रूप से देखें, तो पूरे भारत में केवल 43 सीटों के लिए प्रारंभिक चुनाव हुए। अछूतों ने शेष 108 सीटों के लिए प्रारंभिक चुनाव क्यों नहीं लड़ा?

निम्नलिखित कारणों से इसकी दलील हास्यास्पद जान पड़ती है:–

(i) प्रारंभिक चुनाव बाध्यकारी नहीं हैं। यह तभी बाध्यकारी होता है, जब तक सीट पर चार से अधिक उम्मीदवार चुनाव लड़ रहे हों। यह नहीं समझा जा रहा है कि जब कोई उम्मीदवार प्रारंभिक चुनाव लड़ेगा तो उसे अंतिम चुनाव में भी खड़ा होना पड़ेगा। दोहरे चुनाव का खर्च वहन करने में अक्षम अछूतों के लिए प्रारंभिक चुनावों में अछूत उम्मीदवारों को तैयार करना बहुत कठिन हो गया। यह तथ्य कि केवल 43 सीटों के लिए प्रारंभिक चुनाव हुए, यह निष्कर्ष निकाले जाने का आधार नहीं बन सकता कि अछूत कांग्रेस से अलग होने का दावा नहीं करते।

(ii) कांग्रेस से यह पूछा जाए कि उसने प्रारंभिक चुनावों में प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में 4 उम्मीदवारों क्यों खड़ा नहीं किये यदि कांग्रेस अछूतों का प्रतिनिधित्व करने का दावा करती है, तो उसे प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में कांग्रेसी टिकट पर 4 से

अधिक उम्मीदवार खड़े करने चाहिए थे और 151 निर्वाचन क्षेत्रों में प्रत्येक में प्रारंभिक चुनाव लड़ना चाहिए था तथा प्रत्येक अन्य पार्टी का अंतिम चुनाव में आने का अधिकार छीन लेना चाहिए था। कांग्रेस ने ऐसा नहीं किया। दूसरी ओर, 43 सीटों पर हुए प्रारंभिक चुनावों में भी, कांग्रेस ने अपनी विजय के कम अवसरों को देखते हुए प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र में अपना केवल एक–एक उम्मीदवार ही खड़ा किया, और प्रथम 4 में स्थान नहीं पाने पर अंतिम चुनाव में सवर्ण हिन्दुओं के मतों के सहारे जीतने की सोची। इससे प्रतीत होता है कि कांग्रेस जानती थी कि अछूतों को कांग्रेस पर विश्वास नहीं था।

(iii) अछूतों को मत देने का अधिकार सर्वप्रथम 1937 में प्राप्त हुआ था। 1937 में ही अछूतों ने चुनाव लड़ने के लिए अपने को संगठित करना आरंभ किया। केवल इस तथ्य से कि चुनावों में कांग्रेस ने अनुसूचित जाति संघ को पराजित कर दिया था, यह निष्कर्ष निकालना गलत है कि अछूत कांग्रेस के साथ हैं। केबिनेट मिशन चुनाव लड़ने में कांग्रेस और अनुसूचित जाति संघ की असमान शक्ति को योग्य ठहराकर यह निष्कर्ष निकालकर छूट लेना चाहता है कि चुनावों के परिणामों से संघ पर विपरीत प्रभाव पड़ा है।

अपने निर्णय के औचित्य में केबिनेट मिशन द्वारा लिए गए आधार की निरर्थकता

11. केबिनेट मिशन के सदस्यों ने बहस की कि डॉ. अम्बेडकर की प्रसिद्धि केवल बम्बई प्रेसिडेंसी और मध्य प्रांतों की अनुसूचित जातियों तक ही सीमित है। इस बयान को कोई आधार नहीं है। अनुसूचित जाति संघ अन्य प्रान्तों में भी अपना कार्य उसी प्रकार कर रहा है और उसने बम्बई तथा मध्य प्रांतों की भांति अन्य स्थानों पर भी उल्लेखनीय चुनावी सफलताएं हासिल की हैं। यह बयान देते हुए मिशन डॉ. अम्बेडकर द्वारा संविधान सभा के चुनाव में उनकी अकेली विजय को ध्यान में रखने में असफल रहा। वह बंगाल प्रान्तीय विधान सभा के उम्मीदवार के रूप में खड़े हुए। उन्होंने प्राथमिक पसंद वाले 7 मत अपने हक में प्राप्त किए और चुनाव में, जहां तक सामान्य सीटों का संबंध था, सर्वाधिक मत प्राप्त किए, यहां तक कि उन्होंने कांग्रेस दल के नेता श्री शरत चन्द्र बोस को भी पराजित कर दिया था। यदि बम्बई और मध्य प्रांतों के बाहर डॉ. अम्बेडकर का प्रभाव नहीं है, तो वे बंगाल से कैसे चुने गए? यह भी याद रखा जाए कि बंगाल प्रान्तीय विधान सभा की 30 सीटें अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित हैं। इन 30 में से कुछ मिलाकर 28 सदस्य कांग्रेस के टिकट पर चुने गए थे। 2 सदस्य इनके दल के थे, जिनमें से एक चुनाव के दिन बीमार पड़

गया था। इसका अर्थ यह हुआ कि कांग्रेस के टिकट पर जीते अनुसूचित जाति के 6 सदस्यों ने कांग्रेस के आज्ञा–पत्र का विरोध किया और डॉ. अम्बेडकर के पक्ष में वोट दिया। इससे यह परिलक्षित होता है कि कांग्रेस से संबद्ध अनुसूचित जाति के ये सदस्य अनुसूचित जाति के नेता के रुप में डॉ. अम्बेडकर का सम्मान करते हैं। यह तथ्य मिशन के बयान को पूरी तरह झुठलाता है।

12. केबिनेट मिशन के सदस्य कहते हैं कि संविधान सभा के गठन में एकरूपता बनाए रखने के लिए उन्हें अछूतों के मामले में अंतिम चुनावों के परिणामों को आधार बनाना पड़ेगा, जैसा उन्होंने अन्य समुदायों के मामले में किया है। यह मुद्दा विशेष बहस का एक आधार है और इसमें कोई जान नहीं है। मिशन को मालूम है कि अंतिम चुनाव मुस्लिमों, भारतीय ईसाइयों और सिक्खों ने पृथक निर्वाचन क्षेत्रों के माध्यम से लड़ा था। फलस्वरूप, एकरूपता के उद्देश्य से मिशन को संविधान सभा में अछूतों को प्रतिनिधित्व देने के लिए प्रारंभिक चुनावों के परिणामों को आधार बनाना चाहिए। मिशन ऐसा करने के लिए बाध्य था, क्योंकि बहस के दौरान सर स्टेफॉर्ड क्रिप्स ने यह माना था कि जैसा पूना समझौते में निर्धारित किया गया था, अछूतों के चुनाव के लिए अपनाई जाने वाली प्रणाली अन्यायपूर्ण थी। तब क्यों मिशन ने इसे अपने निर्णय के आधार के रूप में अपनाया था?

IV

अछूतों को सन्निकट संकट में डाले जाने से बचाने के लिए क्या किया जा सकता है

13. केबिनेट मिशन ने संविधान सभा के गठन के माध्यम से अछूतों को पूरी तरह सवर्ण हिन्दुओं की दया पर निर्भर छोड़ दिया था, जिनका संविधान सभा में बहुमत है। अछूत हिज मेजेस्टी की सरकार द्वारा सांप्रदायिक अधिनिर्णय के तहत उन्हें दिए गए पृथक निर्वाचन क्षेत्रों की बहाली और पूना समझौते की समाप्ति चाहते थे, जो उन पर गांधी जी द्वारा आमरण अनशन की कार्रवाई द्वारा जबरदस्ती लागू किया गया था। हिन्दू इसका निश्चित रूप से विरोध करेंगे। इस आलोचना के बदले में कि उन्हें हिन्दु बहुमत की दया पर छोड़ दिया गया है और केबिनेट मिशन अल्पसंख्यकों के अधिकारों की सुरक्षा के एक माध्यम के रूप में एक सलाहकार समिति के लिए अपने प्रस्तावों का प्रचार कर रहा है। यदि सलाहकार समिति की शक्तियों और गठन की जांच की जाए तो मालूम पड़ेगा कि यह निकाय निरर्थक है।

(i) समिति की बनावट संविधान सभा की धुंधली छवि मात्र है। इसमें भी हिंदू

उसी तरह अपना वर्चस्व कायम रखेंगे जैसा वे संविधान सभा में रखते हैं;

(ii) यह तथ्य कि संविधान सभा के साथ–साथ सलाहकार समिति में भी कांग्रेस की छवि के कारण कुछ अछूत शामिल होंगे, संविधान सभा और समिति के अछूत सदस्य, जो हिन्दुओं के हाथ की कठपुतली हैं, अछूतों की कुछ मदद नहीं कर सकते।

(iii) सलाहकार समिति द्वारा अल्पसंख्यकों की सुरक्षा के प्रश्नों को लेकर किए जाने वाले निर्णय बहुमत पर छोड़ दिए गए हैं, जिसका अर्थ है कि निर्णय जातीय हिन्दुओं द्वारा किया जाएगा और उसे अल्पसंख्यको पर लागू किया जाएगा।

(iv) सलाहकार समिति का निर्णय भले ही पक्ष में हो, सिफारिशों से अधिक कुछ नहीं है। वे संविधान सभा के लिए बाध्यकारी नहीं हैं।

14. सलाहकार समिति का हथियार छल–कपट न भी हो तो भी कृत्रिम जरूर होता है और हिन्दू बहुमत अल्पसंख्यकों के प्रति जो गलत कार्य कर सकता है, उससे बचने के लिए उन पर विश्वास नहीं किया जा सकता। अपने कपटपूर्ण व्यवहार के चलते हिन्दू बहुमत ने अछूतों को दर किनार कर दिया है और लगता है कि वे उन्हें राजनीतिक सुरक्षा प्राप्त करने के उनके दावे, जो किसी बहुमत वाले वर्ग को देय होते हैं, से वंचित करने के लिए प्रतिबद्ध हैं। यह कांग्रेस के 25 जून, 1946 के पत्र (कमी.6861 में मद 21) से स्पष्ट है। उक्त पत्र में कांग्रेस ने यह मत अपनाया है कि अछूत अल्पसंख्यक नहीं हैं। यह एक आश्चर्यचकित करने वाली स्थिति है। गांधी जी द्वारा भी अपने 21 अक्तूबर, 1939 के हरिजन नामक साप्ताहिक पत्र में यह माना गया है कि भारत में केवल अछूत ही सच्चे अल्पसंख्यक हैं। अतः कांग्रेस ने इसका ठीक उलट पक्ष किया है। कांग्रेस ने जो कदम उठाया है, वह भारत शासन अधिनियम, 1935 के निहित सिद्धांतों के विपरीत है, जबकि अधिनियम में अछूतों को अल्पसंख्यक कहा गया है। इस उलट पक्ष में क्या कपट है, उसे जानना संभव नहीं है। यदि कांग्रेस अछूतों को अल्पसंख्यक का दर्जा नहीं देती, तो यह संभव है कि संविधान सभा उन्हें वह सुरक्षा प्रदान करने से मना कर दे, जो वह अन्य अल्पसंख्यक वर्गों को देने के लिए सहमत हो सकती है। अतः सलाहकार समिति अछूतों को इस संकट से नहीं बचा सकती।

15. अतः, यह सुनिश्चित करने के लिए कि अछूतों की स्थिति दांव पर न लगे, संसद को अवश्य ही हस्तक्षेप करना चाहिए। संसद को ऐसा अवश्य करना चाहिए, केवल इसलिए नहीं कि इसने वायदा किया है किन्तु इसलिए कि संविधान सभा की वार्ताओं की अभिपुष्टि नहीं होती।

16. संसद क्या कर सकती है? अछूत चाहेंगे कि अंतरिम सरकार के मामले में उनके साथ जो कुछ गलत हुआ है उसे ठीक किया जाए। वे अपना कोटा निर्धारित

कराना चाहेंगे। वे चाहेंगे कि उन्हें कार्यकारी परिषद में अपने प्रतिनिधि नामित करने का अधिकार प्राप्त हो। ये अधिकार कोई नए दावे नहीं हैं। ये अछूतों के निहित अधिकार हैं, जिन्हें काफी समय पहले 1945 में शिमला सम्मेलन में मान्यता दी गई थी। वे महसूस करते हैं कि इस गलती को अब सुधारना कठिन हो सकता है। किन्तु यदि परिस्थितियां बदलती हैं और सरकार का पुनर्गठन होता है, तो वे उम्मीद करते हैं कि संसद इस गलती को सुधारने के लिए हिज मेजेस्टी की सरकार पर दबाव डालेगी।

17. अछूतों को उस चोट से अब काफी हद तक बचाया जा सकता है, जो उन सवर्ण हिन्दुओं के वर्चस्व वाली संविधान सभा उन्हें दे सकती है, जो अछूतों को उनके राजनैतिक अधिकारों की सुरक्षा से वंचित करना चाहते हैं। इस हानि को रोकने के लिए निम्नलिखित कदम उठाए जा सकते हैः—

I. हिज मेजेस्टी की सरकार पर यह घोषणा करने का दबाव बनाया जाए कि वे एक अल्पसंख्यक वर्ग के रूप में अछूतों का सम्मान करती है।

ऐसा करना कांग्रेस द्वारा अपने 25 जून, 1946 के पत्र (कमी.6861 में मद 21) में लिए गए दृष्टिकोण को देखते हुए आवश्यक है। यह सब इसलिए भी आवश्यक है कि वायसराय ने कांग्रेस को अपने 27 जून, 1946 के उत्तर (कमी. 6861 में मद 21) कांग्रेस के इस आशय की विशेष रुप से मनाही से बचना चाहा है कि अछूत अल्पसंख्यक नहीं हैं। यदि इस समय घोषणा करने के लिए सरकार पर दबाव नहीं बनाया जाता है तो अछूत दो तरह से प्रभावित होंगेः—

(क) हिन्दुओं के वर्चस्व वाली संविधान सभा अछूतों को अल्पसंख्यकों के अधिकारों से वंचित करेगी।

(ख) हिज मेजेस्टी की सरकार इस आधार पर उनके बचाव के लिए आगे नहीं आएगी कि उन्होंने अछूतों को एक अल्पसंख्यक वर्ग मानने की प्रतिबद्धता नहीं दिखाई थी।

II. यह घोषणा करवाने के लिए दबाव बनाना कि क्या हिज मेजेस्टी की सरकार एक ऐसा तंत्र, यदि हां तो किस प्रकार का होगा, गठित करेगी जो यह जांच करेगा कि क्या अल्पसंख्यकों के लिए संविधान सभा द्वारा तैयार की गई सुरक्षा व्यवस्थाएं पर्याप्त और वास्तविक हैं।

(क) अपने 25 मई, 1946 (कमो.6835) के अनुपूरक बयान में केबिनेट मिशन ने कहा किः—

''जबकि संविधान सभा अपना काम पूरा कर चुकी है, हिज मेजेस्टी की सरकार संसद को केवल उन दो मुद्दों को छोड़कर भारतीय जनता को संप्रभुता सौंपे जाने के लिए आवश्यक समझी जाने वाली कार्रवाई की सिफारिश करेगी, जिनका बयान में उल्लेख है और हमारा विश्वास है कि जो विवादास्पद नहीं हैं, मुद्दे हैंः अल्पसंख्यकों की सुरक्षा के लिए पर्याप्त उपबंध (बयान का पैरा 20)

और सत्ता के हस्तातंरण (बयान का पैरा 22) के फलस्वरूप सामने आए मुद्दों के लिए हिज मेजेस्टी की सरकार से संधि करने की इच्छा''।

इस पैराग्राफ के पीछे जो विचार है, वह पूर्णतया स्पष्ट नहीं है। हिज मेजेस्टी की सरकार के आशय के स्पष्टीकरण के लिए उन पर दबाव बनाना आवश्यक है।

(ख) यदि अध्यधीन शब्द का अभिप्राय यह है कि हिज मेजेस्टी की सरकार ने संविधान सभा द्वारा अल्पसंख्यकों के प्रदन्त सुरक्षा की जांच के अधिकार अपने पास सुरक्षित रखा है, ताकि वह देख सके कि प्रदत्त सुरक्षा पर्याप्त और वास्तविक हैं, अतः हिज मेजेस्टी की सरकार पर यह दबाव बनाना आवश्यक है कि वह इस प्रकार की जांच के लिए किस तन्त्र का प्रस्ताव करती है। इसके लिए संयुक्त संसदीय समिति का ऐसा तंत्र सर्वाधिक उपयुक्त होगा, जिसे अल्पसंख्यक वर्गों के गवाहों के बयान लेने की शक्ति प्राप्त हो। इसका एक उदाहरण है। जब भारत शासन अधिनियम, 1935 अपनी रचना की अवस्था में था, उस समय एक संयुक्त संसदीय समिति गठित की गई थी। संविधान सभा की रिपोर्ट के अनुपालन में उक्त उदाहरण का अनुकरण करना गलत नहीं होगा।

III. हिज मेजेस्टी की सरकार पर यह घोषणा करने के लिए दबाव बनाया जाए कि संविधान सभा द्वारा निर्मित संविधान, जिसमें भारत के भावी संविधान में थोड़े बहुमत द्वारा अल्पसंख्यकों को प्रदन्त सुरक्षा की शक्ति समाप्त किए जाने की शर्त है, के संबंध में क्या वह इसके लिए आग्रह कर सकेगी।

(क) न तो केबिनेट मिशन का 16 मई, 1946 का पहला बयान, न ही उसका 25 मई, 1946 का अनुपूरक बयान स्वतंत्र भारत के संविधान में संशोधन और अल्पसंख्यकों की सुरक्षा संबंधी उपबंध को रद्द किए जाने के प्रश्न से संबंधित है। संसद में रक्षोपाय पुनः स्थापित करने का कोई अर्थ नहीं है यदि इन रक्षोपायों को भारतीय विधानमंडल द्वारा समाप्त किया जा सकता हो। ऐसी कार्रवाई के लिए केवल यही उपाय हैं कि यह ध्यान रखा जाए कि संविधान सभा द्वारा निर्मित संविधान में भारतीय विधायिका की संवैधानिक शक्तियों को सीमित करने की शर्त रखी जाए और अल्पसंख्यकों

के लिए प्रदत्त सुरक्षाओं में परिवर्तन करने से पूर्व उल्लिखित अनुकरणीय उदाहरण का पालन किया जाए। संयुक्त राज्य अमेरिका और आस्ट्रेलिया के संविधान में ऐसे उपबंध उपलब्ध हैं।

(ख) यद्यपि यह मामला अल्पसंख्यकों के लिए अति महत्व वाला है, केबिनेट मिशन ने इस विषय पर कोई विचार व्यक्त नहीं किया है। यह आवश्यक है कि हिज मेजेस्टी की सरकार पर दबाव डाला जाए कि इस प्रश्न के संबंध में उनका क्या कहना है।

डॉ. भीम राव अम्बेडकर

डॉ. अम्बेडकर का ज्ञापन

लंदन, 25 अक्तूबर

1: खैरमॉड, खण्ड 8, पृ. 124–139

"डॉ. भीम राव अम्बेडकर ने गत रात्रि ब्रिटिश प्रधान मंत्री, सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इंडिया, विस्टन चर्चिल और अन्य राजनयिकों को पत्र भेजे।

पत्रों मे साक्षात्कार देने का प्रतिवेदन जिनमें अम्बेडकर अपना पक्ष रख सके और जिन्हें उन्होंने संपर्क किया उनमें लॉर्ड टेंपलवुड (पूर्व सर सेमुअल हॉरे), लार्ड स्कारबॉटो (पूर्व सर रॉजर लयमूले, लार्ड स्कारबॉटो, शामिल हैं।

गत रात्रि डॉ. अम्बेडकर ने रयूटर के राजनैतिक संवाददाता को कहा, "मैंने अपने कई अन्य मित्रों को भी पत्र लिखे हैं, जिन्होंने गोलमेज सम्मेलन में भाग लिया था और वे अनुसूचित जाति की हालत के बारे में जानते हैं। मैंने एक ज्ञापन तैयार किया है, जिसमें यह दर्शाने के लिए कि कांग्रस अछूतों का प्रतिनिधित्त्व करती है पूणर्त : असत्य है प्रारंभिक चुनावों के आंकड़ों का मुद्रण किया जा रहा है, जिसकी प्रतियां विभिन्न राजनयिकों को भिजवाई जाएंगी–––––रयूटर"।[1]

"राजनैतिक स्वतंत्रता" के लिए मांग

लंदन, 1 नवम्बर (रयूटर)

1: दि टाइम्स ऑफ इंडिया, दिनांक 26 अक्तूबर, 1946

डॉ. भीमराव अम्बेडकर, अनुसूचित जाति नेता, जो इस समय लंदन में हैं, के अनुसार ऐसी संभावना है कि यदि भारत की अनुसूचित जातियों को नई भारतीय सरकार में पृथक प्रतिनिधित्व नहीं मिला तो वे स्वयं को मुस्लिम समुदाय के साथ खड़ा कर सकते हैं।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर, टोरंटों से प्राप्त एक रिपोर्ट पर आज रयूटर के साथ टिप्पणी कर रहे थे कि टोरंटो विश्वविद्यालय के एक भारतीय विद्यार्थी और लाहौर के एक पूर्व संवाददाता श्री अमीन तरीन ने कहा है कि डॉ. अम्बेडकर ने अपने लोगों को सलाह दी है कि यदि वे संतुष्ट नहीं हो पाएं तो वे इस्लाम धर्म अपना लें। "मैंने इस तरह की कोई सलाह नहीं दी है" डॉ. अम्बेडकर ने कहा, "किंतु ऐसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है"। भारत में मेरे अनेक व्यक्ति इस प्रश्न पर गंभीरता से विचार कर रहे हैं। हमें उम्मीद है कि कांग्रेस और गांधी जी यह जागरूकता दिखायेंगे और अछूतों को हिन्दुओं से राजनैतिक आजादी दिलाने को सहमत होंगे। बड़े खेद की बात है कि गांधी जी इसे महत्व देने में सफल नहीं रहे हैं।

"यक्तिगत तौर पर, मैं महसूस करता हूं कि गांधी जी और कांग्रेस यदि उन्हें राजनैतिक आज़ादी देते हैं, तो "हिन्दुओं और अछूतों के बीच बहुत एकता, सहयोग और भाईचारा हो जाएगा", किन्तु यदि गांधी जी और कांग्रेस अछूतों को हिन्दुओं के राजनैतिक प्रभुत्व के अंतर्गत लाना चाहते हैं और उन्हें हिन्दुओं का राजनैतिक दास बनाना चाहते हैं, तो अछूत विद्रोही हो जाएंगे और किसी अन्य समुदाय में शामिल होकर अपुनी मुक्ति का प्रयास करेंगें"।

1: दि बॉम्बे क्रानिकल, दि. 2 नवम्बर, 1946

24

चर्चिल–अम्बेडकर वार्ता

डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने श्री चर्चिल से मुलाकात की और उन्हें भारत में अछूतों की दयनीय स्थिति से अवगत कराया। वार्ता की प्रेस रिपोर्ट इस प्रकार हैः

संपादक

लंदन, 4 नवंबरः अनुसूचित जाति के नेता डॉ. अम्बेडकर ने आज कहा कि उन्होंने प्रान्तीय सरकार मे दलित वर्गों के पृथक प्रतिनिधित्व के बारे में मि. विंस्टन चर्चिल, ब्रिटिश कंजर्वेटिव पार्टी के नेता को अपने विचारों से अवगत कराया।

उन्होंने बताया कि उनकी यह बैठक मि. चर्चिल के वेस्टहेम, केष्ट स्थित कन्ट्री होम में हुई, जहां उन्होंने दोपहर का भोजन किया और अपने दिन का अधिकांश समय दि–वार–लीडर के साथ बिताया। उन्होंने कहा कि श्री चर्चिल बहुत सह्ृदय व्यक्ति हैं।

1: दि टाइम्स ऑफ इंडिया, बधुवार 6 नवम्बर, 1946, पृ.5 पुनः मुद्रितः खेरमॉड, खण्ड 8, पृ.139

25

पृथक निर्वाचन क्षेत्रों की बहाली

अपने लंदन प्रवास के दौरान डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने हाउस ऑफ कॉमन्स में कंजर्वेटिव इंडियन कमेटी की बैठक को संबोधित किया। 5 नवम्बर, 1946 को आयोजित इस बैठक में लेबर और लिबरल पार्टियों के कुछ सांसद भी शामिल हुए। रिपोर्ट इस प्रकार हैः

संपादक

"लंदनः 6 नवम्बर (यू.पी.आई.): डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने कल हाउस ऑफ कॉमन्स में कंजर्वेटिव इंडियन कमेटी की एक बैठक को संबोधित किया जिसमें कुछ लेबर और लिबरल सांसद भी मौजूद थे। प्रेस को वहां आने की अनुमति नहीं दी गई और लगभग एक घंटे तक चली वार्ता के बारे में कुल मिलाकर कुछ दर्ज नहीं हो सका।

तथापि, यह समझा जाता है कि डॉ. अम्बडेकर ने केबिनेट मिशन के कार्य पर अपनी गंभीर निराशा व्यक्त की। उन्होंने उपस्थित सदस्यों को बताया, कि उन्होंने श्री चर्चिल और लार्ड पैथक–लॉरेन्स को जो ज्ञापन सौंपा था, उसमें यह दर्शाने का प्रयास किया गया था कि कांग्रेस अछूतों का प्रतिनिधित्व नहीं करती। उन्होंने स्वयं और महात्मा गांधी द्वारा हस्ताक्षरित पूना समझौते को समाप्त करने की मांग की और मॅक डोनाल्ड के कॉम्यूनल अवार्ड में उल्लेखानुसार पृथक निर्वाचन क्षेत्रों की बहाली की मांग की।

हालांकि, डॉ. अम्बेडकर को थोड़ी उम्मीद है कि वे अपने मिशन में कामयाब होंगे सिवाय इसके कि मि. चर्चिल सत्ता में लौटेंगे।

लेबर सदस्यों ने उनसे कुछ नजदीकी प्रश्न पूछे जिनसे प्रतीत होता है कि "सत्ता में आया दल सांप्रदायिक मुद्दे को तूल देने के मूड में नहीं है। उन्हें बताया गया, कि जैसा देखा गया है, वह स्वयं को बदलती परिस्थितियों के अनुसार ढालने का प्रयास करें और संविधान सभा में अपना भाग्य आजमाएं"।

---

* परिशिष्ट VI देखें।

1: बॉम्बे क्रानिकल, दि. 7 नवम्बर, 1946

पुनः मुद्रितः खेरमॉड, खण्ड 8, पृ.140–141

26

डॉ. अम्बेडकर महसूस करते हैं कि अंग्रेज न्याय करेंगे

लंदन, 7 नवम्बर (रयूटर)

अनुसूचित जाति नेता, डॉ. भीमराव अम्बेडकर, जो अपने इंग्लैण्ड दौरे की समाप्ति के बाद सोमवार को वापस भारत रवाना होने वाले हैं, ने आज रात रयूटर के राजनैतिक संवाददाता फ्रेजर विग्टन को दिए एक साक्षात्कार में अपने विचार प्रकट किए कि उन्हें विश्वास है कि अवसर आने पर, ब्रिटिश सरकार अनुसूचित जातियों के प्रति हुए गलत कार्यों को सुधारने के लिए हिचकेगी नहीं।

डॉ. अम्बेडकर, अनुसूचित जातियों के प्रति, जैसा वह मानते हैं कि भारतीय प्रान्तीय सरकार में उनके प्रतिनिधि नामित नहीं किए जाने की अनुमति न देकर अन्याय किया गया है, का विरोध जताने आए हैं, यहां उन्होंने प्रधान मंत्री श्री क्लिमेंट एटली सहित सभी प्रमुख ब्रिटिश राजनैतिक नेताओं से मुलाकात की है।

डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि वह अपने इंग्लैण्ड दौरे के परिणामों से बहुत संतुष्ट हैं। उन्होंने कहा "मैंने देखा है कि सभी दलों में अनुसूचित जातियों और उनके भविष्य को लेकर गहरी सहानुभूति है"।

डॉ. अम्बेडकर ने यह बात जोड़ते हुए कि यह सभी दलों में हर क्षेत्रों के लिए लागू होता है, घोषणा की कि उनके इस दौरे का आशय भारत में संविधान सभा के गठन और उसमें अछूतों की स्थिति को लेकर इंग्लैण्ड में सभी को उस संकट से अवगत कराना है, जिससे इस समय अछूत गुजर रहे हैं।

मुझे कोई संदेह नहीं है कि जब भी भारत के संबंध में चर्चा होगी, संसद में विभिन्न दल इस प्रश्न को भूल अथवा अनदेखा नहीं कर पाएंगे। अछूतों के लिए, यह भी एक बड़ा आश्वासन होगा, जो यह महसूस कर रहे थे कि उनके मामले पर सदन में आवश्यक विचार–विमर्श न होगा।

डॉ. अम्बेडकर ने आगे कहा कि वह सरकार के सदस्यों से मिले थे और यद्यपि यह होना ही था कि वे अपनी भावी कार्रवाई पर कोई टिप्पणी करने

से हिचके, उनका विश्वास है कि जब उनके हस्तक्षेप की आवश्यकता पड़ेगी, वे अछूतों के प्रति हुई किसी भी गलत कार्रवाई में सुधार के लिए नहीं हिचकेंगे।

डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि वह देखकर काफी आश्चर्यचकित हुए कि लंदन में गाधी जी के कुछ मित्र अनुसूचित जातियों के प्रति उनके रवैये को लेकर काफी आलोचना कर रहे थे। उन्होंने कहा कि उनकी राय में यदि अछूत हिन्दू ही थे, तो भी उन्हें पृथक निर्वाचन क्षेत्र का अधिकार दिए जाने में कोई आपत्ति नहीं है। श्री एटली की भारतीय परिस्थितियों की जानकारी ने डॉ. अम्बेडकर को प्रभावित किया, उन्होंने सोचा कि प्रधानमंत्री इस बात को लेकर जागरुक थे कि अनुसूचित जातियों के संबंध में ''विचार किए जाने की आवश्यकता है''।

उनका यह भी विचार था कि मि. चर्चिल यह सुनिश्चित करने के लिए बहुत उत्साही और इच्छुक थे कि किसी भी तरह से बनाए जाने वाले संविधान में अनुसूचित जातियों को सुरक्षा' प्रदान की जाए।

---

* परिशिष्ट–VII देखें।

1: दि बाम्बे क्रानिकल, दिनांक 9 नवम्बर, 194

Dr. B.R. Ambedkar & His Egalitarian Revolution

Part Two

सेवा में,

निदेशक,

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान,

सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय,

भारत सरकार

15 जनपथ, नई दिल्ली–110001

विषयः सीडब्ल्यूबीए–मूल पाठ का अनुवाद के संदर्भ में।

महोदय,

उपर्युक्त विषय में संबंधित आपके पत्र सं.16/82/2008 डीएएफ तारीख 10.08. 2010 के संदर्भ में बाबा साहेब अम्बेडकर के ग्रंथ संग्रह सीडब्ल्यूबीए अंग्रेजी खंड 17, भाग 2 के पृष्ठ संख्या 395 से 545 1 कस हिंदी अनुवाद पृष्ठ सं.1 से 230 संलग्न है। इसमें अंग्रेजी के लगभग 42,000 शब्द हैं।

आशा है आप पारिश्रमिक की अदायगी शीघ्र कराएंगे।

सादर,

भवदीय,

के.एस. सक्सेना,

ए–23, श्री अरिहंत सीजीएचएस,

प्लाट न.1093, सेक्टर–54

गुड़गांव।

9873085498

1

बहिष्कृत हितकारिणी सभा

डॉ. अम्बेडकर ने 9 मार्च, 1942 को दामोदरन हॉल, बम्बई में एक बैठक का आयोजन किया जिसका उद्देश्य एक ऐसे केंद्रीय संस्थान की स्थापना करना था जो अछूतों की शिकायतों को सरकार के समक्ष प्रस्तुत करेगा और पर्याप्त वाद–विवादों के पश्चात् केंद्रीय संस्थान की स्थापना हुई। उन्होंने संस्थान के लिए बहिष्कृत हितकारिणी सभा के नाम का प्रस्ताव किया जिसका समर्थन सभी के द्वारा किया गया। संस्थान की शपथ का निर्णय शिक्षित करें, संघर्ष करें और संगठित करें के रूप में किया गया जिसे सर्वसम्मति से अनुमोदित किया गया।

श्री सर चिमनलाल हरिलाल सीतलवाड एल.एल.डी. बहिष्कृत हितकारिणी सभा के अध्यक्ष बने और श्री नेयेर निस्सिम, जे.पी.उपाध्यक्ष थे। श्री रुस्तमजी जिनवाला, सॉलिसिटर, श्री जी.के. नारीमन, डॉ. आर.पी. परांजपे, डॉ. वी.पी. चव्हाण, श्री बी.जी. खेर, सॉलिसिटर समिति में शामिल किए गए थे। डॉ. बी.आर. अम्बेडकर प्रबंध समिति के सभापति तथा श्री एस.एन. शिवतरकर, सचिव और श्री एन.टी. जाधव कोषाध्यक्ष थे। बहिष्कृत हितकारिणी सभा की स्थापना 20 जुलाई 1924 को हुई और इसका पंजीकरण 1860 के अधिनियम XXI के अधीन हुआ।

इस संस्था की संरचना डॉ. अम्बेडकर ने की। संरचना का पाठ निम्न प्रकार है–संपादकगण

बहिष्कृत हितकारिणी सभा

(सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के अधीन पंजीकृत)

<u>गठन के नियम</u>

स्थापित

20 जुलाई, 1924

मुख्यालय

दामोदर हॉल, परेल

बम्बई–12

कॉपरेटिव प्रिंटिंग प्रेस, 91 बी, परेल रोड, निकट वीनस सिनेमा, चिंचपोकली, बंबई–12 द्वारा मुद्रित

बहिष्कृत हितकारिणी सभा

संगम ज्ञापन

I. समिति का नाम बहिष्कृत हितकारिणी सभा होगा।

II. इसके क्रियाकलाप बंबई प्रेसीडेन्सी तक सीमिति होंगे।

III. सभा का मुख्यालय बंबई में स्थित होगा।

IV. सभा के लक्ष्य और उद्देश्य निम्न होंगे–

(क्) दलित वर्गों में शिक्षा के संवर्धन और प्रसार के लिए छात्रावास खोलना या अन्य ऐसे साधनों का उपयोग करना जो आवश्यक या वांछनीय हों।

(ख) दलित वर्गों में संस्कृति के संवर्धन और प्रसार के लिए पुस्तकालयों, सामाजिक केंद्रों और प्रसार के लिए पुस्तकालयों, सामाजिक केंद्रों और कक्षाओं या अध्ययन केद्रों को खोलना।

(ग) दलित वर्गों 7की आर्थिक स्थिति को उन्नत और उसमें सुधार करने के लिए आधोगिक और कृषि विद्यालय प्रारंभ करना।

(घ) दलित वर्गों की शिकायतों का प्रतिनिधित्व करना।

(ड.) दलित वर्गों में सामान्य जागरूकता, सामाजिक उन्नति या आर्थिक खुशहाली लाने से संबंधित किसी क्लब, संघ या किसी आंदोलन को संगठित या सहायता करना।

V. उपर्युक्त उद्देश्यों के अनुपालन और उनके क्रियान्वयन के प्रयोजन के लिएः–

(1) सभा प्रयोजन के लिए आवश्यक या सुविधाजनक किन्हीं अधिकारों या विशेषाधिकारों को खरीदना, भाड़े, पट्टे पर लेना या अन्यथा अर्जित करना।

(2) सभा के प्रयोजन के लिए आवश्यक या सुविधाजनक किसी भवन या भवनों का परिनिर्माण, निर्माण, परिवर्तन और रख–रखाव करना।

(3) सभा की संपत्ति या अधिकारों और विशेषाधिकारों के सभी या किसी भाग को बेचना, उन्नत करना, विकसित करना, आदान–प्रदान करना, पट्टे पर देना, बंधक रखना, निपटाना, लाभप्रद बनाना, प्रबंध करना या अन्यथा उस पर कार्रवाई करना।

(4) सभा के सामान्य या विशिष्ट प्रयोजनों के लिए ऐसी शर्त या शर्तों पर दान या संपत्ति स्वीकार करना जो सभा के लक्ष्यों या उद्देश्यों के अनुरूप हो।

(5) किसी समिति या संघ के साथ समायोजित होना या अपने साथ निगमित होना जिसके उदेश्य और लक्ष्य सभा के उदेश्यों एवं लक्ष्यों के अनुरूप हो।

VI. सभा के शासन का संचालनः-

(i) न्यासी बोर्ड

(ii) प्रबंध परिषद्

(iii) नियंत्रण बोर्ड

द्वारा किया जाएगा जिनकी नियुक्ति सभा के नियमानुसार होगी।

VII. न्यासी बोर्ड, प्रबंध परिषद् और नियंत्रण बोर्ड की किसी भी बैठक के लिए गणपूर्ति (कोरम) क्रमशः 10.7 और 15 उन निकायों के सदस्यों की होगी। किसी स्थगित बैठक के लिए कोई गणपूर्ति आवश्यक नहीं होगी।

VIII न्यासी बोर्ड, प्रबंध परिषद् और नियंत्रण बोर्ड का कोई भी न्यासी बोर्ड, प्रबंध परिषद और नियंत्रण बोर्ड सदस्य के कारण सभा की संपत्तियों और निधियों से धन संबंधी लाभ लेने का हकदार नहीं होगा।

नियम

1. 18 वर्ष से अधिक आयु वाला कोई भी पुरूष या महिला, सभी सदस्यता ले सकते हैं।

2. सभा का सदस्य बनने का इच्छुक कोई भी व्यक्ति इस प्रयोजन के लिए उपलब्ध आवेदन–पत्र पर आवेदन कर सकता है।

3. प्रबंध परिषद् के पास सदस्यता के लिए किसी भी आवेदन–पत्र को स्वीकृत या अस्वीकृत करने की शक्ति होगी।

4. सभा की साधारण सभा को सभा के किसी भी सदस्य को उसके घोर कदाचार द्वारा सभी के हितों को संकटापन्न स्थिति में डालने पर, बैठक में उपस्थित तीन–चौथाई सदस्यों के मतों से बर्खास्त करने की शक्ति होगी।

5. सभा के सदस्यों का वर्गीकरण निम्न प्रकार होगाः

(i) संरक्षकः वे जो 3000/– रुपये या इससे अधिक की राशि एक मुश्त या ऐसी उपयुक्त किस्तों में अदा करें, जिसका अनुमोदन प्रबंध परिषद् द्वारा किया जाए।

(ii) समर्थकः वे जो 2000/– रुपये या इससे अधिक राशि एक मुश्त या उपयुक्त किस्तों में अदा करें जिसका अनुमोदन प्रबंध परिषद् द्व ारा किया जाए।

(iii) सहयोगीः वे जो 1000/– रुपये या इससे अधिक को राशि एक मुश्त या उपयुक्त किस्तों में अदा करें जिसका अनुमोदन प्रबंध परिषद् द्वारा किया जाएगा।

(iv) आजीवन सदस्यः वे जो 500/– रुपये या इससे अधिक की राशि एक मुश्त या ऐसी उपयुक्त किस्तों में अदा करें जिसका अनुमोदन प्रबंध परिषद् द्वारा किया जाए।

(v) सह–सदस्यः वे जो 200/– रुपये या इससे अधिक की राशि एक मुश्त या ऐसी उपयुक्त किस्तों में अदा करें जिसका अनुमोदन प्रबंध परिषद् द्वारा किया जाए।

(vi) साधारण सदस्यः ये निम्न वर्गों के होंगेः

कः वे जो 25/– रुपये प्रतिवर्ष अदा करें।

खः वे जो 10/– रुपये प्रतिवर्ष अदा करें।

गः वे जो 5/– रुपये प्रतिवर्ष अदा करें।

घः वे जो 3/– रुपये प्रतिवर्ष अदा करें।

ङ.: वे जो 1/– रुपये प्रतिवर्ष अदा करें।

न्यासी बोर्ड

6. सभा के 16 न्यासी जीवनपर्यंत होंगे जिनमें सभा की समस्त अचल और चल संपत्ति के साथ–साथ किसी भी रूप में सभा की समस्त निधियां निहित होंगी। इन 16 न्यासियों में से कम से कम 4 बंबई के निवासी होंगे। पहली बार सभा के सदस्यों की साधारण सभा न्यासी बोर्ड के सदस्यों को निर्वाचित करेगी। मृत्यु, पद–त्याग असमर्थता या विदेश निवास के कारण हुई कोई रिक्ति, घटना होने के 6 माह के भीतर, उस प्रयोजन के लिए एकत्र सभा के सदस्यों की साधारण सभा के तीन–चौथाई मतों से भरी जाएगी।

8. न्यासी बोर्ड में सभी समयों पर एक या अधिक सदस्य महार, चांमर, मांग और ढेड़ समुदायों के होंगे और उसका गठन ऐसा होगा कि उसमें 4 न्यासी कोंकण से, 2 गुजरात से, 2 कन्नड़ से और 8 बंबई प्रेसीडेन्सी के अन्य जिलों से होंगे।

9. सभी चल एवं अचल सम्पत्ति एवं निधियां न्यासियों के नाम पर होंगी।

10. प्रबंध परिषद् आगामी वर्ष में किए जाने वाले व्यय का ब्यौरा समुचित सुविधापूर्वक प्रमुख और लघु शीर्षों के अंतर्गत वार्षिक व्यय बजट में प्रस्तुत करेगी और वह न्यासियों द्वारा पारित रूप में प्रवर्तनशील होगा। परन्तु प्रबंध परिषद् वर्ष के दौरान किसी भी समय अनुपूरक बजट पेश कर सकती है।

11. न्यासी वार्षिक बजट पारित करने के प्रयोजन के लिए सभा के पूर्व शासकीय वर्ष समाप्त होने के तीन माह के भीतर वर्ष में कम–से–कम एक बार मिलेंगे और प्रबंध परिषद् की मांग पर अनुपूरक बजट पारित करने के लिए जितनी भी बार आवश्यक हो एकत्र होंगे। न्यासी बोर्ड की सभी बैठकों में बहुमत अभिभावी होगा।

12. न्यासी बोर्ड की समस्त बजट बैठकों में परिषद् का सभापति, प्रधान सचिव और कोषाध्यक्ष अतिरिक्त सदस्य के रूप में भाग लेंगे। परंतु उनमें से किसी को भी मत देने का अधिकार नहीं होगा जब तक कि वे स्वयं न्यासी न हों।

13. न्यासी निर्वाचित करने के प्रयोजनार्थ न्यासी बोर्ड और सभा के सदस्यों की साधारण सभी की प्रत्येक बैठक के लिए एक माह का पूर्व नोटिस दिया जाएगा।

14. न्यासियों को सम्यक रूप से पारित संकल्प द्वारा यह अधिकार होगा कि वे अपनी शक्तियां एक या अधिक अपने सदस्यों को प्रत्यायोजित कर दें और प्राधिकृत करें कि कुछेक संपत्तियां और निधियां एक या अधिक उसके सदस्यों के नाम में निहित होंगी या उनके द्वारा उन पर कार्रवाई की जाएगी।

15. प्रधान सचिव की ओर से किसी प्रतिपादन या प्रश्न को परिपत्र द्वारा जारी किए जाने पर न्यासियों को वोट देने का अधिकार होगा। परिपत्र द्वारा जारी सभी संकल्पों पर इस प्रकार मतदान होने पर इन्हें न्यासी बोर्ड की कार्यवृत्त पुस्तिका में सम्मिलित किया जाएगा।

16. न्यासी समय–समय पर अपनी बैठकों के लिए अपने बीच में से ही सभापति चुन सकते हैं, जो बैठक समाप्त होने से पहले कार्यवृत्त पर हस्ताक्षर करेगा।

17. सभा का सचिव न्यासी बोर्ड का पदेन सचिव होगा और न्यासी बोर्ड की प्रत्येक बैठक का कार्यवृत्त तैयार करेगा।

प्रबंध परिषद्

18. प्रबंध परिषद् शासकीय वर्ष के लिए सभी की कार्यकारी प्राधिकारी होगी, जिसमें सभा के 20 सदस्य होंगे, जिसका गठन निम्न प्रकार होगाः

(i) न्यासी बोर्ड द्वारा अपने बीच में से प्रत्येक वर्ष चार सदस्य निर्वाचित किए जाएंगे जो बंबई में रहते हैं।

(ii) प्रत्येक वर्ष बारह सदस्य सभी की साधारण सभा द्वारा निर्वाचित किए जाएंगे।

(iii) उपर्युक्त और में उल्लिखित 16 सदस्यों द्वारा प्रत्येक वर्ष के दलित वर्गों में से 4 सदस्य सहयोजित किए जाएंगे।

19. प्रबंध परिषद् में किसी सदस्य की मृत्यु, पद त्याग, असमर्थता या विदेश निवास के कारण से हुई कोई रिक्ति, इस प्रयोजन के लिए बैठक में सम्यक रूप से पारित संकल्प द्वारा, परिषद् के बाकी सदस्यों द्वारा भरी जाएगी।

20. परिषद् की निम्न शक्तियां होंगीः–

(क) सभा के न्यासियों की ओर से सभा के प्रयोजनार्थ सभा की निधियों और संपत्तियों को रखना और प्रबंध करना।

(ख) सभा के न्यासियों की ओर से सभा की गतिविधियों और संस्थानों के हित लाभ के लिए संपत्तियों तथा सामग्रियों को भाड़े पर लेना खरीदना या अन्यथा, प्राप्त और निपटान करना।

(ग) सभा के लक्ष्यों और उद्देश्यों के अनुरूप किसी गतिविधि को संगठित करना या किसी संस्था को प्रारंभ करना।

(घ) किसी संस्था या गतिविधि को स्थायी या अस्थायी रूप से समाप्त करनाः परंतु सभा के न्यासियों के 80 प्रतिशत मतदान के अलावा किसी भी छात्रावास को स्थायी या अस्थायी रूप से समाप्त नहीं किया जाएगा।

(ङ.) जहां कहीं और जब कभी ऐसा करना उपयुक्त लगे, सभा की शाखाओं को प्रारंभ या बंद करना।

(च) समय–समय पर स्टाफ या अन्य कार्यकर्ताओं को नियुक्त करना और उनके वेतन तथा रोजगार की शर्तें तय करना तथा जब आवश्यक हो उन्हें निलंबित या बर्खास्त करना।

(छ) सभा की विभिन्न गतिविधियों का विनियमन करने की उपनियमों की विरचना परिवर्तन और संशोधन करना और उसका संचालन और प्रबंध करना और इस प्रकार विरचित उप–नियमों को लागू रखेगी जब तक कि उन्हें नियंत्रण बोर्ड द्वारा संशोधित या रद्द नहीं कर दिया जाता।

(ज) परिषद् का सदस्य, यदि परिषद् की चार बैठकों में लगातार उपस्थित रहने में असफल रहता है, तो उसके स्थान पर रिक्ति की घोषणा करना।

(झ) सभी अभिदाताओं की नियमित सूची का रख–रखाव करना।

(ञ) सभा के सदस्यों की साधारण सभा और न्यासी बोर्ड और नियंत्रण बोर्ड की बैठकों को बुलाना और उनकी व्यवस्था करना।

21. परिषद् अपनी प्रथम बैठक में अपने सदस्यों में से एक सभापति, एक प्रधान सचिव और एक कोषाध्यक्ष को निर्वाचित करेगी। इनके अलावा परिषद् विशिष्ट कार्यों और गतिविधियों के प्रभारी के रूप में, अपने सदस्यों के बीच में से एक या अधिक सहायक सचिवों या आयोजन सचिवों को निर्वाचित कर सकती है। वर्ष के दौरान इन पदाधिकारियों के पद पर होने वाली रिक्तियां अगली साधारण मासिक बैठक में परिषद् के शेष सदस्यों द्वारा संकल्प द्वारा भरी जा सकती है जिसे इस प्रयोजन के लिए बुलाई गई बैठक में सम्यक रूप से पारित किया जाए।

22. सभापति, प्रधान सचिव और कोषाध्यक्ष सभा से संबंधित धन को उचित रूप से जमा करने और निकालने के लिए संयुक्त रूप से जिम्मेवार होंगे। वे परिषद् द्वारा नियुक्त बैंक या बैंकों में सभा के न्यासियों के नाम में धन जमा करेंगे।

23. धन निकालने का सभी कार्य बजट के अनुरुप किया जाएगा जिसका संचालन सभापति, प्रधान सचिव और कोषाध्यक्ष के संयुक्त हस्ताक्षरों के अधीन होगा।

24. परिषद् की बैठकें साधारण या विशेष होंगी।

25. सभा के धन की सभी प्राप्तियां और उसकी निकासियों को परिषद् की अगली साधारण मासिक बैठक के समक्ष प्रस्तुत किया जाएगा।

26. परिषद् की साधारण बैठक का आयोजन प्रत्येक माह की 15 को या उसके आसपास किया जाएगा।

27. गणपूर्ति (कोरम) के अभाव से स्थगित कोई भी साधारण बैठक पांच दिन का स्पष्ट नोटिस देकर ऐसे दिन पर पुनः बुलाई जा सकती है जिसे कि सभापति या उनकी अनुपस्थित में प्रधान सचिव तय करेंगे।

28. परिषद् की साधारण बैठक बुलाने के लिए सात दिन का स्पष्ट नोटिस देना आवश्यक है और उसके साथ कार्यसूची अवश्य परिचालित की जानी चाहिए।

29. परिषद् की साधारण बैठक निम्नलिखित रूप में कार्य करेगी:

(क) पिछली बैठक के कार्यवृत्त को पढ़ना।

(ख) सभा की संस्थाओं, शाखाओं से प्राप्त लेखाओं के मासिक विवरणों, रिपोर्टों और गतिविधियों को पारित करना।

(ग) सचिवों द्वारा प्रस्तुत किए गए पत्रों, प्रस्तावों और अन्य पत्र–व्यवहारों को निपटाना।

(घ) सभा के सामान्य प्रशासन और संपदा से संबंधित मुद्दों पर निर्णय लेना।

(ड.) बिलों और किए गए व्यय को पारित करना।

(च) सभापति की अनुमति से अन्य कोई कार्य करना।

परिषद् की विशेष बैठक

30. सभापति या सचिव तीन दिन के नोटिस पर परिषद् की विशेष बैठक बुला सकता है।

31. परिषद् के कोई भी चार सदस्य परिषद् की विशेष बैठक बुलाने के लिए प्रधान सचिव को लिखित मांग भेज सकते हैं, जिसे वह मांग प्राप्त होने के दस दिन के भीतर बुलाएगा।

32. मांग में इसके प्रयोजन का विशेष रूप से उल्लेख होगा जिसे बैठक के नोटिस के साथ पारिचालित किया जाएगा।

33. परिषद् की विशेष बैठकों में गणपूर्ति (कोरम) का वही नियम लागू होगा जो साधारण बैठक में लागू होता है।

सभापति

34. सभापतिः

(क) परिषद् की सभी बैठकों की अध्यक्षता करेगा और मत बराबर होने पर उस का निर्णायक मत होगा जो सदस्य होने के नाते उसके मत के अलावा होगाः परंतु यह कि सभापति की अनुपस्थिति में पीठासीन होने के लिए निर्वाचित परिषद् का सदस्य अध्यक्षता करेगा और परिषद् की बैठक के संचालन से संबंधित सभापति की शक्तियों का उपयोग करेगा।

(ख) परिषद् की बैठक में सभी आदेशों और क्रियाविधियों के संबंध में निर्णय लेगा और उसका निर्णय अंतिम होगा।

(ग) सभी वाऊचरों पर हस्ताक्षर करेगा।

(घ) सभा का समस्त विदेशी पत्र व्यवहार करेगा।

(ड.) परिषद् का साधारण और विशेष बैठकों में किए गए कार्यों के कार्यवृत्त की अध्यक्ष और उपाध्यक्ष को सूचना देगा।

प्रधान सचिव

35. प्रधान सचिवः

(क(i)। सभा के सभी अभिलेखों के लिए जिम्मेवार होगा और उनका प्रभारी होगा।

(ख) सभा के नियमानुसार, जब कभी आवश्यक होगा, परिषद् न्यासी बोर्ड और नियंत्रण बोर्ड की सभी बैठकें आयोजित करेगा और उन बैठकों की कार्यवाही के कार्यावृत्त रिकॉर्ड करेगा।

(ग) सभा की संस्थाओं और शाखाओं के प्रमुखों से लेखाओं का मासिक विवरण और अन्य रिपोर्टें मंगाएगा और उनकी बैठकों की कार्यवाही के कार्यवृत्त रिकॉर्ड करेगा।

(घ) सभा का गृह पत्र–व्यवहार करेगा।

(ड.) सभा के सदस्यों का उनके ठीक पतों सहित उचित रजिस्टर का रख–रखाव करेगा।

(च) सभा की साधारण बैठक की वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा।

कोषाध्यक्ष

36. कोषाध्यक्षः

(क) सभा की ओर से सभी अभिदान और संदान प्राप्त करेगा और उनके लिए रसीद प्रदान करेगा।

(ख) नियमित खाता बहियां रखेगा।

(ग) सभी संवितरणों का कार्य करेगा।

(घ) प्रत्येक वर्ष परिषद् को सभा का आय और व्यय का विवरण तैयार करके प्रस्तुत करेगा जिसमें विभिन्न संस्थाओं के पृथक लेखाओं के विवरण होंगे जो पूर्व वार्षिक आम सभा में सभा द्वारा नियुक्त लेखापरीक्षक द्वारा उचित रूप से लेखापरीक्षित होंगे। जिन्हें सभा की वार्षिक रिपोर्ट के साथ संलग्न करने के लिए सचिव को भेजा जाएगा।

नियंत्रण बोर्ड

37. नियंत्रण बोर्ड सभा का सामूहिक निकाय होगा जिसमें निम्नलिखित शामिल होंगेः

(क) सभा के न्यासी

(ख) सभा के कार्यकर्ता

(ग) संरक्षक

(घ) आजीवन सदस्य

(ङ.) सहयोगी

(च) सह–सदस्य

(छ) सभा की प्रत्येक शाखा का प्रतिनिधि

(ज) अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, सभापति, प्रधान सचिव, सहायक सचिव, संगठन सचिव और कोषाध्यक्ष।

38. प्रबंध परिषद् द्वारा सभा के कार्यों के प्रबंधन की देख–रेख नियंत्रण बोर्ड यह देखने के लिए करेगा कि क्या कार्य नियमानुसार हो रहा है या नहीं और

गंभीर नियम–भंग के मामले में अध्यक्ष या कोई उपाध्यक्ष परिषद् के सभापति को बुलाकर उचित स्पष्टीकरण की मांग कर सकता है।

39. सभा का अध्यक्ष, स्वप्रेरणा से या सभा के 10 सदस्यों को लिखित मांग पर सचिव को नियंत्रण बोर्ड की बैठक बुलाने के लिए कह सकता है। इस बारे में अध्यक्ष की सूचना–प्राप्ति के डेढ़ महीने के भीतर सचिव को बैठक बुलानी होगी। प्रबंध परिषद् प्रश्नगत विषय पर नियंत्रण बोर्ड के संकल्प से आबद्ध होगी। यदि बैठक में उपस्थित सदस्यों की दो–तिहाई बहुमत से पास हो जाता है।

40. नियंत्रण बोर्ड की प्रत्येक बैठक के लिए एक माह का पूर्व नोटिस होगा।

41. सभा का अध्यक्ष नियंत्रण बोर्ड की प्रत्येक बैठक में अध्यक्षता करेगा। उसकी अनुपस्थिति में, बैठक में उपस्थित कोई भी उपाध्यक्ष अध्यक्षता करने के लिए निर्वाचित किया जा सकता है।

42. नियंत्रण बोर्ड की सभी बैठकों में बहुमत अभिभावी होगा, उस समय को छोड़ जब इन नियमों में अन्यथा उपबंधित हो।

43. प्रधान सचिव नियंत्रण बोर्ड का पदेन सचिव होगा और बोर्ड को कार्यवाही के कार्यवृत्त को रिकार्ड करने के लिए उत्तरदायी होगा, जिसे बैठक भंग होने से पूर्व तैयार करके अध्यक्ष द्वारा हस्ताक्षरित किया जाएगा।

सभा की साधारण सभा

44. सभा के सदस्यों की साधारण सभा की बैठक प्रत्येक वर्ष फरवरी माह में आयोजित की जाएगी।

45. सभा का शासकीय वर्ष 31 दिसंबर को समाप्त होगा और वार्षिक आम सभा पूर्व शासकीय वर्ष समाप्त होने के दो माह के भीतर प्रत्येक वर्ष आयोजित की जाएगी।

46. केवल वही सदस्य मत देने के हकदार होंगे जिन्होंने अपना अभिदान अदा कर दिया हो।

47. सभा के सदस्यों की साधारण सभा की बैठक के लिए एक माह का पूर्व नोटिस आवश्यक है।

48. सभा की वार्षिक आम सभा की अध्यक्षता सभा का अध्यक्ष करेगा। उसकी अनुपस्थिति में कोई भी उपस्थित उपाध्यक्ष जिसे निर्वाचित किया जाता है अध्यक्षता कर सकता है।

49. वार्षिक आम सभा में निम्नलिखित कार्य संपन्न किए जाएंगेः–

(क) पूर्व वर्ष की वार्षिक रिपोर्ट को सुनना और अपनाना।

(ख) आगामी वर्ष के लिए प्रबंध परिषद् के लिए बारह सदस्य चुनना।

(ग) आगामी वर्ष के लिए लेखापरीक्षक नियुक्ति करना।

(घ) आगामी वर्ष के लिए एक अध्यक्ष और उपाध्यक्षों, (छह से अध्कि नहीं) को चुनना।

50. इन संस्था के अनुच्छेदों और गठन के नियमों में परिवर्तन, संशोधन रद्द करने या जोड़ने का कार्य किसी भी समय इस प्रयोजन के लिए विशेष रूप से बुलाई गई सभा के सदस्यों की बैठक में 80 प्रतिशत मतदान के अंतर्गत किया जा सकता है, बशर्ते ये परिवर्तन, संशोधन रद्द करने या जोड़ने का कार्य तब तक लागू नहीं होगा जब तक सभा के तीन–चौथाई न्यासी इसका अनुमोदन नहीं कर देते।

बंबई में बहिष्कृत हितकारिणी सभा के क्रियाकलाप–परिशिष्ट– XI देखें।

दलित वर्ग संस्थान

डॉ.बी.आर.अम्बेडकर ने सन् 1930 में प्रथम गोल मेज सम्मेलन, लंदन में भाग लिया था। अपने प्रवास के दौरान, अछूतों के उत्थान के लिए भारतीय रियासतों के प्रमुखों से वित्तीय सहायता प्राप्त करने के लिए दलित वर्ग संस्थान की ओर से अपील तैयार की थी। उनके प्रयत्न स्वरूप उन्हें वित्तीय सहायता प्राप्त हो गई। उन्होंने यह कार्य जोरदार तरीके से किया। इसी प्रकार दूसरे गोल मेज सम्मेलन के समय पर उन्होंने नवम्बर, 1931 में अपील तैयार कर उसे वितरित किया।

अपील का मूल–पाठ निम्न प्रकार है।

दलित वर्ग संस्थान की ओर से अपील

संगठन

दलित वर्ग संस्थान दलित वर्गों का संगठन है जिसका संचालन दलित वर्गों के सदस्यों द्वारा दलित वर्गों के हितों के लिए किया जाता है। संस्थान का लक्ष्य, दलित वर्गों को उनकी वर्तमान पद दलित स्थितियों से उठाकर भारतीय समाज में सामाजिक और राजनीतिक समता की स्थिति तक लाकर उनके आर्थिक कल्याण का संवर्धन करना है।

संस्थान की स्थापना जून, 1925 में हुई थी और तब से ही यह कार्य कर रहा है। संस्थान को अखिल भारतीय संगठन बनाने का इरादा है जिसकी शाखाएं पूरे भारत में होंगी। लेकिन संसाधनों के अभाव में संस्थान की गतिविधियां बंबई प्रेसीडेन्सी तक सीमित हैं। संस्थान उन सामाजिक कार्यकर्ताओं के माध्यम से कार्य कर रहा है जिन्होंने दलित वर्गों के उत्थान का बीड़ा उठा रखा है। वे मुख्य रूप से दलित वर्गों के हैं और बंबई प्रेसीडेन्सी के विभिन्न जिलों में फैले हुए हैं। इन सामाजिक कार्यकर्ताओ के क्रियाकलापों का निर्देशन और समन्वय, बंबई शहर में स्थित संस्थान के मुख्यालय में दलित वर्गों के प्रमुख सदस्यों की प्रबंध परिषद् द्वारा किया जाता है।

संस्थान के क्रियाकलाप

संस्थान की स्थापना के पांच साल बीत गए हैं इस अल्प अवधि के दौरान संस्थान का कार्य इतना फैल गया है कि इस पर्चे में इसके कार्य का सारांश देना भी संभव नहीं है। यहां केवल संस्थान द्वारा शुरू किए गए उन क्रियाकलापों की रूपरेखा का संकेत भर किया जा सकता है जो उसके अपने लक्ष्य, यथा दलित वर्गों के उत्थान के अनुपालन में किया है। ये क्रियाकलाप निम्न शीर्षों के अंतर्गत वर्गीकृत किए जा सकते हैं:

(1) प्रचारः संस्थान जनता नामक समाचार–पत्र प्रकाशित करती है जिसका उद्देश्य दलित वर्गों को उनकी विशेष समस्याओं के साथ–साथ उन सामान्य समस्याओं के बारे में जागरूक करना है जो उनके रोजमर्रा के जीवन को प्रभावित करती हैं। यह उन्हें अपने नागरिक अधिकारों को पाने में, अपनी शिकायतों को जनता के सामने रखने और उनमें तीव्र सुधार के पक्ष में जनमत निर्माण करने में शिक्षित करता है। समाचार–पत्र का मार्गदर्शी सिद्धांत समता है। पिछले माह तक यह पाक्षिक समाचार पत्र था। अब इसे साप्ताहिक में परिवर्तित कर दिया गया है। संस्थान, दलित वर्गों की शिक्षा के लिए विभिन्न विषयों पर समय–समय पर अन्य साहित्य भी प्रकाशित करता है।

(2) **नागरिक अधिकार अभियानः** हालांकि बहुत से मामले हैं जिनमें कानून दलित वर्गों को नागरिक अधिकारों की अनुमति देता है और बड़ी संख्या में ऐसे मामले हैं जिनमें रूढ़ियां दलित वर्गों को उनसे लाभ उठाने से रोकती हैं। संस्थान के बहुत से उद्देश्यों में से एक दलित वर्गों को उनके नागरिक अधिकारों का उपयोग करने की सुरक्षा प्रदान करना है। संस्थान को उन सब मामलों का सामना करना पड़ा था जिनमें कानून की कोई रोक नहीं है लेकिन जिनमें हिंदू बहुमत ने दलित वर्गों को इस आधार पर उन अधिकारों का उपयोग करने की अनुमति नहीं दी कि भारतीय समाज में ऐसा करने से उनकी प्रतिष्ठा को ठेस पहुंचेगी और दलित वर्गों के रूढ़ि द्वारा नियत सामाजिक स्थिति का अतिक्रमण होगा। दलित वर्गों के सदस्यों द्वारा संस्थान को की गई शिकायतों में असंख्य उनके अधिकारों के उल्लघंन से संबंधित हैं और संस्थान ने इस संबंध में अत्यधिक कार्य किया है जिसे बयान नहीं किया जा सकता, जिनमें ऐसे मामले शामिल हैं जैसे दलित वर्गों को स्कूल में जगह के लिए बस में, नौका में, या छोटी सरायों आदि में जगह के लिए मना किया गया था। नागरिक अधिकारों के उल्लघंन के वैयक्तिक मामलों के अलावा संस्थान ऐसे मामले भी लेता है, जिन्हें परीक्षण मामले कहा जा सकता है ताकि दलित वर्गों के कुछेक विषयों के संबंध में उनके नागरिक अधिकारों की सही विधिक स्थिति सुनिश्चित की जा सके। तीन वर्ष पूर्व संस्थान ने लोक जल मार्गों के बारे में दलित वर्गों के अधिकारों के प्रश्न को अपने हाथ में लिया और बहुत बड़ी लागत पर सिविल मुकद्दमा लड़ा न्ययालय ने जिसका निर्णय पहली बार में ही दलित वर्गों के पक्ष में दिया। उच्च जाति के हिंदुओं ने इस निर्णय के विरूद्ध अपील की है जो अब अपीलीय न्यायालय में लंबित है। संस्थान मंदिर में दलित वर्गों के पूजा–पाठ के अधिकार को सुरक्षित करने के लिए आंदोलन

चला रहा है और इस संबंध में संस्थान न्यायालय में परीक्षण मामला दाखिल करके इस प्रश्न को हमेशा के लिए समाप्त करने की भी सोच रहा है।

(3) **शिकायतों का निवारण: दलित वर्गों की बहुत**—सी शिकायतें सरकार के विभागों द्वारा की गई प्रशासनिक कार्रवाइयों के फलस्वरूप होती हैं। यह ध्यान में रखना चाहिए कि भारत में लोक सेवा में भारी संख्या में उच्च जाति के हिंदू कार्यरत हैं। उनका दलित वर्गों के प्रति विरोध कुख्यात है और ऐसे मामले बहुत हैं जिनमें प्रशासनिक और यहां तक कि न्यायिक अधिकारियों ने अपनी शक्तियों का दुरुपयोग करके उच्च जाति के हिंदुओं का पक्ष लिया है। संस्थान ने इस विषय पर विशेष ध्यान दिया है और इसके लिए विशेष कार्यालय स्थापित किया है जो सरकारी विभाग के अनुचित आदेशों के फलस्वरूप दलित वर्गों के अपमानित सदस्यों की ओर से सरकार को अभ्यावेदन देगा। संस्थान ने बहुत से ऐसे मामलों की जिम्मेवारी उठाई है जहां उच्चतर न्यायिक प्राधिकरण को अपील करने का भार था या उन मामलों में निजी पक्ष की सहायता की है, जो दलित वर्गों के लिए सामान्य महत्व के और उनके साधनों के परे थे, ताकि वे निम्न न्यायालयों द्वारा उन के विरुद्ध किए गए गलत कार्यों के संबंध में अपील कर सकें।

(4) **कल्याण कार्य:** दलित वर्गों की कमजोरियों में से एक उनकी गरीबी है। उनकी 90 प्रतिशत गरीबी वास्तव में अस्पृश्यता के कारण है जिसके फलस्वरूप उनके लिए जीवन के सभी व्यवसाय बंद है। संस्थान प्रारंभ से ही दलित वर्गों की आर्थिक स्थिति में सुधार करने के अनवरत प्रयत्न कर रहा है। इस संबंध में संस्थान को राज्य के विभागों में दलित वर्गों की भर्ती को सुरक्षित करने में बहुत संघर्ष करना पड़ा था।

संस्थान के प्रयत्न बहुत सफल रहे हैं। न केवल दलित वर्गों के लिए विभिन्न विभागों में बहुत संख्या में भर्ती सुनिश्चित की जा सकी बल्कि उन्हें उन विभागों में भी प्रवेश मिल सका जो पहले अस्पृश्यता के कारण उनके लिए बंद थे। इस प्रसंग में पुलिस विभाग में भर्ती का उल्लेख किया जा सकता है। दूसरा साधन जिसके द्वारा संस्थान ने दलित वर्गों की आर्थिक स्थिति में सुधार करने की सोची वह था उनके लिए भूमि सुनिश्चित करना ताकि वे स्वतंत्र किसान की भांति काम कर सकें। बंबई प्रेसीडेन्सी में बहुत से भाग हैं जहां बंजर भूमि है। सरकार इस बंजर भूमि को पट्टे पर किसी को भी खेती करने के लिए भाड़े पर देती है। संस्थान के प्रारंभ होने से पूर्व सरकार की यह सारी बंजर भूमि हिंदू जाति के किसानों को दी जाती थी।

दलित वर्गों के आवेदकों को कभी भी यह बंजर भूमि राजस्व अधिकारियों द्वारा नहीं दी गई जिनके पास जमीन के निपटारे की शक्ति थी। संस्थान अपनी स्थापना के समय से ही खेती करने के लिए इस भूमि के पर्याप्त भाग के लिए दलित वर्गों के अधिकार के लिए लड़ा है और इस भूमि के निपटारे के बारे में सरकार की नीति को, दलित वर्गों पर लागू अनुकूल शर्तों द्वारा आशोधित कराने में सफल हुआ है। अब यह संस्थान का श्रेय कहा जा सकता है कि संस्थान के प्रयत्नों से पर्याप्त संख्या में दलित वर्गों के परिवार जो पहले खेतिहर मजदूर के रूप में अपनी आजीविका कमा रहे थे वे अब स्वतंत्र किसान के स्तर तक उठ गए हैं।

संस्थान की आवश्यकता

संस्थान की तीन प्रमुख आवश्यकताएं हैं। पहली आवश्यकता मुद्रण स्थापना का परिवर्धन। संस्थान भारत भूषण प्रिंटिंग प्रेस नामक अपना मुद्रणालय चलाता है। अपना मुद्रणालय रखने का प्रयोजन दुगुना है। पहला प्रयोजन है संस्थान द्वारा संचालित जनता समाचार–पत्र और समय–समय पर जारी प्रचार सामग्री का निर्विधन मुद्रण और अन्य अधिक महत्वपूर्ण प्रयोजन प्रिटिंग प्रेस को संस्थान की गतिविधियों को चलाने के लिए आय का स्रोत बनाना था। तथापि प्रिंटिंग प्रेस आय का स्रोत न बनकर संस्थान पर बोझ बन गया। प्रिंटिंग प्रेस में छोटे उपस्कर होने के कारण, संस्थान बाज़ार में विद्यमान प्रतियोगी दरों पर पुस्तक–कार्य या जॉब कार्य लेने में असमर्थ है। क्योंकि छोटी मशीन पर उत्पादन लागत सापेक्षतः अधिक होती है। संस्थान या तो प्रेस के उपस्करों का परिवर्धन करे या बिना प्रेस के काम करे। दूसरा विकल्प भारत की वर्तमान परिस्थितियों में असंभव है क्योंकि अधिकांश मुद्रक सवर्ण हिंदू हैं और इस बात की संभावना हमेशा बनी रहेगी कि वे दलित वर्गों द्वारा चलाए जा रहे समाचार–पत्र को मुद्रित करने में आना–कानी करने की साजिश करें। संस्थान की दूसरी आवश्यकता है बंबई में अपने मुख्यालय के लिए भवन निर्माण की। वर्तमान में संस्थान एक ही भवन में स्थित नहीं है। इसके कार्यालय तितर–बितर है और विभिन्न गतिविधियों के प्रभारी सदस्यों के निजी फ्लैटों में चलाए जा रहे हैं। संस्थान को किराए के कक्षों में चलाने की अपनी कठिनाइयां हैं। इन पर खर्चा करने में भी संस्थान असमर्थ हैं। अस्पृश्यता के कारण फ्लैटों में जगह मिलना कठिन है और रूढ़िवादी किराएदारों के विरोध में असमय स्थान खाली करने के दायित्व के कारण संस्थान को अपने लिए उचित स्थान नहीं मिल पाता है। कार्यालय तितर–बितर होने के कारण संस्थान की विभिन्न गतिविधियों में सहयोग और समन्वय में कठिनाई आती है जिसके परिणामस्वरूप संस्थान अप्रभावी हो गया है। संस्थान की तीसरी आवश्यकता है अपने क्रियाकलापों को क्रियान्वित करने के लिए पूर्णकालिक कार्यकर्ताओं

की। वर्तमान में संस्थान में केवल अंशकालिक कार्यकर्ता हैं जो अपने खाली समय में सामाजिक उत्थान के कार्य निष्पादित करते हैं। उनके लिए कार्य अधिकांशतः आराम के लिए हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि संस्थान पूर्ण वेतन पर कार्यकर्ता रखने में असमर्थ है। संस्थान के संगठन में यह सबसे बड़ी कमी है और केवल अंशकालिक कार्यकर्ताओं के होने के कारण काम में जो अवश्यंभावी अंतराल और शिथिलता आती है। उससे दलित वर्गों को जो राहत संस्थान के कार्यों से अपनी पीड़ा को दूर करने के लिए चाहिए वह नहीं मिल पाती। इस कमी को दूर करने का विकल्प यही है कि नियमित सवेतन कार्यकर्ता नियुक्त किए जाएं जो अपना पूरा समय सामाजिक कार्य मे लगाएंगे।

पौंड 40,000 चाहिए

(1) मुद्रणालय निधि, (2) भवन निर्माण निधि, और (3) रख–रखाव निधि इन तीन प्रमुख आवश्यकताओं के लिए पौंड 40,000 की राशि की आवश्यकता है। जैसाकि सुविख्यात है इससे भी बड़ी राशियां उन उद्देश्यों की जरूरत की अपेक्षा कम तात्कालिक और शायद कम मानवोचित हैं। इसलिए संस्थान आशा करता है कि परोपकारी जनता के सहयोग से यह राशि एकत्र करना असंभव नहीं होगा। मानव जाति के अन्य कारणों की भांति यह कारण असंदिग्ध रूप से ऐसा है जो उन लोगों के लिए आशा और प्रकाश लाएगा जो स्थिर और निराश्रित हैं तथा जो अज्ञानता के विरुद्ध संघर्ष कर रहे हैं। लेकिन पद दलित वर्गों के आंदोलन में कुछ है जो अपने आप में इसे करुणता प्रदान करता है। यह मानव जाति का उद्देश्य नहीं है कि अवसरों के दुरुपयोग को उजागर किया जाए। यह उस मानव जाति के कारण है जिसे विरोधियों ने हटधर्मिता के कारण हीनता की दशा में रखा है और जिनके ऊपर उठने के प्रयत्न रूढ़िवादी हिंदुओं द्वारा बेरहमी से विफल कर दिए गए। पद दलित वर्गों के हित में यह अपील केवल हिंन्दुओं या भारतीयों से नहीं है। ये ब्रिटिश साम्राज्य के सभी सदस्यों से की जा रही है प्रमुख जिम्मेवारी पद दलित वर्ग हैं। यह अपील यूरोपीयों और अमरिकियों के लिए भी है। यह अपील उन सभी के लिए है जो पतित या जिसे अधिक उपयुक्त रूप में कहें मार गिराई गई मानव जाति को ऊपर उठाने और गले लगाने को अपना उत्तरदायित्व समझते हैं और संस्थान को विश्वास है कि यह अपील बेकार नहीं जाएगी। वांछनीय राशि पर्याप्त है। लेकिन यह बहुतों की क्षमता के बाहर नहीं है यदि वे इस बोझ को आपस में बांट लें।

पिछले वर्ष यह अपील बहुत कम समय में निम्नलिखित दान पाने में सफल रही:

1. महामान्य सर टिकोजीराव होल्कर, पूर्व—महाराजा इंदौर	पौ. 360
2. महामान्य भोपाल के नबाव	पौ. 200
3. महामान्य आगा खां	पौं. 175
4. महामान्य महाराजा बड़ौदा	पौ. 150
5. महामान्य महाराजा बीकानेर	पौ. 100
6. महामान्य महाराजा कश्मीर	पौ. 100
7. महामान्य महाराजा पटियाला	पौ. 100
8. सर कोवासजी जहांगीर	पौ. 75
9. महाराजाधिराज दरभंगा	पौ. 50
10. सांगली के प्रमुख	प्रौ. 25

इन सभी दानों को कृतज्ञता के साथ स्वीकार किया जाता है और आशा है कि इस उदार अनुक्रिया का अनुकरण और अधिक उदारता से किया जाएगा।

बी.आर.अम्बेडकर
अध्यक्ष, दलितवर्ग संस्थान
स्थायी पता
दामोदर हॉल, पारेल,
बंबई—12, भारत

नवंबर, 1931

वियरदाले प्रेस लि., 26 गॉरडन स्ट्रीट, लंदन डब्ल्यू.सी.आई. और बैडफोर्ड में मुद्रित पुस्तिका से पुनर्मुद्रित

स्वतंत्र श्रमिक दल

डॉ. बी. आर. अम्बेडकर ने अपने सहयोगियों से विचार–विमर्श के पश्चात् स्वतंत्र श्रमिक दल का संगठन किया। दल के संगठन का लक्ष्य भूमिहीनों, गरीब काश्तकारों, किसानों और मजदूरों की समस्याओं पर ध्यान केंद्रित करके उनको हल करना था। इस पृष्ठ भूमि पर टाइम्स ऑफ इंडिया ने डॉ.अम्बेडकर से साक्षात्कार किया जिसमें उन्होंने दल के लक्ष्यों और उद्देश्यों को स्पष्ट किया।

स्वतंत्र श्रमिक दल की प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित हैं–संपादकगण

स्वतंत्र श्रमिक दल

इसका गठन और इसका लक्ष्य

(15 अगस्त, 1936 के टाइम्स ऑफ इंडिया से पुनर्मुद्रित

स्वतंत्र श्रमिक दल

प्रकाशन

सं.1

बंबई में एक नए राजनीतिक दल का संगठन किया गया है जिसका प्रयोजन नए संविधान के अंतर्गत विधानमंडल के दोनों सदनों के लिए बंबई प्रेसीडेन्सी के चुनाव लड़ना है। यह "स्वतंत्र श्रमिक दल" के नाम से जाना जाता है और इसका संगठन दलित वर्गों के नेता डॉ. बी. आर. अम्बेडकर ने किया है।

ऐसा प्रतीत होता है, कि मूलतः डॉ. अम्बेडकर का विचार अनन्य रूप से दलित वर्गों का दल बनाने का था। लेकिन इसका कार्यक्रम विशिष्ट रूप से इन वर्गों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर लिखा गया था लेकिन अन्य वर्गों के अपने मित्रों की इच्छा पर उन्होंने दल को एक सामान्य नाम देने की सहमति जताई और कार्यक्रम को अधिक सामान्य शब्दों में लिखा। पार्टी की ओर से कोई भी व्यक्ति पार्टी टिकट पर चुनाव लड़ सकता है और विधानमंडल में इस प्रयोजन के लिए निर्मित कार्यक्रम के अनुसार कार्य कर सकता है।

व्यापक कार्यक्रम

टाइम्स ऑफ इंडिया के एक प्रतिनिधि के साथ साक्षात्कार में डॉ. अम्बेडकर ने घोषणा कि इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि यह समय ऐसा नहीं है कि दलों

को सांप्रदायिक रूप में संगठित किया जाए उन्होंने अपने दोस्तों की इच्छाओं से सहमत होते हुए "दल का नाम और कार्यक्रम को भी व्यापक बना दिया है ताकि दलित वर्गों और अन्य वर्गों में राजनीतिक सहयोग का मौका बना रहे"। पार्टी के केंद्र में अब भी दलित वर्गों के पंद्रह सदस्य होंगे। परंतु अन्य वर्गों के सदस्य दल में प्रवेश के लिए स्वतंत्र होंगे।

डॉ. अम्बेडकर ने आगे कहा कि उन निर्वाचन क्षेत्रों में दलित वर्गों के मतदाताओं की बड़ी संख्या है जहां पर उनके लिए सीटें आरक्षित नहीं है, और वहां पर उनके लिए यह संभव होगा कि वे अपने मतदान किसी भी ऐसे उम्मीदवार को दे दें, जो पार्टी का सदस्य बनना पसंद करता है।

उन्होंने स्पष्ट किया कि दल की सदस्यता सभी धर्मों और संप्रदायों के लिए खुली है, हालांकि दलित वर्गों के मत विधि के कारण ऐसे धर्मों और संप्रदायों से संबंधित लोगों को उपलब्ध कराए जा सकते हैं, जिन्हें सामान्य मतदाताओं में शामिल किया गया है। पहले ही अन्य वर्गों के कुछ लोगों ने दल में आने की इच्छा जताई है और अन्य जो इस अवसर का लाभ उठाना चाहते हैं वे दल के कार्यालय में पार्टी के सचिव से पत्र–व्यवहार कर सकते हैं।

यह पूछे जाने पर कि स्वतंत्र श्रमिक दल की संबद्धता क्या होगी डॉ.अम्बेडकर ने यह संकेत दिया कि दल विधानमंडल के सदस्यों का विविध समूह नहीं होगा जो निर्वाचित होने के पश्चात् प्रत्येक अपने आप, विधानमंडल में एक–दूसरे की सहायता करेंगे। और मतदान करने के लिए सहमत होंगे। पार्टी का आधार उसका निर्वाचन क्षेत्र होगा, और इसके सदस्यों ने वहां से चुनाव इसी प्रकार लड़ा होगा और निर्वाचन क्षेत्र को सामान्य और स्पष्ट रूप से परिभाषित कार्यक्रम बनाए रखने का और पार्टी द्वारा बनाए गए अनुशासन के नियमों से बंधे रहने का वचन दिया होगा।

सभी का स्वागत

यह पूछने पर कि दल के लिए उस विशेष नाम को चुनने के लिए किसने प्रेरित किया, डॉ. अम्बेडकर ने स्पष्ट किया कि प्रत्येक अन्य राजनीतिक दल से यह दल स्वतंत्र होगा, हालांकि यह दल अन्य राजनीतिक दलों से जहां सहयोग संभव होगा, सहयोग के लिए तैयार रहेगा। इस मायने में यह दल श्रमिक संगठन है क्योंकि इसका कार्यक्रम मुख्य रूप से श्रमिक वर्गों के कल्याण को बढ़ाने से संबंधित है। दल ऐसी सही विचारधारा में विश्वास करता है जो उस वर्ग के लोगों के लिए उपयुक्त हो जिनके हितों को दल सर्वोपरि मानता है। दलित वर्गों के स्थान पर लेबोदर (Labodur) शब्द का प्रयोग किया गया है क्योंकि श्रमिकों में दलित वर्ग भी शामिल हैं।

दल के लक्ष्य

त्रुटियों के बावजूद संविधान कार्यरत

दल के कार्यक्रम स्पष्ट करते हुए डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि जहां तक नए संविधान का प्रश्न यह परिपक्व विचार–विमर्श और उन सबके परामर्श से तैयार किया गया है जो इसमें रूचि रखते थे।

"दल यह मानता है कि नया संविधान त्रुटिपूर्ण है और पूर्ण जिम्मेदार सरकार की कसौटी पर खरा नहीं उतरता। दल प्रांतीय संविधान की अनेक विशेषताओं पर आपत्ति करता है, विशेष रूप से दूसरे सदन की संस्था से फिर भी, दल संविधान चलाने के लिए तैयार होते हुए भी, दल संविधान चलाने में विश्वास करता है। लेकिन संविधान चलाने के लिए तैयार होते हुए भी, दल इस बात के लिए प्रयास करेगा कि राज्यपाल में निहित विशेष आपातकालीन और आरक्षित शक्तियों को इस ढंग से प्रयोग में नहीं लाया जाए जो पूर्णरूप से जिम्मेवार सरकार की पद्धति को रद्द कर दें।"

जहां तक आर्थिक प्रश्न का संबंध हैः

(1) "दल भूमि बंधक बैंक, कृषक उत्पादक, सहकारी समितियां और विपणन समितियां स्थापित करने का जिम्मा लेगा ताकि कृषि उत्पादकता में सुधार किया जा सके।

(2) दल ऐसा सोचता है कि जोत विखंडन जो कि दल की राय में, कृषि में पूंजी और खेती की उन्नत पद्धतियों का उपयोग करने में भारी रुकावटें हैं, इसलिए यह कृषकों की गरीबी का मूल कारण है।

जनसंख्या का दबाव

तथापि दल यह मानता है कि जोत विखंडन और कृषकों की परिणामी गरीबी भूमि पर जनसंख्या के दबाव के कारण हैं और जब तक भूमि पर जीवन–निर्वाह करने वाली अतिरिक्त जनसंख्या को कम करके दबाव कम नहीं किया जाता विखंडन जारी रहेगा और कृषकों की स्थिति आज की ही भांति अभावग्रस्त बनी रहेगी। दल की राय में कृषकों की सहायता करने तथा कृषि को अधिक उत्पादन बनाने का मुख्य साधन प्रांत का औद्योयोगिकीकरण है। इसलिए दल पुराने उद्योगों को पुनःस्थापित करने की कोशिश करेगा और ऐसी नई इकाइयों का संवर्धन करेगा जैसाकि प्रांतों के प्राकृतिक संसाधन अनुमति देंगे।

(3) लोगों की दक्षता और उत्पादक क्षमता बढ़ाने के लिए दल तकनीकी शिक्षा का गहन कार्यक्रम प्रारंभ करने की कोशिश करेगा।

(4) दल, उद्योगों के राज्य प्रबंधन और राज्य स्वामित्व के सिद्धांत को स्वीकारता है जब कभी यह लोगों के हित में आवश्यक हो।

(5) दल, मुक्त और पूर्ण जीवन के सामने आने वाली सभी रुकावटों को दूर करने की कोशिश करेगा और ऐसी किसी आर्थिक पद्धति को परिवर्तित, संशोधित या समाप्त करेगा जोकि किसी वर्ग या वर्ग के व्यक्तियों के लिए अनुचित है।

(6) दल, सामान्य रूप से कृषि काश्तकारों को और विशेष रूप से (क) कोठी पद्धति और (ख) तालुकदारी पद्धति के अंतर्गत काश्तकारों को भू–स्वामियों द्वारा आहरण और बेदखली से संरक्षण प्रदान करने के लिए कानून बनाएगा।

(7) दल, कृषक मजदूरों के साथ–साथ औद्योगिक मजदूरों को सभ्य जीवन के अनुरूप न्यूनतम जीवन–स्तर प्रदान करने की कोशिश करेगा।

(8) दल, औद्योगिक मजदूरों के हितलाभ के लिए फैक्टरियों में रोजगार, बर्खास्तगी और पदोन्नति, काम करने के अधिकतम घंटे, उचित मजदूरी की अदायगी, सवेतन छुट्टी और अन्य संभव जीवन की सुविधाओं, सक्रिय सेवा से निवृत्ति, वृद्धावस्था या अन्य अक्षमता के कारण पेन्शन और बोनस आदि की अदायगी के नियंत्रण संबंधित कानून निर्माण की कोशिश करेगा। दल मजदूरों को बीमारी, बेरोजगारी और दुर्घटना के लिए सामाजिक बीमा योजना भी शुरू करने की कोशिश करेगा। दल, मजदूरों को सस्ते और स्वच्छ आवास प्रदान कराने का भी प्रयत्न करेगा।

(9) कृषक मजदूरों के हितलाभों के लिए दल वही हितलाभ प्रदान करने की कोशिश करेगा जो, परिस्थितियों के अनुरूप आशोधनों के साथ, औद्योगिक मजदूरों के लिए प्रस्तावित हैं।

(10) दल, इस सिद्धांत को स्वीकारता है कि बेरोजगारी कम करना राज्य का दायित्व है और इसलिए दल इस दायित्व का निर्वाह बेरोजगारों और भूमिहीन मजदूरों के लिए भू–व्यवस्था की योजनाओं को शुरू करके और लोक निर्माण के कार्यों को प्रारंभ करके करेगा।

(11) दल ग्रामीण ऋणी वर्ग को साहूकारों के ज्यादा पैसा वसूलने, सूदखोरी और कपटपूर्ण लेन–देनों से संरक्षित करने के लिए कानून निर्माण करेगा।

(12) दल, बड़े शहरों और नगरों के औद्योगिक केंद्रों में, मकान किरायों के मामलों में, निम्न मध्यवर्ग को उचित संरक्षण प्रदान करने के लिए कानून बनाएगा।

कराधान समस्याएं

कराधान के मामले में दल का विचार यह है कि दल यह मानता है कि लोगों के कल्याण में सुधार के लिए प्रत्येक सरकार को राष्ट्र–निर्माण की गतिविधियां शुरू करनी चाहिए और इन गतिविधियों को तभी प्रारंभ किया जा सकता है जब सरकारी खजाने में धन हो। यह धन लोगों पर कर लगाकर ही प्राप्त किया जा सकता है। एक समृद्ध सरकार ही अच्छी सरकार की सबसे बड़ी गारन्टी है।

दल का मानना है कि सिद्धांत के रूप में कराधान में कटौती का प्रचार करना और लोगों को यह बताना कि उपयोगी राष्ट्र–निर्माण की गतिविधियों को त्यागकर कराधान में कटौती उनके हित में है, गरीब वर्गों को धोखा देना और गुमराह करना है। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि दल कराधान की पद्धति को ज्यों–का–त्यों रखना चाहता है। इसके विपरीत दल वर्तमान कराधान–पद्धति का कड़ा विरोध करता है। दल निश्चित रूप से यह मानता है कि वर्तमान कराधान पद्धति अनुचित है और गरीब लोगों पर अत्यधिक भार डालती है। दल कराधान की सामान्य पद्धति में इस असमता को सुधारना चाहता है। दल भू–राजस्व उगाहने की वर्तमान पद्धति का कड़ा विरोध करता है और इसे और अधिक साम्यपूर्ण और अधिक लोचदार बनाने के लिए कानून बनाने की कोशिश करेगा।

सामाजिक सुधार

विधि–निर्माण योजनाएं

सामाजिक सुधारों के संबंध में:

(1) दल समस्त आवश्यक सामाजिक सुधारों के उन्नयन के लिए विधि–निर्माण करेगी जिससे (i) रुढ़िवादियों द्वारा सामाजिक सुधारकों के जाति–बहिष्कार को रोका जा सके, और (ii) आतंकवाद और बहिष्कार जैसी प्रत्यक्ष कार्रवाई द्वारा उन संगठित प्रयासों को दंडित करना जो व्यक्तियों या वर्गों को कानून द्वारा प्रदान किए गए अधिकारों या स्वतंत्रता को प्रयोग करने से रोकते हैं।

(2) दल समस्त लोक खैरातों प्रशासन के विनियमन के लिए कानून निर्माण करना शुरू करेगा ताकि खैराती निधियों का कुप्रबंधन और दुरुपयोग रोका जा सके और इस प्रकार बची अतिरिक्त निधियों का उपयोग शिक्षा आदि जैसे धर्मनिरपेक्ष प्रयोजनों के लिए सुरक्षित किया जा सके।

(3) दल भिखारियों और निराश्रितों की समस्या को सुलझाने के लिए कानून बनाएगा।

ग्रामीण पुनर्निर्माण

ग्रामीण पुनर्निर्माण के मामले में दल का विचार यह है किः

(1) दल, ग्रामीण जीवन को प्रफुल्ल बनाने के लिए जितनी भी सुविधाएं इसके लिए आवश्यक हैं उन्हें उपलब्ध कराने की कोशिश करेगा।

(2) दल गांव में स्वच्छता और आवास की समस्या को सुलझाने के लिए नगर योजना के अनुरूप ग्रामीण योजना शुरू करके उसमें सुधार करने की कोशिश करेगा।

(3) दल ग्रामीण पुस्तकालय, ग्रामीण सभा भवन, ग्रामीण रेडियो स्टेशन और रोटरी सिनेमा स्थापित करके गांवों के दृष्टिकोण को आधुनिक और ग्रामीणों को प्रगतिशील बनाने की कोशिश करेगा।

शिक्षा

शिक्षा के मामले में:

(1) दल निःशुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा को लागू करेगा।

(2) दल प्रौढ़ शिक्षा की योजना प्रारंभ करके सभी लोगों को साक्षर बनाएगा।

(3) दल तकनीकी शिक्षा पर विशेष बल देगा।

(4) दल शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़े समुदायों के सुपात्र व्यक्तियों को राज्य सहायता के जरिए भारत और विदेशों में उच्च शिक्षा सुविधाएं प्रदान करने की कोशिश करेगा।

(5) दल कानून बनाकर प्रेसिडेन्सी में विश्वविद्यालयी शिक्षा को क्षेत्रीय विश्वविद्यालय स्थापित करके पुनर्गठित करेगा और उन्हें शिक्षण विश्वविद्यालय बनाएगा। दल का विश्वास है कि यही एक उपाय है जिसके परिणामस्वरूप उस परीक्षा–पाठ्यक्रम को हटाया जा सकता है जिसने छात्र, जनसंख्या की बुद्धि और प्रयत्नों को तबाह किया है।

प्रशासन

दल का प्रशासन के प्रति विचार है कि:

(1) दल यह सुनिश्चित करेगा कि प्रशासन अच्छा, दक्ष और भ्रष्टाचार से मुक्त हो।

(2) अच्छे और दक्ष प्रशासन को सुदृढ़ करने के लिए दल (i) न्यायपालिका से कार्यपालिका को पृथक रखने और (ii) वेतन पद्धति को आधुनिक स्थितियों के अनुरूप संशोधित करने की कोशिश करेगा।

(3) दल यह भी प्रयत्न करेगा कि प्रशासन किसी एक जाति या समुदाय के एकाधिकार में न आए। प्रशासन में नियमित दक्षता के साथ दल प्रेजिडेन्सी के प्रशासन में सभी जातियों और समुदायों को मिलाने की कोशिश करेगा।

श्री लक्ष्मी नारायण प्रेस, बंबई 2

स्वतंत्र श्रमिक दल

व्यापक समर्थन

संगठन के लक्ष्य के बारे में डॉ. अम्बेडकर की राय

डॉ. अम्बेडकर ने बुधवार रात लॉयड ट्राइसटिनों स्टीमर कांटे वर्दे से जेनेवा जाने से पूर्व टाइम्स ऑफ इंडिया के प्रतिनिधि को बंबई प्रेसिडेन्सी और इसके बाहर दल के बढ़ते प्रभाव और इसे प्रगतिशील तत्वों से प्राप्त व्यापक समर्थन के बारे में बताया।

डॉ. बी. आर. अम्बेडकर दलित वर्ग के नेता के अनुसार उनके द्वारा हाल ही में बंबई में निर्मित स्वतंत्र श्रमिक दल को नये प्रांतीय विधानमंडल के आगामी चुनावों में सफलता की अच्छी संभावना है।

डॉ. अम्बेडकर ने कांग्रेस के इस दावे की कि वह जनता के हितों की रक्षा करेगी उपेक्षा करते हुए सुस्पष्ट कहा कि कांग्रेस में शामिल शोषक कभी भी जनता के लिए कार्य करने नहीं देंगे।

''मैं यह जानकर चकित रूप से सहमत हूं कि स्वतंत्र श्रमिक दल के प्रकाशनों या लक्ष्यों और उद्देश्यों ने सामान्य जनता में पर्याप्त रुचि जागृत की है। डॉ.अम्बेडकर ने यह बात दल के भावी कार्यक्रम के बारे में बहुत सी पूछताछ के संदर्भ में कही।''

केन्द्रीय प्रांतों में शाखाएं

''दल की एक शाखा पहले ही केंद्रीय प्रांतों में संगठित की जा चुकी है उन्होंने कहा बंबई प्रेसिडेन्सी में भिन्न वर्गों और समुदायों के लोगों ने बड़ी संख्या में उदारता से दल में शामिल होने की प्रतिक्रिया दिखाई है।''

''दल के आर्थिक कार्यक्रम के साथ ही इसके सामाजिक और शैक्षिक कार्यक्रम, और यह तथ्य कि दल सांप्रदायिकता के आधार पर संगठित नहीं किया गया है, इसे व्यापक स्वीकृति मिली है। हालांकि दल अपनी प्रारंभिक अवस्था में है, इसे प्रेसिडेन्सी में सभी जगह विभिन्न प्रगतिशील तत्वों से व्यापक समर्थन मिल रहा है।''

मुलभूत मतभेद

कांग्रेस और स्वतंत्र श्रमिक दल के कार्यक्रम और नीति के बीच दो मूलभूत मतभेद थे। कांग्रेस का विधानमंडलों को जीतने का विचार नए संविधान को सामाप्त करना था। दूसरी ओर, स्वंतत्र श्रमिक दल विधानमंडलों में पहुंचकर संविधान को उसके गुणों के आधार पर कार्यरत बनाना चाहता था।

कांग्रेस जनता के हितों की रक्षा का दावा करती है और यही ध्येय स्वतंत्र श्रमिक दल का है। लेकिन, डॉ. अम्बेडकर न आगे कहा, स्वतंत्र श्रमिक दल को ऐसा लगता है कि कांग्रेस अपनी रचना के कारण ही जनता की सेवा के लिए स्वतंत्र नहीं है। कांग्रेस एक विषम जातीय निकाय है जिसमें शोषक और शोषित दोनों ही शामिल हैं अझैर यह निश्चित है कि कांग्रेस में शामिल शोषक, संगठन को जनता के लिए काम नहीं करने देंगे।

दलित वर्गों के नेता ने आगे कहना जारी रखा कि राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के प्रयोजन के लिए शोषकों और शोषितों का संगठन आवश्यक हो सकता है, परंतु सामाजिक पुनर्रचना के प्रयोजन के लिए शोषितों और शोषकों की मिली–जुली सामान्य पार्टी बनाना जनता को धोखा देना था।

दल की सदस्यता

डॉ. बी. आर. अम्बेडकर की राय में, स्वतंत्र श्रमिक दल किसी भी व्यक्ति और हर किसी को मिलाकर विधानमंडल में अपनी शक्ति को बढ़ाना नहीं चाहता था। दल विषम जातीय तत्वों का समूह बनने से बचना चाहता था।

दल उन्हें सदस्यता देता है जो कार्यक्रमों को बिना शर्त स्वीकार करते हैं और जिनकी कोई अन्य संबद्धता नहीं है। डॉ. अम्बेडकर ने कहा, दल ने यह निर्णय किया है कि पार्टी के जितने उम्मीदवार खड़ा करना संभव है। उससे कम उम्मीदवार वह आगामी चुनावों में खड़े करेगी।

हॉलांकि विधानमंडलों में पर्याप्त कार्य करना शेष था, परंतु दल के विचार में विधान–मंडलों के बाहर जनता को शिक्षित करना, उनके समक्ष ठीक विचारधारा रखना और विधानमंडलों के माध्यम से राजनीतिक कार्रवाई के लिए उसे संगठित करना अधिक महत्वपूर्ण कार्य था।

जनता से अपील

डॉ. बी. आर. अम्बेडकर ने सोचा कि स्वतंत्र श्रमिक दल जैसी पार्टी आवश्यक है सभी मजदूरों, कृषकों और निम्न, मध्य वर्गों के लोगों से बड़ी संख्या में इसमें शामिल होने की अपील की ताकि यह जन संगठन बन जाए। उन्होंने यह भी घोषित किया कि जनसाधारण को शिक्षित करने और प्रचार–प्रसार करने के प्रयोजन के लिए आठ सदस्यों की एक समिति गठित कर दी गई है।

अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षित सीटों पर नामांकित उम्मीदवारों के अलावा स्वतंत्र श्रमिक दल ने वर्तमान में निम्नलिखित उम्मीदवारों को बंबई विधानमंडल के चुनाव के लिए खड़े करने का निर्णय किया है:– श्री ए. वी. चित्र (उत्तर रत्नागिरि) श्री एस. वी. परु लेकर (दक्षिण रत्नागिरि) साऊथ, श्री एस. जी. टिपनिस (कोलाबा), श्री वी. ए. गडकारी (पूर्वी पूना), श्री सी. टी. राणादीव (दक्षिण) और श्री बी. वी. प्रधान (पूर्वी खंडेश)

मैंने कालेज के लिए बंबई का चयन तीन कारणों से किया

डॉ. बी. आर. अम्बेडकर ने बंबई में कालेज की स्थापना के लिए भारत सरकार को ऋण के लिए आवेदन प्रस्तुत किया। आवेदन–पत्र का पाठ निम्न प्रकार है: संपादकगण

सेवा में,

माननीय सरदार सर जोगेंद्र सिंह,

प्रभारी सदस्य, शिक्षा विभाग,

स्वास्थ्य और भूमि, नई दिल्ली

महोदय,

निवेदन है कि यह आवेदन मैं भारत सरकार को 6,00,000/– रुपये (छह लाख रुपये) की ब्याजमुक्त राशि के लिए कर रहा हूं। इस राशि का उपयोग अनुसूचित जातियों के बीच शिक्षा का संवर्धन करने के लिए बंबई में कालेज स्थापित करके किया जाएगा। विनती है कि इस पर अनुकूल रूप में विचार किया जाए।

2. हार्टोग समिति जिसकी नियुक्ति सन् 1930 में भारत में शिक्षा की स्थिति और विभिन्न समुदायों में इसके प्रसार की जांच करने के लिए की गई थी, उसने अनुसूचित जातियों, जिन्हें उस समय दलित वर्ग कहा जाता था, के बीच शिक्षा के प्रसार की स्थिति का सार रूप निम्न दो सारणियों में प्रस्तुत किया है जो उसकी रिपोर्ट (पृ. 220) से लिया गया है।

टाइम्स ऑफ इंडिया बृहस्पतिवार, 12 नवंबर, 1936 पुनर्मुद्रितः खैरमौद, खंड 7 पृ. 50–53

सारणी–XCIV

शिक्षा पाने वाले दलित वर्गों के लड़के और लड़कियों की संख्या–स्तरवार और प्रांतवार

प्रांत (1)	प्राथमिक स्तर (2)	मिडिल स्तर (3)	उच्च हाई स्तर (4)	कालेज स्तर (5)
मद्रास	224,873 (क)	2,647(ख)	–	47
बंबई	58,651(क)	730(ग)	–	9
बंगाल	310,398	8,787	5,996	1,670
संयुक्त प्रांत	88,383	1,367	42	10
पंजाब	14,284	914	110	शून्य
बिहार और उड़ीसा	25,574	52	7	शून्य
केंद्रीय प्रांत	33,123	1,022	59	16

(क) केवल प्राथमिक स्कूलों में संख्या
(ख) मध्यम और उच्च स्तरों में संख्या
(ग) माध्यमिक स्कूलों के प्राथमिक, मिडिल और उच्च स्तरों में संख्या

* बंगाल के लिए ली गई इन संख्याओं के संबंध में समिति ने इस तथ्य की ओर ध्यान आकृष्ट किया कि इनमें वर्ग सम्मिलित है न कि दलित।

सारणी—XCV

लड़कियों के लिए संस्थाओं में दलित वर्गों की छात्राएं—स्तरवार और प्रांतवार

प्रांत	प्राथमिक स्तर	मिडिल स्तर	उच्च हाई स्तर	कालेज स्तर
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)
मद्रास	7,276	230	14	2
बंबई	5,739क	159(क)	1(क)	शून्य
बंगाल	28,086	49(ख)	5(ख)	3(ख)
संयुक्त प्रांत	2,204	8	1शून्य	शून्य
पंजाब	398	2शून्य	शून्य	शून्य
बिहार और उड़ीसा	2,210(ग)	शून्य	शून्य	
केंद्रीय प्रांत	521(ग)	3(ग)	शून्य	शून्य

(क) आदिवासी पर्वतीय और जरायमपेशा जातियां सम्मिलित हैं। (ख) समस्त पिछड़े वर्ग सम्मिलित हैं। (ग) लड़कों और लड़कियों के स्कूलों में लड़कियों की संख्या।

3. यह बहुत ही खेदजनक स्थिति है। सन् 1929 और अब तक हो सकता है कुछ सुधार हुआ हो परंतु इस प्रगति को आंकने के लिए सही आंकड़े नहीं हैं। लेकिन यह तथ्य कि भारत सरकार अपने 1943 के संकल्प के अनुपालन में अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षित रिक्तियों का 8 1/2 प्रतिशत का कोटा भी सरकार के विभागों में भर नहीं पाया है इस बात का संकेत है कि सन् 1929 में विद्यमान अनुसूचित जातियों की शिक्षा की स्थिति में इस अंतराल के दौरान कोई पर्याप्त बदलाव नहीं आया है।

4. अनुसूचित जातियों की स्थिति में सुधार करने के दृष्टिकोण से और भारतीय समाज में उनके प्रतिकूल भाव रखने वाले तत्वों से सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के दृष्टिकोण से अनुसूचित जातियों के लिए प्राथमिक शिक्षा की अपेक्षा उच्च शिक्षा विशेष रूप से कालेज शिक्षा अधिक महत्वपूर्ण है। अनुसूचित जातियों का कल्याण समग्रतः सहानुभूतिपूर्ण लोक सेवा पर निर्भर है और यदि लोक सेवा को सहानुभूतिपूर्ण होना है तो यह राष्ट्र के राष्ट्रीय जीवन के भिन्न तत्वों का प्रतिनिधित्व करने वाली और विशेष रूप से अनुसूचित जातियों की होनी चाहिए। इसके अलावा, लोक सेवा

में अनुसूचित जातियों का प्रतिनिधित्व यदि लिपिक वर्ग तक ही सीमित रहता है तो समुदाय के उत्थान के संघर्ष के लिए यह बेमानी होगा चाहे कितनी ही बड़ी संख्या में ये पद उन्हें दिए जाएं। अनुसूचित जाति के छात्र के लिए प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा एक व्यक्ति की वृत्तिका के दृष्टिकोण से अच्छी हो सकती है। लेकिन इससे अनुसूचित जातियों की स्थिति में सुधार नहीं होगा। अनुसूचित जातियों की प्रतिष्ठा और स्थिति में सुधार तभी आएगा जब अनुसूचित जातियों के प्रतिनिधियों को लिपिक वर्गीय पदों की अपेक्षा कार्यपालक पद मिले जो निर्णायक पद होते हैं, जहां से सरकारी कार्यों को नई दिशा प्रदान की जा सकती है। कार्यपालक पद की प्राप्ति के लिए स्पष्टतः शिक्षा की उच्च डिग्री का होना आवश्यक है। परिणामतः अनुसूचित जातियों की शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य यह होना चाहिए कि जो छात्र कालेज शिक्षा तक पहुंच जाएं उनके लिए प्रावधान किया जाए ताकि वे अपनी शिक्षा पूर्ण करके कार्यपालक पदों के उपयुक्त हो सकें।

5. अनुसूचित जातियों के छात्र कालेज स्तर तक पहुंचकर क्यों पढ़ाई छोड़ देते हैं इसके कुछ कारण हैं। पहला और मुख्य कारण उनकी गरीबी है, दूसरा कारण कालेज–प्रवेश में कठिनाई, तीसरा कारण शुल्कमुक्ति का न होना और चौथा कारण छात्रावास में रिहायश का अभाव। इनमें से कुछ कठिनाइयां सरकार से वित्तीय सहायता द्वारा दूर हो सकती हैं। लेकिन इनमें से एक कठिनाई वित्तीय सहायता से दूर नहीं हो सकती वह कालेज में प्रवेश से संबंधित है। कालेजों में प्रवेश की संख्या विश्वविद्यालय या सरकार द्वारा नियत की हुई है। केवल कुछ संख्या में लड़के प्रवेश पा सकते हैं। इससे कालेज शिक्षा पाने के इच्छुक अनुसूचित जातियों के छात्रों को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। यह सामान्य कठिनाई जान पड़ती है। लेकिन यह अन्य समुदायों के छात्रों की अपेक्षा अनुसूचित जातियों के छात्रों को बुरी तरह प्रभावित करती है। यह इस कारण से है क्योंकि कालेज शिक्षा निजी हाथों में है और अधिकांश कालेज उन निजी निकायों द्वारा चलाए जाते हैं जो अपने संगठन और स्टाफ के मामले में सांप्रदायिक हैं। कालेजों का दृष्टिकोण अधिकांशतः सांप्रदायिक है। इस सांप्रदायिक दृष्टिकोण का प्रभाव प्रवेश देने पर पड़ता है। इस का परिणाम यह होता है कि विशेष समुदायों या उच्च समुदायों के छात्रों को प्रवेश में वरीयता दी जाती है और अनुसूचित जातियों के छात्रों को इस आधार पर प्रवेश मना कर दिया जाता है कि प्रवेश संख्या पूरी हो गई है या उन पर तब विचार किया जाता है जब कुछ रिक्तियां रह जाती हैं। बड़े शहरों में, जहां ज्यादातर कालेज स्थित हैं, जनसंख्या के आगमन से यह स्थिति भयानक रूप से बिगड़ गई है। कालेजों में प्रवेश के इच्छुक उन छात्रों की विशाल रुप से कालेज में प्रवेश का मामला पहले से अधिक मुश्किल हो गया है।

6. यह स्थिति बनाए रखना उचित नहीं है। इसका तत्काल उपाय किया जाना चाहिए। इसका एक मात्र प्रभावी उपाय यह दिखाई पड़ता है कि उन चुनिंदा केंद्रों में जिनका प्राथमिक लक्ष्य अनुसूचित जातियों की शिक्षा का है, वहां कालेजों की स्थापना की जाए। अन्य समुदाय इस प्रतिस्पर्धा का विरोध इसलिए नहीं करेंगे कि उनमें से अधिकांश के अपने कालेज हैं। यह सिख, मुस्लिम, भारतीय क्रिश्चियनों और ऐंग्लो इंडियनों जैसी अल्पसंख्यक समुदायों के मामले में भी सही है क्योंकि इनमें से प्रत्येक के अधीन विभिन्न स्कूलों और कालेजों का संचालन किया जाता हैं जहां पर उनके समुदायों के छात्रों पर पहले विचार किया जाता है। लेकिन अछूतों की अपनी ऐसी संस्थाएं नहीं हैं इसलिए उन्हें प्रवेश की इस प्रतिस्पर्धा से अधिक जूझना पड़ता है। मैं बंबई में कालेज प्रारंभ करने का प्रस्ताव करता हूं जिसका अपना एक लक्ष्य होगा जिसे वह पूरा करने की कोशिश करेगा। मेरे अनुमान के अनुसार, ऐसा कालेज स्थापित करने के लिए लगभग छह लाख रुपयों की आवश्यकता होगी। युद्ध–पूर्व समय में यह कम राशि में भी स्थापित किया जा सकता था। लेकिन सामग्री की लागत में बढ़ोत्तरी को ध्यान में रखते हुए मैं नहीं समझता कि कालेज को उपर्युक्त राशि से कम में शुरू किया जा सकता है। इतना धन एकत्र करने के लिए अनुसूचित जातियों से अपेक्षा करना असंगत है, क्योंकि वे भारत में सबसे गरीब समुदाय है मैं बिना ब्याज के ऋण के रूप में यह राशि मांगने के लिए बाध्य हूं जिसे उपयुक्त किस्तों में लौटाया जाएगा। प्रस्तावित कालेज की संपत्तियां सरकार के पास प्रतिभूति के रूप में बंधक रखी जाएंगी।

7. मैं नीचे प्रस्तावित कालेज के बारे में कुछ महत्वपूर्ण विवरण प्रस्तुत कर रहा हूं जिनसे यह संकेत मिलेगा कि कालेज कैसे कार्य करेगाः–

I इसका प्रबंध, चेरिटेबल सोसाइटीज़ अधिनियम के अधीन पंजीकृत सम्यक् रुप से गठित निकाय द्वारा किया जाएगा।

II इसमें कला और विज्ञान दो भाग होंगे।

III यह यथा उल्लिखित रूप में गैर–साप्रंद्रायिक होगाः

(I) यह सभी जातियों और धर्मों के छात्रों के लिए खुला होगा केवल यह अनुसूचित जातियों के छात्रों के शैक्षिक हितों को विशेष महत्व देगा।

(II) शिक्षण स्टाफ मिश्रित स्टाफ होगा। नस्ल, धर्म या समुदाय के आधार पर कोई रोक नहीं होगी।

(III) भारत में विश्वविद्यालयों के विनियमों के अधीन यह सभी प्रांतों के अनुसूचित जाति के छात्रों के लिए, बिना किसी भेदभाव के, खुला होगा।

8. मैंने कालेज के लिए बंबई का चयन तीन कारणों से किया है। पहले मैं कालेज के प्रबंधक का कार्य करने का दायित्व अपने ऊपर लेने का और साथ ही मैं वर्तमान कार्यालय के दायित्व से मुक्त होते ही शिक्षण कार्य करने का प्रस्ताव करता हूं। प्रारंभिक चरण में मैं महसूस करता हूं कि मुझे इन दायित्वों का निर्वाह करना चाहिए। यह मैं तभी ठीक से कर सकूंगा यदि कालेज बंबई में अवस्थित होगा। दूसरे, बंबई में बड़ी संख्या में एकत्र हुए उन छात्रों को कालेज शिक्षा प्रदान करने के लिए और अधिक कालेजों की तीव्र आवश्यकता है जो विद्यमान कालेजों में प्रवेश पाने में असमर्थ हैं। प्रेस रिपोर्ट्स के अनुसार बंबई विश्वविद्यालय के सीनेट के समक्ष दस नए कालेज खोलने के प्रस्ताव लंबित है जिनसे पता चलता है कि कितनी बड़ी संख्या में छात्र कालेज में दाखिले के इच्छुक हैं। कालेज में बड़ी संख्या में इन छात्रों के प्रवेश की संभावना से मैं आश्वस्त हूं कि कालेज अपना मार्ग प्रशस्त करेगा और ऐसी संभावना है कि कालेज लाभ प्रदर्शित करेगा। तीसरे, सिंडेन्हम कालेज ऑफ कामर्स, बंबई में प्रोफेसर, गवर्नमेंट लॉ कालेज, बंबई में प्रिंसिपल और बंबई विश्वविद्यालय के सिंडिकेट और सीनेट में सदस्य होने के नाते मैं महसूस करता हूं कि मैं प्रस्तावित कालेज के लिए, प्रांत के बाहर किसी विश्वविद्यालय की अपेक्षा बंबई विद्यालय से मान्यता प्राप्त कर सकता हूं।

9. मैंने कालेज के लिए लगभग छ एकड़ क्षेत्रफल के स्थल का चयन कर लिया है। यह बंबई नगरपालिका का है। यही एक स्थल बंबई में बचा है जो कालेज के लिए उपयुक्त माना जा सकता है। यदि मैं यह स्थल खो देता हूं तो मुझे अपनी परियोजना को त्यागना पड़ेगा जो कि एक बहुत बड़ी विपत्ति होगी। मैं बातचीत के लिए आगे बढ़ सकता हूं केवल इस आश्वासन पर कि मै निधियां जुटा सकता हूं, जिसके संबंध में मैंने पहले ही कहा है कि यह मैं भारत सरकार से केवल ऋण के रूप में लेकर कर सकता हूं। मैं ऋण की राशि तत्काल निकालने का प्रस्ताव नहीं कर रहा हूं। यह भारत सरकार के पास रहेगी। यह राशि तभी निकाली जाएगी जब कभी इसकी आवश्यकता होगी।

10. क्योंकि मैं स्थल को सुरक्षित करने के लिए चिंताग्रस्त हूं, मैं आभारी होऊंगा यदि मेरे आवेदन पर अविलम्ब अनुमोदन दिया जाता है।

मैं हूं,
भवदीय
(ह.) बी. आर. अम्बेडकर

1 फरवरी, 1945
22 पृथ्वी राज रोड,
नई दिल्ली

द पीपुल्स एजूकेशन सोसाइटी

मुंबई का संगम ज्ञापन

(8 जुलाई, 1945 को स्थापित)

संस्थापकः

डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

एम.ए., पीएच. डी., डी. एससी.,

एलएल. डी., (कोलंबिया), डी. लिट्ट (ओस्मानिया), बैरिस्टर–एट–लॉ

मुख्यालयः

आनंद भवन

डॉ. दादा भाई नैरोजी रोड,

फोर्ट, मुंबई–400023

सोसाइटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 के XXI के अधीन पंजीकृत। पंजीकरण सं. 1945–46 का 1375 तारीख 9 जुलाई, 1945 और बाम्बे लोक न्यास अधिनियम, 1950 (बंबई 1950 का XXIX) पंजीकरण सं. एफ. 302 (बई) तारीखः 2 जून, 1953

पीपुल्स एजूकेशन सोसाइटी, मुंबई

न्यासी बोर्ड

1. श्री के. बी. तलवटकर (न्यासी)
2. माननीय श्री के. एच. रंगनाथ (न्यासी)
3. श्री एस. एस. रेगे (न्यासी)

शासी निकाय के सदस्य

1. डॉ. एस. पी. गायकवाड़, जी. सी. ए. एम (अध्यक्ष)
2. श्री एस. एस. रेगे, बी. ए., पुस्तकालय विज्ञान (उपाध्यक्ष)
3. श्री के. बी. तलवटकर, एम. ए., एलएल.एम, एस.ई.एम.
4. डॉ. पी.टी. बोराले, बी. ए., एल.एल.बी., पीएच.डी. (लॉ)
5. श्री एम.एस. मोरे, बी.ए., एलएल.एम.
6. प्रो. एस.के. मोहगांवकर, एम.कॉम.
7. माननीय श्री के.एच. रंगनाथ, बी.एससी., बी.एल.
8. पदम श्री डॉ. एम.एल. शाहरे, एम.एससी., पीएच.डी.
9. प्रो. एस.एल. खोट, एम.ए., एलएल.एम.
10. प्रो. अरुण एम. डोंडे, एम.ए., एलएल.बी., पूर्व एमएलसी

सचिवालय

प्रिंसिपल डी.जे. गन गुर्डे, एम. कॉम. एलएल.एम., सचिव

पीपुल्स एजूकेशन सोसाइटी, मुंबई का संगम–ज्ञापन

सोसाइटी का नाम और उद्देश्य

1. सोसाइटी पीपुल्स एजूकेशन सोसाइटी कहलाएगी और यह बौद्धों द्वारा प्रबंधित और प्रशासित होगी।

2. सोसाइटी का कार्यालय बंबई में होगा या किसी अन्य स्थान पर होगा जैसाकि समय–समय पर निर्णय लिया जाएगा।

3. सोसाइटी के लक्ष्य और उद्देश्य होंगेः–

(क) माध्यमिक, कालेज स्तर, तकनीकी शारीरिक आदि शिक्षा के लिए सुविधाएं प्रदान करना;

(ख) महाराष्ट्र राज्य में उचित स्थानों के साथ–साथ भारत के अन्य भागों में स्कूलों,

कालेजों, विहारों, छात्रावासों, पुस्तकालयों, खेल के मैदानों, बौद्ध संस्थानों आदि को प्रारंभ, स्थापित, संचालित करना और या शैक्षिक और बौद्ध धार्मिक संघों को सहायता प्रदान करना;

(ग) गरीबों और बौद्धों की शिक्षा के लिए सुविधाएं प्रदान करना;

(घ) अनुसूचित जातियों और इनमें से बौद्ध धर्म में परिवर्तित लोगों में शिक्षा के प्रति रुचि उत्पन्न करना और विकसित करना और विशेष रूप से इन्हें उच्च शिक्षा के लिए विशेष सुविधाएं, छात्रवृत्तियां और शुल्कमुक्तियां प्रदान करना;

(ड.) विज्ञान, बौद्ध और अन्य साहित्य और ललित कलाओं का संवर्धन करना और धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन का उपयोगी ज्ञान प्रदान करना;

(च) सोसाइटी के लिए संपत्ति खरीदना; पट्टे पर लेना या अन्यथा अर्जन करना और सोसाइटी के धन का निवेश या व्यवहार ऐसे ढंग से करना जैसा समय–समय पर निर्धारित किया जाए;

(छ) सोसाइटी के प्रयोजन के लिए मकानों, विहारों, भवनों या निर्माण कार्यों का निर्माण, रख–रखाव, पुनर्निर्माण, मरम्मत, परिवर्तन, प्रतिस्थापना या पुनःस्थापित करना;

(ज) सोसाइटी की समस्त या किसी संपत्ति को बेचना, निपटान करना, सुधार करना, विकास करना, विनिमय करना, पट्टे पर देना, बंधक रखना या अन्यथा अन्य हस्तांतरित या व्यवहार करना;

(झ) सोसाइटी को या सोसाइटी द्वारा चलाई जाने वाली या संबंधित संस्था या संस्थाओं के साथ इस तरह से सहयोग करना या उन्हें संबद्ध करना ताकि सोसाइटी के लक्ष्यों और उद्देश्यों, विशेष रूप से बौद्धों के, की उन्नति हो सके;

(ञ) सोसाइटी के प्रस्तावित लक्ष्यों और उद्देश्यों को कार्यान्वित करने के लिए प्रतिभूति सहित या उसके बिना धन एकत्र करना;

(ट) भारत के किसी भी राज्य में सोसाइटी को पंजीकृत कराने या मान्यता दिलाने के लिए इंतजाम करना और;

(ठ) उपर्युक्त लक्ष्यों और उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रासंगिक या सहायक अन्य विधिक चीजें और कृत्य करना।

II अभिदाता और संरक्षक

4. सोसाइटी को प्रतिवर्ष दस रुपए अभिदान के रूप में देने वाला व्यक्ति सोसाइटी के अभिदाता के रूप में भर्ती होने को पात्र होगा और अभिदाता के विशेषाधिकारों का हकदार होगा।

5. सोसाइटी को 500/– रुपये या अधिक एक मुश्त राशि देने वाला व्यक्ति सोसाइटी का संरक्षक होने का पात्र होगा और संरक्षक के विशेषाधिकारों का हकदार होगा।

III नियंत्रण और प्रबंध्न

6. सोसाइटी में निम्न होंगेः–

(I) एक शासी निकाय;

(II) न्यासी मंडल;

(III) एक सामान्य मूलतः प्रबंध परिषद्य और

(IV) प्रत्येक कालेज, विहार, स्कूल या अन्य संस्था या इनके समूह के लिए कार्यकारिणी होगी जैसा कि इनके कार्यों के प्रबंधन के लिए शासी निकाय निर्णय करेगा।

7. शासी निकाय में ग्यारह सदस्य होंगे। इन ग्यारह में से सात व्यक्ति उन बौद्धों में से होंगे जो अनुसूचित जातियों में से बौद्ध धर्म में परिवर्तित हुए हैं।

(क) शासी निकाय को किसी भी व्यक्ति या व्यक्तियों को शासी निकाय का पदेन सदस्य नियुक्त करने की शक्ति होगी जिसके लिए विशेष संकल्प में ऐसी नियुक्तियां करने के प्रयोजन को विनिर्दिष्ट किया गया हो। ऐसे व्यक्ति को किसी भी ऐसे विषय पर मतदान करने का अधिकार नहीं होगा जो उसकी नियुक्ति के कार्य–क्षेत्र या प्रयोजन बाहर होगा।

इस प्रश्न पर जहां कोई विवाद उठेगा कि क्या विषय कार्य–क्षेत्र या प्रयोजन के अंतर्गत आता है तो अध्यक्ष का निर्णय अंतिम होगा।

8. न्यासी मंडल में तीन व्यक्ति होंगे जो शासी निकाय द्वारा अपने बीच में से नियुक्त किए जाएंगे। इनमें से कम–से–कम दो वे बौद्ध होंगे जो अनुसूचित जातियों में से परिवर्तित हुए होंगे।

9. जैसा इसमें अन्यथा उपबंधित है उसके सिवाय सोसाइटी की सभी संपत्तियां और निधियां न्यासी मंडल में विहित होंगी।

(क) सोसाइटी की संपत्तियों और निधियों के बारे में न्यासी मंडल को सोसाइटी की ओर से वाद लाने और वाद लाए जाने के लिए अधिकार होंगे।

10. (1) सोसाइटी की समस्त संस्थाओं के कार्य का पर्यवेक्षण और समन्वय करने के लिए महापरिषद् होगी। महापरिषद् में पंद्रह सदस्यों से कम नहीं होंगे जिनका नामांकन शासी निकाय करेगा। इन 15 सदस्यों में से 11 सदस्य शासी निकाय में से होंगे जिनमें से 8 वे बौद्ध होंगे जो शासी निकाय के सदस्य होंगे जो अनुसूचित जातियों के सदस्यों में से परिवर्तित हुए हैं। शेष अभिदाताओं और संरक्षकों में से होंगे।

(2) शासी निकाय द्वारा जब तक अन्यथा उपबंधित न हो प्रत्येक संस्था का प्रमुख महापरिषद् का पदेन सदस्य होगा।

(3) महासभा के संकल्प केवल सिफारिश होंगे।

11. सोसाइटी के प्रत्येक कालेज, विहार, स्कूल या संस्था या उसके समूह के लिए जैसा शासी निकाय निर्णय करे, एक कार्यकारिणी होगी। कार्यकारिणी में कम–से–कम पांच और अधिक–से–अधिक सात सदस्य होंगे जिनकी नियुक्ति शासी निकाय करेगा। इनमें से एक कालेज या स्कूल या संस्था का संकायाध्यक्ष (डीन) या प्रिंसिपल, संस्था का रजिस्ट्रार, कम–से–कम दो बौद्ध में से जो अनुसूचित जातियों से परिवर्तित हैं और एक वह होगा जो शासी निकाय की राय में शिक्षाविद् हो।

12. शासी निकाय का सभापति, जो बौद्ध होगा, वह न्यासी मंडल, महा मूलतः प्रबंधक परिषद् और सभी कार्यकारिणीयों का पदेन सदस्य और सभापति होगा। इन निकायों में सदस्य उपर्युक्त खंडों में विनिर्दिष्ट सदस्यों की संख्या के अलावा होगा।

(क) (1) सोसाइटी का कार्यपालक प्राधिकार सभापति में निहित होगा।

(2) सोसाइटी की ओर से निष्पादित किए जाने वाले सभी विलेख, प्रलेख और आश्वासन अकेले सभापति द्वारा निष्पादित किए जाएं जो कि सोसाइटी पर बाध्य होंगे।

13. सोसाइटी, इसकी संस्थाओं, इसकी संपत्तियों ओर इसकी निधियों का सर्वोच्च नियंत्रण और शासन शासी निकाय में विहित होगा।

14. शासी निकाय के प्रथम सदस्य होंगेः—

1. माननीय डॉ. बी. आर. अम्बेडकर, एम.ए., पीएच. डी., डी. एससी., बैरिस्ट एट—लॉ, नई दिल्ली।

2. राय बहादुर एन. शिवराज, बी.ए., बी.एल., एम.एल.ए., मद्रास

3. दौलतराव गुलाजी जाधव, बी.ए., एलएल.बी., बंबई

4. राजा राम भोले, बी.एससी., एलएल.बी., पूना

5. जे.एच.सुबच्चा, बी.ए., सिकंदराबाद

6. हीरजीभाई कौशल भाई पटेल, बी.ए., एलएल.बी., बंबई

7. जी.टी.मेशरम, नई दिल्ली

8. रायबहादुर एस.के.बोले, बंबई

9. एम.वी. डोंडे, बी.ए., प्रिंसिपल, गोखले एजूकेशन सोसाइटीज़, हाई स्कूल, पारेल, बंबई

10. एस.सी. जोशी, एम.ए., एलएल.बी., नई दिल्ली

11. एम.बी. समर्थ, बैरिस्टर—एट—लॉ, बंबई।

भारतीय डॉ. बी. आर. अम्बेडकर, शासी निकाय के प्रथम सभापति होंगे और उनके पश्चात् हमेशा बौद्ध ही होगा।

15. शासी निकाय और न्यासी मंडल की सदस्यता का समापन मृत्यु, असमर्थता, त्याग—पत्र या हटाए जाने पर होगा।

16. महा मूलतः प्रबंध परिषद् के सदस्यों और कार्यकारिणी के सदस्यों, डीन या प्रिंसिपल और रजिस्ट्रार से भिन्न, की पदावधि तीन वर्षों के लिए होगी जब तक कि मृत्यु, असमर्थता, त्याग—पत्र या हटाए जाने से समाप्त न हो जाए। किसी व्यक्ति की पदावार समाप्त होने पर वह पुनः नामांकन का पात्र होगा। डीन या प्रिंसिपल और रजिस्ट्रार तब तक कार्यकारिणी के सदस्य बने रहेंगे जब तक वे डीन या प्रिंसिपल या रजिस्ट्रार पद धारण किए हुए हैं।

17. शासी निकाय को यह शक्ति होगी कि वह शासी निकाय, न्यासी मंडल, महा (मूलतः प्रबंध) परिषद् और किसी भी कार्यकारिणी के सदस्य को निकाय से हटा

सकती है बशर्ते कि शासी निकाय की प्रयोजन के लिए विशेष रूप से बुलाई गई बैठक में उपस्थित तीन–चौथाई सदस्य उसे हटाने के पक्ष में हों।

18. शासी निकाय का वर्तमान सभापति अपना उत्तराधिकारी नियुक्त या नामांकित करेगा।

19. ऐसी दशा में जबकि वर्तमान सभापति के उत्तराधिकारी का कोई वैध नामांकन नहीं है, या किसी भी कारणवश नामांकित व्यक्ति इंकार करे या स्वीकार करने में असफल हो या पद पर न रहे, तो शासी निकाय के शेष सदस्यों द्वारा सभापति निर्वाचित किया जाएगा।

20. इसमें दिए गए उपबंधों के अध्यधीन शासी निकाय, न्यासी मंडल, महा (मूलतः प्रबंध) परिषद् या कार्यकारिणी के अन्य सदस्यों के कार्यालय में सभी रिक्तियां शासी निकाय द्वारा भरी जाएंगी, बशर्ते कि अनुसूचित जाति से परिवर्तित बौद्ध व्यक्ति की रिक्ति केवल अनुसूचित जातियों से परिवर्तित बौद्ध व्यक्ति से ही भरी जाएगी अन्य किसी और से नहीं।

21. शासी निकाय का सभापति शासी निकाय का कार्यपालक अधिकारी होगा और सामान्य नीति और वित्तीय मामलों में शासी निकाय के सदस्यों के परामर्श से कार्य करेगा।

22. (i) सभापति शासी निकाय निकाय के सदस्य को अपनी अनुपस्थिति में कार्य करने के लिए उप सभापति के रूप में नियुक्त कर सकता है और उसे ऐसे प्राधिकार प्रत्यायोजित कर सकता है जिनका वह चयन करे।

(ii) सभापति किसी व्यक्ति को सोसाइटी के सचिव के रूप में कार्य करने के लिए भी नियुक्त कर सकता है और लिखित रूप में उसके कार्य, उसका वेतन और उसके कार्यालय की अवधि निर्धारित कर सकता है।

(iii) शासी निकाय अपने बीच में से एक व्यक्ति को सोसाइटी का प्रधान सचिव भी नियुक्त कर सकता है। उसकी पदावधि तीन वर्ष की होगी।

23. शासी निकाय अपना कार्य करने और अपनी संस्थाओं को चलाने के

लिए आवश्यक स्टाफ नियुक्त कर सकता है, उनके वेतनमान और सेवा शर्तें नियत कर सकता है और सोसाइटी के स्टाफ, प्राधिकारियों और निकायों के मार्गदर्शन और निदेशों के लिए स्थायी आदेश या नियम बना सकता है और उनके कार्यों, शक्तियों और दायित्वों को परिभाषित करने वाले विनियमों का निर्माण कर सकता है।

24. प्रत्येक कालेज, विहार, स्कूल या संस्था या उनके समूह के लिए, जैसा शासी निकाय निर्णय करेगा, शासी निकाय रजिस्ट्रार नियुक्त कर सकता है।

25. सभापति के अधीक्षण और नियंत्रण के अध्यधीन, रजिस्ट्रार संस्था के प्रमुख के अधीन कार्य करेगा। वह सोसाइटी के स्थायी आदेशों और विनियमों के अनुसार संस्था के रोजमर्रा का प्रशासनिक कार्य निष्पादित करेगा।

IV सोसाइटी की निधियां

26. सोसाइटी की निधियों में समय–समय पर प्राप्त अनुदान, दान, अभिदान, शुल्क, उपहार आदि शामिल होंगे।

27. सचिव सोसाइटी की आय और व्यय की उचित लेखा बहियों और अन्य दस्तावेजों का रख–रखाव करेगा। सोसाइटी के लेखाओं की समय–समय पर लेखापरीक्षा भारतीय कंपनी अधिनियम के अधीन मान्यता प्राप्त और शासी निकाय द्वारा नियुक्त लेखापरीक्षकों द्वारा की जाएगी।

28. शासी निकाय महा परिषद् और कार्यकारिणी, या समिति के सदस्यों में से सचिव को नियुक्त करेगा जो क्रमशः परिषद् और कार्यकारिणी या समिति का सामान्य कार्य करेगा। सचिव की पदधारणा अवधि तीन वर्ष होगी।

29. सोसाइटी के सचिव द्वारा सोसाइटी की वार्षिक प्राप्तियों और व्ययों का ब्यौरा तैयार किया जाएगा और इसका समेकित विवरण सोसाइटी के कार्यालय में रखा जाएगा और यह शासी निकाय, न्यासी मंडल, महा (मूलतः प्रबंधन) परिषद् और कार्यकारिणी के सदस्यों और संरक्षकों और अभिदाताओं के लिए निरीक्षण के लिए सदैव खुला रहेगा।

V. सामान्य

30. शासी निकाय और अन्य निकाय अपने कर्तव्यों का पालन और अपनी शक्तियों, प्राधिकारों और कृत्यों का प्रयोग इस ज्ञापन के साथ संलग्न अंतर्नियमों (अनुसूची–क) के अनुसार करेंगे।

31. शासी निकाय को उक्त अंतर्नियमों को परिस्थितियों के अनुरूप परिवर्तित, संशोधित, परिवर्धित या आशोधित करने की शक्ति होगी बशर्ते कि जब तक ऐसे परिवर्तन, संशोधन, परिवर्धन या आशोधन इस ज्ञापन के उपबंधों के असंगत नहीं होंगे।

32. शासी निकाय को इस ज्ञापन को परिवर्तित, संशोधित, परिवर्धित या आशोधित करने की शक्ति होगी, लेकिन यह शासी निकाय के गठन, न्यासी मंडल, महा (मूलतः प्रबंधन) परिषद् और प्रत्येक ऐसे निकायों में अनुसूचित जातियों से परिवर्तित बौद्ध सदस्यों के प्रतिनिधित्व के अनुपात, प्रथम सभापति की पदावधि से संबंधित उपबंध, सभापति के अन्य निकायों की पदेन सदस्यता से संबंधित उपबंधों को छोड़कर किया जाएगा जो इसके खंड 7, 8, 9, 10, 11, 12, 14, 20 और 21 में अंतर्विष्ट हैं बशर्ते कि इस प्रयोजन के लिए विशेष रुप से बुलाई गई शासी निकाय की बैठक में उपस्थित तीन–चौथाई सदस्य ज्ञापन में ऐसे परिवर्तन, संशोधन, परिवर्धन या आशोधन के लिए मत (वोट) करें।

हस्ताक्षरित

बी. आर. अम्बडेकर

एस. के.बोले

एम. वी. डोंडे

एस. सी. जोशी

एम. बी. समर्थ

डी. जी. जाधव

एच. के. पटेल

9 जुलाई, 1945

अनुसूची 'क'

पीपुल्स एजूकेशन सोसाइटी के प्रबंधन और प्रशासन के नियम

1. ये नियम पीपुल्स एजूकेशन सोसाइटी के नियम कहलाएंगे।

2. शासी निकाय की प्रत्येक छह माह पश्चात् बैठक होगी जिसमें वह अपने नियंत्रण में समस्त संस्थाओं और निकायों से रिपोर्ट प्राप्त करके उन पर विचार करेगा। अन्य निकाय अपनी बैठकें तिमाही में एक बार आयोजित करेंगे और सोसाइटी, इसकी संस्थाओं, आदि जैसी भी स्थिति हो, उनके कार्य करने के लिए आवश्यकता पड़ने पर, समय–समय पर, जितनी भी बार बैठकें करनी हों उन्हें आयोजित करेंगे।

3. शासी निकाय सामान्यतः प्रत्येक वर्ष अप्रैल माह में वार्षिक साधारण सभा आयोजन करेगा, जिसमें प्रधान सचिव सोसाइटी के लेखाओं का वार्षिक विवरण और कार्य और गतिविधियों की रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा।

4. शासी निकाय का सभापति स्वविवेकानुसार या किन्हीं तीन सदस्यों के मांग करने पर शासी निकाय, न्यासी मंडल, महा परिषद् या कार्यकारिणी की जैसी भी स्थिति हो, किसी भी कारण से जो उसे या उन्हें पर्याप्त लगे, विशेष बैठक बुलाएगा।

5. प्रत्येक बैठक चाहे वह साधारण, विशेष या स्थगित हो, उसकी लिखित सूचना बैठक की तारीख से सामान्यतः प्रत्येक सदस्य को पूरे सात दिन पूर्व सौंपनी चाहिए या डाक द्वारा भेजनी चाहिए। लेकिन स्थगित बैठक के मामले में सूचना ऐसी अवधि की हो सकती है जैसी मूल और स्थगित बैठक के बीच तारीख की अवधि अनुमति दे। बैठक की सूचना में सामान्यताः बैठक का स्थान, तारीख और समय तथा निष्पादित किए जाने वाले कार्य का विवरण होना चाहिए और विशेष बैठक की सूचना में उस बैठक में जिस विशिष्ट मामले पर विचार–विमर्श होना है उसका अतिरिक्त विवरण होना चाहिए।

6. तत्समय प्रत्येक निकाय के लिए कोरम बनाने के लिए चार सदस्यों की आवश्यकता होगी।

तत्समय प्रत्येक निकाय के लिए कोरम बनाने के लिए कुल संख्या सदस्यों की

आधी संख्या की आवश्यकता होगी।

(क) शासी निकाय या सोसाइटी की संस्था की समिति का प्रत्येक सदस्य शासी निकाय या समिति की बैठक में, जैसी भी स्थिति हो, नियमित रूप से भाग लेंगे और इस प्रकार की बैठक में उपस्थित होने में असमर्थ होने की स्थिति में वह बैठक में अनुपस्थित होने के लिए लिखित रूप में अनुमति का निवेदन करेगा।

7. किसी बैठक के लिए निर्धारित समय के आधे घंटे के भीतर यदि कोरम के लिए सदस्य एकत्र नहीं हो पाते हैं तो उपस्थित सदस्य या सदस्यों को बैठक छोड़ने का अधिकार है। इस संबंध में संकल्प अपनाकर सभापति बैठक को स्थगित कर सकता है। यदि ऐसी स्थगित बैठक में कोरम उपस्थित नहीं है तो उपस्थित सदस्य ही कोरम होंगे।

8. शासी निकाय का सभापति इन निकायों की बैठकों की अध्यक्षता करेगा। प्रत्येक निकाय अप्रैल माह में अपनी पहली बैठक में वर्ष भर के लिए उप–सभापति निर्वाचित करेगा जो सभापति की अनुपस्थिति में अध्यक्षता करेगा। जब सभापति और उप–सभापति दोनों अनुपस्थित होंगे तो सदस्य अपने बीच में से बैठक के लिए सभापति निर्वाचित करेंगे।

9. जब तक कि अन्यथा ज्ञापन में उपबंधित न हो, प्रत्येक मामला उपस्थित सदस्यों के बहुमत से और मतदान से निर्धारित किया जाएगा। सभापति का एक निर्णायक मत होगा चाहे उसी मामले में उसने पहले मत किया हो या न किया हो, लेकिन कोई सदस्य एक से अधिक मत नहीं देगा।

10. शासी निकाय, महा परिषद् या कार्यकारिणी द्वारा पारित कोई संबंधित निकाय की किसी अन्य बैठक में समय–समय पर रद्द या परिवर्तित किया जा सकता है।

11. शासी निकाय, किसी भी बैठक में, जांच करने या कार्य करने के लिए किसी व्यक्ति या समिति नियुक्त कर सकता है, लेकिन व्यक्ति या समिति द्वारा किए गए प्रत्येक कृत्य और कार्यवाही को शासी निकाय को अनुमोदन के लिए प्रस्तुत किया जाएगा, और शासी निकाय के बिना अनुमोदन के यह सोसाइटी के लिए बाध्यकारी नहीं होगी।

12. प्रत्येक निकाय कार्य–वृत्त का रिकार्ड सदस्य के कार्यालय में रखेगा और निकायों की बैठकों की कार्रवाई को कार्य–वृत्त पुस्तिका में दर्ज किया जाएगा और बैठक के सभापति द्वारा यह बैठक के समापन पर या किसी भावी समय पर, जब इन की पुष्टि हो जाएगी, हस्ताक्षरित किया जाएगा।

13. उचित लेखा बहियों में पूर्ण लेखाओं को सोसाइटी और उसकी संस्थाओं की ओर से सभी धन प्राप्तियों और अदायगियों के प्रयोजन के लिए रखा जाएगा। ऐसी लेखा बहियां प्रत्येक वर्ष के लिए तैयार की जाएंगी और उनकी लेखापरीक्षा विधिवत अर्हता प्राप्त लेखापरीक्षकों द्वारा करने के पश्चात् जांचकर शासी निकाय की आगामी वर्ष की साधारण बैठक में इस प्रयोजन के लिए बुलाई गई किसी अन्य बैठक में पारित की जाएंगी और तत्पश्चात् बैठक के सभापति द्वारा हस्ताक्षरित की जाएंगी।

14. सोसाइटी के अभिदाताओं और संरक्षकों की एक सूची का रख–रखाव किया जाएगा।

15. सोसाइटी के प्रयोजन के लिए शासी निकाय द्वारा चयनित बैंकरों के साथ खाता खोला जाएगा। सोसाइटी के खाते में प्राप्त प्रत्येक धनराशि अनुचित देरी के बिना उस खाते में जमा की जाएगी जब तक कि सभापति द्वारा अन्यथा स्पष्टतया आदेश न किया गया हो।

16. सभी चैक और धन–अदायगी के लिए आदेश शासी निकाय या शासी निकाय की ओर से नियुक्त व्यक्ति या व्यक्तियों द्वारा हस्ताक्षरित किए जाएंगे।

नियमों की प्रमाणित सही प्रति

5 जुलाई, 1945

बी.आर. अम्बेडकर

डी.जी. जाधव

एस.सी. जोशी

विभिन्न स्थानों पर संस्था की शाखाओं के लिए देखें परिशिष्ट–XII

द पीपुल्स एजूकेशन सोसाइटी की ओर से माननीय डॉ. बी. आर. अम्बेडकर एम.ए., पीएच.डी, डी.एससी., बार–एट–लॉ, सदस्य, गवर्नर जनरल्स एक्जीक्यूटिव काउंसिल द्वारा अपील

नवीनतम जनगणना रिपोर्ट से यह स्पष्ट है कि सामान्यतः अछूतों के नाम से जाने जाने वाली अनुसूचित जातियों के लोगों की संख्या लगभग 50 मिलियन है। ये सुविख्यात तथ्य है कि वर्तमान में अनुसूचित जातियों की शिक्षा समूचे भारत में बहुत पिछड़ी स्थिति में है और जहां तक उच्च शिक्षा का प्रश्न है वे उच्च वर्गों से काफी पीछे हैं। यह भी स्वीकृत तथ्य है कि पूरे भारत में अनुसूचित जातियों कि सामाजिक और आर्थिक स्थिति शोचनीय है। सभी यह भी महसूस करते हैं कि अनुसूचित जातियों द्वारा अपनी कठिनाइयों और असमर्थताओं पर काबू न कर पाने का एक कारण उनमें शिक्षा का अभाव है। इन तथ्यों से यह स्पष्ट है कि अनुसूचित जातियों की समस्या के हल के लिए एक निष्ठावान विशेष संगठन की आवश्यकता पूर्ण रूप से स्वीकृत होगी।

अभी तक ऐसा कोई संगठन न होने के कारण यह निर्णय किया गया कि पीपुल्स एजूकेशन सोसाइटी स्थापित की जाए। सोसाइटी का पंजीकरण सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 XII के अंतर्गत किया गया है और यह भारत सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त है। सोसाइटी का मुख्य लक्ष्य, जैसाकि इसके गठन से प्रतीत होगा, सारे भारत में अनुसूचित जातियों में उच्च शिक्षा का संवर्धन करना है।

निकट भविष्य में सोसाइटी का बंबई में एक पूर्ण कालेज खोलने का प्रस्ताव है जिसमें कला और विज्ञान दोनों विषयों के डिग्री पाठ्यक्रमों के साथ–साथ, सभी पास और ऑनर्स पाठयक्रम होंगे। कालेज सांप्रदायिक संस्था नहीं है। यह सी प्रांतों और राज्यों के सभी संप्रदायों और धर्मों के छात्रों के लिए खुला होगा। कालेज का स्टाफ जहां तक संभव होगा सर्वदेशीय होगा। कालेज की मुख्य विशेषता यह होगी कि अनुसूचित जातियों के छात्रों की विशेष देखभाल, उन्हें प्रवेश, शुल्क मुक्ति, छात्रवृत्ति

और छात्रावास की सुविधाएं प्रदान करके की जाएगी सोसाइटी के शासी निकाय की इच्छा है कि कालेज को उच्च शिक्षा प्रदान करने की मॉडल संस्था बनाया जाए। इस तथ्य से सोसाइटी अत्यधिक प्रोत्साहित है कि बंबई में उसके कालेज खोलने की परियोजना को भारत सरकार ने अपना अनुमोदन दिया है और उसने संतुष्ट होकर प्रारंभिक खर्च पूरा करने के लिए पर्याप्त धन भी दिया है। सरकार इस प्रयोजन के लिए सोसाइटी को 6 लाख रुपए की राशि देने को तैयार हो गई है जिसमें से आधी राशि अनुदान सहायता के रूप में और शेष राशि ब्याजयुक्त ऋण के रूप में होगी।

भूमि, भवन–सामग्री और वैज्ञानिक और अन्य उपस्करों की अपसामान्य कीमतों के कारण यह राशि वास्तविक जरूरतों की अपेक्षा कम पड़ेगी। कालेज को कम–से–कम 15 लाख रुपयों की जरूरत होगी। भारत सरकार द्वारा प्रदान की गई राशि को ध्यान में रखते हुए अभी भी 9 लाख रुपयों की बड़ी राशि को दान राशि के रूप में एकत्र करने की आवश्यकता है। इसलिए सोसाइटी को अन्य स्रोतों से पर्याप्त सहायता के लिए निवेदन करना है। सोसाइटी को अत्यधिक आशा और विश्वास है कि परियोजना को सफलतापूर्वक पूरा करने के लिए वित्तीय सहायता की अपील को उन सभी से सहानुभूतिपूर्ण सहयोग प्राप्त होगा जो सामान्य रूप से शिक्षा और विशेष रूप से अछूतों की शिक्षा की उन्नति में रुचि रखते हैं।

राज्यों में अनुसूचित जातियों की बड़ी जनसंख्या है, और इसलिए, सोसाइटी, राज्यों के शासकों से इस मामले में उदारता से सहायता करने की अपील करती है। सोसाइटी उन राज्यों के अनुसूचित जातियों के छात्रों के साथ–साथ गैर–अनुसूचित जातियों के छात्रों के लिए कालेजों में विशेष प्रावधान करने में और विशेष रूप में निम्न रुप से सहमत होने में खुशी महसूस करेगी:

(1) कला और विज्ञान दोनों में कालेज में विभिन्न कक्षाओं में प्रवेश के लिए कुछ प्रतिशतता का आरक्षण;

(2) कालेज भवन में निर्मित होने वाले छात्रावासों में छात्रों के लिए आवास का आरक्षण; और

(3) शुल्कमुक्ति और छात्रवृत्तियों की कुछ संख्या का आरक्षण।

सोसाइटी दान देने वाले राज्य की किसी अन्य उचित शर्त के सुझाव को स्वीकार करने के लिए तैयार रहेगी। सोसाइटी स्वीकार करती है कि हालांकि कालेज को इस प्रकार के वित्तीय योगदान से पर्याप्त सहायता मिलेगी, फिर भी राज्यों को भी

कालेज से अत्यधिक फायदा पहुंचेगा राज्यों के अनुसूचित जातियों के लोगों के लिए कालेज एक विशेष संस्था होगी जिसमें अनुसूचित जातियों की शिक्षा के दायित्व को विशेष रुचि से पूरा किया जाएगा।

इसलिए, सोसाइटी भारतीय राज्यों के शासकों से गंभीरता से अपील करती है और उनसे सहायता के लिए निवेदन करती है कि वे इस परियोजना को मूर्त रूप देने में उदारता से योगदान करें और ऐसा करके भारत में अनुसूचित जातियों के लोगों को और विशेष रूप से अपने राज्य के अनुसूचित जातियों के लोगों के उच्च शिक्षा की उन्नति के लिए अत्यावश्यक सुविधाएं प्रदान करें। सोसाइटी इस संबंध में कोई भी अपेक्षित अन्य सूचना प्रदान करने में गर्व महसूस करेगी।

बी. आर. अम्बेडकर

26-11-1945

44 पृथ्वी राज रोड,

नई दिल्ली।

दिल्ली प्रेस, नई दिल्ली में मुद्रित

* दलित वर्गों के लाभ के लिए बंबई में कालेज स्थापित करने के लिए बड़ौदा के महाराजा से वित्तीय सहायता के लिए पुनः संपर्क किया गया था। इस संबंध में श्री के.ए. केलुसकर द्वारा डॉ. अम्बेडकर की ओर से अपील की गई थी–देखें परिशिष्ट–XIII

बंबई में अछूतों के लिए समाज केंन्द्र

डॉ. बी. आर. अम्बेडकर भारतीय समुदाय को सामाजिक समता के रूप में मानव प्रतिष्ठा दिलाने के लिए अछूतों के आंदोलन के लिए धन एकत्र करने के लिए सतत रूप से प्रयत्न कर रहे थे। वे एक केंद्र स्थापित करने की योजना बना रहे थे। ताकि अछूतों की गतिविधियों का कार्यान्वयन और अनुवीक्षण किया जा सके। संभवतः उन्होंने सन् 1949 में भारतीय राजाओं और लोगों से अपील की थी—संपादकगण

सेवा में

भारत के राजा और लोग

बंबई में अछूतों के लिए समाज केंद्र

इस योजना के लिए 3,25,000/— रुपये की आवश्यकता है

क्या आप सहायता नहीं करेंगे?

माननीय डॉ. बी. आर. अम्बेडकर, एम.ए., पीएच.डी.,

डी.एसपी., बार—एट—लॉ

सदस्य गवर्नर जनरल्स एक्जीक्यूटिव काउंसिल द्वारा

अपील

आज भारत की जनसंख्या के 70 मिलियन अछूतों की पददलित और तिरस्कृत स्थिति भारत की एक प्रमुख समस्या है। प्राचीन काल से बहुत—से हिंदू सुधारकों का ध्यान इन्हें अन्य समुदायों के स्तर तक ले जाने की ओर आकर्षित हुआ है। परंतु यह अनुभव नया ही है कि अछूत अपनी स्थिति में सुधार का दायित्व अपने ऊपर ले रहे हैं। यह समता के लिए उनका अपना संघर्ष है जो केवल 25 वर्ष पूर्व शुरू हुआ है।

यह संघर्ष अनेक अवस्थाओं से गुजरा है और इस आंदोलन को बार—बार अस्वीकृति और निरंतर विरोध के बावजूद ताकत मिली है। जहां तक कि आत्मविश्वास का संदेश निम्नतर स्तरों तक पहुंचा है; पिछड़े एकांत गांवों और सुनसान बस्तियों को उद्वेलित किया है; और निर्जीव घाटियां जहां कभी घोर अंधविश्वास, नितांत आत्म—तिरस्कार और अथाह अज्ञानता का बोल—बाला था। वहां नए जीवन का संचार किया है। एक उचित उत्साह जागा है और वास्तविक आंदोलन का प्रारंभ हुआ है। अछूतों और इस देश दोनों की स्थिति को ऊपर उठाने के लिए अत्यधिक शक्ति का आह्वान किया

जा सकता है यदि यह आंदोलन जो आत्म सम्मान और आत्मनिर्भरता पर आधारित है उसे दक्षता से संगठित किया जाए। इस सामाजिक आंदोलन की ओर से मैं यह वर्तमान अपील कर रहा हूं।

वे लोग जो मेरी गतिविधियों को नजदीक से नहीं जानते हैं वे सामाजिक आंदोलन की ओर से मेरे वर्तमान कदम से आश्चर्यचकित हो सकते हैं। वे मुझे एक राजनीतिज्ञ के रूप में देखते हैं। वस्तुतः राजनीति कभी भी मेरा शौक नहीं था। यह मेरी यदा–कदा गतिविधि रही है। इतिहास का छात्र होने के नाते मैं इस विचार से अत्यधिक रूप से प्रभावित रहा हूं कि समुदाय के पुनरुद्धधार में राजनीतिक शक्तियां कितनी भी महत्वपूर्ण क्यों न हों, सामाजिक, आर्थिक और नैतिक शक्तियां उससे अधिक अत्यावश्यक हैं और यह कि राजनीतिक शक्तियां लोगों के सामाजिक, आर्थिक और नैतिक पुनरुद्धार की साधन मात्र हैं। मैंने शुरू से ही राजनीतिक आंदोलन की अपेक्षा सामाजिक आंदोलन पर अधिक बल दिया है। मेरे लोक जीवन के 25 वर्षों की अधिकांश अवधि मुख्य रूप से अछूतों के सामाजिक उत्थान को समर्पित रही है। मैंने इसका उल्लेख केवल उस राय को ठीक करने के लिए किया है कि मैं केवल राजनीतिज्ञ हूं। क्योंकि यह एक गलत राय है। मैं चाहता हूं कि जनता यह महसूस करे कि इस नए आंदोलन को गति देने और इसको विकसित करने में मैंने कोई नगण्य भूमिका अदा नहीं की है। अपने कथन के समर्थन में मैं एक कांग्रेसी और बंबई के पूर्व प्रधानमंत्री श्री बी.जी.खेर को उद्धृत करना बेहतर समझता हूं, जिन्होंने मेरे भाषण के जवाब में 23 अगस्त, 1937 को मंत्रियों के वेतन बिल पर बंबई विधानसभा में कहा था;

"इसके आगे डॉ. अम्बेडकर ने पर्याप्त रूप में सक्षमता को एक बिंदु बनाया जिसके बारे में दो राय नहीं हो सकती। मैं माननीय सदस्य का आभारी हूं कि उन्होंने उस मंत्रिमंडल के कार्मिकों की सक्षमता का उल्लेख किया और अपनी सच्ची राय दी। मुझे उनकी सक्षमता पर बिल्कुल शक नहीं है। मैं यह भी जानता हूं कि वे दलित वर्गों की यह सेवा ऐसे कर रहे हैं जैसे और कोई नहीं कर पाया है (सुनिए, सुनिए)। क्या मैं माननीय से पूछ सकता हूं कि उन्हें इस सेवा के लिए क्या वेतन मिलता है? मैं जानता हूं जो सेवा वे दलित वर्गों के आंदोलन को प्रदान कर रहे हैं उसे पैसे से नहीं खरीदा जा सकता– (सुनिए–सुनिए)। माननीय सदस्य अपने समुदाय के आंदोलन के लिए जो कुछ कर रहे हैं उसे पैसे से नहीं आंका जा सकता हैं। सक्षमता किसी को प्राप्त होने वाले वेतन पर बिल्कुल निर्भर नहीं है। मेरे माननीय मित्र को अपने समुदाय को इतनी सक्षम सेवा प्रदान करने के लिए क्या आर्थिक लाभ मिलता है क्या मैं जान सकता हूं?"

मेरे बारे में कांग्रेसी हलकों से इस संदर्भ पर निर्भर करना मेरे लिए खुशी की बात है। इससे पता चलता है कि विगत में मैंने अपने आप को मुख्य रूप से सामाजिक कार्य को समर्पित किया है।

समाज केंद्र की आवश्यकता

मेरी यह इच्छा है कि जिस महान कार्य का श्री खेर ने संदर्भ दिया है उसे चिरस्थायी आधार पर प्रस्तुत किया जाना चाहिए और मुझे पक्का विश्वास है कि अछूतों के आंदोलन में रुचि रखने वाले लोगों का भी यही विचार होगा। इसमें वो राय नहीं हो सकती कि यदि आंदोलन को सफल होना है तो उसके पास यह तीन चीजें होनी ही चाहिए (1) एक केंद्रिय मुख्यालय, (2) समर्पित कार्यकताओं का सुप्रशिक्षित समूह, और (3) वित्तीय स्थिरता। केवल इन साधनों के साथ आंदोलन को ठोस और स्थायी आधार पर रखा जा सकता है।

इन तीन में से, समाज केंद्र की स्थापना को केंद्रीय मुख्यालय के रूप में अत्यधिक मूलतत्व माना जाना चाहिए। एक बार समाज केंद्र स्थापित हो जाने पर जिस योजना का मैंने निर्माण किया है उसके अर्न्तगत यह आंदोलन को बनाए रखने में सहायता प्रदान करेगा। यह आय का भी स्रोत होगा जिससे सामाजिक गतिविधियों को चलाने और पूर्णकालिक वेतन आधार पर समर्पित कार्यकर्ताओं के समूह को बनाए रखने के लिए व्यय को पूरा किया जा सकेगा।

बंबई की उपयुक्तता

असंदिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि प्रत्येक प्रांत में अछूतों का समाज केंन्द्र होना आवश्यक है। वास्तव में प्रत्येक प्रांत को यह प्रदान करना मेरी योजना में है। कहीं न कहीं से इसकी शुरुआत की जानी चाहिए और मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि बंबई ही वह स्थान हैं जहां से शुरुआत की जा सकती है। उस आंदोलन का नेतृत्व बंबई ने ही प्रदान किया है। इसलिए यह उपयुक्त ही रहेगा कि पद्धतिबद्ध और स्थायी संगठन की नींव बंबई शहर में ही पड़नी चाहिए। इन कारणों से मैंने शुरुआत करने के लिए बंबई को चुना है। बंबई में समाज केंद्र स्थापित करने का प्रस्ताव जो है न केवल अछूतों के उत्थान के लिए सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक गतिविधियों के मॉडल के लिए उपयोगी होगा बल्कि यह नए विचारों के प्रचार–प्रसार और विभिन्न गतिविधियों को सद्भावपूर्ण समग्रता में समन्वित करने का भी कार्य करेगा।

प्रस्तावित समाज केंन्द्र की योजना की रूप–रेखा इस अपील में बाद में दी गई है। इससे पता चलेगा कि इसमें से सब आवश्यक तत्त्व दिए गए हैं जो केंद्र को

अछूतों के लिए लोकप्रिय सैरगाह बनाने के लिए जरुरी हैं–यह पश्चिमी देशों में विद्यमान सामाजिक बस्तियों पर आधारित है– ताकि उनकी प्रथाओं और जीवन के प्रति सामान्य दृष्टिकोण में हितकारी परिवर्तन करके उनके सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन के मानदंड में इजाफा किया जा सके। इससे उनमें मिलजुलकर उद्देश्यों को कार्यशील करने की भावना जागृत होगी और सामाजिक पुनरुद्धार का कार्य स्थायी आधार पर होगा। बंबई शहर में वर्तमान में जो मुख्य गतिविधियां स्वयं अछूत चला रहे हैं उन्हें इस केंद्र से संचालित किया जा सकता है। इस केंद्र के खुल जाने से वह गंभीर बाधा दूर हो जाएगी जो अछूतों की समस्त मुख्य गतिविधियों को एक–स्थान से न चलाने के अभाव में आती है।

केंद्र एक लोक न्यास होगा

केंद्र का विषय–क्षेत्र और कृत्य पंजीकृत न्यास विलेख द्वारा शासित होगा और निधियों का प्रबंधन न्यासी मंडल द्वारा किया जाएगा।

केंद्र के लक्ष्य और उद्देश्य निम्नलिखित होंगेः–

(क) कष्ट और गरीबी से राहत।

(ख) शिक्षा की प्रगति।

(ग) अत्याचार और अन्याय से राहत।

(घ) नागरिक अधिकारों और विशेषाधिकारों को सुरक्षित और संरक्षित करना।

(ड.) सामाजिक बुराइयों को खत्म करना।

(च) सामान्य ज्ञान और जागरूकता का प्रसार करना ताकि अंधविश्वासी प्रथाओं और विश्वासों को सामाप्त किया जा सके।

(छ) सामाजिक और धार्मिक कल्याण को सुरक्षित और विकसित करना।

(ज) सामाजिक और धार्मिक उन्नति के लिए संगठित प्रयत्नों का संवर्धन करना।

(झ) नागरिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक अशक्तता असुविधा और भेदभाव को दूर करने के उपायों के लिए विधायी मंजूरी सुरक्षित करना।

(ञ) अस्पृश्यता हटाना सुरक्षित करना।

केंद्र के कार्य और गतिविधियां

केंद्र का अछूतों के आंदोलन को समर्पित कार्य कर्ताओं का समूह बनाने का प्रस्ताव है, जिनकी गति विधियां इस प्रकार आयोजित की जाएंगी ताकि केंद्र के लक्ष्यों और उद्देश्यों को पूर्ण रुप से क्रियान्वित किया जा सके। नीचे केंद्र की गतिविधियों की प्रस्तावित रूप रेखा दी गई है:–

1 कार्यालय–

अब तक विभिन्न गतिविधियों को चलाने वाले कार्यकर्ता किराए के भवनों में या अपने निवास–स्थानों पर मिलकर अपने कार्य को संपन्न करते हैं। इन गतिविधियों को सुविधाएं प्रदान करने और उनका समन्वय एक केंद्रीय स्थान पर करने के विचार से, ऐसी सभी संस्थाओं के कार्यालयों को केंद्र में जगह दी जाएगी।

2. केंद्र के कार्यकर्ताओं के लिए आवास–

अब तक बहुत–से ऐसे निःस्वार्थ स्वैच्छिक कार्यकर्ताओं के दल हैं जो अपने खाली समय में इन गतिविधियों को चलाने में कार्यरत हैं। अब यह सोचा गया है कि ऐसे कार्यकर्ताओं को एक साथ लाकर उन्हें एक ऐसा सुव्यवस्थित विषय–क्षेत्र प्रदान किया जाए ताकि वे अपना पूरा समय और शक्ति अछूतों के आंदोलन को चलाने और उनकी शिकायतों एवं बाधाओं को दूर करने में लगा सकें।

3. पब्लिक हॉल–

अछूतों के लिए पब्लिक हॉल की जरूरत अत्यधिक तीव्र है। एक पर्याप्त बड़ा हॉल बनाने का इरादा है जिसमें लगभग 2,500 श्रोतागण आ सकें। हॉल का उपयोग आम सभाएं, महिलाओं और छात्रों की सभाएं, मनोरंजनात्मक, शैक्षिक और अन्य सामाजिक समारोहों के आयोजन के लिए किया जाएगा।

4. पुस्तकालय और वाचनालय-

यह आवश्यक है कि अछूतों को वे सुविधाएं प्रदान की जाएं जिनमें वे अपनी बुद्धि का परिष्कार कर सकें ताकि वे विचारों, कला कौशलों और व्यापक मानक रुचियों के अच्छे–बुरे की समझ उत्पन्न कर सकें। यह भी आवश्यक है कि उन्हें उनके आराम के घंटों के दौरान ऐसे साधन प्रदान किए जाएं जो उनका ध्यान उनके उबाऊ और नीरस जीवन से हट कर कुछ उत्कृष्ट और भव्य करने के लिए प्रेरित करें इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अछूतों के आवासों में पुस्तकालयों की स्थापना से अधिक अच्छा कुछ नहीं हो सकता। यह केंद्र की गतिविधियों में से एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण गतिविधि

होगी। इसके अतिरिक्त, ऐसा प्रस्ताव है कि अछूतों की समस्याओं को अध्ययन करने में रुचि रखने वाले छात्रों के लिए एक केंद्रीय पुस्तकालय बनाया जाए। अछूतों की समस्या इतनी विशाल है कि आगामी वर्षों में बहुत से लोगों की शक्ति और ध्यान इस कार्य में लगेगा। तथापि, वर्तमान में इस समस्या को इसके उचित परिप्रेक्ष्य और इसकी बहुविध जटिल संरचना का अध्ययन करने के लिए मुश्किल से कोई सुविधा उपलब्ध है। इसलिए ऐसा इरादा है कि प्रस्तावित करके इस प्रकार के अध्ययन के लिए आवश्यक सामग्री एकत्र की जाए।

5. प्रकाशन शाखा–

अछूत अज्ञानता और अंधविश्वासों में डूबे हुए हैं। उनके द्वारा बुरी प्रथाओं और रूढ़ियों पर चलना बड़ा विस्मयकारी है। अत्यधिक तत्काल आवश्यकताओं में से एक यह है कि उनका इन बुरी प्रथाओं और रूढियों से उद्धार किया जाए। इसका अच्छा उपाय यह है कि रैश्नेलिस्ट एसोसिएशन द्वारा प्रकाशित साधारण साहित्य को जारी किया जाए। इसलिए यह भी प्रस्ताव है कि इस प्रयोजन के लिए एक छोटे मुद्रण ाालय का भी रख–रखाव किया जाए।

6. स्वयंसेवक संगठन–

पूरे देश में, विशेष रूप से बंबई प्रेजिडेन्सी और केंद्रीय प्रांतों में, हजारों अछूत युवाओं ने स्वेच्छा से अपने आप को समता सैनिक दल नामक स्वयंसेवी दलों में संगठित कर लिया है। इस आंदोलन का उद्देश्य अछूतों में अनुशासन की भावना उत्पन्न करना और नष्ट युग के संदेश को प्रसारित करना है। यह अभीष्ट है कि इस अत्यावश्यक गतिविधि को केंद्रीकृत करके देश के अन्य भागों में फैलाया जाए।

7. प्रचार प्रदर्शन–

समता सैनिक दल की तरह ही बंबई प्रेजिडेन्सी में कुछ अछूत युवाओं ने क्लब बनाया हैं और विवाह–समारोहों और अन्य धार्मिक और सामाजिक सामारोहों में उनके स्थानों में अपने को जलसा मंडल कहकर प्रभावशाली प्रदर्शनों का मंचन किया है। ये शौकिया नाटक क्लब स्वरचित नाटकों का प्रदर्शन कर रहे है। ये प्रदर्शन निरक्षर गांव वालों के समक्ष कामचलाऊ मंच पर घातक सामाजिक प्रथाओं की बुराइयों को प्रदर्शित करते हैं। अतः यह अभीष्ट है कि इस अत्यधिक उपयोगी गतिविधि को ठोस आधार पर आयोजित करके जनसाधारण के बीच पुरानी प्रथाओं को समाप्त और नए विचारों का प्रचार करना चाहिए और इसका मार्गदर्शन करके इसे और अधिक प्रभावशाली बनाना चाहिए।

केंद्र की लागत

प्रस्तवित योजना के अनुसार केंद्र की आवश्यकताएं निम्न प्रकार हैः

	रुपए
I भूमि–156 x 132 लगभग 2280	
वर्ग गज मूल्य (पहले से ही पट्टे	37,000/–
पर ली गई) भूमिका किराया प्रतिवर्ष	2,200/–
II संरचनाः	
1. हॉल–भवन में एक निचली और दो	
ऊपरी मंजिल निचली मंजिलः– हॉल	
120 x 62 (10 चौड़ा बरामदा और अंदर	
डौलरी के साथ 2500 व्यक्तियों के लिए	75,000–/
बैठने के स्थान वाला) लगभग लागत को	
ऊपरी मंजिलेंः– 32 एकल कक्ष कोठरियां	75,000/–
प्रत्येक मंजिल पर 16	
2. पूर्वी विंग भवनः– निचली और 2 ऊपरी	
मंजिल, 3 दोहरे कक्ष वाली कोठरियां	26,500/–
प्रत्येक मंजिल पर कुल 9	
3. पश्चिमी विंग भवनः– निचली और 2	
ऊपरी मंजिल, 3 दोहरी कक्ष वाली	
कोठरियां प्रत्येक मंजिल पर कुल 9	26,500/–
4. भवन का अग्र भागः–	
निचली और 2 ऊपरी मंजिलः–	
निचली मंजिलः– मुद्रणालय, व्यायाम	85,000/–

शाला और कार्यालय

तीन ऊपरी मंजिलः पहली मंजिल पर

कार्यालय और 13 दो कक्ष वाली कोठरियां

2 शेष बची प्रत्येक मंजिल पर

कुल	2,88,000/–
भूमि की लागत	37,000/–.
कुल जोड़	3,25,000/–

केंद्र की अनुमानित लागत 3,25,000/– रुपये है। यह लागत निस्संदेह सामान्य समय पर प्रचलित कीमतों पर आधारित है। इन संरचनाओं को ऐसे डिजाइन किया गया है ताकि ये त्रि–प्रयोजनीय रहें। पहला प्रयोजन है एक छत के नीचे अछूतों के कल्याण के संवर्धन की सभी गतिविधियों को लाना ताकि इनमें समन्वय बनाए रखा जा सके और मेहनत के अपव्यय को रोका जा सके। दूसरा प्रयोजन है अछूतों को एक ऐसा स्थान प्रदान करना जिसे वे ज्ञान और प्रेरणा के केंद्र के रूप में देख सकें, एक ऐसा स्थान जो उन्हें विचारों का आदान–प्रदान, सामाजिक और धार्मिक कार्य संपन्न करने के लिए मिलन–स्थल प्रदान कर सके और वह सांस्कृतिक केंद्र के रूप में कार्य करे जिस पर वे गर्व कर सकें। तीसरा और अत्यधिक महत्वपूर्ण प्रयोजन है केंद्र को स्थायी आय का स्रोत प्रदान करना ताकि उसे जारी रखा जा सके और गतिविधियां निरंतर चलती रहें। अधिकांश भवनों को किराए पर उठाने के इरादे से बनाया गया है। उनसे किराया आएगा जिसके परिणामस्वरूप केंद्र चलता रहेगा और इससे केंद्र आत्मनिर्भर बनेगा।

भारत के राजाओं और लोगों से अपील

यह सार्वजनिक रूप से मान्य तथ्य है कि, लोकोपकारी दृष्टिकोण से, अछूतों की वर्तमान स्थिति हिंदू सभ्यता पर एक गंभीर कलंक है और भारतीय राष्ट्र की चौतरफा प्रगति में एक सबसे बड़ी बाधा है। इसके हल के लिए सभी संबंधित पार्टियों की हिम्मत, प्रवीणता, स्रोतों और प्रबंध–शक्ति की जरूरत है। समाज सुधारकों और राजनीतिज्ञों के प्रयासों के बावजूद अभी तक की प्रगति संतोषजनक नहीं है। वास्तव में, यह कहा जा सकता है कि अभी तक केवल समस्या की सतह को ही छुआ जा सका है। अछूत अभी भी पहले ही की तरह पिछड़े हुए हैं। उनकी सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक और राजनीतिक आकांक्षाओं की बढ़ोत्तरी को हर कदम पर कुचला जाता है

और दूसरों के रहम पर जीने की आदत को कपटपूर्ण रूप से बनाए रखने के कारण, अछूत अपनी लड़ाई लड़ने में भी अनुपयुक्त हो सकते हैं। ऐसा मेरा विश्वास है कि उनके रास्ते के सभी रोड़ों को हटाने और उन्हें वास्तविक रूप में चिरकालीन दासता से स्वाधीन करने की ताकत उनके भीतर से ही आएगी। इसकी वजह यह है कि अछूतों का यह आंदोलन अंतर्मन का आंदोलन है, जिसके कारण मुझे पक्का यकीन है कि इससे इसे सहायता और प्रोत्साहन मिलेगा और यह सफल होगा।

यह कहा जा सकता है कि यदि अछूत अपनी मुक्ति के कार्य को शुरू करने के लिए उत्सुक हैं तो उन्हें इसे आर्थिक सहायता प्रदान करने का दायित्व भी उठाना चाहिए। मुझे यह कहने में खुशी है कि बंबई के अछूत अपने आंदोलन के इस पक्ष के प्रति पूर्ण रूप से सचेत हैं। उन्होंने पहले ही प्रति व्यक्ति अभिदान देकर समाज केंद्र के भवन निर्माण के लिए निधियां उगाही हैं। इस महत्वपूर्ण आंदोलन के लिए प्रत्येक पुरुष और महिला अपना योगदान देने को तैयार है। कुछेक पहले ही पैसा दे चुके हैं और बहुत–से शीघ्र ही दे देंगे। लेकिन यह भी उतना ही सच है कि अछूत अपने बलबूते पर सारा धन नहीं जुटा पाएंगे। उन्हें अपने ऊपर निर्भर रहने के लिए कहना कठोरता होगी। केंद्र का निर्माण भारत के राजाओं ओर लोगों की सहायता के बिना संभव नहीं है। अछूतों को यह बताना कि अपने भार को वे स्वयं ढोएं यह ठीक है। परंतु क्या यह उचित होगा? क्या भारत के राजाओं और लोगों का अछूतों की दयनीय स्थिति के संबंध में कोई दायित्व नहीं है? यदि है तो क्या यह सही है कि वे अछूतों को इस आधार पर सहायता नकार दें कि अछूतों ने अपने उद्धार का कार्य स्वयं अपने ऊपर लिया है? मुझे पक्का विश्वास है कि भारत के राजाओं और लोगों को अछूतों द्वारा दर्शाए गए आत्म–सम्मान की भावना की कद्र है और इस संबंध में वे ऐसा ही रवैया अपनाएंगे। मुझे पूरा विश्वास है कि उनके भीतर अछूतों के ऊपर लादे गए धार्मिक तिरस्कारों जैसे अन्यायों को खत्म करने के लिए साधन मुहैया कराने की तीव्र उत्सुकता है।

अछूतों का उत्थान एक संयुक्त जिम्मेवारी होनी चाहिए जिसमें अछूत इस आंदोलन को एड़ी चोटी का पसीना एक करके दृढ़ता और प्रेरणा प्रदान करेंगे और भारतीय समुदाय इस आंदोलन के लिए अपेक्षित धन की भरपाई करेगा। इसी कारण मैं भारत के राजाओं और लोगों से इस आंदोलन के लिए वित्तीय सहायता की अपील करता हूं।

मुझे विश्वास है कि भारत के राजा और लोग अवश्य ही यह महसूस करेंगे कि राष्ट्रीय पुनरुद्धार और भारत के पुनर्निर्माण में अछूतों का उत्थान कितना जबर्दस्त और सम्मोहक बल प्रदान करेगा। समाज केंद्र अवश्य ही अछूतों को इस प्रकार

संगठित करेगा ताकि वे अपने वर्तमान स्तर से सामाजिक और सांस्कृतिक रूप में ऊपर उठ सकेंगे, मानवोचित स्थिति प्राप्त कर सकेंगे और शेष भारतीय समुदाय के साथ सामाजिक समता के आधार पर रह सकेंगे। लेकिन मुझे पक्का विश्वास है कि केवल यह ही एक लाभ समाज केंद्र की गतिविधियों से प्राप्त नहीं होगा। बल्कि वह ऐसे सक्रिय, सत्यनिष्ठ और देशभक्त नागरिक तैयार करेगा जो देश के लिए जान न्यौछावर करने के लिए तैयार रहेंगे।

इन्हीं कारणों से मैं सभी को केंद्र के निर्माण में मेरी सहायता करने की अपील कर रहा हूं। यह ठीक ही एक सूक्ति बन गई है कि अछूतों का उद्धार किए बिना देश का उद्धार नहीं हो सकता और उनकी मुक्ति में ही देश की मुक्ति है। मैं सूक्तियों को दोहराते–दोहराते थक गया हूं और अब सूक्तियों को दोहराने का समय नहीं रहा है। अब कार्य करने का समय आ गया है। अब सिर्फ बातें करने का नहीं कार्य करने का समय है। मैंने भारत के राजाओं और लोगों से पूरी गंभीरता से अपील की है और मुझे विश्वास है कि वे पूरी उदारता से इसमें योगदान करेंगे।

ह./–बी. आर. अम्बेडकर

22 पृथ्वी राज रोड,

नई दिल्ली।

अखिल भारतीय अनुसूचित जाति संघ का संविधान

अखिल भारतीय दलित वर्ग सम्मेलन का आयोजन नागपुर में 17 से 20 जुलाई, 1942 को हुआ था। इस सम्मेलन में डॉ. बी. आर. अम्बेडकर ने भाग लिया था। 19 जुलाई, 1942 को सर्वसम्मति से "अखिल भारतीय अनुसूचित जाति संघ" की स्थापना करने का संकल्प पारित हुआ था। अखिल भारतीय अनुसूचित जाति संघ और इसका संविधान 7 सितंबर, 1942 को सार्वजनिक किया गया था। वह संविधान संशोधित करके अंतिम रूप से जनवरी, 1955 में निम्नलिखित रुप में प्रकाशित किया गया था–संपादकगण

XX. अखिल भारतीय अनुसूचित जाति संघ

सविधान

अध्यक्षः

बी. आर. अम्बेडकर, बैरिस्टर–एट–लॉ, सदस्य राज्य सभा

पताः

जनवरी, 1955

26 अलीपुर रोड,

सिविल लाइन्स,

दिल्ली

दलित वर्ग सम्मेलन, नागपुर सत्रों की रिपोर्ट। तीसरा सत्र, 18,19 और 20 जुलाई, 1942 को आयोजित, 7 सितंबर, 1942 को प्रकाशित, संलग्नक सं.4, पृष्ठ 109–121

के.एस.अरोड़ा द्वारा ठाकर्स प्रेस, ओकलेन, फोर्ट, बंबई से मुद्रित पुस्तक से पुनर्मुद्रित।

विषय वस्तु

भाग I संविधानः प्रवृत्त होने की तिथि

भाग II संघ : लक्ष्य और उद्देश्य

भाग III संगठन : स्थानीय

भाग IV संगठनः केंद्रीय

भाग V पदाधिकारियों के कर्तव्य, शक्तियां और कार्यकलाप

भाग VI स्थानीय संगठनों और केंद्रीय कार्यकारिणी समिति के बीच संबंध

भाग VII वित्त

भाग VIII निर्वाचन

भाग IX निर्वाचन विवाद

भाग X उम्मीदवारों का चयन

भाग XI विविध

भाग XII संविधान का संशोधन

भाग XIII अनुशासन–नियम

भाग XIV अस्थायी उपबंध

भाग–I

प्रवृत्त होने की तिथि

अनुच्छेद–I

1. यह संविधान अखिल भारतीय अनुसूचित जाति परिसंघ का संविधान कहा जा सकता है।

2. यह जैसा कि भाग IX और X में विनिर्दिष्ट है के सिवाय 1 मई, 1957 को प्रवृत्त होगा।

भाग–II

लक्ष्य, उद्देश्य और शक्तियां

अनुच्छेद–II

1. परिसंघ के लक्ष्य और उद्देश्य निम्न हैः

(i) भारत की अनुसूचित जातियों को संगठित करना, शिक्षित करना और उनकी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए आंदोलन करना और उन्हें अपने कल्याण और उन्नति के लिए तैयार करना;

(ii) उनके लिए अवसरों की समानता सुरक्षित करना और उसके द्वारा उन्हें जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अन्य नागरिकों के साथ समान स्थिति बनाने के योग्य बनाना;

(iii) अपने आपको कृषक वर्ग, भूमिहीन मजदूरों और फैक्टरी कामगारों और अन्य मजदूरी अर्जकों को संगठित करने में लगाना;

(iv) शैक्षिक क्रियाकलाप शुरू करके, जैसे स्कूल खोलकर उन्हें कला और शिल्प का शिक्षण देना;

(v) अनुसूचित जातियों के नैतिक और आध्यात्मिक उत्थान के लिए सभी गतिविधियां शुरू करना; और

(vi) देश के विभिन्न भागों में अनुसूचित जातियों पर हो रहे उत्पीड़नों और अत्याचारों के सभी मामलों का रिकार्ड रखना।

2. परिसंघ की शक्तियां निम्न हैं:

(i) परिसंघ के लिए संपत्ति का क्रय करना, पट्टे पर लेना या अन्यथा अर्जन करना और परिसंघ की निधियों का ऐसे ढंग से निवेश और उन पर कार्रवाई करना जैसा समय–समय पर निर्धारित किया जाए;

(ii) संघ के प्रयोजनार्थ गृह–वासों, भवनों या निर्माण कार्यों का निर्माण, अनुरक्षण, पुनर्निर्माण, मरम्मत, परिवर्तन, प्रति–स्थापन या पुनः स्थापना करना;

(iii) परिसंघ की सभी या किसी संपत्ति को बेचना, निपटाना, सुधारना, प्रबंधन करना, विकसित करना विनिमय करना, पट्टे पर देना, बंधक रखना या अन्यथा हस्तांतरित करना या विचार करना;

(iv) परिसंघ के समस्त या किसी भी प्रयोजन, लक्ष्य और उद्देश्य को कार्यान्वित करने के लिए प्रतिभूति सहित या उसके बिना रकम जुटाना;

(v) भारत के किसी भी भाग में परिसंघ को पंजीकृत मान्यता–प्राप्त कराना; और

(vi) वे सब अन्य विधिपूर्ण चीजें और कार्य करने जो उपर्युक्त किसी लक्ष्य और उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रासंगिक या सहायक हों।

भाग–III

संगठनः स्थानीय

अनुच्छेद–III

I. स्थानीय संगठनः

1. अखिल भारतीय अनुसूचित जाति परिसंघ के अंतर्गत अनुसूचित जातियों को संगठित करने के प्रयोजनार्थ निम्नलिखित स्थानीय संगठन का गठन किया जाएगाः

(i) ग्राम परिसंघ समिति;

((ii) ताल्लुका परिसंघ समिति;

(iii) जिला परिसंघ समिति; और

(iv) राज्य परिसंघ समिति।

स्पष्टीकरणः ऐसे शहरों में संघ समितियां जिनकी जनसंख्या दो लाख से अधिक होगी उनकी स्थिति जिला परिसंघ समिति की होगी।

2. जिला का अर्थ ऐसे क्षेत्र से है जो राज्य विधान सभा के लिए निर्वाचन क्षेत्र में समाविष्ट हो।

II केंद्रीय संगठनः

1. अखिल भारतीय अनुसूचित जाति परिसंघ का केंद्रीय संगठन में निम्न से गठित होगाः

(i) परिसंघ की अखिल भारतीय समिति;

(ii) परिसंघ की केंद्रीय कार्यकारिणी समिति; और

(iii) परिसंघ का साधारण सत्र या विशेष सत्र।

2. समस्त स्थानीय संगठन और केंद्रीय संगठन परिसंघ के घटक निकाय होंगे।

अनुच्छेद–V

1. इसमें निम्न स्पष्टीकरण के अधीन रहते हुए अनुसूचित जाति का कोई व्यक्ति और

(i) जिसका नाम मतदाता सूची में है; और

(ii) जो इस संविधान को स्वीकारता है वह संघ का सदस्य होगा और संघ के किसी भी घटक निकायों के चुनाव में मतदान करने का अधिकारी होगा जैसा नियमों द्वारा प्रबंध किया गया हो।

स्पष्टीकरणः (1) अनुसूचित जातियों से संबंधित कोई भी व्यक्ति जो किसी ऐसे अन्य राजनीतिक या किसी सामाजिक या धार्मिक संगठन का सदस्य नहीं है जिसके लक्ष्य और उद्देश्य संघ की केंद्रीय कार्यकारिणी समिति द्वारा अनुमोदित नहीं है और जिसने वचन या आचरण से संघ का सदस्य होने से इंकार नहीं किया है, उसे संघ की सदस्यता के लिए सहमत और संविधान स्वीकृति समझा जाएगा।

(2) मतदाता सूची का आशय है राज्य विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र के लिए राज्य सरकार द्वारा तैयार मतदाताओं की सूची।

(3) अनुसूचित जाति का आशय है भारत के संविधान द्वारा इस रूप में मान्यता प्राप्त जाति।

2. नियमों द्वारा संघ की सह–सदस्यता और उनको दिए जाने वाले विशेषाधिकारों को प्रावधान किया जा सकता है। सह सदस्य के लिए अनुसूचित जाति से संबंधित होना जरूरी नहीं है।

अनुच्छेद–V

1. राज्य के विधानमंडल के चुनाव के लिए अनुसूचित जातियों की मतदाता सूची सदस्यों का रजिस्टर होगा जिनके आधार पर संघ के घटक निकायों का चुनाव होगा।

2. प्रत्येक ऐसा व्यक्ति मतदान करने और चुनाव मे खड़ा होने के योग्य होगा जब तक कि संघ के प्राधिकार द्वारा या अधीन बनाए किसी नियम द्वारा उसे अयोग्य न ठहराया गया हो।

अनुच्छेद–VI

1. तत्समय राज्य के रूप में भारत के संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त प्रत्येक राज्य में राज्य संघ समिति होगी जिसका मुख्यालय राज्य की राजधानी में अवस्थित होगा।

2. अखिल भारतीय अनुसूचित जाति परिसंघ की प्राथमिक इकाई परिसंघ की ग्राम समिति होगी।

3. ग्राम परिसंघ समिति में ग्राम में अनुसूचित जातियों के मतदाताओं द्वारा चुने गए वे व्यक्ति शामिल होंगे जो परिसंघ के सदस्य हैं।

4. ताल्लुक परिसंघ समिति में वे सदस्य शामिल होंगे जो ताल्लुका के भीतर ग्राम परिसंघ समिति द्वारा चुने जाएंगे। इनका चुनाव ताल्लुका की कुल अनुसूचित जाति जनसंख्या के अनुपात में प्रत्येक ग्राम की अनुसूचित जाति जनसंख्या के आधार पर राज्य कार्य–समिति द्वारा निर्धारित कोटा के अनुसार होगा।

5. जिला परिसंघ समिति में वे सदस्य शामिल होंगे जो प्रत्येक जिले के भीतर ताल्लुका परिसंघ समिति द्वारा चुने जाएंगे। इनका चुनाव जिले की कुल अनुसूचित जाति जनसंख्या के अनुपात में प्रत्येक ताल्लुका की अनुसूचित जाति जनसंख्या के आधार पर राज्य कार्य–समिति द्वारा निर्धारित कोटा के अनुसार होगा।

6. राज्य परिसंघ समिति में वे सदस्य शामिल होंगे जो राज्य के भीतर जिला परिसंघ समिति द्वारा चुने जाएंगे। इनका चुनाव राज्य की कुल अनुसूचित जाति जनसंख्या के अनुपात में प्रत्येक जिले की अनुसूचित जाति जनसंख्या के आधार पर राज्य कार्य समिति द्वारा निर्धारित कोटा के अनुसार होगा।

7. ग्राम परिसंघ समिति अपने सदस्यों में से एक सभापति चुनेगी। सभापति, कार्य समिति गठित करने के लिए ग्राम संघ समिति के सदस्यों को नामित करेगा। कार्य समिति के सदस्यों में से सभापति एक सदस्य को सचिव और दूसरे को कोषाध्यक्ष के रूप में कार्य करने के लिए नामित करेगा।

8. ताल्लुका परिसंघ समिति अपने सदस्यों में से एक सभापति चुनेगी। सभापति ताल्लुका की कार्य समिति गठित करने के लिए ताल्लुका परिसंघ समिति के सदस्यों को नामित करेगा। कार्य समिति के सदस्यों में से सभापति एक सदस्य को सचिव और दूसरे को कोषाध्यक्ष के रूप में कार्य करने के लिए नामित करेगा।

9. जिला परिसंघ समिति अपने सदस्यों में से एक सभापति चुनेगी। सभापति जिले की कार्यकारिणी समिति गठित करने के लिए समिति के सदस्यों को नामित करेगा। समिति के सदस्यों में से सभापति एक सदस्य को सचिव और दूसरे को कोषाध्यक्ष के रूप में कार्य करने के लिए नामित करेगा। जहां कहीं जिला परिसंघ नहीं है वहां जिले के कार्य को राज्य कार्यकारिणी समिति संभालेगी।

10. राज्य परिसंघ समिति अपने सदस्यों में से एक सभापति चुनेगी। सभापति राज्य कार्य समिति गठित करने के लिए समिति के सदस्यों को नामित करेगा। समिति के सदस्यों में से सभापति एक सदस्य को सचिव और दूसरे को कोषाध्यक्ष के रूप में कार्य करने के लिए नामित करेगा।

भाग–IV

संगठनः केंद्रीय

अनुच्छेद–VII

1. परिसंघ के केंद्रीय संगठन में निम्नलिखित शामिल होंगेः

(i) परिसंघ का अध्यक्ष;

(ii) परिसंघ का प्रधान सचिव;

(iii) कोषाध्यक्ष;

(iv) परिसंघ की अखिल भारतीय समिति;

(v) परिसंघ की केंद्रीय कार्यकारिणी समिति;

(vi) परिसंघ की अखिल भारतीय समिति; और

(vii) परिसंघ का सत्र या विशेष सत्र।

अनुच्छेद–VIII

1. परिसंघ की अखिल भारतीय समिति में वे व्यक्ति शामिल होंगे जो राज्य परिसंघ समितियां अपने सदस्यों में से चुनेंगी। इनका चुनाव भारत में अनुसूचित जातियों की जनसंख्या के अनुपात में प्रत्येक राज्य में अनुसूचित जातियों की जनसंख्या के आधार पर केंद्रीय कार्यकारिणी समिति द्वारा निर्धारित संख्या के अनुसार होगा।

2. अखिल भारतीय अनुसूचित जाति परिसंघ का सत्र प्रत्येक दो वर्ष में होगा। सत्र का अध्यक्ष राज्य परिसंघ समितियों द्वारा चुना जाएगा।

3. अध्यक्ष अपनी ओर से या राज्य संघ समितियों की एक तिहाई संख्या के मांग करने पर अखिल भारतीय अनुसूचित जाति संघ का विशेष सत्रा बुलाएगा।

4. परिसंघ के सत्रा की अध्यक्षता अध्यक्ष करेगा।

5. अध्यक्ष, प्रत्येक राज्य परिसंघ समिति से एक–एक व्यक्ति केंद्रीय कार्यकारिणी समिति गठित करने के लिए चुनेगा।

6. अध्यक्ष परिसंघ की अखिल भारतीय समिति के सदस्यों में से एक को प्रधान सचिव के रूप में कार्य करने के लिए चुनेगा।

7. अध्यक्ष, एक और व्यक्ति को परिसंघ की अखिल भारतीय समिति के सदस्यों में से कोषाध्यक्ष के रूप में कार्य करने के लिए चुनेगा।

अनुच्छेद–IX

1. परिसंघ की अखिल भारतीय समिति का गठन परिसंघ के अध्यक्ष और परिसंघ के राज्य समितियों के सदस्यों को मिलाकर होगा।

2. परिसंघ का अध्यक्ष परिसंघ की अखिल भारतीय समिति का अध्यक्ष होगा।

3. परिसंघ की अखिल भारतीय समिति परिसंघ के अधिवेशन द्वारा निर्धारित कार्यक्रमों के क्रियान्वयन की व्यवस्था करेगी और उसके पास अपनी पदावधि के दौरान उठने वाले मामलों और परिस्थितियों से निपटने की शक्ति होगी।

4. परिसंघ की अखिल भारतीय समिति को संघ से संबंधित सभी मामलों को विनियमित करने के लिए नियम बनाने की शक्ति होगी जो इस संविधन से असंगत न हों, और वे अधीनस्थ संघ समितियों पर बाध्यकारी होंगे।

5. परिसंघ की अखिल भारतीय समिति की केंद्रीय कार्यकारिणी समिति या कम–से–कम 50 सदस्यों द्वारा केंद्रीय कार्यकारिणी समिति को संबोध्ति मांग पर जितनी भी बार अपेक्षित हो, बैठक होगी। इस तरह परिसंघ की अखिल भारतीय समिति की अपेक्षित बैठक की मांग करते समय मांगकर्ताओं को बैठक बुलाने के प्रयोजन का विशेष रूप से उल्लेख करना होगा। ऐसी बैठक लिखित मांग प्राप्त होने के दो माह के भीतर आयोजित की जाएगी। ऐसी किसी भी बैठक में केंद्रीय कार्यकारिणी समिति विचारार्थ अतिरिक्त कार्य की मदें ला सकती है।

6. अपेक्षित बैठकों को छोड़कर, जहां तक संभव हो। संघ की अखिल भारतीय समिति की समस्त बैठकों में अखिल भारतीय संघ समिति के सदस्यों द्वारा प्रस्तुत विचारार्थ प्रस्तावों की सम्यक् सूचना इस संबंध में विहित नियमों के अनुसार दी गई हो तो उनके लिए चार घंटे आबंटित करने चाहिए।

7. परिसंघ की अखिल भारतीय समिति की बैठक के लिए पच्चीस सदस्यों की उपस्थिति कोरम के लिए पर्याप्त होगी।

अनुच्छेद–X

1. परिसंघ का साधारण अधिवेशन छमाही रूप में ऐसे समय और स्थान पर आयोजित होगा जिसका निर्णय संघ की अखिल भारतीय समिति या केंद्रीय कार्यकारिणी समिति करेगी।

2. परिसंघ का साधारण अधिवेशन निम्न रूप में होगाः

(i) परिसंघ का अध्यक्ष;

(ii) परिसंघ का पूर्व–अध्यक्ष;

(iii) परिसंघ के अखिल भारतीय समिति के सदस्य;

(iv) केंद्रीय कार्यकारिणी समिति के सदस्य; और

(v) ग्राम परिसंघ ताल्लुका परिसंघ, जिला परिसंघ और राज्य परिसंघ की कार्य समिति के सदस्य।

3. (i) सर्वप्रथम सत्र विषय समिति द्वारा अपनाने के लिए संस्तुत संकल्पों पर विचार करेगा।

(ii) तत्पश्चात् अधिवेशन किसी भी सारभूत प्रस्ताव पर विचार कर सकता है जो इसमें सम्मिलित नहीं है (i) लेकिन ऐसा प्रस्ताव जिसे अधिवेशन प्रारंभ होने से पहले 40 प्रतिनिधियों ने अध्यक्ष से लिखित रूप में आवेदन किया हो कि उन्हें यह अधिवेशन के समक्ष रखने की अनुमति दी जाए तथापि, तब तक ऐसे प्रस्ताव की अनुमति नहीं दी जाएगी जब तक कि विषय–समिति की बैठक में इस पर पहले विचार–विमर्श हो चुका हो और विषय–समिति में तब उपस्थित एक–तिहाई सदस्यों ने इसका समर्थन किया हो।

4. राज्य परिसंघ समिति जिसकी अधिकारिता में संघ के अधिवेशन का आयोजन किया गया है, अधिवेशन का आयोजन करने के लिए ऐसे प्रबंध करेगी जो इस प्रयोजन के लिए आवश्यक समझे जाएं और एक स्वागत समिति का गठन करेगी जो इसके सामान्य मार्गदर्शन में इसके अधीन कार्य करेगी जिसमें ऐसे व्यक्ति शामिल किए जा सकते हैं जो इसके सदस्य न हों।

5. स्वागत–समिति अपने सदस्यों में से अपना अध्यक्ष और पदाधिकारियों को चुनेगी।

6. स्वागत–समिति अधिवेशन के खर्चे के लिए निधियां एकत्र करेगी और प्रतिनिधियों के स्वागत और आवास के लिए आवश्यक प्रबंध करेगी। यह आगंतुकों के लिए भी आवश्यक प्रबंध कर सकती है।

7. स्वागत–समिति के आय और व्यय की लेखापरीक्षा संबंधित राज्य परिसंघ समिति द्वारा नियुक्त लेखापरीक्षकों द्वारा की जाएगी और लेखा–विवरण लेखापरीक्षा रिपोर्ट सहित अधिवेशन के समापन के छह महीने के भीतर राज्य परिसंघ समिति द्वारा केंद्रीय कार्यकारिणी समिति को प्रस्तुत की जाएगी। वेशी निधियां संघ की अखिल भारतीय समिति और राज्य परिसंघ समिति के बीच बराबर–बराबर बांटी जाएंगी।

<u>अनुच्छेद–XI</u>

1. परिसंघ की अखिल भारतीय समिति अध्यक्ष के सभापतित्व में विषय समिति बैठक के रूप में अधिवेशन कम–से–कम दो दिन पहले होगी। केंद्रीय कार्यकारिणी समिति या अधिवेशन से पहले अध्यक्ष का चुनाव हुआ हो और

उसने केंद्रीय कार्यकारिणी समिति नियुक्त न की हो, जो कार्यरत हो, अध्यक्ष एक विषय–निर्वाचन समिति नामित करेगा जो विषय समिति को प्रारुप संकल्पों के साथ कार्य का कार्यक्रम संघ के अधिवेशन के लिए प्रस्तुत करेगा। प्रारुप संकल्पों के तैयार करने में यह राज्य परिसंघ समितियों द्वारा सूचित किए गए संकल्पों पर विचार करेगा।

2. विषय समिति कार्यक्रम पर विचार–विमर्श आरंभ करके खुले अधिवेशन में प्रस्तावित करने के लिए संकल्प तैयार करेगी। जहां तक संभव होगा, राज्य परिसंघ समितियों या परिसंघ की अखिल भारतीय समिति के सदस्यों द्वारा सम्यक् सूचना वाले प्रस्तावों पर विचार के लिए चार घंटे आवंटित किए जाएंगे।

अनुच्छेद–XII

1. केंद्रीय कार्यकारिणी समिति, अध्यक्ष के चुनाव के लिए संघ की अखिल भारतीय समिति के सदस्यों में से एक को निर्वाचन अधिकारी के रूप मे कार्य करने के लिए नियुक्त करेगी। बशर्तें कि प्रधान सचिव जो अध्यक्ष पद के लिए उम्मीदवार है वह इस प्रकार की नियुक्ति के लिए अयोग्य होगा।

2. संघ का कोई भी सदस्य किसी भी सदस्य के नाम का प्रस्ताव संघ के अध्यक्ष के चुनाव के लिए कर सकता है। प्रस्ताव अनिवार्य रूप से तीन अन्य सदस्यों द्वारा समर्थित होना चाहिए। ऐसा प्रस्ताव केंद्रीय कार्यकारिणी समिति द्वारा नियत तिथि पर या उससे पूर्व निर्वाचन अधिकारी के पास पहुंच जाना चाहिए।

3. इस प्रकार प्रस्तावित सभी व्यक्तियों के नाम निर्वाचन अधिकारी प्रकाशित करेगा और इस प्रकार प्रस्तावित व्यक्ति को अपनी उम्मीदवारी वापस लेने का अधिकार होगा जिसे वह प्रस्तावित नामों के प्रकाशन के सात दिन के भीतर निर्वाचन अधिकारी को लिखित रूप में इस संबंध में सूचित करेगा।

4. जिन लोगों ने अपने नाम वापस लिए हैं उन्हें निकालने के पश्चात् निर्वाचन अधिकारी शेष उम्मीदवारों के नाम प्रकाशित करके राज्य संघ समितियों को परिचालित करेगा। यदि नाम निकालने के पश्चात् केवल एक उम्मीदवार रह जाता है तो उसे संघ के अगले अधिवेशन के लिए सम्यक् रुप से अध्यक्ष निर्वाचित घोषित कर दिया जाएगा।

5. केंद्रीय कार्यकारिणी समिति द्वारा नियत तारीख पर, जोकि निर्वाचन लड़ने वाले उम्मीदवारों के नामों की अंतिम सूची के प्रकाशन के पश्चात् सामान्यतः

सात दिन से कम नहीं होनी चाहिए, प्रत्येक व्यक्ति जो चयन में भाग लेने के योग्य है, वह अध्यक्ष के चयन के लिए अपना मत रिकार्ड करने का हकदार निम्न प्रकार से होगाः

(क) मतदान पत्र पर, जिसमें उम्मीदवारों के नाम प्रदर्शित होंगे, मतदाता अपना मत रिकार्ड करेगा।

(ख) प्रत्येक मतदाता का एक मत होगा।

(ग) अध्यक्ष के चयन के लिए साधारण बहुमत पर्याप्त होगा।

(घ) राज्य संघ समिति तत्काल मतपेटी को संघ की अखिल भारतीय समिति के कार्यालय को भेजेगी।

(ड.) मत पेटियों के प्राप्त होने के पश्चात् यथाशीघ्र, निर्वाचन अधिकारी प्रत्येक उम्मीदवार के नाम रिकार्ड मतों की गणना करेगा और जिस उम्मीदवार को बहुसंख्यक मत प्राप्त होंगे अध्यक्ष निर्वाचित घोषित करेगा।

(च) उपर्युक्त रूप में निर्वाचित अध्यक्ष की मृत्यु या त्याग पत्र जैसी स्थिति के कारण, किसी आपातकालीन मामले में, केंद्रीय कार्यकारिणी समिति तत्काल उपर्युक्त निर्धारित ढंग से नए चुनाव के लिए तारीख नियत करेगी। यदि केंद्रिय कार्यकारिणी समिति की बैठक आयोजित करेगी।

(छ) अध्यक्ष अपने चुनाव के बाद और अपनी पदावधि के दौरान संघ के आयोजित अधिवेशनों में अध्यक्षता करेगा और जब अधिवेशनों में नहीं होगा तो केंद्रीय कार्यकारिणी समिति की सभी शक्तियों का प्रयोग करेगा।

भाग–V

पदाधिकारियों के कर्तव्य, कार्य और शक्तियां

अनुच्छेद–XIV

1. केंद्रीय कार्यकारिणी समिति में संघ का अध्यक्ष और बीस सदस्य शामिल होंगे, जिसमें कोषाध्यक्ष और प्रधान सचिव सम्मिलित हैं, जिनकी नियुक्ति अध्यक्ष करेगा। सामान्यतः संघ की अखिल भारतीय समिति के सदस्यों में से केंद्रीय कार्यकारिणी समिति के सदस्य नियुक्त किए जाएंगे लेकिन विशेष मामलों में ऐसा व्यक्ति जो संघ की अखिल भारतीय समिति का सदस्य नहीं है नियुक्त

किया जा सकता है, बशर्ते इस प्रकार नियुक्त व्यक्ति केंद्रीय कार्यकारिणी समिति का सदस्य नहीं रहेगा यदि वह अपनी नियुक्ति के छह माह के भीतर संघ की अखिल भारतीय समिति का सदस्य निर्वाचित नहीं हो जाता।

2. केंद्रीय कार्यकारिणी समिति की बैठक के लिए (कोरम) सात का होगा।

3. केंद्रीय कार्यकारिणी समिति संघ की उच्चतम कार्यकारी प्राधिकारी होगी और उसे संघ और संघ की अखिल भारतीय समिति द्वारा तैयार नीति और कार्यक्रम को कार्यान्वित करने की शक्ति होगी और संघ की अखिल भारतीय समिति के प्रति उत्तरदायी होगी। इस संविधान के उपबंधों के बारे में सभी मामलों पर उसके स्पष्टीकरण और अनुप्रयोग के संबंध में यह अंतिम प्राधिकारी होगी।

4. केंद्रीय कार्यकारिणी समिति संघ की अखिल भारतीय समिति की प्रत्येक बैठक में संघ की अखिल भारतीय समिति की पिछली बैठक की कार्यवाही की रिपोर्ट, और बैठक के लिए कार्यसूची प्रस्तुत करेगी और उन अशासकीय संकल्पों के लिए समय आबंटित करेगी जिनके बारे में संघ की अखिल भारतीय समिति के सदस्यों ने, इस संबंध में निर्धारित नियमों के अनुसार सम्यक् सूचना इस संबंध में दी होगी।

5. केंद्रीय कार्यकारिणी एक या अधिक लेखापरीक्षक या निरीक्षक या अन्य अधिकारी संघ की सभी समितियों और संगठनों के अभिलेखों, कागजातों और लेखा बहियों की जांच के लिए नियुक्त कर सकती है। ऐसी सभी समितियों और संगठनों के लिए आवश्यक होगा कि वे लेखापरीक्षकों, निरीक्षकों या अन्य अधिकारियों को सभी अपेक्षित सूचना प्रदान करें और सभी अधिकारियों, लेखाओं और अभिलेखों तक उनकी पहुंच सुनिश्चित करें।

6. केंद्रीय कार्यकारिणी समिति की शक्तियां होंगीः

(i) संगठन के उचित कामकाज के लिए नियम बनाना। ऐसे नियम यथाशीघ्र संघ की अखिल भारतीय समिति के समक्ष विचारार्थ प्रस्तुत किए जाएंगे;

(ii) सभी मामलों में संविधान–संगत वे निर्देश और नियम जारी करना जिनका अन्यथा प्रावधान नहीं किया गया है;

(iii) सभी स्थानीय समितियों और अधीनस्थ समितियों के अतिरिक्त स्वागत समिति का अधीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण करना;

(iv) संघ की अखिल भारतीय समिति के अलावा अध्यक्ष या समिति के विरुद्ध ऐसी अनुशासनिक कार्यवाही करना जो उसे उचित लगे;

(v) किसी विशेष परिस्थिति से निपटने के लिए केंद्रीय कार्यकारिणी समिति को यह शक्ति प्राप्त है कि वह संघ के हित में ऐसी कार्रवाई कर सकती है जो उसे ठीक लगे; तथापि, यह कि यदि कोई कार्रवाई की जाती है जो उस संविधान में परिभाषित केंद्रीय कार्यकारिणी समिति की शक्तियों के परे हो, तो इसे यथा संभव संघ की अखिल भारतीय समिति को अनुसमर्थन के लिए प्रस्तुत किया जाएगा;

(vi) संघ में अनुशासन कायम रखने के लिए और सदस्यों को मताधिकार देने और मताधिकार–वंचन के लिए नियम बनाना।

7. केंद्रीय कार्यकारिणी समिति को शक्तियां हैं कि वह कठिनाइयों के विशेष मामलों में संविधान में किसी भी प्रकार का उल्लघंन किए बिना इस संविधान के प्रावधानों के अनुप्रयोग में छूट दें।

8. केंद्रीय कार्यकारिणी समिति संघ की अखिल भारतीय समिति के लेखाओं की लेखा–परीक्षा प्रतिवर्ष संघ की अखिल भारतीय समिति द्वारा प्रत्येक वर्ष नियुक्त लेखापरीक्षक या लेखापरीक्षकों से करवाएगी।

भाग–VI

स्थानीय संगठनों और केंद्रीय कार्यकारिणी समिति के बीच संबंध

अनुच्छेद–XV

1. अध्यक्ष के सामान्य नियंत्रण के अध्यधीन, प्रधान सचिव संघ की अखिल भारतीय समिति के कार्यालय का प्रभारी होगा।

2. प्रधान सचिव संघ के अधिवेशन की कार्यवाही की रिपोर्ट उसके लेखापरीक्षित लेखाओं सहित यशा संभव अधिवेशन के पश्चात् तैयार और मुद्रित करने के लिए सामूहिक रूप से जिम्मेवार होगा।

3. प्रधान सचिव संघ की अखिल भारतीय समिति और केंद्रीय कार्यकारिणी समिति के कार्य की रिपोर्ट, लेखापरीक्षित लेखाओं के विवरण सहित, पिछली रिपोर्ट प्रस्तुत करने के समय से अब तक की अवधि तक तैयार करके संघ के अधिवेशन से पहले आयोजित संघ की अखिल भारतीय समिति को प्रस्तुत करेगा।

अनुच्छेद–XVI

1. संघ के केंद्रीय संगठन की ओर से संघ के लिए प्राप्त सारा धन अध्यक्ष को अदा किया जाएगा और वह उसे संघ के उपयोग के लिए अपने पास रखेगा।
2. कोषाध्यक्ष अनुमोदित प्रयोजनों के लिए अध्यक्ष से निधियां प्राप्त कर सकता है।
3. संघ की ओर से कोषाध्यक्ष या अन्य कोई भुगतान करने वाला व्यक्ति किसी मद में अपने पास रखे धन में से व्यय करने पर उस मद से संबंधित वाउचर अपने पास सुरक्षित रखेगा।

अनुच्छेद–XVII

1. केंद्रीय कार्यकारिणी समिति के नियंत्रण के अध्यधीन, प्रत्येक राज्य संघ समिति सामान्यतः जिला संघ समितियों के माध्यम से कार्य करेगी।
2. अखिल भारतीय संघ समिति की सामान्य देख–रेख और नियंत्रण के अध्यधीन, राज्य संघ समिति अपने राज्य के भीतर संघ समिति के कार्यों की प्रभारी हो सकती है।
3. राज्य में संघ के स्थानीय संगठनों द्वारा किए गए कार्यों की वार्षिक रिपोर्ट लेखापरीक्षित तुलन–पत्र सहित अध्यक्ष द्वारा केंद्रीय कार्यकारिणी समिति को प्रस्तुत की जाएगी।
4. कोई भी राज्य संघ इस संविधान के निबंधनों के अनुसार या राज्य संघ के निर्देशों के अनुसार कार्य करने में असफल होता है, तो परवर्ती कथित वर्तमान समिति को निलंबित करके तदर्थ समिति गठित कर सकती है ताकि राज्य में संघ का कार्य चलता रहे।

भाग–VII

वित्त

अनुच्छेद–XVIII

1. संघ की प्रत्येक ग्राम समिति को वार्षिक रूप में एक राशि संघ को अदा करनी होगी।
2. यह उगाही राशि राज्य की कार्य समिति द्वारा उस ग्राम की अनुसूचित जाति जनसंख्या के अनुसार नियत की जाएगी जिसने संघ की सदस्यता स्वीकार

कर ली है।

3. यह ग्राम संघ समिति के अध्यक्ष की जिम्मेवारी होगी कि वह राज्य संघ समिति के अध्यक्ष को लेखा–विवरण भेजेगा।

4. **राज्य संघ समिति द्वारा एकत्रित राशि निम्न प्रकार वितरित की जाएगी:**

    (1) एक/आठवां भाग ग्राम संघ समिति को आबंटित किया जाएगा।

    (2) एक/आठवां भाग तालुका संघ समिति को आबंटित किया जाएगा।

    (3) एक/आठवां भाग जिला संघ समिति को आबंटित किया जाएगा।

    (4) पांच/सोलहवां भाग राज्य संघ समिति को आबंटित किया जाएगा।

    (5) पांच/सोलहवां भाग केंद्र को आबंटित किया जाएगा।

5. संघ की केंद्रीय कार्यकारिणी समिति और संघ की अखिल भारतीय समिति का प्रत्येक सदस्य चाहे वह निर्वाचित, पदेन, सहयोजित या नामित हो, संघ को 10 रुपये वार्षिक शुल्क अदा करेगा।

6. ग्राम समिति, ताल्लुका समिति, जिला समिति और राज्य समिति की कार्य–समिति का प्रत्येक सदस्य क्रमशः अपनी समितियों को 5 रुपये प्रतिवर्ष वार्षिक शुल्क अदा करेगा।

7. केंद्रीय कार्यकारिणी के सदस्यों से प्राप्त शुल्क संघ के राजस्व का भाग होगा। ग्राम समिति से प्राप्य शुल्क ताल्लुका समिति को जाएगा, जिला का जिला को, राज्य की कार्य–समिति से राज्य को जाएगा।

8. सदस्यों को, अन्यथा हकदार होने पर, अपना शुल्क अदा न करने की स्थिति में किसी भी कार्यवाही में भाग लेने की अनुमति नहीं होगी।

भाग–VIII

निर्वाचन

अनुच्छेद–XIX

1. ग्राम संघ समिति, ताल्लुका संघ समिति और जिला संघ समितियों और सभापति के कार्यालय के लिए निर्वाचन साधारण बहुमत से होगा।

2. संघ की अखिल भारतीय समिति और अध्यक्ष के कार्यालय के लिए निर्वाचन साधारण बहुमत से होगा।

अनुच्छेद–XX

1. इस संविधान के अंतर्गत गठित किसी समिति या बोर्ड या अधिकरण के सदस्य का कार्यालय पद–त्याग, हटाए जाने या मृत्यु पर खाली होगा।
2. सभी रिक्तियां, जब तक अन्यथा उपबंध न हो, उसी रीति से भरी जानी चाहिए जिससे पद खाली करने वाला सदस्य चुना गया था और इस तरह चुने गए सदस्य रिक्त स्थान की शेष अवधि के लिए पद धारण करेंगे।
3. किसी उपबंध के प्रतिकूल होने की अनुपस्थिति में, समिति या बोर्ड या अधिकरण एक बार ठीक से गठित होने पर, इसमें कोई पद रिक्त होने के कारण सामान्य नहीं होगा।

अनुच्छेद–XXI

प्रत्येक समिति, प्रत्येक कार्यकारिणी समिति और इनके पदाधिकारियों की अवधि दो वर्ष होगी।

भाग–IX

निर्वाचन विवाद

अनुच्छेद–XXII

1. राज्य संघ समिति अपनी प्रथम साधारण बैठक में उपस्थित और मतदान करने वाले कम–से–कम तीन चौथाई बहुमत से राज्य निर्वाचन अधिकरण नियुक्त करेगी जिसमें तीन से कम और पांच से अधिक व्यक्ति नहीं होंगे।
2. यदि उपर्युक्त की भांति कोई राज्य संघ समिति निर्वाचन अधिकरण नियुक्त करने में असफल रहती है, तो उस राज्य के लिए निर्वाचन अधिकरण की नियुक्ति राज्य की कार्य–समिति करेगी।
3. प्रत्येक राज्य निर्वाचन अधिकरण सामान्यतः दो वर्ष के लिए पद धारण करेगा, लेकिन किसी भी स्थिति में नए अधिकरण की नियुक्ति तक कार्य करना जारी रखेगा।
4. निर्वाचन अधिकरण का सदस्य, ऐसा सदस्य रहते समय, संघ में कोई निर्वाचन पद धारण नहीं करेगा या किसी निर्वाचन में उम्मीदवार के रूप में खड़ा नहीं होगा।
5. केंद्रीय कार्यकारिणी समिति का राज्य निर्वाचन अधिकरण पर अधीक्षण रहेगा।

6. केंद्रीय कार्यकारिणी समिति निर्वाचन अधिकरणों के कार्य–संचालन के लिए नियम बनाएगी। राज्य निर्वाचन अधिकरण भी विनियम बना सकते हैं, जो कार्य–संचालन के लिए कार्य समिति द्वारा बनाए गए नियमों के विपरीत नहीं होने चाहिएं।

अनुच्छेद–XXIII

1. प्रत्येक राज्य के लिए निर्वाचन अधिकरण होगा।
2. निर्वाचन क्षेत्र के अंदर कोई भी उम्मीदवार निर्वाचन क्षेत्र में किसी निर्वाचन के बारे में शिकायत इस संबंध में बने नियमों के अनुसार, राज्य अधिकरण को ऐसे निर्वाचन के परिणाम घोषित होने के 15 दिनों के भीतर करने के लिए स्वतंत्र है और जिला निर्वाचन अधिकरण शिकायत पर निर्णय करेगा और यथाशीघ्र संबंधित पक्षों को अपना निर्णय सूचित करेगा।
3. जब तक निर्वाचन अधिकरण द्वारा निर्वाचन रद्द नहीं किया जाता, निर्वाचित व्यक्ति सम्यक् रूप से निर्वाचित माना जाएगा।
4. राज्य निर्वाचन अधिकरण को अपने प्रस्ताव पर या राज्य संघ समिति के प्रस्ताव पर या संबंधित पक्ष के प्रस्ताव पर, निदेश देने की शक्ति है कि कोई भी व्यक्ति किसी भी निर्वाचन, रजिस्टर और सदस्यों की सूची के रख–रखाव जानते हुए झूठी शिकायत या विरोध करने से संबंधित कदाचार का दोषी पाया जाता है, उसे निर्वाचन में खड़े होने के लिए अयोग्य किया जा सकता है या संघ से निश्चित अवधि के लिए निकाला जा सकता है।
5. जहां कहीं कपटपूर्ण निर्वाचन की रिपोर्ट मिलती है संबंधित समिति ऐसी शिकायतों की जांच करेगी और जैसा उचित जान पड़े वैसी कार्रवाई करेगी।

अनुच्छेद–XXIV

1. राज्य परिसंघ प्रत्येक वर्ष 30 जून के पश्चात् होने वाली प्रथम बैठक में उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के तीन–चौथाई बहुमत से राज्य चुनाव अधिकारी नियुक्त करेगा।
2. उपर्युक्त के अनुसार यदि कोई राज्य परिसंघ समिति राज्य चुनाव अधिकारी नियुक्त करने में असफल रहती है तो केंद्रीय कार्यकारिणी समिति राज्य चुनाव अधिकारी नियुक्त करेगी।

3. राज्य चुनाव अधिकारी राज्य में सभी घटक निकायों के चुनावों का संचालन करेगा। वह राज्य परिसंघ की कार्यकारिणियों और जिला परिसंघ समितियों के परामर्श से जिला चुनाव अधिकारी, ताल्लुका चुनाव अधिकारी और ग्राम चुनाव अधिकारी और ऐसे अन्य अधिकारियों को नियुक्त करेगा जिससे राज्य में उचित रूप से चुनाव संपन्न हो सकें। वह ऐसे अन्य कार्यों का भी निष्पादन करेगा जो समय–समय पर उसे केंद्रीय कार्यकारिणी समिति द्वारा सौंपे जाएंगे।

भाग–X

उम्मीदवारों का चयन

अनुच्छेद–XXV

1. केंद्रीय कार्यकारिणी समिति एक बोर्ड गठित करेगी जिसमें अध्यक्ष और पांच अन्य सदस्य होंगे, जिसमें अध्यक्ष उसका सभापति होगा। इस बोर्ड का प्रयोजन केंद्रीय और राज्य विधानमंडलों के चुनावों के लिए उम्मीदवारों का चयन और उनसे संबंधित नियमों का निर्माण करना है।

2. निर्वाचन बोर्ड परिसंघ की स्थानीय समितियों को नाम प्रस्तावित करने के लिए आमंत्रित करेगा। बोर्ड उम्मीदवारों की वर्णक्रमानुसार सूची उम्मीदवारों द्वारा प्राप्त समर्थन के अनुसार तैयार करागा।

3. बोर्ड अपना चयन करते समय उम्मीदवार द्वारा प्राप्त समर्थन को ध्यान में रखेगा। परंतु वह पहले को चुनने में बाध्य नहीं होगा।

4. केंद्रीय निर्वाचन बोर्ड प्रत्येक राज्य के लिए चुनाव समिति स्थापित करेगी जो स्थानीय निकायों के चुनावों के बारे में कार्रवाई करेगी जिसमें उम्मीदवारों का चयन और समिति के लिए नियम बनाने का कार्य शामिल है।

5. राज्य निर्वाचन समिति केंद्रीय निर्वाचन बोर्ड को केंद्रीय और राज्य विधान –मंडलों के लिए उम्मीदवारों की सिफारिश करेगा।

भाग–XI

विविध

अनुच्छेद–XXVI

1. परिसंघ का ध्वज त्रिकोण आकार में कटे नीले कपड़े पर सितारों वाला होगा।
2. कोई भी व्यक्ति एक ही समय परिसंघ में दो संगठनों का सदस्य नहीं होगा।
3. परिसंघ समिति अपनी किसी भी शक्ति को लघु समिति या व्यक्ति को प्रत्यायोजित कर सकती है।
4. परिसंघ के सभी प्रयोजनों के लिए उपलब्ध अंतिम जनगणना के जनसंख्या अंक लागू होंगे।
5. जब कभी आंशिक मान का प्रश्न उठेगा, आधे से कम को शून्य माना जाएगा।
6. इस संविधान में जहां कहीं "मत" शब्द या कोई विभक्तियां आती हैं, इसका आशय या संदर्भ विधिमान्य मत से है।
7. किसी सदस्य और सदस्य के बीच, समिति और समिति के बीच आपस में इस संविधान के उपबंधों, विषय–वस्तु, व्याख्या या उसके भीतर दी गई क्रियाविधियों के संबंध में उठने वाला कोई प्रश्न या विवाद उपयुक्त प्राधिकरण या इस संविधान में सूचित प्राधिकारियों द्वारा सुलझाया जाएगा, और यदि ऐसा कोई प्राधिकारी सूचित नहीं किया गया है तो यह केंद्रीय कार्यकारिणी समिति द्वारा किया जाएगा। उक्त प्राधिकरण का निर्णय अंतिम होगा और अनुसूचित जाति परिसंघ के सभी सदस्यों और समितियों पर बाध्यकारी होगा और उनमें से कोई भी इस बारे में न्यायालय में प्रश्न नहीं कर सकता।

भाग–XII

संविधान का संशोधन

अनुच्छेद–XXVII

1. यह संविधान केवल परिसंघ की अखिल भारतीय समिति के दो–तिहाई बहुमत से संशोधित, परिवर्तित और परिवर्धित किया जा सकता है, जिसका अनुसमर्थन राज्य परिसंघ का बहुमत करेगा।

2. संशोधन चाहे परिवर्तन या परिवर्धन से हो, उसे प्रत्येक राज्य में राज्य परिसंघ समितियों के अध्यक्ष को परिचालित करके इस मामले में उनका निर्णय प्राप्त करना होगा।

3. समितियां इस मामले पर साधारण बहुमत से निर्णय करेंगी।

4. राज्य समितियों से निर्णय प्राप्त होने पर अध्यक्ष यह घोषणा करेगा कि संशाधन स्वीकृत या अस्वीकृत है।

भाग–XIII

अनुशासन के नियम

अनुच्छेद–XXVIII

1. परिसंघ का कोई सदस्य निम्नलिखित कार्यों में से किसी कार्य को करने पर अनुशासनहीनता का दोषी माना जाएगाः

(i) परिसंघ की घोषित नीति के विपरीत कार्य करना।

(ii) परिसंघ की नीति की खुलेआम आलोचना करना।

(iii) परिसंघ के किसी भी सदस्य की खुलेआम आलोचना करना

(iv) परिसंघ के भीतर किसी सदस्य को समर्थन देने के लिए अपना दल इस आशय से बनाना ताकि परिसंघ के सांविधि रूप से निर्वाचित नेता को चुनौती दी जा सके।

(v) किसी सदस्य के विरुद्ध दुर्भावना फैलाना या निंदा का कोई अभियान चलाना।

(vi) परिसंघ या परिसंघ के किसी घटक निकाय के कार्य में बाधा डालना।

(vii) परिसंघ की निधियों का दुरुपयोग करना।

(viii) परिसंघ द्वारा गैर–मान्यता प्राप्त पार्टी या दल में शामिल होना।

(ix) परिसंघ का पदाधिकारी होकर उस पद की शक्तियों का दुरुपयोग करना या शक्तियों का उपयोग का उपयोग छोड़ देना और उसके द्वारा परिसंघ को असफल करना।

(x) ऐसी गतिविधियां शुरू करना जो परिसंघ के लक्ष्यों, उद्देश्यों और शक्तियों के

बाहर हों।

(xi) परिसंघ द्वारा किसी चुनाव में खड़े किए गए अधिकृत उम्मीदवार का विरोध करना।

2. कोई भी सदस्य किसी कृत्य के लिए अनुशासनहीनता का दोषी होने पर राज्य परिसंघ के अध्यक्ष द्वारा दंडनीय होगा जिसके लिए केंद्रीय कार्य–समिति के अध्यक्ष को अपील की जा सकेगी। केंद्रीय कार्य–समिति का निर्णय अंतिम होगा।

3. अनुशासनहीनता के लिए दंड हो सकता है:

(i) परिसंघ से निष्कासन जो स्थायी भी हो सकता है।

(ii) परिसंघ से कुछ अवधि के लिए निलंबन।

(iii) कार्यालय से हटाया जाना।

(iv) पद धारण करने के लिए आयोग्यता लागू करना।

भाग– XIV

अस्थायी उपबंध

अनुच्छेद–XXIX

अध्यक्ष को यह निर्णय करने की शक्ति होगी कि संविधान के कौन–से अनुच्छेद तत्काल कार्यान्वित किए जाएं।

स्पष्टीकरणः इस भाग में अध्यक्ष का आशय उस व्यक्ति से है जो वर्तमान में परिसंघ का अध्यक्ष है।

अनुच्छेद–XXX

अध्यक्ष को किन्हीं कठिनाइयों को दूर करने के प्रयोजनार्थ विशेष रूप से वर्तमान ढांचे से संविधान सम्मत प्रावधानों के अनुरूप संक्रमण के संबंध में यह निदेश देने की शक्ति होगी कि संक्रमण अवधि के दौरान संविधान इस प्रकार के उन रूपांतरों के अधीन प्रभावी रहेगा जो आशोधनों, परिवर्धन या विलोपन के द्वारा किए गए हों, जिन्हें अध्यक्ष आवश्यक या उचित समझता हो। अध्यक्ष की शक्तियों में पदाधिकारियों को हटाने और उनके स्थान पर दूसरों को नामित करने की शक्ति शामिल है।

अनुच्छेद–XXXI

भाग X के पूर्वगामी उपबंधों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना अध्यक्ष राज्य परिसंघ को तुरंत पुनर्गठित करेगा जो निलंबित है या जो उचित रूप से कार्य करता न पाया गया हो।

भारतीय बौद्ध महासभा

भारतीय बौद्ध महासभा का पंजीकरण 4 मई, 1955 को कंपनी रजिस्ट्रार कार्यालय, बंबई में डॉ. बी. आर. अम्बेडकर द्वारा किया गया था।

"8 मई, 1955 को नारे पार्क, बंबई में आयोजित समारोह में उन्होंने बौद्धधम्म के प्रचार के लिए इस महासभा की स्थापना की औपचारिक घोषणा की"। महासभा का गठन निम्न प्रकार से है: संपादक

भारतीय बौद्ध महासभा का गठन

(डॉ. बी. आर. अम्बेडकर द्वारा यथा पंजीकृत)

4 मई, 1955 को पंजीकृत

ह./– कंपनी रजिस्ट्रार,

मुंबई संगम ज्ञापन

1. महासभा का नाम:

2. महासभा का नाम भारतीय बौद्ध महासभा है।

महासभा के उद्देश्य:

महासभा के लक्ष्य और उद्देश्य होंगे:

(1) भारत में बौद्ध धर्म का संवर्धन और प्रचार करना।

(2) बौद्ध उपासना के लिए मंदिरों की स्थापना करना।

(3) धार्मिक और वैज्ञानिक विषयों के लिए स्कूल और कालेजों की स्थापना करना।

(4) अनाथालयों, चिकित्सालयों और राहत केंद्रों की स्थापना करना।

(5) बौद्ध धर्म के प्रसार के लिए कार्यकर्ता तैयार करने के लिए बौद्ध धर्म गोष्ठियां आरंभ करना।

(6) सभी धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन का संवर्धन करना।

(7) बौद्ध साहित्य प्रकाशित करना और सामान्यजन को बौद्ध धर्म की ठीक समझ प्रदान करने के लिए इश्तहार और पुस्तिकाएं जारी करना।

(8) भिक्खुओं का नया धर्मसंघ बनाना, यदि ऐसा करना आवश्यक हो जाए।

(9) मुद्रण कार्य के निष्पादन के लिए मुद्रणालय या मुद्रणालयों की स्थापना करना।

(10) सामान्य हित के लिए और सदस्यों की भर्ती के लिए भारत के बौद्धों की सभाओं और सम्मेलनों का आयोजन करना।

1 जनताः 14 मई 1955

3. अध्यक्ष का नाम, पता और व्यवसाय जिसे महासभा के कार्यों के प्रबंधन का काम सौंपा गया है निम्न प्रकार हैः

नाम	पता	व्यवसाय
डॉ. भीमराव राम जी अम्बेडकर	26, अलीपुर रोड, सिविल लाइन्स, दिल्ली	बार–एट–लॉ

महासभा के सदस्यों के नाम,

उनका व्यवसाय और पते

नाम	पता	व्यवसाय
(ह.) भीमराव राम जी अम्बेडकर	26, अलीपुर रोड सिविल लाइन्स, दिल्ली	बैरिस्टर–एट–लॉ
(ह.) माधव जी. मालवकर	68 ह्यूजिस रोड, बंबई–7	चिकित्सा परामर्शदाता
(ह.) सी.एस. पिल्ले	मेहरबान बिल्डिंग, दूसरा तल, सर पी. मेहता रोड बंबई–1	वास्तुकार

(ह.) भाल चंद्र के.कबीर	59, पुर्तगाली चर्च रोड, दादर, बंबई–38	नौकरी
(ह.) भगवंत सियाजी गायकवाड़	प्लाट सं.10, रोड सं.19 खार, बंबई–21	नौकरी
(ह.) एस.डी. गायकवाड़	सिद्धार्थ कालेज, आनंद भवन, डॉ. डी. नैरोजी रोड बंबई–1	नौकरी
(ह.) काशीराम विश्राम सावडकर	बी.डी.डी.चाल सं.15 बी रुम सं.32 नाइगाम, बंबई–14	नौकरी

भारतीय बौद्ध महासभा

महासभा के गठन को विनियमित करने वाले नियम–विनियमः

I महासभा का नाम भारतीय बौद्ध महासभा होगा।

II महासभा का पंजीकृत कार्यालय बंबई में स्थित होगा।

III महासभा के उद्देश्य होंगेः–

(1) भारत में बौद्ध धर्म का संवर्धन और प्रचार करना।

(2) बौद्ध उपासना के लिए मंदिर स्थापित करना।

(3) धार्मिक और वैज्ञानिक विषयों के लिए स्कूल और कालेज स्थापित करना।

(4) अनाथालयों, चिकित्सालयों और राहत केंद्रों की स्थापना करना।

(5) बौद्ध धर्म के प्रसार के लिए कार्यकर्ता तैयार करने के लिए बौद्ध धर्मगोष्ठियां आरंभ करना।

(6) सभी धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन का संवर्धन करना।

(7) बौद्ध साहित्य प्रकाशित करना और सामान्य जन को बौद्ध धर्म की ठीक समझ प्रदान करने के लिए इश्तहार और पुस्तिकाएं जारी करना।

(8) भिक्खुओं का नया धर्म संघ बनाना, यदि ऐसा करना आवश्यक हो जाए।

(9) मुद्रण कार्य के निष्पादन के लिए मुद्रणालय या मुद्रणालयों की स्थापना करना।

(10) सामान्य हित के लिए और सदस्यों की भर्ती के लिए भारत के बौद्धों की सभाओं और सम्मेलनों का आयोजन करना।

IV महासभा की शक्तियां होंगीः–

(1) महासभा के लिए दान प्राप्त करना और निधियां एकत्रित करना।

(2) भिक्खुओं को रखना।

(3) महासभा के प्रयोजन के लिए महासभा की संपत्ति को बेचना या बंधक रखना।

(4) संपत्ति का धारण और स्वामित्व।

(5) महासभा के लिए संपत्ति की खरीद करना, पट्टे पर लेना या अन्यथा अर्जित करना और महासभा के धन का उपयोग ऐसे ढंग से करना जो समय–समय निर्धारित किया जाए।

(6) महासभा के प्रयोजनार्थ आवासों, भवनों या इमारतों का निर्माण, रख–रखाव, पुनर्निर्माण, मरम्मत, परिवर्तन, प्रतिस्थापन या पुनः स्थापन करना।

(8) महासभा की समस्त या किसी संपत्ति को बेचना, निपटाना, सुधारना, विकसित करना, विनिमय, पट्टे पर देना, बंधक रखना या अन्यथा अन्य संक्रामण करना या कार्रवाई करना।

(8) महासभा या महासभा द्वारा चलाई जा रही या इससे संबंधित किसी संस्था या संस्थाओं को अन्य किसी संस्था या सोसाइटी के साथ सहयोग, समामेलन, या संबद्ध करना जिससे महासभा के लक्ष्यों और उद्देश्यों को और आगे बढ़ाया जा सके।

(9) महासभा के किन्हीं प्रयोजनों लक्ष्यों और उद्देश्यों को क्रियान्वित करने के लिए प्रतिभूति सहित या इससे रहित धन एकत्र करना।

(10) वे सभी अन्य विधिपूर्ण चीजें और कार्य करना जो उपर्युक्त किन्हीं लक्ष्यों और उद्‌देश्यों को प्राप्त करने के लिए प्रासंगिक या सहायक हों।

V महासभा की सदस्यता

महसभा के सदस्यों के निम्न वर्ग होंगेः–

(1) सदस्य

(2) सह–सदस्य

(1) सदस्य के लिए शर्तें

कौन सदस्य हो सकता हैः–

कोई भी व्यक्ति जो सभा द्वारा निर्धारित दीक्षा धर्मानुष्ठान करने के पश्चात् बौद्ध धर्म में सम्यक् रुप से दीक्षित हो गया है और जिसने अपना वार्षिक अभिदान अदा कर दिया है महासभा का सदस्य होने का पात्र है।

(2) सह–सदस्य

कौन सह–सदस्य हो सकता हैः–

कोई भी व्यक्ति जो महासभा के लक्ष्यों और उद्देश्यों के प्रति सहानुभूति रखता हो और बौद्ध धर्म का विरोधी न हो, वार्षिक अभिदान अदा करके महासभा का सह–सदस्य स्वीकार किया जा सकता है।

(3) सदस्यता के प्रतिबंध

बशर्ते अध्यक्ष किसी विशेष मामले में यह निर्णय ले सकता है कि कोई सदस्य धम्मदीक्षा धर्मानुष्ठान न करने के बावजूद परिवीक्षाधीन ऐसी अवधि के लिए रहेगा जो अध्यक्ष द्वारा निर्धारित की जाए।

(4) परिवीक्षाधीन और सह–सदस्य सलाहकार परिषद् और साधारण परिषद् के सदस्य होने के पात्र नहीं होंगे और उन्हें मत देने का अधिकार नहीं होगा।

VI स्पष्टीकरण

अध्यक्ष निगमों, संस्थाओं और संघों को महासभा का सदस्य बनाने की अनुमति दे सकता है।

VII सदस्यता देय राशि

प्रत्येक सदस्य चाहे वह सदस्य या सह–सदस्य है प्रतिवर्ष 1 रुपया सदस्यता शुल्क अदा करने में असमर्थ होने पर सदस्यता समाप्त होने के साथ मत देने का अधिकार छिन सकता है जब तक कि अध्यक्ष उक्त दंड को माफ न कर दें।

VIII अध्यक्षः

(1) महासभा का एक अध्यक्ष होगा। अध्यक्ष की पदावधि आजीवन होगी।

(2) महासभा के प्रथम अध्यक्ष डॉ. भीमराव रामजी अम्बेडकर, एम.ए., पीएच.डी., डी.एससी., बैरिस्टर–एट–लॉ होंगे।

(3) अध्यक्ष एक कोषाध्यक्ष और सचिव नियुक्त करेगा। उसे उनकी पदावधि निर्धारित करने का अधिकार होगा।

(4) अध्यक्ष की शक्तियां होंगीः–

(I) महासभा के प्रयोजनों के कार्यान्वयन के लिए ऐसे कार्यालय खोलना जो आवश्यक हों;

(II) उनमें ऐसे व्यक्तियों को नियुक्त करना जिन्हें वह ठीक समझता हो; और

(III) महासभा के प्रशासन को चलाने वाले व्यक्तियों को उनके दायित्व और कार्य सौंपना।

(5) अध्यक्ष को महासभा का कार्य करने के लिए भारत के विभिन्न स्थानों पर केंद्र खोलने और उनमें कार्यकर्ता और पदाधिकारी नियुक्त करने की शक्ति होगी।

(X) सचिव और कोषाध्यक्ष के कर्तव्य

(1) सचिव का कार्य महासभा की ओर से पत्राचार करना होगा।

(2) कोषाध्यक्ष का कार्य महासभा के लेखाओं का रख–रखाव करना होगा।

(X) महासभा का समस्त धन बैंक में जमा रखा जाएगा। महासभा के प्रयोजनार्थ धन का आहरण अध्यक्ष द्वारा किया जाएगा।

(XI) प्रबंधन

(1) महासभा के कार्यों का प्रबंधन अध्यक्ष द्वारा किया जाएगा।

(2) सभी कार्यपालक शक्तियां अध्यक्ष में निहित होंगी।

(3) अध्यक्ष को अपने दायित्वों का पालन करने में सहायता करने के लिए सलाहकार परिषद् का गठन किया जाएगा।

(4) सलाहकार परिषद् में दस सदस्य होंगे। प्रत्येक 5वें वर्ष इनका चुनाव महासभा

के सदस्यों द्वारा किया जाएगा।

(5) सलाहकार परिषद् के प्रथम सदस्यों को अध्यक्ष द्वारा नामित किया जाएगा।

(6) सलाहकार परिषद् की बैठक अध्यक्ष द्वारा जब कभी अपेक्षित हो, बुलाई जाएगी।

(7) कार्य सूची अध्यक्ष द्वारा तैयार की जाएगी।

(8) अध्यक्ष द्वारा अनुमति दिए जाने पर कोई भी सदस्य कार्यसूची के बाहर मामला उठा और प्रश्न पूछ सकता है।

(9) सलाहकार परिषद् के संकल्प केवल सिफारिशी होंगे।

XII साधारण परिषद्

(1) महासभा की साधारण परिषद् होगी। प्रत्येक सदस्य साधारण परिषद् का सदस्य होने का हकदार होगा। यह प्रत्येक दो वर्ष बाद आयोजित होगी और अध्यक्ष समिति द्वारा किए गए कार्य की रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा। प्रत्येक व्यक्ति जो सदस्य है लेकिन जो परिवीक्षाधीन नहीं है समिति की साधारण बैठक में उपस्थित होने का हकदार होगा।

(2) साधारण परिषद् को बैठक में उपस्थित सदस्यों के तीन–चौथाई बहुमत द्वारा अध्यक्ष को उसके पद से हटाने की शक्ति होगी यदि अध्यक्ष न्यायालय द्वारा गबन या कदाचार के आधार पर दोषी पाया गया है।

XIII गठन के नियमों में संशोधन

(1) महासभा के गठन में संशोधन निम्नलिखित शर्तों के पूरा होने पर किया जा सकता है:–

(क) कि प्रस्ताव सलाहकार परिषद् के दो–तिहाई बहुमत द्वारा अनुमोदित है।

(ख) प्रस्तावित संशोधन का पाठ सदस्यों को बैठक में बुलाने की सूचना के साथ परिचालित किया गया है।

(ग) सूचना की कालावधि तीन माह से कम नहीं है।

(2) किसी भी संशोधन को तब तक स्वीकार नहीं माना जाएगा जब तक कि बैठक में उपस्थित सदस्यों का दो–तिहाई बहुमत उसके पक्ष में न हो।

प्रमाणित किया जाता है कि यह महासभा के नियमों और विनियमों की सही प्रति है।

हस्ताक्षर

(ह.) (1) बी. आर. अम्बेडकर

(ह.) (2) माधव जी. मालवंकर

(ह.) (3) सी. एस. पिल्लै

प्रकाशकः डब्ल्यू.एम.गोडबोले, महासचिव, अखिल भारतीय बौद्ध धम्म शिखर कन्वेंशन, 224,, बजाज नगर, नागपुर–440010

परिशिष्ट

परिशिष्ट–I

अखिल भारतीय अनुसूचित जाति छात्र परिसंघ का गठन

नाम

अनुच्छेद–I

(क) संगठन का नाम "अखिलभारतीय अनुसूचित जाति छात्र परिसंघ" होगा।

(ख) संगठन का संक्षिप्त नाम "अ.भा.अनु.जा.छा.प." होगा।

(ग) सभी शाखा संगठन अमुक नामित "अनुसूचित जाति छात्र संगठन" होने चाहिए।

अनुच्छेद–II

अ.भा.अनु.जा.छा.प. का मुख्यालय प्रधान सचिव के सामीष्य में होगा।

लक्ष्य और उद्देश्य

अनुच्छेद–III

अ.भा.अनु.ज.छा.प. के क्रियाकलाप निम्न उद्देश्य से नियंत्रित होंगेः–

(क) भारत के अनुसूचित जाति छात्रों को संहत निकाय के रूप में संगठित करना।

(ख) उनमें सामूहिक जीवन का विकास करना और उन सभी क्रिया–कलापों और आश्वासनों को त्यागना जो उनमें जातीय चेतना को महत्व देते हैं।

(ग) भारत के अनुसूचित जाति छात्रों के हितों की सुरक्षा करना।

(घ) नैतिक और बौद्धिक शिक्षा को प्रोत्साहित करके और वर्तमान की सांस्कृतिक और राजनीतिक आंदोलन के साथ उन्हें जोड़कर उनमें सांस्कृतिक वातावरण पैदा करना।

(ड.) व्यायाम को प्रोत्साहित करना ताकि अनुसूचित जातियों के छात्रों के स्वास्थ्य और डील–डौल में सुधार हो सके।

(च) अनुसूचित जातियों के लोगों के हितों की सुरक्षा करना।

(छ) अनुसूचित जातियों के लोगों और देश के कल्याण के लिए अनुसूचित जाति छात्रों के क्रियाकलापों का समन्वय करना।

(ज) अनुसूचित जातियों के आंदोलन के पक्ष में लोकमत बनाना।

(झ) कार्य समिति के अनुमोदन के अधीन ऐसे सभी विषयों का जिम्मा लेना जो अनुसूचित जातियों के छात्रों के रोजमर्रा के जीवन से उपयुक्त रूप से जुड़े हों।

संगठन का गठन

अनुच्छेद–IV

अ.भा.अनु.जा.छा.प. से गठित होगाः

(क) अ.भा.अनु.जा.छा.प. का वार्षिक और विशेष अधिवेशन।

(ख) अ.भा.अनु.जा.छा.प. की परिषद्।

(ग) अ.भा.अनु.जा.छा.प. की कार्य समिति।

(घ) अ.भा.अनु.जा.छा.प. से संबद्ध प्रांतीय अनुसूचित जाति छात्र परिसंघ।

(ङ) अ.भा.अनु.जा.छा.प. से संबद्ध भारतीय देशी राज्य अनुसूचित जाति छात्र परिसंघ।

(च) प्रांतीय या भारतीय देशी राज्य अनुसूचित जाति छात्र परिसंघ से यथा स्थिति, संबद्ध शाखा संगठन।

सदस्यता

अनुच्छेद–V

(क) प्रत्येक अनुसूचित जाति छात्र अ.भा.अनु.जा.छा.प. का सदस्य स्वीकार किया जाएगा।

(i) जो अपेक्षित सदस्यता शुल्क अदा करेगा/करेगी और अ.भा.अनु.जा.छा.प. से संबद्ध किसी भी शाखा संगठन का/की सदस्य बन जाएगा/जाएगी।

(ii) जिसने 12 वर्ष की आयु पूरी कर ली है और वह मिडिल स्कूल पढ़ रहा/रही है।

(iii) जो लिखित घोषित करेगा/करेगी कि वह अ.भा.अनु.जा.छा.प. के लक्ष्यों और उद्देश्यों में विश्वास करता/करती है और उसके नियमों और विनियमों का पालन करेगा/करेगी।

(ख) ऐसा सदस्य सामान्य सदस्य कहलाएगा।

अनुच्छेद–VI

इस गठन के प्रयोजन के लिए छात्र का आशय होगाः–

(क) किसी भी मान्यताप्राप्त या नियमित शैक्षिक संस्था से संबद्ध कोई भी अनुसूचित जाति छात्र।

(ख) अनुच्छेद की उपधारा क के अर्थ में कोई भी जो छात्र नहीं है परंतु जिसने इस आंदोलन के लिए मूल्यवान सहायता और सेवा प्रदान की है, सदस्य बनने का पात्र होगा, बशर्ते वह अनुच्छेद–5 की उपधारा (क) के खंड (i), (ii), (iii) के अधीन 5/– रुपये (मात्र पांच रुपये) का वार्षिक अभिदान अदा करता/करती है।

(ग) ऐसा सदस्य सह–सदस्य कहलाएगा जो कार्य समिति और अ.भा.अनु.जा. छा.प. की परिषद् में बैठने का हकदार होगा परंतु मतदान करने की शक्ति नहीं होगी और कोषाध्यक्ष के पद को छोड़कर अन्य किसी पद को धारण करने का हकदार नहीं होगा।

अनुच्छेद–VII

अ.भा.अनु.जा.छा.प. का कोई भी पदाधिकारी या सदस्य, किसी सांगठनिक अधिवेशन के दौरान छात्र नहीं रहता है तो वह उस अधिवेशन के अंत तक सदस्य बने रहने का हकदार रहेगा/रहेगी।

सदस्यता शुल्क

अनुच्छेद–VIII

(क) सामान्य सदस्य के लिए सदस्यता शुल्क जो प्रति वर्ष प्रति व्यक्ति मात्र आना होगा जो मान्यता प्रांतीय या भारतीय देशी राज्य अनुसूचित जाति छात्र परिसंघों की प्राथमिक इकाइयों को अदा करना होगा जिसका वह सदस्य होगा/होगी।

(ख) परिषद् के प्रत्येक सदस्य का 2/– रुपये (मात्र दो रुपये) प्रति वर्ष अदा करना है।

(ग) परिषद् सदस्यता शुल्क के अतिरिक्त, कार्य समिति के प्रत्येक सदस्य/सदस्या को प्रतिवर्ष 3/– रुपये (मात्र तीन रुपये) अदा करने हैं।

(घ) प्रत्येक सह–सदस्य को प्रतिवर्ष 5/– रुपये (मात्र पांच रुपये) अदा करने हैं।

(ड.) प्रत्येक प्रतिनिधि को 3/– रुपये (मात्र तीन रुपये) अदा करने हैं।

(च) स्वागत समिति के प्रत्येक सदस्य को 3/– रुपये (मात्र तीन रुपये) अदा करने हैं।

(छ) प्रत्येक सदस्य को अपना मतदान करने के अधिकार का प्रयोग करने से पूर्व सदस्यता शुल्क अदा करना है।

अनुच्छेद–IX

(क) केवल प्रांतीय और भारतीय देशी राज्यों के अनुसूचित जाति परिसंघ ही अ.भा. अनु.जा.छा.प. से सीधे संबद्ध होंगे।

(ख) प्रांतीय या भारतीय देशी राज्य अनुसूचित जाति छात्र परिसंघ निर्णय करेंगे कि संगठन की प्राथमिक इकाइयां कौन–सी होंगी और अपने शाखा संगठनों को संबंधन प्रदान करने के लिए सशक्त होंगी।

प्रबंधन

अनुच्छेद–X

(क) अ.भा.अनु.जा.छा.प. का प्रबंधन परिषद् में निहित होगा जिसमें प्रांतीय और भारतीय देशी राज्यों के अनुसूचित जाति छात्र परिसंघ के प्रतिनिधि शामिल होंगे।

अनुच्छेद-XI

अ.भा.अनु.जा.छा.प. की प्रत्येक शाखा परिसंघ परिषद् में प्रतिनिधि अपने सदस्यों की कुल संख्या के प्रति सौ के अनुपात में एक के अनुसार भेजेंगे किंतु किसी भी स्थिति में ये पंद्रह से अधिक नहीं होंगे।

अनुच्छेद–XII

(क) परिषद् के सदस्यों की पदावधि एक वर्ष होगी परन्तु वे पुनः निर्वाचन के लिए पात्र होंगे।

(ख) कार्य समिति अ.भा.अनु.जा.छा.प. की वार्षिक रिपोर्टें और लेखों को परिषद् के समक्ष प्रस्तुत करेगी और यह अपनी नीतियों और क्रियाकलापों के लिए परिषद् के प्रति उत्तरदायी होगी।

अनुच्छेद-XIII

(क) परिषद् की एक वर्ष में कम–से–कम दो बार बैठक होगी अधिमानतः पहली इसके गठन के ठीक बाद में और अंतिम अधिवेशन के अंत में, अ.भा.अनु.जा. छा.प. के वार्षिक और विशेष अधिवेशन के ठीक पहले।

(ख) पहली बैठक के अलावा बाद में होने वाली परिषद् की किसी बैठक के आयोजन के लिए कम–से–कम एक माह की सूचना आवश्यक होगी।

(ग) परिषद् की बैठक का आयोजन करने के लिए प्रधान सचिव की जिम्मेवारी होगी, परंतु यदि वह इसे करने में असफल होता है तो यह जिम्मेवारी संयुक्त सचिवों की होगी।

अनुच्छेद–XIV

(क) कार्य समिति में 15 से 17 (पंद्रह से सत्रह) सदस्य होंगे जिनमें से 3 महिलाओं के लिए और 3 देशी राज्यों के लिए आरक्षित होंगे, अध्यक्ष और साधारण सचिव पदेन सदस्य होंगे।

(ख) कार्य समिति के 5 सदस्यों कोरम होगा।

(ग) कार्य समिति के सदस्यों का चुनाव परिषद् अपनी पहली बैठक में करेगी।

(घ) साधारण बैठक के लिए 20 दिन और अत्यावश्यक बैठक के लिए सात दिन का नोटिस पर्याप्त होगा।

अनुच्छेद-XV

संगठन में एक अध्यक्ष, दो उपाध्यक्ष, एक प्रधान सचिव, दो संयुक्त सचिव (इनमें से एक महिलाओं में से चुनी जाएगी), एक कोषाध्यक्ष इसके पदाधिकारी होंगे। उपर्युक्त के अतिरिक्त कार्य समिति में आठ और सदस्य होंगे।

अनुच्छेद–XVI

आवश्यकता होने पर कार्य समिति किसी सदस्य या सदस्यों को सहयोजित करने की हकदार है लेकिन उनकी संख्या दो से अधिक नहीं होनी चाहिए।

अनुच्छेद–XVII

यदि उप–समिति गठित करने की आवश्यकता होती है तो कार्य समिति अपनी उप–समिति में गैर–सदस्यों को सदस्य के रूप में नियुक्त करने की हकदार है।

अनुच्छेद–XVIII

समस्त शाखा संगठन अपने क्रियाकलापों की त्रैमासिक रिपोर्टें क्रमशः अपने आसन उच्च अनुसूचित जाति छात्र परिसंघ को प्रस्तुत करेंगे।

अनुच्छेद–XIX

अधिवेशन के दौरान कार्य समिति में सभी रिक्तियां कार्य समिति द्वारा ही भरी जाएंगी।

अनुच्छेद–XX

कार्य–समिति संगठन के विस्तृत प्रबंधन के लिए जिम्मेवार होगी।

संबंधन

अनुच्छेद–XXI

(क) प्रांतीय और भारतीय देशी राज्य अनुसूचित जाति छात्र परिसंघों को संबंधन अ.भा.अनु.जा.छा.प. द्वारा प्रदान किया जाएगा।

(ख) सभी प्राथमिक इकाइयों और अन्य उच्च संगठनों को संबंधन क्रमशः उनके प्रांतीय या भारतीय देशी राज्य अनुसूचित जाति छात्र परिसंघों के गठन के अनुसार दिया जाएगा।

(ग) परिषद् के बिना निर्देश और अभिव्यक्त संस्वीकृति के कार्य समिति विसंबंधन को कोई मामला तय नहीं करेगी।

संबंधन शुल्क

अनुच्छेद–XXII

प्रांतीय और भारतीय देशी राज्य अनुसूचित जाति छात्र परिसंघों को संबंधन शुल्क के रूप में 15 रुपये (मात्र पंद्रह रुपये) अ.भा.अनु.जा.छा.प. को अदा करने होंगे और 25 रुपये (मात्र पच्चीस रुपये) प्रतिवर्ष अंशदान के रूप में अखिल भारतीय निकाय को अवश्य अदा करने होंगे।

सम्मेलन

अनुच्छेद–XXIII

(क) अ.भा.अनु.जा.छा.प. प्रत्येक वर्ष दिसंबर के अंतिम सप्ताह में सम्मेलन का आयोजन करेगा।

(ख) परिषद् के सदस्यों का चुनाव इस सम्मेलन और वार्षिक अधिवेशन में प्रतिनिधियों के मतों के आधार पर होगा।

(ग) स्वागत समिति का गठन उस स्थान के छात्रों द्वारा किया जाएगा जहां पर सम्मेलन का आयोजन होगा।

(घ) सम्मेलन के आयोजन के लिए स्थान का चयन कार्य–समिति करेगी।

अनुच्छेद–XXIV

प्रत्येक प्रांतीय और भारतीय देशी राज्य अनुसूचित जाति छात्र परिसंघ इस सम्मेलन और वार्षिक अधिवेशन में अपने सदस्यों की कुल संख्या के प्रति सौ के अनुपात में तीन के अनुसार प्रतिनिधि भेजने के हकदार होंगे।

अनुच्छेद–XXV

अ.भा.अनु.जा.छा.प. की सभी निधियां बैंक में अ.भा.अनु.जा.छा.प. के नाम कोषाध्यक्ष द्वारा की जाएंगी।

अनुच्छेद–XXVI

सामान्यतः व्यय को कार्य समिति द्वारा पहले ही संस्वीकृत किया जाएगा; परंतु आपातकालीन मामलों में प्रधान सचिव या उसकी अनुपस्थिति में संयुक्त सचिव या सचिव तीस रुपये तक की राशि पूर्व संस्वीकृति के बिना व्यय कर सकते हैं, जिसके लिए वे कार्य समिति से कार्योत्तर संस्वीकृति प्राप्त करेंगे।

अनुच्छेद–XXVII

प्रधान सचिव या उसकी अनुपस्थिति में संयुक्त सचिव कोषाध्यक्ष से धन निकालने के लिए हकदार होंगे।

अनुशासन

अनुच्छेद–XXVIII

(क) अ.भा.अनु.जा.छा.प. के किसी भी सदस्य को अखिल भारतीय अनुसूचित जाति परिसंघ के सिवाय किसी भी राजनीतिक संगठन का सदस्य या किसी भी प्रकार की सदस्यता का उपयोग करने की अनुमति नहीं होगी।

(ख) कार्य समिति को अपनी अधिकारिता के भीतर किसी सदस्य के विरुद्ध अनुशासनहीनता की कार्रवाई करने की शक्ति निम्न के लिए होगीः–

(i) अपेक्षित अभिदान की अदायगी करने में असफल होने पर।

(ii) परिसंघ की नीतियों को और परिषद् या कार्य समिति की कार्यवाहियों को पूरा न करने पर।

(iii) अ.भा.अनु.जा.छा.प. के नियमों और विनियमों का जानबूझकर अतिलंघन।

(iv) किन्हीं अन्य परिस्थितियों के होने पर जिनका इन नियमों में विशेष रूप से प्रावधान नहीं किया गया है और जो अ.भा.अनु.जा.छा.प. के आदेश या अनुशासन में बाधा डालने वाली हो सकती हैं।

अधिवेशन

अनुच्छेद–XXIX

वार्षिक और विशेष अधिवेशन का अध्यक्ष अ.भा.अनु.जा.छा.प. की परिषद् द्वारा निर्वाचित किया जाएगा। कार्य समिति इस प्रयोजन के लिए बैठक न बुलाकर, सदस्यों से लिखित रूप में अध्यक्ष का नाम प्राप्त कर सकती है।

अनुच्छेद–XXX

प्रांतीय और भारतीय देशी राज्य अनुसूचित जाति छात्र परिसंघों के अपने–अपने विधान होंगे। लेकिन इन विधानों में अ.भा.अनु.जा.छा.प.के गठन के नियमों और विनियमों के विपरीत कुछ भी नहीं होना चाहिए।

अपरिभाषित शक्तियां

अनुच्छेद–XXXI

गठन में अपरिभाषित शक्तियां कार्य समिति में निहित हैं, जिनका उपयोग, यह अपने विवेक से गठन में नहीं दिए गए विषयों पर करेगी।

अनुच्छेद–XXXII

गठन में परिवर्तन केवल परिषद् के सदस्यों के दो–तिहाई बहुमत या खुले अधिवेशन में प्रतिनिधियों के साधारण बहुमत के अधीन होगा।

1. 25, 26 और 27 दिसंबर, 1946 को नागपुर में आयोजित दूसरे अधिवेशन की अखिल भारतीय अनुसूचित जाति छात्र परिसंघ की रिपोर्ट, 2 जून, 1947 को वी.डी.चाहंडे द्वारा प्रकाशित।

परिशिष्ट–II

हिंदू धर्म और बौद्ध धर्म में नारी की स्थिति

("अवर न्यू रिपब्लिक" शीर्षक के अंतर्गत 21 जनवरी, 1950 को "ईव्स वीकली" में प्रकाशित लेख का उत्तर)

लामा गोविंद

"भारत में नारियां शासनकला में यूरोपीय नारियों से बहुत पहले परिचित थीं। ऐसी नारियों के दृष्टांतों से रामायण और महाभारत भरे पड़े हैं"। ये पंक्तियां "अवर न्यू रिपब्लिक" शीर्षक के अंतर्गत 21 जनवरी, 1950 को ईव्स वीकली में प्रकाशित लेख में प्रमुख रूप से प्रदर्शित की गई थीं।

क्या लेख का विद्वान लेखक इस तथ्य की ओर संकेत कर रहा है कि महाभारत की मुख्य महिला–पात्र को उसके पति या पतियों (क्योंकि उसके पांच थे) ने जुए में दावफलभ दिया था या सीता, जिसने अपने हरणकर्ता रावण के सभी प्रस्तावों को वीरोचित रूप से ठुकरा दिया था उसे अपनी शुद्धता के बदले में अविश्वास और संदेह प्राप्त हुआ, अग्नि परीक्षा देनी पड़ी और जंगल में निर्वासित कर दिया गया?

यदि उन दिनों में नारी की स्थिति ऐसी थी जैसाकि उपर्युक्त का लेखक हमें विश्वास करने के लिए मजबूर कर रहा है तब हमें आश्चर्य होता है कि द्रौपदी को अपने पांचों पतियों को जुए में हारने का मौका क्यों नहीं दिया गया था सीता को अपने निंदकों और शंकालुओं को चिता पर बैठाने या जंगल में निर्वासित करने का अवसर नहीं दिया गया?

इस संबंध में यह कहना अवश्य ही अधिक उपयुक्त होगा कि उन दिनों में भारत की नारियों का उपयोग शासनकला के लिए किया जाता था।

जहां तक यूरोप की नारियों का प्रश्न है, मैं नहीं कह सकता कि वे इस संबंध में भारत में अपनी बहनों से पिछड़ी हुई थीं, लेकिन मुझे पक्का विश्वास है कि जब कभी उनमें से कुछेक को शासनकाल में हस्तक्षेप करने का अवसर मिला उन्होंने उसका पूरा लाभ उठाया।

यदि द्रौपदी के स्थान पर रानी एलिजाबेथ होती तो वह अपने पांचों पतियों को फांसी पर चढ़ा देती जैसाकि उसने अपने अभागे प्रेमी लॉर्ड ऐसेक्स को फांसी पर लटका दिया था। लेकिन मेरी राय में द्रौपदी बिना शासनकला के भी रानी बेस्सी की तुलना में अधिक प्यारी है जो राजनीतिक रूप से शक्तिशाली और धूर्त थी।

यूरोपीय इतिहास की एक और जिस नारी का उल्लेख यहां उपयुक्त हो सकता है वह है आस्ट्रिया की सम्राज्ञी मारिया थेरेसा जो अनेक बच्चों की एक स्नेही मां और योग्य शासक दोनों ही थी और यदि हम यूरोप के प्राचीन इतिहास में जाएं तो बाइजेंटियम की सम्राज्ञी थेरोडोरा जारी का शायद अत्यधिक प्रभावशाली उदाहरण है, जो निम्नतम स्थिति से उठकर सर्वोच्च सत्ता तक पहुंची। उसने अपने जीवन की यात्रा वेश्या के रूप में शुरू करके सम्राज्ञी के रूप में खत्म की।

मैं नहीं समझता कि यह भारतीय नारीत्व का एक आदर्श होगा, जैसाकि मैं यह नहीं मानता कि शासनकला नारी की गरिमा में चार चांद लगाती है।

यदि यह सच भी होता कि भारतीय नारियां यूरोप की नारियों से बहुत पहले शासन कला से परिचित थीं, हमारा लेखक स्पष्ट रूप से झांसी की रानी और चांद बीबी के समय से पूर्व अवधि के ऐतिहासिक रूप से प्रामाणिक दृष्टांतों को नहीं खोज पाया जोकि दोनों भारत के इतिहास के अत्यधिक आधुनिक काल से संबंधित हैं।

लेकिन समीक्षाधीन लेख का सर्वाधिक आश्चर्यजनक कथन यह है कि "लेकिन हाय ऐसा प्रतीत होता है कि यह बौद्ध सिद्धांत था जिसने सर्वप्रथम नारियों को पृष्ठभूमि में धकेला"।

यह सिद्धांत क्या है, दुर्भाग्यवश इस बारे में विद्वान लेखक ने कुछ प्रकट नहीं किया है और हालांकि मैंने बौद्ध धर्म ग्रंथों और उनकी शिक्षाओं की जांच की है, मुझे नारियों के बारे में कोई विशेष सिद्धांत नहीं मिला है, केवल सामान्यतः मानव जाति के बारे में उल्लेख मिला है। द् फोर नोबल ट्रुथ्स, द् फार्मूला ऑफ डिपेन्डेन्ट ऑरिजिनेशन, और ऐटफोल्ड पाथ ऑफ लिबरेशन में पुरुष और जारी में कोई भेद नहीं किया गया है।

बौद्ध इतिहास में आद्योपांत बौद्ध समाज का एक विशेष लक्षण यह रहा है कि नारी की स्थिति गैर–बौद्ध देशों की तुलना में अत्यधिक प्रशंसात्मक रही है। प्रारंभ से ही पुरुष और नारी की मूलभूत समता बौद्ध समाज की पथ–प्रदर्शक रही है।

बौद्ध देशों में रह चुका कोई भी व्यक्ति, चाहे वह सीलोन, बर्मा, स्याम, भारत–चीन, तिब्बत हो, जानता है कि वहां नारी की स्थिति आश्चर्यजनक रूप से ऊंची है क्योंकि बौद्ध पत्नी अपने पति को भगवान नहीं मानती, उससे यह अपेक्षा नहीं की जाती कि वह पति को भोजन करने के पश्चात् भोजन करेगी या पति की मृत्यु के पश्चात् अत्यंत उदासी और तंगी के जीवन के विकल्प के रूप में अपनी आहुति दे देगी। इसके विपरीत, यदि उसे लगता हैं कि वह अपने पति के साथ नहीं रह सकती तो वह उसे छोड़ने के लिए स्वतंत्र है और वह अपने पति की मृत्यु के पश्चात् सामाजिक जाति–बहिष्कृत नहीं होती वरन यदि वह चाहे तो पुनर्विवाह कर सकती है। स्त्रियों के अपने कार्य हो सकते हैं, वास्तव में बर्मा के साथ–साथ तिब्बत (इन देशों के संबंध में मैं अपने अनुभव से कह सकता हूं) में स्त्रियां पूर्ण रुप से पुरूषों के समान हैं सामाजिक रूप से और व्यवसायों के संबंध में और वे प्रायः पुरुषों की अपेक्षा अधिक उद्यम और योग्यता प्रदर्शित करती हैं इसीलिए पुरुष खुशी से इन कार्यों को अपनी स्त्रियों पर छोड़ देते हैं।

बौद्ध समाज में नारी की ऐसी स्थिति होना संभव ही नहीं होता यदि जैसा समीक्षाधीन लेख के लेखक ने दावे के साथ कहा है, ''बौद्ध को नारियों के प्रति पूर्वाग्रह था और पुरुषों को नारियों से सावधान रहने के लिए हमेशा ही उपदेश देते रहे''।

बुद्ध जो निश्चित रूप से पहले के समस्त महान् शिक्षकों में से अत्यधिक उदार और सहनशील थे और जो इस कारण भारत के अन्य सपूतों की अपेक्षा भारत की सीमाओं से परे अधिक आदर की दृष्टि से देखे जाते थे और अभी भी देखे जाते हैं। उन पर ऊंगली उठाना कि वे पूर्वाग्राही थे अवश्य ही असाधारण गलत समझी की करतूत है। यदि भारत के समस्त महान मनीषियों में से बौद्ध का ही विश्वव्यापी प्रभाव था तो इसका कारण था किसी प्रकार के पूर्वाग्रह का उनमें पूर्ण अभाव (अन्यथा वे कैसे प्रबुद्ध के रूप में स्वागत–योग्य और मान्य माने जा सकते थे), उनके दृष्टिकोण की सार्वभौमिकता और जाति, रंग या लिंग–निरपेक्ष मानव प्रकृति की उनकी समझ।

वास्तव में उन्होंने ही नारी की मुक्ति (जो मनु के नियमों के अधीन अत्यधिक प्रतिकूल स्थिति में थी) की नींव डाली जैसाकि हमारे विद्वावान लेखक ने स्वीकारा है और इस प्रकार उसने अपनी ही पहले की उक्ति का खंडन किया है कि बौद्ध ही पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने नारी को पृष्ठभूमि में धकेला है। बुद्ध ही ने सुस्पष्ट शब्दों में

यह घोषणा की थी कि नारी भी पुरुष की भांति साधुता को प्राप्त कर सकती है।

प्रारंभिक बौद्ध धर्म की इस अभिवृत्ति की पुष्टि इस तथ्य से होती है कि बुद्ध ने एक अवसर पर राजाओं के निमंत्रण को ठुकरा दिया था चूंकि वे पहले ही एक गणिका का निमंत्रण स्वीकार कर चुके थे। राजा इस बात पर हैरान थे कि आम्रपाली जैसी तुच्छ नारी बुद्ध द्वारा सम्मानित की जाए और इसके लिए उन्होंने बुद्ध को ऐसा करने के लिए मना भी किया। लेकिन बुद्ध अपनी बात पर अड़े रहे और आम्रपाली उनकी अत्यधिक प्रशंसनीय नारी और शिष्या बन गई। यदि उनके मन में नारी के प्रति पूर्वाग्रह होता तो वे उसे यहां प्रदर्शित कर सकते थे।

"कि बुद्ध ने हमेशा ही यह उपदेश दिया कि नारियों से सावधान रहो", यह अर्धसत्यों में से एक है जिसने उन लोगों को गुमराह किया है जिन्होंने बुद्ध के पाठों का ठीक से परायण नहीं किया है।

हम मामले में बुद्ध ने पुरुषों को प्रोत्साहित नहीं किया है बल्कि उन भिक्षुओं को किया है जिन्होंने प्राचीन भारतीय संन्यासी नियमों के अनुसार ब्रह्मचर्य का व्रत लिया था जिसे बौद्ध और हिंदू दोनों स्वीकारते हैं। भिक्षुणियों को भी पुरुषों से सचेत रहने के लिए प्रेरित किया गया था इस प्रकार बुद्ध का आह्वान नारियों के विरुद्ध पूर्वाग्रह के कारण न होकर पुरुषों और नारियों दोनों में मानव कमजोरी की जानकारी के कारण था।

भारत में बौद्ध नारियां प्रथम थीं जिन्होंने धार्मिक साहित्य में पर्याप्त और स्वतंत्र योगदान किया और जो उस समय के श्रेष्ठ लेखकों के बराबर स्वीकार की गई थीं। यह इस तथ्य से ज्ञात होता है कि बौद्ध भगिनियों के गीतों (थेरीगाथा शीर्षक के अंतर्गत) को प्रामाणिक धर्म–ग्रंथ संग्रहों में सम्मानित स्थान दिया गया और इस प्रकार उन्हें बुद्ध और उनके अत्यधिक प्रमुख शिष्यों के कथनों के पार्श्व में रखा गया था।

हिंदू धर्म और बौद्ध धर्म दोनों ने ही महान नारियां प्रस्तुत की हैं और हमें पूर्व के रिवाजों और शिक्षाओं तथा मनीषियों के दोष निकालने के बजाय, जिन्होंने उन्हें अपनी आवश्यकताओं और समय और उनके श्रोताओं की समझ की क्षमता के अनुसार उद्घोषित किया उसे ध्यान में रखकर हमें भारतीय नारियों के बीच उन आत्माओं का अनुकरण करने का प्रयास करना चाहिए जो बहुत से शक्तिशाली साम्राज्यों के सामने आज तक टिके रहे, जिनकी समझ शासनकला से भी ऊंची थी और जिनका साहस

राजाओं की शक्ति से भी अधिक था। सावित्री जिसके गहरे प्रेम और समझदारी ने यमराज को भी पराजित कर दिया था, हमेशा नारीत्व के महानतम गुणों का प्रतीक बना रहेगा। मैत्रेयी और गार्गी की आवाज़ उपनिषदों के अमर वार्तालापों में हमेशा ही सुनी जाती रहेगी और सर्वसुलभ बौद्ध भगिनियों के गीत भारतीय नारियों के दिलों में मीराबाई के धार्मिक गीतों और पदमिनी की वीरता की भांति बने रहेंगे।

1. पुस्तिका के परिशिष्ट के रूप में "हिंदू नारी का उत्थान और पतन; इसके लिए कौन जिम्मेवार है"? शीर्षक के अधीन प्रकाशित।

परिशिष्ट.III

द केबिनेट मिशन

"19 फरवरी, 1946 को, विद्रोह आरंभ होने के अगले दिन, लॉर्ड पेथिक लॉरेन्स ने हाउस ऑफ लॉर्ड्स में घोषणा कि "सर्वोच्च महत्व को ध्यान रखते हुए, न केवल भारत और ब्रिटिश राष्ट्रमंडल बल्कि विश्व शांति के लिए, भारतीय जनमत के नेताओं के साथ विचार–विमर्श के सफल परिणाम के लिए, ब्रिटिश सरकार भारत में केबिनेट मंत्रियों का एक विशेष मिशन भेजेगी, जिसमें सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इंडिया (लॉर्ड पेथिक लॉरेन्स), प्रेजिडेन्ट ऑफ बोर्ड ऑफ ट्रेड (सर स्टेफार्ड क्रिप्स), और फर्स्ट लॉर्ड ऑफ एडमिरलटि (श्री ए. वी. अलेक्जेंडर) होंगे जो इस मामले में गवर्नर–जनरल के सहयोग से कार्य करेंगे। इसी प्रकार का वक्तव्य हाउस ऑफ कॉमन्स में श्री क्लिमेंट एटली द्वारा दिया गया था।

लॉर्ड पेथिक लॉरेन्स की अध्यक्षता में केबिनेट मिशन भारत की समस्या का हल खोजने के लिए 23 मार्च, 1946 को भारत आया इसकी गतिविधियों और आगामी घटनाओं को इस पृष्ठभूमि में समझा जा सकता है "कि लेबर सरकार का शक्ति सौंपने के लिए सर्वोत्तम संभव प्रबंध करने के पश्चात् यथा शीघ्र ही भारत छोड़ने का पक्का निर्णय था"। पार्टी नेताओं से बातचीत करने पर कई सम्मत हल नहीं निकला। 16 मई, 1946 को मिशन ने अपनी ही योजना प्रस्तुत की। पाकिस्तान के मसले को पूरी तरह जांचकर उसने यह निष्कर्ष निकाला कि न तो बड़ा और न ही छोटा पाकिस्तान का प्रभुता–संपन्न राज्य अन्य विचारों को ध्यान में रखते हुए–जैसे प्रशासनिक, आर्थिक और सेना और संचार तथा भारतीय राज्यों से संबंधित विचारों के कारण, सांप्रदायिक समस्या का स्वीकृत हल प्रदान कर सकेगा और इस प्रकार पाकिस्तान बनाने की सलाह नहीं दी गई। लेकिन मुसलमानों की यह आशंका कि उनकी संस्कृति और राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन पर हिंदू हावी हो सकते हैं उसे नजरंदाज नहीं किया जा सका। जहां तक भारतीय राज्यों का संबंध है मिशन का विचार यह था कि ब्रिटिश भारत द्वारा स्वतंत्रता प्राप्त होने पर उनके ऊपर सर्वोपारिता न ब्रिटिश क्राउन बनाए रख सकेगा न ही यह नई सरकार को हस्तांतरित की जा सकेगी: फिर भी राज्य भारत की नई परिस्थितियों के साथ सहयोग करने के लिए तैयार थे। उनके

1. भारतीय संविधान के भाषण और प्रलेख, खंड I सर मौरिस ग्वयर और ए.अप्पादौराई द्वारा चयनित प्रस्तावना पृष्ठ vii (1957)।

सहयोग का सुस्पष्ट रूप क्या होगा यह नई सांविधिक संरचना के निर्माण के दौरान वार्ता का विषय होगा क्योंकि सभी राज्यों के लिए वह एक समान नहीं होगा।

तत्पश्चात् केबिनेट मिशन ने उस हल के स्वरूप की ओर संकेत किया जो सभी पक्षों के अनिवार्य दावों को पूरा कर सकेगा और समस्त भारत के गठन के लिए स्थिर और व्यावहारिक रूप प्रस्तुत करेगा। उसने सिफारिश की कि गठन में निम्न व्यवस्था मूल होनी चाहिए: (1) भारतीय संघ होना चाहिए जिसमें ब्रिटिश भारत और राज्य शामिल होने चाहिए जो निम्न विषयों पर विचार करेंगे: विदेशी मामले, रक्षा और संचार उपर्युक्त विषयों के लिए अपेक्षित वित्त–व्यवस्था करने की शक्ति होनी चाहिए (2) संघ की एक कार्यपालिका और विधायिका होनी चाहिए जिनका गठन ब्रिटिश भारत और राज्यों के प्रतिनिधियों में से होना चाहिए। विधायिका में उठाए जाने वाले प्रमुख सांप्रदायिक मुद्दों के निर्णय के लिए, दोनों प्रमुख समुदायों की उपस्थित और मतदान करने वाले प्रतिनिधियों के बहुमत के साथ–साथ सभी उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के बहुमत की आवश्यकता होगी। (3) संघ के विषयों के अलावा समस्त अवशिष्ट शक्तियां प्रांतों में निहित होंगी। (4) संघ को सौंपे गए सभी विषयों और शक्तियों के अतिरिक्त सभी शक्तियां और विषय राज्यों के पास रहेंगे। (5) प्रांतों को कार्यपालिका और विधायिका के साथ ग्रुप सम्मिलित रूप में प्रांतीय विषयों का निर्धारण कर सकता है। (6) संघ और ग्रुपों के गठन में एक उपबंध होना चाहिए जिससे कोई प्रांत अपनी विधान सभा के बहुमत से अपने गठन की शर्तों पर पुनर्विचार के लिए दस वर्षों की प्रारंभिक अवधि के पश्चात् और तत्पश्चात् दस वर्षों के अंतराल पर मांग कर सकता है।

केबिनेट मिशन ने निम्नलिखित संविधान निर्माण तंत्र का प्रस्ताव किया ताकि नया संविधान तैयार किया जा सके। नई संवैधानिक संरचना का निर्णय करने के लिए किसी सभा के गठन में, प्रथम समस्या संपूर्ण जनसंख्या का यथा संभव व्यापक और सही प्रतिनिधित्व प्राप्त करना था। स्पष्ट रूप से इसके लिए वयस्क मताधिकार आधारित निर्वाचन अत्यधिक संतोषजनक पद्धति होगी, परंतु ऐसा करने के लिए शुरू की गई कार्रवाई नए संविधान के निर्माण में पूर्णतया अस्वीकार्य विलंब पैदा करेगी ऐसी परिस्थिति में एक ही व्यावहारिक रास्ता यह होगा कि हाल ही में निर्वाचित प्रांतीय विधान सभाओं को निर्वाचन निकायों के रूप में उपयोग किया जाए। तथापि, इनके गठन में दो कारक थे जिसने इन्हें कठिन बना दिया। पहला, प्रांतीय विधान सभाओं का संख्यात्मक बल प्रत्येक प्रांत में कुल जनसंख्या को उसी अनुपात को नहीं दिखाता। दूसरा, सांप्रदायिक पंचाट द्वारा अल्पसंख्यकों को अधिमान दिए जाने के कारण प्रत्येक प्रांतीय विधान सभा में अनेक समुदायों की संख्या प्रांत में उनकी संख्या के अनुपात में नहीं है। इन प्रश्नों को हल करने के अभिप्राय: से विभिन्न विधियों पर अत्यधिक सावधानीपूर्वक विचार

करने के पश्चात् यह पाया कि न्यायोचित और अत्यधिक व्यवहार्य योजना यह होगी कि (क) प्रत्येक प्रांत को उनकी जातियों की कुल संख्या को उनकी जनसंख्या अनुपात में, वयस्क मताधिकार द्वारा प्रतिनिधित्व के लिए निकटतम प्रतिस्थानी के रूप में स्थान आबंटन करना (ख) स्थानों के इस प्रांतीय आबंटन को प्रत्येक प्रांत में मुख्य समुदायों के बीच उनकी जनसंख्या के अनुपात में विभाजित करना; (ग) यह उपबंध करना कि प्रांत में प्रत्येक समुदाय को आबंटित प्रतिनिधियों का निर्वाचन उस समुदाय के सदस्यों द्वारा अपनी विधानसभा में करना चाहिए। इन प्रयोजनों के लिए, भारत में केवल तीन मुख्य समुदायों को मान्यता देना पर्याप्त था—साधारण, मुस्लिम और सिख, साधारण समुदाय में वे सब व्यक्ति शामिल थे जो मुस्लिम और सिख नहीं थे। क्योंकि छोटे अल्पसंख्यकों को जनसंख्या के आधार पर कम या कुछ भी प्रतिनिधित्व नहीं मिलेगा, चूंकि वे प्रांतीय विधान सभाओं में उनके स्थान सुनिश्चित करने के लिए अधिमान खो देंगे, कुछ व्यवस्थाओं का सुझाव दिया गया था ताकि उन्हें अल्पसंख्यकों के विशेष हितों के सभी मामलों में पूर्ण प्रतिनिधित्व प्रदान किया जा सके।

इसलिए मिशन ने यह प्रस्ताव किया कि प्रत्येक प्रांतीय विधान सभा द्वारा निम्न संख्या में प्रतिनिधि निर्वाचित किए जाने चाहिए, प्रांतीय सभा का प्रत्येक भाग (साधारण, मुस्लिम या सिख) एकल हस्तांतरणीय मतदान के साथ आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति द्वारा अपने प्रतिनिधियों को निर्वाचित करेगा।

प्रतिनिधित्व की सारणी

भाग—क

प्रांत	सामान्य	मुस्लिम	जोड़
मद्रास	45	4	49
बंबई	19	2	21
संयुक्त प्रांत	47	8	55
बिहार	31	5	36
केंद्रीय प्रांत	16	1	17
उड़ीसा	9	0	9
जोड़	167	20	187

भाग–ख

प्रांत	साधारण	मुस्लिम	सिख	जोड़
पंजाब	8	16	4	28
नार्थ–वेस्ट फ्रंटियर	0	3	0	3
सिंध	1	3	0	4
जोड़	9	22	4	35

भाग–ग

प्रांत	साधारण	मुस्लिम	जोड़
बंगाल	27	33	60
असम	7	3	10
जोड़	34	36	70

ब्रिटिश भारत के लिए जोड़	292
भारतीय राज्यों के लिए अधिकतम	93
	385

मुख्य आयुक्त प्रांतों का प्रतिनिधित्व करने के उद्देश्य से भाग–क में केंद्रीय विधान सभा में दिल्ली का प्रतिनिधित्व करने के लिए एक सदस्य केंद्रीय विधान सभा में अजमेर–मेखाड़ा का प्रतिनिधित्व करने के लिए एक सदस्य और कुर्ग विधान परिषद् द्वारा एक प्रतिनिधि निर्वाचित करके जोड़ा जाएगा। भाग–ख में ब्रिटिश बलूचिस्तान का एक प्रतिनिधि जोड़ा जाएगा। वित्तीय संघटन सभा में राज्यों को उचित प्रतिनिधित्व

प्रदान किया जाएगा जोकि, ब्रिटिश भारत के लिए अपनाए गए जनसंख्या के परिकलन के आधार पर 93 से अधिक नहीं होगा, लेकिन चयन की विधि परिमर्ष द्वारा निर्धारित की जाएगी। प्रारंभिक चरण में राज्यों का प्रतिनिधित्व संधिवार्ता समिति द्वारा किया जाएगा।

इसके बाद केबिनेट मिशन ने प्रस्ताव किया कि इस प्रकार चुने गए प्रतिनिधियों को यथा संभव षीघ्र नई दिल्ली में मिलना चाहिए। एक प्रारंभिक बैठक आयोजित की जाएगी जिसमें सामान्य कार्यक्रम का निर्णय किया जाएगा, अध्यक्ष और अन्य अधिकारियों का निर्वाचन किया जाएगा और नागरिकों, अल्प–संख्यकों, जन–जातियों और वर्णित क्षेत्रों की अधिकार संबंधी सलाहकार समिति का गठन किया जाएगा। तत्पश्चात्, प्रांतीय प्रतिनिधि सारणी में दिखाए अनुसार भाग क, ख, ग में विभाजित हो जाएंगे। ये भाग, प्रत्येक भाग में षामिल प्रांतों के लिए प्रांतीय संविधानों के निर्णय की कार्रवाई करेंगे और यह निर्णय करेंगे कि क्या उन प्रांतों के लिए ग्रुप संविधान स्थापित करना चाहिए और यदि हां, तो कौन–से प्रांतीय विशयों पर ग्रुप को कार्रवाई करनी चाहिए। प्रांतों को ग्रुपों में से निकलने का अधिकार होना चाहिए। जैसे ही नई सांविधिक व्यवस्था प्रारंभ होगी, कोई भी प्रांत जिस ग्रुप में वह रखा गया था उससे बाहर निकलने का चुनाव कर सकता है। इस प्रकार का निर्णय प्रांत के विधान मंडल को नए संविधान के अंतर्गत प्रथम आम चुनाव के पष्चात् लेना चाहिए। भागों और भारतीय राज्यों के प्रतिनिधियों को संघ–संविधान का निर्णय करने के प्रयोजन से पुनः एकत्र होना चाहिए। संघ सविधान सभा में उपर्युक्त उल्लिखित संविधान के बुनियादी रुप से संबंधित उपबंधों में परिवर्तन या किसी प्रमुख समुदायों के उपस्थित और मतदान करने वाले प्रतिनिधियों के बहुमत की आवश्यकता होगी। सभा का सभापति यह निर्णय करेगा कि किस संकल्प ने प्रमुख सांप्रदायिक मुद्दा उठाया है और यदि किसी भी प्रमुख संप्रदाय के प्रतिनिधियों के बहुमत ने ऐसा निवेदन किया तो उसे अपना निर्णय देने ये पूर्व फेडरल न्यायालय से परामर्श करना होगा।

केबिनेट मिशन ने इसके अलावा प्रस्ताव किया कि नागरिकों, अल्पसंख्यकों और जनजातीय और वर्जित क्षेत्रों की अधिकार संबंधी सलाहकार समिति में प्रभावित पक्षों का सम्यक प्रतिनिधित्व होगा और उनका कार्य संघ संविधान सभा को मूलभूत अधिकारों, अल्पसंख्यकों की संरक्षा के लिए खंडों की सूची और जनजातीय और वर्जित क्षेत्रों के प्रशासन के लिए योजना के बारे में रिपोर्ट करना होगा। और यह सलाह देनी होगी कि क्या इन अधिकारों को प्रांतीय, ग्रुप या संघ–संविधान में सम्मिलित किया जाए।

केबिनेट मिशन ने अंत में प्रस्ताव किय कि गवर्नर–जनरल प्रांतीय विधान मंडलों

को अपने प्रतिनिधियों का निर्वाचन कराने की कार्रवाई शुरु करने राज्यों को वार्ता समिति गठित करने के लिए तत्काल अनुरोध करेगा। यह आवश्यक होगा कि संघ संविधान सभा और यूनाईटेड किंगडम के बीच संधि–वार्ता की जाए ताकि शक्ति अंतरण के फलस्वरुप उठने वाले अनिवार्य मामलों के लिए व्यवस्था की जा सके।

1 मिलिन जे.के., पृष्ठ 119–123

परिशिष्ट-IV

केबिनेट मिशन के समक्ष जगजीवन राम, राधानाथ दास और पृथ्वी सिंह के साक्षात्कार

"जगजीवनराम, राधानाथ दास और पृथ्वी सिंह आजाद अखिल भारतीय दलित वर्ग संघ के प्रतिनिधि के रुप में एक साथ उपस्थित हुए। उन्होंने कहा कि संघ ऐसे किसी भी प्रस्ताव का विरोध करेगा जो देश की अखंडता को हानि पहुंचाए गया कि उसके दृष्टिकोण में भारत का पाकिस्तान और हिंदुस्तान में विभाजन अल्पसंख्यक समस्या का हल प्रदान न करके उल्टे नई समस्याएं खड़ी करेगाय कि संघ एक से अधिक संविधान सभा स्थापित करने का भी विरोध करता है। नए संविधान में अल्पसंख्यकों की भाषा, संस्कृति आदि और अनुसूचित जातियों के अधिकारों और हितों को संरक्षित करने के लिए उपबंध होने चाहिए। अंतरिम सरकार के संबंध में दलित वर्ग संघ एक समुदाय को महत्व देकर दूसरे को उसके जायज हिस्से से भी वंचित करन का विरोध करता हैय लेकिन यदि महत्व देने का निर्णय होता है तो अनुसूचित जातियों की भी महत्व दिया जाना चाहिए। अंतरिम सरकार विधानसभा के प्रति उत्तरदायी होनी चाहिए और रक्षा, वित्त और विदेशी मामले मंत्रिमंडल को सौंप दिए जाने चाहिए, जिनके सदस्यों का निर्वाचन विभिन्न प्रांतीय विधान सभाओं द्वारा होना चाहिए। अल्पसंख्यक समुदायों के प्रति–निधित्व के लिए विशेष उपबंध किए जाने चाहिए और प्रांतीय विधान सभाओं के अनुसूचित जातियों के सदस्यों को एक निर्वाचकगण बनाना होगा जो केंद्रीय सरकार में शामिल करने के लिए व्यक्तियों का चयन करेगा।

जगजीवन राम ने कहा कि अनुसूचित जाति परिसंघ (डॉ. अम्बेडकर के नेतृत्व में) और दलित वर्ग संघ लीग में अंतर यह है परिसंघ के अनुसार अनुसूचित जातियां हिंदू नहीं है बल्कि अपने आप में धार्मिक अल्पसंख्यक हैं जबकि संघ का कहना यह है कि अनुसूचित जातियों के लोग अपने आपको हिंदू मानते हैं ओर उन्होंने हिंदूत्व के आंदोलन के लिए बहुत बलिदान दिया है। दलित वर्ग संघ ने विधान सभाओं और सेवाओं में विशेष प्रतिनिधित्व के लिए बल दिया ताकि अनुसूचित जातियां अपने आपको देश के अन्य लोगों के स्तर तक लाने के योग्य हो सकें।

(भारत में शक्ति–अंतरण, पृष्ठ 244–45)

1 उद्धत, खैरमोड़े खंड 8, पष्ठ 64–65

<u>परिशिष्ट-V</u>

पूना सत्याग्रह

सत्याग्राही गिरफ्तार

बंबई प्रांत में अनुसूचित जाति परिसंघ के अनुयायियों ने पूना में आज अपना अहिंसक सत्याग्रह शुरु किया जिसका प्रयोजन ब्रिटिष केबिनेट के उस प्रस्ताव के विरुद्ध विरोध करना था जिससे उनके प्रति अन्याय कांग्रेसी शड्यंत्र के फलस्वरुप किया गया है।

छह सत्याग्राहियों चार महिलाएं और दो पुरुषों पहला दल आज सुबह परिषद् हॉल के सामने पूना जिला मजिस्ट्रेट के आदेशों का उल्लघंन करने और परिषद् सभा–भवन के आगे प्रदर्शन करने के लिए गिरफ्तार किया गया था। गिरफ्तार लोगों में नासिक से अनुसूचित जाति परिसंघ की कार्य समिति की सदस्या श्रीमती शांताबाई दानी और परिसंघ की बंबई शाखा के अध्यक्ष श्री बी.के. गायकवाड़ की पत्नी श्रीमती गीताबाई गायकवाड़ शामिल है।

सभा–सत्र शुरु होने से तत्काल पूर्व ये छह सत्याग्राही परिषद हाल के प्रांगण के द्ववारों पर चौकीदारी कर रही पुलिस को चकमा देकर प्रांगण में घुस गए और घुसते ही अपनी, जेबों से काले झंडे निकालकर ब्रिटिश साम्राज्यवाद मुर्दाबाद, कांग्रेस मुर्दाबाद और पूना पैक्ट रद्द करों के नारे लगाने लगे।

दो और दल जिसमें आठ महिलाएं और छह पुरुश थे बाद में लगभग दोपहर एक बजे प्रांगण दीवार के प्रवेश द्ववार पर गिरफ्तार किए गए। लगभग उसी समय जब सत्याग्राहियों का पहला दल अपना प्रदर्शन कर रहा था, अनुसूचित जातियों का एक बड़ा जलूस जिला मजिस्ट्रेट के आदेश का उल्लघंन करके परिषद् हॉल की ओर जा रहा था, उसे बार मोरियल के निकट स्टेशन रोड़ पर चाक लाइन पर रोका गया। यह चाक लाइन परिषद् सभा–भवन से आधे मील की दूरी पर इगित करने के लिए खींची गई थी। जिला मजिस्ट्रेट आदेश के अनुसार परिषद् सभा–भवन के आधे मील के क्षेत्र में किसी जलूस की अनुमति नहीं थी।

जलूस लगभग सुबह 10 बजे बाबा जन चौक पर सत्याग्रह कैंप से शुरु होकर चार और पांच की कतारों में चल रहा था। इसका नेतृत्व श्री बी.के. गायकवाड़, अध्यक्ष, बंबई प्रांत अनुसूचित जाति परिसंघ, श्री पी.एन.राजभोज परिसंघ के प्रधान सचिव और श्री आर.आर. भोले, बंबई विधानसभा के पूर्व सदस्य कर रहे थे और युवा लड़कियों और महिलाओं के हाथों में काले झंडे और परिसंघ के झंडे थे जो आगे–आगे चल रही थी। लगभग डेढ़ मील के परिक्रामी पथ की यात्रा करके सुबह लगभग 11 बजे जलूस वार मैमोरियल के निकट सीमा पंक्ति पर पहुंचा।

लाठियों से लैस एक सौ से अधिक पुलिसकर्मी और पुलिस अधिकारी, जिनमें श्री ई.ए.एस.पी., श्री जे. क्रोने. डिप्टी एस.पी. और श्री एफ.डी.र ेख, डिप्टी एस.पी.शामिल थे वहां पर प्रतीक्षा कर रहे थे और तत्काल उन्होंने जलूस को रोका।

प्रदर्शनकारी वहीं पर जमीन पर बैठकर अनुसूचित जाति परिसंघ और अन्य नारे लगाने लगे। इस प्रकार लगभग दो घंटे वहां रहने के पश्चात् उन्होंने कैंप में वापस लौटने का निर्णय किया और बैलेजली रोड से होते हुए सत्याग्रह कैंप में वापस आ गए।

प्रदर्शन कारियों ने कैंप वापस लौटने पर बैठक की और पुलिस द्वारा गिरफ्तार किए गए लोगों को बधाई दी।

श्री पी.एन. राजभोज ने बैठक को संबोधित करते हुए कहा कि उनके स्वतंत्रता संघर्ष की आज षुरुआत हो गई है। उन्होंने कहा कि अनुसूचित जातियां पूर्णतः जागरुक हैं और अपना लक्ष्य प्राप्त करके ही वे अब चैन से बैठेंगी। आजका सत्याग्रह देशव्यापी आंदोलन की शुरुआत है।

श्री बी.के. गायकवाड़ ने घोषणा की कि सत्याग्रहियों का जलूस अब कल निकाला जाएगा और तत्पश्चात् ये प्रत्येक दिन निकलेगा।

पूना के जिला मजिस्ट्रेट ने आज एक आदेश जारी करके पूना नगरपालिका, पूना, पूना उपनगरपालिका और पूना छावनी बोर्ड के अधीन क्षेत्रों में लाठियों, चाकूओं, पत्थरों या कोई अन्य अस्त्रों को पास रखने पर प्रतिबंध लगा दिया है। यह आदेश 15 जुलाई से सात दिन के लिए लागू रहेगा।

ऐसा समझा जाता है कि उपर्युक्त एहतियात इसलिए जी गई है ताकि अनुसूचित जाति परिसंघ के सत्याग्रह आंदोलन के कारण किसी अप्रिय घटना और शंति और व्यवस्था–भंग से बचा जा सके।

---

1 जय भीम, अगस्त, 13, 1946 पृष्ठ 7

अनुसूचित जाति परिसंघ के सत्याग्राहियों को कैद किया गया

एक सौ चौदह और अनुसूचित जाति सत्याग्रहियों को, जिन्हें कल गिरफ्तार किया गया था, आज जेल भेज दिया गया। इस प्रकार प्रारंभ से कैद किए गए सत्याग्रहियों की कुल संख्या 124 हो गई है।

आज के 114 दल में 13 वें महिलाएं शामिल हैं, जिन्हें प्रत्येक को 15/– रुपये का जुर्माना या जुर्माना न देने पर 15 दिन की साधारण कैद की सजा दी गई थी। महिलाओं ने जेल जाने को तरजीह दी।

101 पुरुष सत्याग्रहियों में से 37 को 30/– रुपये का जुर्माना या जुर्माना न देने पर एक माह की साधारण कैद की सजा दी गई और शेष को 50/7 रुपये जुर्माना या जुर्माना न देने पर दो माह की साधारण कैद की सजा दी गई। उन सभी ने जुर्माना भरने से इंकार कर दिया।

मुकदमा यर्वदा जेल में चला जहां प्रदर्शन कारियों को हिरासत में रखा गया था।

मुकदमे के दौरान न्यायालय में गिरफ्तार किए गए लोगों की ओर से अनुसूचित जातियों के हितों के साथ विश्वास–घात करने के लिए ब्रिटिश सरकार और कांग्रेस पर आरोप संबंधी विवरण पढ़ा गया।

विवरण में कहा गया कि कांग्रेस जिसने अपने आपको प्रजातांत्रिक निकाय के रुप में पथभ्रष्ट किया है उसने पूना पैक्ट के समय और क्रिप्स प्रस्तावों और ब्रिटिश केबिनेट प्रस्तावों के दौरान भी अपने समुदाय को धोखा दिया है। पूना पैक्ट द्वारा मंजूर कर दिया गया संयुक्त निर्वाचक गणों के परिणाम हाल के प्रांतीय निर्वाचनों के दौरान सिद्ध हो गए थे जब अनुसूचित जातियों के सर्वाधिक समर्थन वाले उम्मीदवार हार गए थे और कांग्रेस कठपुतलियां सवर्ण हिंदू मतों से निर्वाचित हो गई थी।

सत्याग्रह के आयोजकों ने बाबा जन चौक पर सत्याग्रह कैंप से एक जलूस भी निकाला। जलूस वैलेजली रोड़ पर रेलवे गुड्स डिपो पर पुलिस द्वारा रोका गया था जो परिषद् हॉल से आधे मील की दूरी पर है।

प्रदर्शन कारियों को श्री जी.एच.काले, सदस्य विधान सभा (बंबई) ने संबोधित करते हुए उनका आहवान किया कि वे अपने आंदोलन को तब तक जारी रखें जब तक वे अपनी लड़ाई को जीत नहीं जाते। श्री काले ने कहा कि उन्हें उनकी मांगों के साथ पूरी सहानुभूति है।

अधिक गिरफ्तारियां

अनुसूचित जाति परिसंघ द्वारा शुरु किया गया सत्याग्रह आंदोलन आज तीसरे दिन भी जारी रहा। पांच से दस लोगों के दल जिला मजिस्ट्रेट के आदेशों की अवज्ञा में, परिषद् हॉल के सामने जारे लगाते हुए और काले झंडे लहराते हुए दिखाई दिए।

पुलिस ने आज दोपहर 2 बजे तक जब विधान सभा का सत्र शुरु हुआ लगभग 50 प्रदर्शन कारियों को गिरफ्तार कर लिया था, जिनमें दो महिलाएं थीं।

सत्याग्रह आंदोलन का पांचवा दिन
अनुसूचित जनजाति परिसंघ स्वयंसेवक गिरफ्तार
नागरिक स्वतंत्रता पर प्रतिबंध पर खेद प्रकट किया

सत्याग्रह आंदोलन के आज पांचवे दिन भी परिषद् हॉल के सामने अनुसूचित जातियों के स्वयं सेवकों का प्रदर्शन जारी रहा। एक घंटे के भीतर परिषद् प्रांगण के प्रवेश द्वार पर पहरे पर खड़ी पुलिस ने लगभग 70 स्वयं सेवकों को गिरफ्तार कर लिया था।

स्वयंसेवक चार से पांच के दलों में बारिश की फुहार में परिषद् हॉल के प्रांगण के बाहर नारे लगाते हुए आए।

आज सुबह उन 122 सत्याग्रहियों का मुकदमा यर्वदा जेल में चलाया गया जो कल प्रतिबंध की अवज्ञा के लिए गिरफ्तार किए गए थे। अपर नगर मजिट्रेट ने सभी को 25/– रुपये से 50/– रुपये तक के जुर्माने की सजा सुनाई जिसके अदा न किए जाने पर 15 से 60 दिनों की साधारण कैद की सजा काटनी होगी। 13 महिला स्वयं सेवकों को हलकी सजा सुनाई गई।

पूना में परिसंघ के नेता श्री.बी.के. गायकवाड़, श्री पी.ए. राजभोज और श्री आर. आर. भोले ने मजिस्ट्रेट द्वारा कल बुलाई गई बैठक में पूना के जिला मजिस्ट्रेट को बताया कि वे अपने सत्याग्रह को चालू रखने के लिए किसी सशर्त प्रस्ताव को स्वीकार नहीं कर सकते और ब्रिटिश सरकार द्वारा उन पर किए गए अन्याय के विरुद्ध और परिषद हॉल के आधे मील के क्षेत्र के भीतर जलूस निकालने और प्रदर्शन करने पर कांग्रेस सरकार के प्रतिबंध के विरोध को जारी रखेंगे। उन्होंने कहा प्रतिबंध जनता की पसंदीदा नागरिक स्वतंत्रताओं पर रोक लगाना है।

सत्याग्रह के आयोजकों के अनुसार, स्वयंसेवकों के नए दल जिन्होंने सत्याग्रह में भाग लेने का प्रस्ताव किया है वे प्रांत के विभिन्न भागों से पूना पहुंच रहे हैं। उन्होंने कहा कि सत्याग्रह के लिए स्वयंसेवकों की कमी नहीं होगी और वे अपना संघर्ष तब तक जारी रखने के लिए तैयार हैं जब तक वे अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर लेते।

केंद्रीय प्रांत सभा के बाहर प्रदर्शन

10,000 लोग जिसमें लगभग 500 महिलाएं शामिल हैं, ने केंद्रीय प्रांत सभा के बाहर प्रदर्शन किया, जब वह संविधान सभा के लिए अपने कोटे के 17 प्रतिनिधियों को निर्वाचित करने के लिए एकत्र हुए इनमें सर्वाधिक रुप से अनुसूचित जाति परिसंघ सदस्य थे। प्रदर्शन कारियों ने संविधान सभा का बहिष्कार करो "कांग्रेस मंत्रालय मुर्दाबाद", हरिजन विधान सभा सदस्यों का बहिष्कार करो और "पूना पैक्ट रद्द करो"। के नारे लगाए।

प्रदर्शन केबिनेट मिशन के प्रस्तावों के विरुद्ध था और प्रदर्शनकारियों ने काले झंडे लहराते हुए शंतिपूर्ण प्रदर्शन किया।

"भारतवाद विवाद पर टाइम्स"

ब्रिटेन अपनी षक्ति से कर सकता है और वास्तव में उसे यह सुनिश्चित करना भी चाहिए कि सलाहकार समिति के समक्ष अल्पसंख्यकों के हितों को ठीक से प्रस्तुत करे जिसकी नियुक्ति संविधान सभा करेगी लेकिन उनके दावों के न्याय पर निर्णय, कल की चर्चिल की भावपूर्ण अपील के बावजूद, अब इस देश के हाथों में नहीं है। ब्रिटिश राजनेता भी विदेश मंत्री और अन्य वक्ताओं की भांति दलित वर्गों का प्रतिनिधित्व करने वाले संगठन जैसे अल्पसंख्यकों के हितों के लिए उदार व्यवहार के लिए वकालत करने के लिए पूर्णतः हकदार हैं। लेकिन भारत की नई स्थिति में सर्वाधिक महत्वपूर्ण यह है कि इस मुद्दे को और अन्य किसी प्रकार के मुद्दों को निपटाने की जिम्मेवारी अब भारतीयों की है।

केबिनेट प्रतिनिधिमंडल की कुटिलता

एन. शिवराज अखिल भारतीय अनुसूचित जाति परिसंघ के अध्यक्ष ने आज एक प्रेस भेंटवार्ता में कहा "मैं सर स्टाफोर्ड क्रिप्स ओर श्री एलेक्जेन्डर के हाउस ऑफ कॉमन्स में अनुसूचित जातियों के संदर्भ में दिए वक्तव्य से हैरान हूं"।

उन्होंने आगे कहाः कांग्रेस के साथ साजिश करके दलित वर्गों की पीठ में छुरा घोंपने और इन्हें राजनीतिक रुप से पूरी तरह खत्म करने का अपराध करने के पश्चात् वे तथ्यों की गलतबयानी करके कि अनुसूचित जातियों का अधिकांश बहुमत कांग्रेस के साथ है ब्रिटिश संसद और ब्रिटिश जनता को गुमराह करने का जघन्य अपराध कर रहे हैं। प्राथमिक निर्वाचनों से यह प्रमाणित हो गया है कि केवल अनुसूचित

जाति परिसंघ को दलित वर्गों का समर्थन प्राप्त है बावजूद इसके कि सवर्ण हिंदुओं ने इसमें बहुत–सी बाधाएं डालने की कोशिश की। कांग्रेस को संतुष्ट करने और अपने स्वार्थ को साधने की चिंता में केबिनेट प्रतिनिधिमंडल ने गुप्त रुप में उन दलित वर्गों को नीचे धकेला है जिन्हें ये वर्षों से संरक्षण और सुरक्षा का वचन दे रहे थे। अनुसूचित जातियां डॉ. अम्बेडकर या श्री गांधी का अनुसरण करती है इस बारे में किसी भी निश्पक्ष अंतर्राष्ट्रीय अधिकरण के किसी भी निर्णय को मैं स्वीकारने को तैयार हूं। निश्चित रुप से केबिनेट प्रतिनिधि मंडल श्री गांधी के भंगी कॉलोनियों में ठहरने के नवीनतम करतब का शिकार नहीं हुआ है। बल्कि मैं यह कह सकता हूं कि यह सारी चीज़ श्री गांधी और केबिनेट प्रतिनिधिमंडल, विशेष रुप से सर स्टाफोर्ड क्रिप्स के बीच एक पूर्वव्यवस्थित मामला था।

II

नागपुर सत्याग्रह

"जय भीम" मेरा नाम

"अनु.जा.परि." मेरी जाति

"दलिस्तान" मेरा निवास स्थान

केंद्रीय प्रांतों के सत्याग्रहियों के सनसनीखेज उत्तर

12 सितंबर, 1946 को कें.प्रा. अनुसूचित जाति परिसंघ के 243 सदस्य गिरफ्तार किए गए जिनमें 6 महिलाएं और 9 लड़के शमिल थे। उनके प्रदर्शन के बाद जब केंद्रीय प्रांत विधान सभा विस्तृत रुप में प्रांतीय बजट पर चर्चा के लिए एकत्र हुई, प्रदर्शन कारियों ने उस समय पुलिस को उत्तर देने का एक अदभुत तरीका अपनाया जब उनके आरोश–पत्र तैयार किए जा रहे थे। उन्होंने कहा "जय भीम" उनका नाम है उनकी जाति अनुसूचित जाति परिसंघ और दलितस्थान उनका निवास स्थान है।

बढ़ती गिरफ्तारियां

13 तारीख को अनुसूचित जाति परिसंघ के प्रदर्शनों के संबंध में 262 व्यक्ति गिरफ्तार किए गए थे। गिरफ्तार व्यक्तियों में 14 महिलाएं और 9 लड़के शामिल थे। एक प्रदर्शनकारी पुलिस की नजरों से बच निकला, लेकिन बाद में वह सभा भवन के बाहरी बरामदे में तब गिरफ्तार किया गया जब वह संदिग्ध परिस्थितियों में घूमता हुआ पकड़ा गया था।

4 सिंतबर को 2003 गिरफ्तारियां

नागपुर में अनुसूचित जाति परिसंघ के सदस्यों ने अपना सत्याग्रह दूसरे दिन भी 4 सितंबर को के.प्रा. सभा–भवन की ओर जाने वाली 7 सड़कों पर जारी रखा। दिन

1 जयभीम, अगस्त, 13, 196 पृ. 8

के दौरान 2003 पुरुषों और 20 महिलाओं ने मजिस्ट्रेट और पुलिस अधिकारियों द्वारा सभा भवन मुख्य प्रवेश दवारों तक जाने से रोकने पर गिरफ्तारियां दी। सभी पुरुष और महिलाएं जो गिरफ्तार किए गए थे उन पर बिना लाइसेन्स के जलूस निकालने पर प्रतिबंध नागपुर में लागू धारा 144 दं.प्र.यं. के अधीन आदेश के उल्लघंन पर संक्षेपतः विचारण किया जाएगा। अठारह नाबालिग लड़के जिन्होंने सत्याग्रह में भाग लिया उन्हें छोड़ दिया गया था। कुछ पुरुष अपने छोटे बिस्तर अपने साथ जेल में उपयोग करने के लिए ले गए थे। अधिकांश गिरफ्तार पुरुषों ने अनुसूचित जातियों के हितों के साथा विश्वासघात के लिए ब्रिटिश सरकार और कांग्रेस मंत्रालय को दोषी ठहराते हुए और हमारे नेता डॉ. अम्बेडकर की प्रशंसा में नारे लगाए।

III

लखनऊ सत्याग्रह
उत्तर प्रदेश अनुसूचित जातियों की अपने अधिकारों के लिए लड़ाई
पुलिस ने शंतिपूर्ण सत्याग्रहियों पर लाठियां चलाई
राजभोज और तिलकचंद गिरफ्तार

यू.पी. अनुसूचित जाति परिसंघ द्वारा शुरु किए गए सत्याग्रह ने उस समय गंभीर मोड़ ले लिया जब सवर्ण हिंदू पुलिस वालों ने अछूत महाला सत्याग्रहियों के साथ अभद्र 64 से व्यवहार किया। सत्तारुढ़ कांग्रेस मंत्रालय द्वारा सामान्य रुप से सत्याग्रहियों और विशेष रुप से महिला सत्याग्रहियों के साथ अमानवीय व्यवहार करने के फलस्वरुप श्री राजभोज, प्रधान सचिव, अखिल भारतीय अनुसूचित जाति परिसंघ ने सत्याग्रह आंदोलन की बागडोर अपने हाथ में लेली और वे 18 अप्रैल को गिरफ्तार कर लिए गए। श्री तिलकचंद कुरील, अध्यक्ष, उ.प्र.अनु.जा.परि. भी गिरफ्तार कर लिए गए। सत्याग्रह के बारे में समाचार हमने अपने पिछले अंक में उ.प्र.अनु.जा. परि. सत्याग्रह डायरी के अधीन प्रकाशित किया है। उपर्युक्त सत्याग्रह की संक्षिप्त रोजमर्रा की रिपोर्ट प्रस्तुत है।

1 जयभीम, 16 सितंबर, 1946, पृ. 7

14 अप्रैल, 1947

तीन नेताओं यथा दादा साहेब फुल्लीदासजी, अनु.जा.परि.के कार्य–समिति सदस्य और नगर आयुक्त, कानपुर, श्रीमती फुल्लीदास और श्री तोताराम, अध्यक्ष, अनु.जा.परि. के साथ 148 सत्यग्राही गिरफ्तार किए गए थे। महिला सत्याग्रहियों ने सभा चैम्बर में घुसकर 15 मिनट के लिए सभा की कार्यवाही को चलाना असंभव कर दिया। महिलाओं का अपमान किया गया और सवर्ण हिंदू पुलिस ने उन्हें घूंसे मारकर बाहर निकालने की कोशिश की और इस प्रकार महिलाओं की चूड़ियां टूट गई। गुस्साई महिला सत्याग्रहियों ने कुछ घुसपैठियों को थप्पड़ मार दिए जो उनका अपमान कर रहे थे। महिलाएं अपने बच्चों को गोद में लेकर सत्याग्रह के लिए गई थीं। यह समाचार लखनऊ सवर्ण हिंदू समाचार–पत्रों में पूर्ण रुप से अप्रकाशित हुआ। इस संघर्ष में दो महिलाओं को चोट पहुंची।

श्री राजभोज ने सत्याग्राहियों को संबोधित किया।

17 अप्रैल, 1947

उत्तर प्रदेश अनुसूचित जाति परिसंघ के सत्याग्रह का यह चौदहवां दिन था। एक सौ व्यक्तियों का एक बड़ा दल जिसमें झांसी, आगरा हमीरपुर और लखनऊ जिलों के लोग और बीस महिलाएं सत्याग्रही थीं, जिन्होंने गोद में बच्चे ले रखे थे, गिरफ्तारियां दी। परिषद् भवन की ओर जाते हुए, सत्याग्राहियों को हुसैन गंज में रोका गया और बाद में वे गिरफ्तार किए गए थे।

सत्याग्रह के शुरु होने से पहले सत्याग्रहियों को अखिल भारतीय अनुसूचित जाति परिसंघ के प्रधान सचिव ने सत्याग्रह कैंप, अहियागंज में यू.पी.एस.सी. परिसंघ के अध्यक्ष श्री तिलकचंद कुरील की अध्यक्षता में संबोधित किया। प्रधान सचिव ने अपने भाशण के दौरान सवर्ण हिंदुओं द्वारा किए गए उन सामाजिक अन्यायों की दयनीय ओर हृदयविदारक कहानियों को बताया जो वे सवर्ण–हिंदू कांग्रेस मंत्रिमंडल की शह पर हिंदू गांवों में बेगुनाह और सदियों से प्रताड़ित अनुसूचित जातियों के लोगों पर कर रहे हैं। इमानवीय अत्याचारों के उदाहरण देकर उन्होंने श्रोताओं को बताया कि अलीगढ़ जिले में चार व्यक्तियों को जला डाला, मेरठ जिले में 12 निर्धन अनुसूचित जातियों के लोगों को गोली मारदी और हरदोई और जलवान जिलों में बहुत से मकानों को आग लगा दी। कोई भी ऐसा दिन नहीं बीतता जब कि स्वर्ण हिंदुओं द्वारा इन बदनसीब अनुसूचित जातियों के लोगों का मारा–पीटा या हत्या नहीं की जाती। फिर भी अछूतों के विधान सभा सदस्य, जो अपने समुदाय के लोगों के प्रतिनिधि हैं, सभा में इस संबंध में कोई आवाज़ नहीं उठाते। उनकी जबान हमेशा के लिए बंद कर दी गई है कैसे अछूतों जैसा गुलाम अपने हिंदू मालिकों के सामने

उनके अत्याचारों के विरुद्ध बोल सकता है? उनके मुंह से निकली कोई भी बात उन्हें ब्राह्मण–स्वर्ग में स्थान पाने से वंचित कर सकती है। विधान सभा सदस्यों की संख्या 20 है। तब भी सवर्ण हिंदुओं के अमानवीय अत्याचारों के विरुद्ध कोई आवाज़ नहीं उठाता। वक्ता ने आगे कहा, हाल में ही अनुसूचित जातियों की महिला प्रदर्शनकारियों को हिंदू कांग्रेस मंत्रिमंडल पुलिस द्वारा अपमानित और फेंक दिया गया था। उनमें से कुछ घायल हो गई थीं। तब भी सवर्ण–हिंदू समाचारपत्रों में कोई समाचार नहीं आया। उच्च अधिकारियों द्वारा उपराधियों के विरुद्ध कोई कार्रवाई नहीं की गई है। पददलित समुदाय के किसी विधान सभा सदस्य ने सभा में काम रोको प्रस्ताव प्रस्तुत नहीं किया। यह सब पूना पैक्ट का नतीजा था, जिसने उन अनुसूचित जातियों को पृथक निर्वाचन क्षेत्र प्रणाली के स्थान पर संयुक्त निर्वाचन क्षेत्र प्रणाली प्रदान की, जिन्होंने 1932 में महात्मा गांधी को उनके हानिकर आमरण अनशन से बचाया था। समय बड़ा बलवान होता है। शिक्षित विश्व के समक्ष यह न्याय को प्रमाणित कर देगा। यदि इसी पुलिस द्वारा किसी सवर्ण–हिंदू महिला पर हमला किया जाता तो सवर्ण–हिंदू समाचार–पत्र हंगामा मचा देते और जमीन आसमान एक कर देते।

उत्तर प्रदेश में अनुसूचित जातियों के लोगों की जनसंख्या 33 प्रतिशत से अधिक है। अनुसूचित जातियों के लोगों का उत्तर प्रदेश में सरकारी नौकरियों में कोई प्रतिनिधित्व नहीं है। कार्यपालिका, न्यायपालिका और शैक्षिक विभागों में कोई प्रतिनिधित्व नहीं है। भारत में अनुसूचित जातियों की स्थिति अमेरिका में हब्शियों और जर्मनी और फिलस्तीन में यहूदियों की स्थिति से बदतर है। यह प्रश्न केवल थोड़े से लोगों से जुड़ा नहीं है बल्कि भारत में करोड़ों अछूतों से जुड़ा हुआ है। अपना भाषण समाप्त करते हुए उन्होंने डॉ. अम्बेडकर के संदेश को उद्धत किया। उन्होंने जनता को समझाया कि अनुसूचित जातियों को यह संकल्प लेना चाहिए कि भावी स्वतंत्र भारत में वे शासक जाति होगी। उन्हें चापलूसी की भूमिका निभाने के लिए मना करना चाहिए या ऐसी स्थिति स्वीकार नहीं करनी चाहिए जिसमें वे स्वामी के सेवक के रुप में माने जाएं।

तिलकचंद और राजभोज गिरफ्तार

अप्रैल 18, 1947

आज सत्यग्रह का पंद्रहवां दिन था। बाज श्री राजभोज, प्रधान सचिव, अखिल भारतीय अनुसूचित जाति परिसंघ ने आगरा, अलीगढ़, कानपुर, टूंडला और लखनऊ से आए पिचहत्तर सत्याग्राहियों के साथ गिरफ्तारी दी। मुख्य प्रमुख श्री तिलकचंद कुरील की पिछली रात सत्याग्रह कैंप पर सरकार द्वारा गिरफ्तार ने लखनऊ और पूरे प्रांत में अनुसूचित जातियों के लोगों को प्रोत्साहित किया। सैंकड़ों

व्यक्ति लखनऊ में परिषद् भवन के सामने गिरफ्तारी देने के लिए आ रहे हैं। यहां तक कि महिलाएं भी पुरुष सत्याग्राहियों से पीछे नहीं है। ऐसे दृष्टांत सामने आए हैं जिनमें अछूत माताएं अपने बेटों को और बहनें अपने भाईयों को गिरफ्तारियां देने के लिए भेज रही हैं।

गिरफ्तारी से पहले श्री राजभोज ने कानपुर के बदलूराम सोनकर को लखनऊ में उत्तर प्रदेश के सत्याग्रह का दूसरा प्रमुख नियुक्त किया।

परिषद् भवन के सामने गिरफ्तारी देने जाने से पहले, उन्होंने विशेष रुप से उत्तर प्रदेश और सामान्य रुप से समस्त भारत के अनुसूचित जातियों के लोगों को निम्न संदेश दिया।

"मैं यह कह सकता हूं कि हिंदुओं द्वारा धर्म–जाति आदि के नाम से जो अत्याचार अनुसूचित जातियों पर किए गए हैं वे कॉलोनाइजरों द्वारा आस्ट्रेलियाई बुशमैन पर क्लू क्लक्स क्लान द्वारा नीग्रों पर और नाजियों द्वारा यहूदियों पर किए गए घोर अत्याचारों से अधिक हैं। यह कुछ नहीं बल्कि हमारे लिए चिरकारी विशात्तीकरण है।

क्या हमें अब यह स्पश्ट हो गया है कि भविश्य में प्रत्येक चीज़ के लिए हमें अपनी शक्ति, संसाधनों और हिम्मत पर निर्भर करना होगा? हमें अपनी लड़ाई अकेले ही लड़नी है, प्रायः यह मामला अनुसूचित जातियां बनाम शेष जातियां हो सकता है। हमने बार–बार कहा लेकिन यह हमें दिया नहीं गया। हमने बार–बार खटखटाया पर दरवाज़ा खोला नहीं गया। षायद हमें तोड़कर दरवाज़ा खोलना पड़ेगा और जो कुछ हम चाहते हैं और हमारा हक है उसे प्राप्त करना होगा। इस प्रकार मैं अपने लोगों के लिए पहले से अत्यधिक कठिनाईयों का अनुमान लगा रहा हूं।

इसका सामना करने के लिए हमें एकमत और एक स्वर से संगठित और मजबूत होना चाहिए। मैं अपने सभी बंधुओं से अपील करता हूं, यहां तक कि उनसे भी जो हमसे दूर रहते हैं, कि एक छत के नीचे आकर, एक आवाज़ में अपनी मांग करें और एक ही झंडे के पीछे चलकर साथ–साथ लड़े।

लेकिन हमें अवश्य ही संगठित होकर मिलकर काम करना है। हमें अवश्य ही लड़ना है और हम लड़ेगे, पूर्णरुप से सिद्धांतों के लिए, खतरों से और हर उस व्यक्ति से जो हमारे रास्ते में आएगा। वर्तमान में उत्तर प्रदेश में चल रहा संघर्ष भारत में भारत में राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में समान मानव अधिकारों के लिए है। उत्तर प्रदेश के अनुसूचित जाति परिसंघ के सत्याग्रह में भागीदारी करने का मेरा कोई विचार नहीं था लेकिन हिंदू–कांग्रेस मंत्रिमंडल के समक्ष हमारी महिलाओं के

साथ अमानवीय व्यवहार और अपमान ने मुझे इस पवित्र संघर्ष में भागीदारी करने के लिए मजबूर कर दिया है। जब तक इस अपमान का बदला नहीं ले लिया जाता अनुसूचित जातियों का कोई भी व्यक्ति चुन नहीं बैठेगा। अब समय आ गया है कि मान्यवर डॉ. अम्बेडकर के नेतृत्व में या तो हम अपने अंतिम लक्ष्य को प्राप्त करने में अपनी दें या वह करें जो हम कर सकते हैं। मैं सत्याग्राहियों से अपील करता हूं कि वे अपनी कार्यवाहियों को अहिंसक रुप में अंजाम दें।

अंत में, मैं उ.प्र.अनु.जा.परि. को छोड़कर अपील करता हूं कि वे इस सत्याग्रह में लखनऊ कोई दल न भेजें क्योंकि यह सत्याग्रह उत्तर प्रदेश विधान सभा के वर्तमान सत्र तक ही चलेगा। उ.प्र.अनु.जा.परि. अकेला ही सत्याग्रह को चलाने के लिए पूरी तरह सक्षम है।

अप्रैल 9, 1947

सत्याग्रह का 16वां दिन

विभिन्न भागों से चार दलों ने गिरफ्तारियां दी। पहला और दूसरा दल झंडा पार्क और अमीनाबाद में गिरफ्तार किया गया। तीसरा और चौथा दल, जिसमें 4 महिलाएं शामिल थीं, केसरबाग के निकट गिरफ्तार किया गया। दलों का नेतृत्व सर्वधी जौहरी लाल, सेवा राम, गोपीचंद, बीजीपत रामजी बस्ती कर रहे थें। हरिजन मंत्री श्री गिरधारी लाल ने नगर मजिस्ट्रेट के साथ सत्याग्राहियों को सत्याग्रह रोकने के लिए समझाया लकिन शीघ्र ही उन्हें मालूम पड़ गया कि उनके समुदाय के लोगों ने उनकी इस बारे में कितनी इज्जत की"।

उत्तर प्रदेश में अनुसूचित जाति सत्याग्रह जारी

21 अप्रैल, 1947

आज सत्याग्रह का 27वां दिन है और अब तक 1285 सत्याग्राही गिरफ्तार किए जा चुके हैं। सत्याग्रही प्रांत के विभिन्न प्रांत के भिन्न प्रांतों में आ रहे हैं, इनमें आगरा, अलीगढ़ और कानपुर से मुख्य हैं।

आगरा के केसरलाल के नेतृत्व में 35 सत्याग्राहियों का पहला दल चौक बाज़ार के पास गिरफ्तार किया गया। इस दल में 17 महिलाएं भी थीं। जब सत्याग्राही चौक बाज़ार पहुंचे पुलिसवाले की संख्या सत्याग्रहियों से अधिक थी, उन्होंने अहिंसक और शांतिपूर्ण सत्याग्रहियों पर लाठियां चलाई, जिसके फलस्वरुप प्रमुख श्री केसर लाल

अपनी पुत्री के साथ गंभीर रुप से घायल हो गए। एक और सत्याग्रही श्री बाबूलाल के सिर में गंभीर चोट आई और वह बेहोश होकर जमीन पर गिर गया। पुलिस उसे वहां से उठाकर उसी स्थिति में निकट के पुलिस स्टेशन ले गई। सर्वदानंदजी के नेतष्त्व में 46 व्यक्तियों का दूसरा दल कैसर बाग के निकट गिरफ्तार किया गया 25–25 का तीसरा और चौथा दल अमीनाबाद के पास गिरफ्तार किया गया था। इन दलों का नेतष्त्व श्री दल लॉतुचे रोड के निकट गिरफ्तार किया गया था जिसका नेतष्त्व आगरा के श्री वालचंद जी कर रहे थे।

अनुसूचित जातियों के लोगों पर पुलिस द्वारा की गई लाठी चार्ज पर अत्यधिक नाराजगी है।

श्री राजभोज, प्रधान सचिव, अखिल भारतीय अनुसूचित जाति परिसंघ, श्री तिलकचंद कुरील, अध्यक्ष, उत्तर प्रदेश अनुसूचित जाति

परिसंघ और आगरा के श्री गोपीचंद और कानपुर के श्री फुल्लीदास जैसे अन्य नेताओं के साथ बदसलूकी और उन्हें सी–क्लास में रखने के समाचार ने प्रांत के अछूतों के बीच नाराजगी और उत्तेजना पैदा कर दी। अछूत अब उस भावी राम राज्य की कल्पना कर रहे हैं जिसमें वे सवर्ण हिंदुओं के वास्तविक गुलाम होंगे।

अप्रैल, 22, 1947

चौक के पास कल पुलिस द्वारा लाठियां बरसाने पर आज अनुसूचित जातियों के बीच अत्यधिक उत्तेजना है। आज विधान सभा तीन दिन के स्थगन के बाद फिर खुली थी। शहर में प्रदर्शन के बजाय अनुसूचित जातियों के सत्याग्रहियों ने परिषद् सभा के सामने प्रदर्शन किया। कानपुर के श्री जोधाराम के नेतृत्व में 30 लोगों के प्रथम दल को, जिसमें 7 महिलाएं थीं, रास्ते में ही गिरफ्तार कर लिया गया था। आगरा के श्री हरिनंदजी के नेतृत्व में 32 व्यक्तियों के दूसरे दल को परिषद् सभा के सामने गिरफ्तार किया गया। 40 सत्याग्रहियों वाला तीसरा दल, जिसमें 4 महिलाएं थीं, को हजरतगंज के निकट गिरफ्तार किया गया। सत्याग्रहियों के प्रमुख नारे निम्न थेः–

1. सवर्ण–हिंदू कांग्रेस मुर्दाबाद।
2. बेगार पद्धति मुर्दाबाद।
3. करो या मरो पृथक निर्वाचन क्षेत्र चाहिएं।
4. पंत मंत्रिमंडल मुर्दाबाद।

1 जयभीम, 27 अप्रैल, 1947 पृष्ठ 1 और 7

5. उ.प्र.विधान सभा हरिजन सदस्य मुर्दाबाद।

यह अत्यधिक आश्चर्यजनक है कि हमारे सत्याग्रह आंदोलन की खबर सवर्ण–हिंदू प्रेस ने प्रकाशित नहीं की। श्री राजभोज, प्रधान सचिव, अखिल भारतीय अनुसूचित जाति परिसंघ द्वारा गिरफ्तारी से पूर्व जारी कथन भी प्रकाशित नहीं किया गया था। सभी नेताओं की सी–क्लास में रखा गया है। यहां तक कि उन्हें समाचार–पत्र पढ़ने की भी अनुमति नहीं है। सवर्ण–हिंदू समाचार पत्रों को यह समझ लेना चाहिए कि वे अपने समाचार–पत्रों में खबर प्रकाशित न करके अनुसूचित जातियों की भावना का दमन नहीं कर सकते। ऐसा करके वे केवल स्वयं का और अपने लोगों को धोखा दे रहे हैं। षीघ्र ही ऐसा दिन आने वाला है जबकि सामान्य हिंदू, समस्त भारत में अनुसूचित जातियों के लोगों के बीच अत्याधिक कटु जागरुकता देखकर बहुत उलझन में पड़ जाएगा।

आज तक गिरफ्तारियों की कुल संख्या 1387 है। आज 102 गिरफ्तारियां की गई।

उ.प्र.अनु.जा. परिसंघ सत्याग्रह

श्री पी.एन. राजभोज को छह मास के कठोर कारावास की सजा

लखनऊ, शनिवार

श्री पी.एन. राजभोज, प्रधान सचिव, अखिल भारतीय अनुसूचित जाति परिसंघ को कल दोशी ठहराकर, श्री बी.डी. सांवल, नगर गजिस्ट्रेट के आदेश का उल्लघंन करने पर छह माह की कैद की सजा दी।

एक और अनुसूचित जाति नेता श्री गोपीचंद पीपल को इसी आरोप पर माह की कठोर कारावास की सजा दी गई।

श्री तिलक चंद कुरील, अध्यक्ष, उ.प्र. अनुसूचित जाति परिसंघ को मजिस्ट्रेट ने छह माह के लिए शांति बनाए रखने के लिए पांच–पांच सौ रुपए की दो जमानतें देने का निर्देश दिया।

"मजिस्ट्रेट ने लगभग उन 60 महिलाओं और बच्चों को चेतावनी के साथ रिहा कर दिया जिन्हें लखनऊ में सत्याग्रह के संबंध में गिरफ्तार किया गया था–ए.पी. आई." ।

---

1 जयभीम, 4 मई, 1947 पृष्ठ 2

परिशिष्ट–VI

पूना पैक्ट लादकर गांधी ने अछूतों का मताधिकार–से वंचित कियाब्रिटिश नेताओं ने गांधीवादी दांवपेजों की कटु आलोचना की

लॉर्ड विन्टरटन ने अनुसूचित जातियों की स्थिति पर हाउस ऑफ कॉमन्स में 16 जुलाई को भारत स्वतंत्रता बिल पर हुए वाद–विवाद के दौरान बोलते हुए कहा कि श्री गांधी द्वारा भारत के संबंध में की गई बहुत–सी हानिकर बातों से एक पूना पैक्ट को लागू करवाने में उनकी सफलता है। अगर वह यह कार्रवाई न करते तो इन लोगों को आज उपलब्ध मताधिकार की अपेक्षा बेहतर मताधिकार मिला होता, लेकिन श्री गांधी ने आमरण अनशन की धमकी दे डाली। यदि अंतरण के बाद उन्होंने पुनः आमरण अनशन की धमकी दी तो इससे ब्रिटिश सरकार का कोई सरोकार नहीं होगा।

यह कहा जा रहा है कि ऐसा करके ब्रिटेन ने भारत को अखाड़ा दे दिया है। अखाड़ा बनाने में सब से बड़ा हाथ श्री गांधी का है और उन्होंने खेद प्रकट किया कि ऐन वक्त पर भी श्री गांधी ने उस कठिन कार्य को कोई महत्व नहीं दिया जिसका निश्पादन एक ओर ब्रिटिश और दूसरी ओर श्री जिन्ना और श्री नेहरु ने किया था।

एक और प्रमुख अनुदान नेता श्री बुचर, जो भारत में अल्पसंख्यकों की समस्या पर बोले उन्होंने कहा,

"अल्पसंख्यकों पर बहुत कम ध्यान दिया गया है, विशेश रुप से समिति चरण पर। उनका मामला उठाना असल में असंभव है, वास्तव में यह करना अत्यधिक कठिन है क्योंकि यह सदन आज भारतीयों को संप्रभुता और सला अंतरण करने का

---

*अवधि पता नहीं चल पाई–संपादक

1. जयभीम, 25 मई, 1947 पृष्ठ 2

निर्णय कर रहा है।

"हम यह भी निर्णय कर रहे हैं कि स्वतंत्रता वास्तविक संविधान निर्माण से पहले प्रदान की जाएगी। इसका आशय है संविधान निर्माण का कार्य संविधान संभाओं के अपने अधिकार में होगा जिसके अधीन अल्पसंख्यकों को रहना होगा।

अनुसूचित जातियों के नेता डॉ. अम्बेडकर, जिन्होंने स्वयं स्वशासन के मामले का कार्य किया, उन्होंने मुझे बताया कि यदि उनके समुदाय के बारे में थोड़ा–सा संकेत कर दिया जाए तो वह लाभप्रद होगा।

"मैं इसलिए विष्वास से कहता हूं कि जब नया संविधान बनेगा तो अनुसूचित वर्गों की स्थिति पर पूर्ण रुप से विचार किया जाएगा।

"कभी–कभी यह कहा जाता है कि ब्रिटेन ने उनके लिए पर्याप्त नहीं किया है। यह सुप्रसिद्ध है कि रानी विक्टोरिया की मूल उद्धघोशणा में यह निहित है कि हमें धर्म और लोगों की आदतों के साथ ज्यादा हस्तक्षेप नहीं करना है, इसी कारण ब्रिटिश उतना भी नहीं कर पाए जितना वे करना चाहते थे।

"लेकिन बाद के वर्शों में विभिन्न युक्तियों से हमने अनुसूचित वर्गों को सुधारने का प्रयत्न किया है और अस्पृष्यता की विभीशिका को कम किया है।

"मताधिकार समिति ने एक निर्वाचक मंडल की सिफारिश की है जिससे अनुसूचित वर्गों को अपने मामलों की स्वयं देखभाल करने का अवसर मिल सकेगा।

पूना पैक्ट

"दुर्भाग्यवश मताधिकार समिति के निर्णयों को उस पूना पैक्ट द्वारा रद्द कर दिया जो श्री गांधी के सब से लंबे अनशन का परिणाम था।

"मैं अब संविधान–निर्माण निकाय के निर्णय को प्रभावित नहीं कर सकता, लेकिन यह सुस्पष्ट है कि पूना पैक्ट के अधीन अनुसूचित जातियों को अपने उन मूलभूत प्रतिनिधियों को निर्वाचित करने का अवसर नहीं मिला जो उनके दृष्टिकोण का वास्तव में प्रतिनिधित्व करते।

"मैं आशा करता हूं कि भारत के भाग या भागों में ऐसा संभव हो सके कि उनको अधिक उपयुक्त निर्वाचन पद्धति मिल जाए"।

अन्य अल्पसंख्यकों का जिक्र करने के पष्चात् श्री बटलर ने कहा: "हम आशा करते हैं कि भावी भारत में अल्पसंख्यकों और उन यूरोपीय लोगों को जो वहां रह

जाएंगे उन्हें नई षासन प्रणाली स्वतंत्र और उपयुक्त अवसर तथा खुशी मिलेगी।

"लेकिन मुसलमानों, खेतिहरों के बीच अल्पसंख्यकों के ऐसे बहुत–से अन्य वर्ग हैं जो राजनीतिक जीवन में न तो घुलते–मिलते हैं और न ही राजनीति में सक्रिय भाग लेते, परंतु जिनके विचार कभी–कभी उन लोगों से नहीं मिलते जो मंचों पर खड़े होकर उन लोगों की दुहाई देते हैं।

लोगों के लिए चिंता

''12 नवम्बर, 1933 को हाउस ऑफ लॉर्डस की रॉयल गैलरी में गोल मेज सम्मेलन के उद्धघाटन के अवसर पर राजा के भाषण में निम्न उदाहरण था:

"मुझे उन बहुसंख्यकों और अल्पसंख्यकों, पुरुषों और महिलाओं शहर वासियों और किसानों, जमींदारों और काश्तकारों, शक्तिशाली और कमज़ोर, धनी और निर्धन, प्रजातियों, जातियों और संप्रदायों के न्यायोचित अधिकारों का ध्यान है जिनसे देश बना होता है। मैं इन बातों के लिए गभीर रुप से चिंता करता हूं"।

"श्री बटलर ने निष्कर्ष कहा इन लोगों और इन चीजों के लिए हम गंभीर रुप से चिंता करते हैं। वे हमारी प्रत्यक्ष देखभाल से बाहर जा रहे हैं। इस अवसर पर हम भावुक हैं और हम उन्हें शुभकामनाएं देते हैं जो सरकार का उत्तरदायित्व और भारतीय लोगों के कल्याण की जिम्मेदारी संभाल रहे हैं"।

1 जयभीम, 23 जुलाई, 1947

परिशिष्ट–VII

भारत में पददलितों को अत्याचारियों के हवाले किया गया।

कॉमन्स–वाद–विवाद में केबिनेट प्लान का भंडाभोड़

वाद–विवाद में अपने भाषण के दौरान श्री चर्चिल ने हाल में हुई लंदन वार्ता के पश्चात् ब्रिटिश सरकार के वक्तव्य का हवाला देते हुए कहाः

"कि यह घोषणा मुझे इस लंबी यात्रा में एक अत्यंत महत्वपूर्ण मील का पत्थर जान पड़ता है।

"ब्रिटिश सरकार भारत में प्रतिवादी दलों के बहुमत वाले 90,000,000 मुसलमानों और लगभग 40,000,000 से 60,000,000 के बीच अछूतों के विशेष संरक्षण के लिए जिम्मेवार है। इस प्रश्न पर उन्हें एक प्रकार से धोखा दिया गया है। कहा यह जा रहा है कि वे विशाल हिंदू समुदाय का एक छोटा–सा भाग है और वे भारतीय जीवन में अल्पसंख्यक समुदाय के रुप में पहचान किए जाने के हकदार नहीं हैं।

"मैं प्रधान मंत्री से अवश्य यह जानना चाहूंगा कि इस विशेष मुद्दे पर सरकार को दृष्टिकोण और इरादा क्या है क्या अछूतों को एक सत्ता के रुप में मानकर उन्हें सत्ता वाले हक प्रदान किए जाएंगे या उन्हें उन के साथ मिला दिया जाएगा, जिन्हें वे अपना अत्याचारी मानते हैं, ताकि उनकी संख्या में और बढ़ोत्तरी हो जाए?"

संविधान सभा

संविधान सभा के स्वरुप के बारे में बात करते हुए उन्होंने कहा कि स्पष्ट रुप से वह भारत के लिए गणतंत्र के निर्माण के लिए षीघ्र कार्यवाही करेगी। श्री चर्चिल ने कहा, वे समस्त भारतीयों की तकदीर पर विचार कर रहे हैं, जबकि एक बहुत बड़े भाग का उसमें प्रतिनिधित्व तक नहीं है।

श्री विलियम कोव (लेबर) बीच में बोलेः क्या श्री चर्चिल मताधिकार को बढ़ाने के पक्ष में हैं?

श्री चर्चिलः "हां, निश्चित रुप से" श्री कोव हंसे मैं हमेशा मताधिकार बढ़ाने के पक्ष में रह हूं। मैं लोगों की इच्छा में विश्वास रखता हूं। लेकिन मैं लोगों की इच्छा को विकृत करने में विश्वास नहीं करता सक्रिय रुप से संगठित एवं सफल अल्पसंख्यक जिन्होंने बल या धोखे या कुतर्क से सत्ता छीनी है वे आगे बढ़ेंगे और विशाल जनता के नाम में उस शक्ति का उपयोग करेंगे जिनके साथ उनका वास्तविक संबंध बहुत पहले खत्म हो चुका है।

"लेकिन केबिनेट मिशन का संविधान सभा के गठन का मई का प्रस्ताव अनिवार्यतः ऐसा प्रस्ताव था जिसका आशय था कि भारत के प्रमुख राजनीतिक दलों को मिलकर और अपने प्रतिनिधियों के जरिए प्रस्तावित संविधान के निर्माण की कोशिश करनी चाहिए"।

श्री चर्चिल ने आगे बोलते हुए कहा "यह पता लगाना अभी भी प्रासंगिक है, यदि महामहिम की सरकार सोचती है कि क्या संविधान सभा का उनके द्वारा प्रस्तावित सम्मेलन शुरु हो गया है"।

उन्होंने आगे कहा, "मैं सकारात्मक समापन के लिए आध्य महसूस करता हूं हालांकि मैं इसकी अभिव्यक्ति नकारात्मक रुन में करुंगा"। (सत्तारुढ़ दल की हंसी)

"इस सब गड़गड़, बनिश्चितता और उठती आंधी के बीच जिन्होंने भारतीय समस्या का अध्ययन वर्षों से किया है उन्होंने अवष्य यह अनुमान लगा लिया होगा कि वर्तमान में इसके केवल तीन विकल्प तीन लोक प्रसिद्ध विकल्प– ब्रिटिश संसद के समक्ष हैं।

"पहला यह है कि निर्दयता के साथ भारत छोड़ दो बिना यह सोचे–समझे कि वहां बाद में क्या हो सकता है। दूसरा यह है कि समझौते के न होने पर, जो अभी होता दिखाई नहीं दे रहा हैं, संसद द्वारा नियुक्त एक निष्पक्ष प्रशासन स्थापित करना चाहिए ताकि उन करोड़ो–लाखों साधारण लोगों के लिए जीवन जा सकें जो संकट घबराहट और भय के साये में खड़े हैं। तीसरा यह है कि भारतीय समुदायों को उनकी मर्जी से ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के अंदर या बाहर पृथक रास्तों पर जाने दें, फिर चाहे कुछ भी हो"।

सवर्ण हिंदू प्रधानता

"तथापि एक बात यह है चाहे कुछ भी हो हमें यह बिल्कुल नहीं करना चाहिए: हमें भारतीय सेना में ब्रिटिश सेना या ब्रिटिश अधिकारियों को 90,000,000 मुसलमानों और 60,000,000 अछूतों पर सवर्ण हिंदुओं की प्रधानता को बनाए रखने का माध्यम और साधन नही बनने देना चाहिए और न ही ब्रिटिश प्रतिष्ठा या प्राधिकार को, यहां तक कि इसके पतन के समय में भी, इन समुदायों में गंभीर और भयानक मतभेदों के होते हुए भी हमें किसी के साथ भी पक्षपात करने में उपयोग में नहीं लाना चाहिए।

"इस प्रकार का व्यवहार अपनाकर लाखों–करोड़ो अल्पसंख्यकों के ऊपर धार्मिक और पार्टी की जीत का दबाव डालने से ऐसा लगेगा जैसे हमारी समस्त नीतियों के प्रतिकूल स्थितियां मिलकर एक हो गई हैं और हम अपने बोझ या मुक्ति, चाहे कितने ही दुखद रुप में हमने नैतिक और वास्तविक उत्तरदायित्व से हमने उप्हें पाया हो, से राहत पाने के बजाय हम और गहरे दुख में डूबते जा रहे हैं।

"इसीलिए हम अनुभव करते हैं कि ब्रिटिश लोगों और भारतीय लोगों को जो वर्तमान में कष्टों और परेशानियों से जूझ रहे हैं–इन मद्दों से स्पष्ट और साफ–साफ रुप में अवगत करा देना चाहिए। इसी कारण हम सोचते हैं कि यह हमारा भारी कर्तव्य है कि हम इस वाद–विवाद की मांग करें। (विपक्ष की जोरदार करतल–ध्वनि)

श्री बटलर ने टोरी की स्थिति स्पष्ट की

विपक्ष की ओर से समापन करते हुए श्री आर.ए. बटलर, पूर्व विदेश अवर मंत्री, भारत ने कहा कि मुझे जो अवसर भारतीय राजनेताओं से भेंट करने के मिले हैं उससे मुझे पक्का विश्वास है कि जो काम मैंने उनके साथ मिलकर किया है उनसे बेहतर गुणी राजनेता विश्व में नहीं थे। इसलिए हमने जो लक्ष्य अपने समझ निर्धारित किया है उसमें कोई मतभेद नहीं है। हमने (विपक्ष) ने हमेशा पूर्व में कहा है कि भारत के लिए स्व–शासन केवल उस संविधान या संविधानों के अंतर्गत प्राप्त किया जा सकता है, जो भारतीय द्वारा निर्मित हों जिसमें भारत के राष्ट्रीय जीवन के मुख्य तत्व परस्पर सहमत पक्ष हैं। यह हमारा पहला दायित्व रहा है। हमारा दूसरा दायित्व यह है कि हम भारत पर अपना अंतिम नियंत्रण उस सरकार या सरकारों को अंतरित कर सकते हैं जो इसे चलाने में सक्षम हों। हम भारत को अराजकता या गृहयुद्ध में नहीं छोड़ सकते। भारतीय स्थिति पर सरकार के पिछले वक्तव्य से यह पता चलता है कि उसने इनमें से पहले दायित्व को स्वीकारा है।

श्री बटलर ने आगे कहा, मैं सरकार के पिछले वक्तव्य का स्वागत करता हूं, विशेष रुप से उसके अंतिम भाग का जिसमें कहा गया है कि यह अपेक्षित नहीं है कि देश के अनिच्छुक भागों पर किसी संविधान को थोपा जाएगा। तथापि, मैं एक या दो बिंदुओं पर स्पष्टीकरण चाहूंगा। वक्तव्य में भारतीय जनसंख्या के बड़े भाग का देश के हिस्सें में रहने का जिक्र किया गया है। ये शब्द हम उन लोगों के लिए नए हैं जो भारतीय मामलों में निपुण हैं। सर स्टाफोर्ड क्रिप्स ने बहस में बोलते हुए बल्कि भिन्न भाषा का उपयोग किया, जिसमें निश्चयपूर्वक कहता हूं कि वह अपनी शब्दावली में पर्याप्त सीमित हैं और इससे भारत में उलझन हो सकती है, यदि इस विषय को स्पष्ट नहीं किया जाता है।

"सर स्टाफोर्ड क्रिप्स ने कहा कि यदि मुस्लिम लींग को संविधान सभा में आने के लिए राजी नहीं किया जा सकता। तब देश के वह भाग जहां पर वे बहुमत में हैं, उन्हें इसके परिणाम से बाध्य नहीं माना जा सकता, मैं नहीं समझता कि सरकार को अपने आपको केवल मुस्लिम लींग तक सीमित रखना चाहिए। यह अधिक उचित होगा कि मुस्लिम पद की अभिव्यक्ति को संपूर्ण मुसलमानों के रुप में माना जाए और मैं आशा करत हूं कि आज उत्तर देने वाले मंत्री इसकी पुष्टि करेंगे कि मुलभाव अभिभावी है और समुदाय और तत्व इसमें विचाराधीन हैं न कि केवल लींग जो समुदाय के प्रतिनिधियों की पार्टी है"।

श्री बटलर ने कहा, विपक्ष केवल मुस्लिम समुदाय के बारे में ही नहीं सोच रहा है बल्कि अन्य अल्पसंख्यकों के बारे में भी जिनका मामला संसद में उठाया गया है और पुनः उठाया जाएगा।

"इसलिएकि ब्रिटेन का मिशन ठीक, ईमानदारी और कामयाबी से अपने कर्तव्य का पालन करने का अनिवार्य जान पड़ता है कि संसद और भारतीय लोगों के बीच उचित समझ स्थापित की जानी चाहिए। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि सभी दृष्टिकोणों को ठीक से प्रस्तुत कर दिया जाना चाहिए हर तथ्य को सामने रख दिया जाना चाहिए।

श्री बटलर ने कहा कि सर स्टाफोर्ड क्रिप्स के भाशण का कोई भाग इतना कम विश्वासप्रद और अधिक निंदनीय नहीं है जितना जल्दबाजी में कि सभा में अनुसूचित जातियों के प्रतिनिधित्व के मामले पेश किया गया है। वह अस बात को कभी भी नहीं समझ पाए कि श्रमिक आंदोलन ने उस स्थिति को सहज स्वीकार कैसे कर लिया जिसमें भारत में निर्धनतम और अत्यधिक अल्प सुविधा प्राप्त लोगों के हितों की अवहेलना करके उन्हें उनके लंबे समय के अत्याचारियों को सौंप दिया और वह

इससे भी चकित हैं कि प्रधान मंत्री भी इस समझौते में सहायक हो गए। सरकार को किसी भी हालत में इस स्थिति को स्वीकार नहीं करना चाहिए था।

श्री (एलेक्जेंडर हस्तक्षेप करते हुए):– क्या श्री बटलर महसूस करते हैं कि प्रांतीय चुनावों में उनके द्वारा उल्लिखित अन्य दो वर्गों के अलावा स्वतंत्र अनुसूचित जातियों का बड़ा अंश निर्वाचित हुआ था और दूसरे, हमें अत्यावश्यक परिस्थिति में कार्रवाई करनी थी जो कि हमने की?

श्री एलेक्जेंडर ने आगे कहा, "मताधिकार केवल पूना पैक्ट नहीं है, लेकिन यह 1935 की सरकार द्वारा 1935 के अधिनियम में सन्निविष्ट किया गया है।

"तीसरे, क्या वह यह सुझाव देंगे कि हम नए मताधिकार का पूर्ण रुप से नया आधार अपनाएं और भारत भर में नई पंजी का संकलन करें और लंबे समय के लिए संभव नए समझौते को टाल दें? क्या हम अब उन तथ्यों का सामना नहीं करेंगे"?

अनुसूचित जाति प्रतिनिधित्व

श्री बटलरः स्वतंत्र सदस्यों के बारे में प्रथम प्रश्न निश्चित रुप से ठीक है। इस प्रश्न की जांच–पड़ताल के दौरान जो भी राय मैं प्राप्त कर सका उससे यह पता चलता है कि असंदिग्ध रुप से कांग्रेस की नियमावली से अनुसूचित जातियां इतनी आतंकित हैं कि उनमें से बहुतों ने कांग्रेस की ओर से खड़े न होकर स्वतंत्र रुप से खड़े होने का निर्णय किया है।

श्री बटलर ने कहा कि उन्हें यह ठीक नहीं लगता कि विधान सभा में अनुसूचित जातियों का प्रतिनिधित्व कांग्रेस के प्रतिनिधि करें सरकार अल्पसंख्यकों को न्याय दिलाने के लिए सलाहकार समिति पर निर्भर कर रही है और उन्होंने पूछा कि क्या समिति के अल्पसंख्यकों से संबंधित निर्णय संविधान में सम्मिलित किए जाएंगे।

यदि भारत में समझौता और आदान–प्रदान की भावना विद्यमान नहीं है, तो सरकार को अत्यंत गंभीर स्थिति का सामना करना पड़ेगा, लेकिन उन्हें विश्वास है कि यदि स्थिति बिगड़ जाती है तो सरकार और आगे नेतृत्व प्रदान करेगी। यदि नई पहल जरुरी सिद्ध होती है, तो यह योजना के सरलीकरण के लिए और बात–चीत के सफल मुद्दे की पूर्व अवधि में ब्रिटिश दायित्वों की स्पष्ट स्वीकृति होनी चाहिए, अभी भी शंति–पूर्ण हल की गुंजायश है, लेकिन यह इस पर निर्भर करेगा कि सरकार कितनी कृतसंकल्प है और कितनी होगी और यह स्थिति के खतरों का कितनी स्पष्टता से अवलोकन करती है।

"हम अब अपने दायित्वों से पीछा नहीं छुड़ा सकते। वे रहेंगे और उनका उपयुक्त निर्वाह करने पर भारतीय लोगों की भावी सुख–शांति निर्भर करती है", श्री बटलर ने यह कहते हुए अपना भाशण समाप्त किया।

बहस पर श्री एलेक्जेंडर का उत्तर

श्री ए.वी. एलेक्वेंडर, मनोनीत रक्षा मंत्री ने बहस का उत्तर देते हुए कहा, कि यह बहस भारत और उसके लोगों के साथ–साथ ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के इतिहास में अत्यंत निर्णायक समय पर हो रही है। उन्होंने भारत में समस्त पार्टीयों के जिम्मेवार नेताओं से कहा कि वे इस बात पर ध्यान दें कि बहस में भाग लेने वाले वक्ताओं के अधिकांश बहुमत ने यही इच्छा व्यक्त की है कि वे यह चाहते हैं कि भारत अपनी स्वतंत्रता सभी संबंधित पक्षों के सदभाव और सहयोग के आधार पर प्राप्त करे।

श्री चर्चिल के इस प्रष्न का उत्तर देते हुए क्या दलित वर्गों का पृथक राजनीतिक सत्ता के समान मानने की सरकार की नीति है, श्री एलेक्जेंडर ने कहा कि 1935 के अधिनियम से दलित वर्गों को पष्थक राजनीतिक सत्ता के रुप में माना गया है और नई सभा में उन्हें इस प्रकार का पृथक्करण दिया जाएगा या नहीं यह विषय संविधान सभा पर निर्भर करता है। उन्होंने घोषित किया कि सरकार यह वांछनीय या दलित वर्गों के हितों में नहीं समझती कि वे इस विषय में सभा पर प्रभाव डालने की कोशि करें। उनका विचार यह है कि अल्पसंख्यक तत्वों के अधिकारों के लिए सुरक्षा प्रदान करने का उचित तरीका यह है कि इस संबंध में इस विधान में प्रावधान किए जाएं।

उन्होंने सदन को याद दिलाते हुए बताया कि केबिनेट मिशन ने कहा था कि जब संविधान सभा अपना कार्य पूरा कर लेगी तो ब्रिटिश सरकार संसद से सिफारिश करेगी कि वह दो विषयों के अधीन नए संविधान को लागू करने के लिए आवश्यक कार्रवाई करे। उनमें से एक विशय अल्पसंख्यकों के संरक्षण के लिए पर्याप्त प्रावधान का है। दोनों प्रमुख दलों ने संविधान में उचित संरक्षण के प्रावधान करने के अपने इरादे को घोषित कर दिया है और सरकार को किसी प्रकार का संदेह नहीं है कि संविधान सभा ऐसा करेगी।

श्री एलेक्जेंडर ने कहा कि वे श्री ह्यूग मोल्सन (अनुदारवादी) से सहमत हैं कि यह सरकार का इरादा है कि अल्पसंख्यकों के संरक्षण के लिए संविधान में अवश्य प्रावधान किया जाना चाहिए। उन्होंने आगे कहाः "मैं समझता हूं कि

डॉ. अम्बेडकर ने इस विषय पर क्रिप्स मिशन के दौरान मजबूती से बहस की थी। पिछले सप्ताह अपने कथन के अंतिम पैराग्राफ में हमने स्पष्ट कर दिया था कि हम अनिच्छुक समुदाय पर किसी ऐसी चीज़ को लादने का इरादा नहीं रखते जिसे वह नहीं चाहता। कांग्रेस भी इसे स्वीकार करती है। अपने 25 मई के कथन में हम इस बात के लिए सहमत हो गए हैं कि संविधान निर्माण का कार्य भारतीय करे बशर्ते अल्प संख्यकों के लिए उचित संरक्षण प्रदान किया जाए हम यह संविधान में चाहते हैं। हम भारतीय लोगों को दिए गए अपने वचनों का पालन करेंगे"।

1 जयभीम, दिनांक 1 जनवरी 1947 पृष्ठ

<u>परिशिष्ट–VIII</u>

गोपनीय

1934 / 34एस.बी.

ज्ञापन सं.

39–बिहार–37

बिहार प्रांतीय दलित वर्ग लींग

विश्वस्त सूत्रों से पता चला है कि जगजीवन राम, बी.एससी., अध्यक्ष, बिहार प्रांतीय दलित वर्ग लींग पटना ने डॉ. बी.आर. अम्बेडकर, बार–एट–ला, राजगृह, दादर बंबई को दिनांक 8 मार्च, 1937 भेजा है। पत्र–वस्तु निम्न प्रकार हैः–

"एकत्र और संगठित हो"

बांकीपुर, पटना, 8 मार्च, 1937

सं. 41

प्रिय डॉक्टर साहेब,

3 मार्च का आपका पत्र प्राप्त हुआ। यदि आपकी जाति पर विवरणिका ब्रोशर पूरी हो गई हो तो कृपया उसकी एक प्रति भेज दें ताकि मैं उसका अनुवाद शुरु कर दूं।

जैसा आपने पत्र में कहा है मैं उन उम्मीदवारों की सूची भेज रहा हूं जिन्होंने चुनाव लड़ा है। मैं स्वीकारता हूं कि हमने कांग्रेस के साथ समझौता किया है और उसके परिणामस्वरुप लींग के 9 व्यक्ति निर्वाचित हुए हैं। उन्होंने लींग की प्रतिज्ञा और कुछ शर्तों के साथ कांग्रेस प्रतिज्ञा पर भी हस्ताक्षर किए हैं। शायद आपको पता है कि यहां बिहार में कांग्रेस के अलावा कोई संगठित दल नहीं है। सर गणेश दत्त सिंह, स्थानीय स्व–शासन मंत्री अपनी पार्टी बनने की कोशिश कर रहे थे लेकिन

बिहार सी– विभाग विशेष शाखा पटना, दिनांक 10 मार्च 1937, विशेष 9 मार्च, 1937 की अधिकारी की रिपोर्ट की प्रति

वह संगठित नहीं कर सके। हमने ऐन वक्त पर यथा 29 अक्तूबर, 1936 को कांग्रेस के साथ समझौता किया और नामांकन पत्र 3 नवम्बर, 1936 तक भरे जाने थे। हम दलित वर्गों ने अपना आंदोलन काफी देर से शुरु किया है और अभी संगठन तैयार नहीं कर पाए हैं। लेकिन हाल में हुए चुनावों से प्राप्त अनुभव से यह पता चलाते है कि यदि हम अपना काम आमागी 5 वर्षों तक चलता रहें तो हम स्वतंत्र रुप से सफलता के साथ अगले चुनाव लड़ सकते हैं।

आप इलाहाबाद के बलदेव प्रसाद जायसवाल को जानते हैं। वह पटना आए हुए हैं और अखिल भारतीय सम्मेलन का आयोजन करना चाहते हैं। यहां उन्होंने समाचार–पत्रों में दिया है कि सम्मेलन की अध्यक्षता दीवान बहादुर श्री निवासन करेंगे और आप सम्मेलन में उपस्थित होंगे। मुझे न सच मालूम है और न ही मैं उस व्यक्ति पर विश्वास करता हूं। पिछले वर्श लखनऊ में सम्मेलन का आयोजन हुआ था और श्री जायसवाल सम्मेलन के आयोजन के प्रमुख व्यक्ति थे। मैं लखनऊ सिर्फ आप से मिलने गया था लेकिन मुझे निराशा ही हाथ लगी। अब वह मेरी सहायता मांग रहे हैं लेकिन मैं उन्हें खुलेआम सहायता नहीं दे सकता और किसी भी प्रकार से कोई और सहायता नहीं कर सकता जब तक मुझे यह नहीं मालूम पड़ जाए कि आप सम्मेलन में भाग लेंगे। यह सम्मेलन 9, 10 और 11 अप्रैल, 1937 को आयोजित किया जाना है। बिहार का कोई व्यक्ति उनके साथ नहीं है। उनका यहां पर कार्यालय केथोलिक चर्च में स्थित है प्रत्येक चीज़ मिशनरियों द्वारा चालाकी से की जा रही हैं।

दलित वर्ग लींग की कार्य–समिति ने 15 अप्रैल और 15 मई, 1937 के बीच पटना में प्रांतीय सम्मेलन बुलाने का निर्णय किया है और इसने आपको आमंत्रित करने का भी निर्णय किया है। लेकिन यदि आप श्री जायसवाल के सम्मेलन में भाग लेने आ रहे हैं, जिसमें मुझे संदेह हैं, हम अपने सम्मेलन की तारीख 12 अप्रैल के आस–पास नियत कर लेंगे। यह पत्र मिलते ही क्या आप मुझे सूचित करेंगे कि आप श्री जायसवाल द्वारा आयोजित सम्मेलन में भाग ले रहे हैं। एक बात और, वह एक सौ से अधिक दलित वर्गों को भी एकत्र नहीं कर पाएंगे। निसंदेह वे हज़ारों मुसलमानों और ईसाइयों को आमंत्रित कर सकते हैं, जैसा उन्होंने लखनऊ में किया था। मैं इस तरीके के सख्त खिलाफ हूं। हमें प्रामाणिक दलित वर्गो के सम्मेलन आयोजित करने चाहिए। आशा है आप मुझे अति शीघ्र उत्तर देंगे।

सादर

आपका

(ह.) जगजीवन राम

बिहार प्रांतीय विधान सभा का चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों की सूची

क्रम सं.	नाम और पता	टिकट	प्राप्त मतों की संख्या
1.	नगजीवन राम, चांदवा आरा	दलित वर्ग लींग कांग्रेस	निर्विरोध
2.	रंबा सावन रबिदास, गोपाल गंज सरन	दलित वर्ग लींग कांग्रेस	निर्विरोध
3.	बालगोविंद भगत, बेतिया चंपारन	दलित वर्ग लींग कांग्रेस	निर्विरोध
4.	शियोनंदन राम ग्रा.मंसूरपुर चंपारन, डाकखाना मर्वन, जिला मुजफ्फरपुर	दलित वर्ग लींग कांग्रेस	निर्विरोध
5.	डॉ. रघुनंदन प्रसाद, सरदार हास्पिटल, मोंगियार	दलित वर्ग लींग कांग्रेस	निर्विरोध
6.	कारु राम, शिक्षक सैंट कोलंबस, कॉलिजिएट, हजारीबाग	दलित वर्ग लींग कांग्रेस	निर्विरोध
7.	राम बरस दास बरसू चमार ग्राम बेल्थू, डाकखाना शहकुंड, जिला भागलपुर	दलित वर्ग लींग कांग्रेस	754
8.	महाबीर दास लालू चक डाकखाना मिर्जानहट	लिपिक वर्गीय	1,700
9.	बिशुनचरण दास रबिदास सहकारी समिति, जिला मनभूम बनाम	पूरुलिया लीग कांग्रेस	1,964
	बनाम		
	गुलू धोबा, ग्राम ममूरज़ोर	लिपिक वर्गीय	2,300
10.	जीतूराम, ग्राम बंसदीह डाकखाना लेशीगंज जिला पलामऊ	लींग कांग्रेस	2,744
	बनाम		
	फागुनी राम, लिपिक, जिला बोर्ड, डाल्टनगंज, जिला पलागऊ	लिपिक वर्गीय	532
11.	राम प्रसाद, प्रधान सचिव, दलित वर्ग लीग, पटना	लींग कांग्रेस	1,473
	बनाम		

	कलार दुसाध	लिपिक वर्गीय	511
12.	सुंदर पासी, ग्राम केस्ता डाकखाना दलसिंहसराय, जिला दरभंगा	कांगेस	निर्विरोध
13.	केशवर पासवान, ग्राम बीहता, डाकखाना बेनीपट्‌टी, जिला दरभंगा	कांगेस	निर्विरोध
14.	सुखारी पासी, चाकंद डाकखाना, जिला गया	कांगेस	निर्विरोध
15.	बुंदी पासी, डाकखाना बारसालींगज जिला गया	कांगेस	निर्विरोध
	बनाम		
	दलीप दुसाध	लिपिक वर्गीय	487
16.	जगलाल चौधरी स्वराज आश्रम, डाकखाना टीकापट्‌टी, पुर्निया	कांगेस	4,789
	बनाम		
	जगतपुर मसुहारलिपिक वर्गीय	1,69	

परिशिष्ट–IX

राज्यों का क्या होगा

"डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने देशी राज्यों और अंतरिम सरकार दोनों को समय पर चेतावनी दी है। भारतीय संघ से अलग राज्यों का कोई अस्तित्व नहीं हो सकता।

संविधानद्धि होने के नाते, डॉ. अम्बेडकर ने आधिकारिक रुप में अंतरिम सरकार को कहा कि वह ब्रिटिश सरकार को अधिसूचित करे कि भारत के लोग कभी भी किसी देशी राज्य को प्रभुता संपन्न स्वतंत्र राज्य के रुप में मान्यता नहीं देंगे।

परंतु यथातथ्य कानून से कुछ अधिक की आवश्यकता होगी ताकि राज्यों के शासकों को उनकी मूर्खता से और उनकी प्रजा को उनके परिणामों से रोका जा सके।

सुस्पष्ट राज्य नीति के बारे में अंतरिम सरकार की क्या शस्तियां है? शस्तियां चौहरी हैं: भारतीय लोगों की इच्छा, राज्य के लोगों की इच्छा, प्रजातंद्ध का वर्तमान प्रभाव और शासकों की अंधाधुंध निरंकुशता।

यह तथ्य है कि सभी षासक प्रजातंत्र के विरुद्ध नहीं हैं। लेकिन तब ये शासक संघ के समर्थक हैं।

सर सी.पी. रामास्वामी अध्यर ने शब्दा डम्बर रुप में कहा, "वेजो हमारे साथ नहीं है, वे हमारे विरोध में हैं"।

यह भारतीय संघ का मार्गदर्श नियम होना चाहिए। सर सी.पी. रामास्वामी का व्यवहार तथापि क्षणिक है। वे स्वयं ट्रावनकोर के भ्रमण पर है। वे एक वर्ष, दो वर्ष या पांच वर्ष वहां रुकें। लेकिन उन्हें कहां से जाना ही है। ट्राइवन कोर की ओर से बोलने का उनका दावा अत्यधिक कमज़ोर है। कोचीन के महाराजा की परिपक्व बुद्धिमानी शीघ्र ही ट्रैवणकोर के भगिनी राज्य पर प्रभावी होगी।

अधिक गंभीर खतरा हैदराबाद का है, जो भारत के केंद्र में फैल रहा है, जहां कोई आकस्मिक प्रधान मंत्री नहीं बल्किस्वयं शासक राजा संघ में प्रवेश को रोक रहा है। हमें यह भूलना नहीं चाहिए कि निजाम ने प्रजातंत्र के सभी दावों को नकार

दिया है। यहां तक कि उसने जो प्रतिनिधि संस्थाएं अपने अधिकार क्षेत्र में स्थापित की हैं वे भी प्रजातंत्र का खंडन हैं। विधानमंडल को सांप्रदायिक व्यवस्था से दूषित प्रकार्यात्मक प्रतिनिधित्व से विकृत कर दिया है। मुख्य मंत्री की नियुक्ति और उसे निकालने का काम परम महामान्य के प्राधिकार और सनक पर किया जाता है।

इन चीज़ों पर अतीत में ध्यान नहीं दिया गया है। निकटतम भविष्य नें भारतीय संघ में आने के लिए हैदराबाद के लोगों को बहुत बाधाओं का सामना करना पड़ेगा।

कांग्रेस नेताओं ने राज्यों की स्थिति पर अपने आपको अत्यधिक पर्याप्त रुप में स्पष्ट कर दिया है। इस या उस दीवान से मिल जाने के लिए कहने से कोई प्रयोजन पूरा नहीं होगा।

उन्हें स्वयं मजबूती और कृतसंकल्प के साथ अपनी कथनी को कार्यान्वित करने की कोशि करनी होगी। देशी राज्य भारत के अभिन्न अंग हैं। संघ उन्हें अपने में अलगाव के टापुओं के रुप में अस्तित्व में रहने की अनुमति नहीं दे सकता।

देशी राज्यों के लोगों ने यह घोषित किया है कि वे संघ के साथ हैं। इस निर्णय को तत्काल प्रभावी बनाना चाहिए। पुनर्मिलन के लिए ब्रिटिश वायसराय या राजाओं पर निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं है। वास्तव में, यह कमजोरी की घबराहट ही होगी यदि इतना मजबूत मामला होने के बावजूद भी कांग्रेसी नेता यह महसूस करें कि उन्हें अपने प्राधिकार को स्थापित करने के लिए किसी की सहायता आवश्यकता है।

जब संविधान सभा की बैठक होगी तब तक अधिकांश देशी राज्य उसमें सम्मिलित हो चूके होंगे। जब से चेम्बर ऑफ प्रिंसेस अस्तित्व में आया है यह एक असाधारण लक्षण है, चूंकि इससे पहली बार देशी राज्यों में, प्रायः जिसे राजसीक्रम प्रिंसली आर्डर के गलत नाम से पुकारा जाता है, फूट पड़ी है जिसने इन्हें भारतीय संघ के पक्ष में बांट दिया है।

कांग्रेसी नेताओं और अन्य राष्ट्रवादियों को इस स्थिति का लाभ उठाना चाहिए और अड़ियल राजाओं का सामना करने के लिए पर्याप्त शक्ति विकसित करनी चाहिए।

अब तत्काल कार्रवाई करने की आवश्यकता है चूंकि पाकिस्तान राज्य बनना अवश्यभावी है। श्री जिन्ना निष्चित रुप से इस अवसर का लाभ उठाने में नहीं चूकेंगे और किसी और को लाभ उठाने नहीं देंगें।

देशी राज्यों की संप्रभुता पर श्री जिन्ना का वक्तव्य निराधार हस्तक्षेप है। श्री जिन्ना ने अपने पाकिस्तान राज्य की मांग की थी वह उन्हें मिल गया है। इसके

बाद उन्हें भारतीय संघ के मामलों में उसी प्रकार बोलने का कोई अधिकार नहीं है जिस प्रकार किसी अन्य विदेशी शासक को।

कायदे–आज़म की देशी राज्यों में गड़बड़ी उत्पन्न करने की कोशिश, उनकी अखिल भारतीय नेता की छवि बनाने की ललक का यह पहला उदाहरण नहीं है। उनके एक अनुयायी के अनुसार उन्होंने मोपलस्तान के आंदोलन का समर्थन किया है, इसका आधार क्या है यह केवल वही जानते हैं।

श्री जिन्ना संविधानिक मामलों में विशेशज्ञ के रुप में बोलते हैं। उनके लिए यह उचित होगा कि वह अपने इस विशेश ज्ञान को उन सांविधानिक गुत्थियों को सुलझाने में इस्तेमाल करें जो पाकिस्तानी सांविधान सभा में उठेंगी।

श्री जिन्ना को यह निश्चय करना होगा कि वे पाकिस्तान राज्य के भावी राज्याध्यक्ष के रुप में कार्य करें या वे संघ में कार्य करने की जिम्मेवारी उठाएं।

ऐसा नहीं है कि श्री जिन्ना को उन मामलों में हस्तक्षेप करने का विशेषाधिकार दिया गया है जिनसे उनका कोई सरोकार नहीं है। संघ में न बने रहने की उनकी पार्टी की इच्छा उन्हें पृथक राज्य मिल गया है। अब वे शेष भारत में समस्याएं उत्पन्न नहीं कर सकते।

कांग्रेस को शीघ्र कार्रवाई करनी होगी। भाषण बाद में दिए जा सकते हैं। युक्तिपूर्ण रुप में, वर्तमान स्थिति बहुत खराब है। यह दुखद होगा यदि कांग्रेस उस समय जागे जब उसे यह ज्ञात हो कि अति आशावाद ने उसकी परेशानियों में इजाफा किया है।

1. द् फ्री प्रेस जरनल दिनांक 5 जून, 1945

परिशिष्ट–X

अम्बेडकर ने राज्यों से भारतीय संघ में शामिल होने के लिए अनुरोध किया
हैदराबाद प्रस्ताव विभाजन द्वारा फ्रूट बाल्कनीकरण की ओर कदम होगा

बंबई, 17 जून, 1947 ए.पी.आई.

"भारतीय राज्यों के पास अपने आपको परमोच्च शक्ति से है। वाइसराय कार्यकारी परिषद् के पूर्व सदस्य और प्रमुख संविधान अधिवक्ता डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने कुछेक भारतीय राज्यों द्वारा अधीनता घोषणा के विरोध में दो हजार शब्दों के अपने वक्तव्य में कहा कि यह तभी संभव है जब भारतीय राज्य संघटक ईकाइयों के रुप में भारतीय संघ में शामिल हो जाएं।

डॉ. अम्बेडकर ने घोषणा की कि राज्यों को यह अनुभव करना चाहिए कि प्रभुता संपन्न राज्यों के रुप में उनके अस्तित्व के लिए यह समझौता पांच वर्ष के भी योग्य नहीं होगा।यह राजाओं के हितों में होगा कि वे भारतीय संघ में शामिल होकर संविधानिक राजा बन जाएं।

डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि स्वतंत्र रहकर और संयुक्त राष्ट्र संघ से मान्यता और संरक्षण की आशा करना ख्याली पुलाव बनाने के समान है। डॉ. अम्बेडकर को शक है कि संयुक्त राष्ट्र संघ भारतीय राज्यों पर भारत के अधिराजत्व के दावे की अवहेलना कर उनको मान्यता प्रदान करेगा।

डॉ. अम्बेडकर ने दृढ़ता से कहा कि यदि ऐसा होता भी है तो संयुक्त राष्ट्र संघ भारतीय राज्यों को बाह्रय आक्रमण या आंतरिक अशांति के विरुद्ध कोई सहायता तब तक प्रदान नहीं करेगा जब तक कि राज्य उत्तरदायी सरकारों का गठन नहीं कर लेते।

निष्कर्षतः डॉ. अम्बेडकर ने कहा, "भारतीय राज्यों की पसंद चाहे कुछ भी हो भारत के लोगों का दायित्व स्पृष्ट है। उनकी ओर से अंतरिम सरकार को महामहिम सरकार को अधिसूचित करना चाहिए कि ब्रिटिश संसद को परमोच्च शक्ति को रद्द करने का नियम पारित करने का कोई अधिकार नहीं है और आगामी विधान में भारत

पर डोमिनियम स्थिति प्रदान करने से संबंधित खंड जोड़ने पर भारत के लोगों को उसे अपनी संप्रभुत्ता के विरुद्ध और इसलिए बातिल और शून्य मानना चाहिए और यह घोषित करना चाहिए कि भारत सरकार कभी भी किसी भारतीय राज्य को प्रभुता संपन्न स्वतंत्र राज्य के रुप में मान्यता प्रदान नहीं करेगी"।

इस वक्तव्य के दौरान डॉ. अम्बेडकर ने टिप्पणी कीः ट्रावण होकर और हैदराबाद द्वारा यह उद्घघोषणा किए जाने पर कि वे 15 अगस्त, 1947 को जब भारत डोमिनियन हो जाएगा, वे अपने आपको स्वतंत्र प्रभुता संपन्न राज्य घोषित करेंगे और अन्य राज्यों द्वारा उनका अनुसरण करने की अभिरुचि से एक नई समस्या उत्पन्न हो गई है, जो हिंदू–मुस्लिम समस्या से अधिक बदतर हो सकती है चूंकि इससे अवष्य ही भारत का और अधिक विभाजन होगा।

दावे का अधिकार

राज्यों द्वारा अपने आपको स्वतंत्र घोषित करने के अधिकार के दावे का आधार केबिनेट मिशन द्वारा जारी 12 मई, 1946 के कथन में विद्यमान है जिसमें कहा गया है कि ब्रिटिश सरकार किसी भी हालत में परमोच्च शक्ति भारतीय सरकार को अंतरित नहीं कर सके है और न करेगी, जिसका आशय है कि क्राउन के साथ संबंधों के कारण राज्यों के जो अधिकार है वे अब नहीं रहेंगे और राज्यों द्वारा परमोच शक्ति को सौंपे गए सभी अधिकार राज्यों को वापिस मिल जाएंगे।

केबिनेट मिशन का कथन कि क्राउन परमोच्च शक्ति अंतरित नहीं कर सका स्पष्टतया राजनीतिक नीति का वक्तव्य नहीं है। यह कानून से संबंधित है और प्रश्न यह हैः क्या यह कानून का सही वक्तव्य है चूंकि यह राज्यों पर लागू होता है?

"केबिनेट मिशन द्वारा निर्दिष्ट प्रस्ताव में कुछ मौलिक नहीं है। क्राउन और भारतीय राज्यों के बीच संबंधों की जांच के लिए 1929 में नियुक्त बटलर समिति द्वारा प्रतिपादित दृष्टिकोण की मात्र पुनरावृत्ति है"।

यह सिद्धांत कि परमोच्च षक्ति किसी भी भारतीय राज्य के अंतरित की जा सकती है अत्यधिक हानिकर सिद्धांत है और अंतर्निहित मुद्दों की निपट नासमझी पर आधारित है।

परमोच्च शक्ति की परिभाषा

केबिनेट मिशन द्वारा परमोच्च शक्ति के संबंध में अपनाई गई स्थिति के विरुद्ध केस को निम्न प्रस्तावों में नियत किया जा सकता है:

(i) परमोच्च शक्ति के चारों ओर से घिरे होने के अत्यधिक गूढ़ार्थ का कारण यह है कि अधिकांश लोगों को यह नहीं मालूम कि इसका अर्थ क्या है। परमोच्च षक्ति केवल क्राउन के परमाधिकार का मात्र दूसरा नाम है। यह सच हे कि क्राउन के परमाधिकार के रुप में परमोच्च षक्ति दो पहलुओं में क्राउन के साधारण परमाधिकार से भिन्न है:

(क) क्राउन के साधारण परमाधिकार का आधार स्टेट्यूटला से भिन्न कामनला में निहित है जबकि परमोच्च शक्ति से उत्पन्न परमाधिकार, प्रथाओं द्वारा अनुपूरक संधिवार्ताओं में निहित है।

(ख) क्राऊन के कामनला परमाधिकार का विस्तार राजा के डोमिनियनों में निवासी सभी प्रजाओं पर और उनमें अस्थाई रुप से विदेशी निवासियों पर होता है जबकि परमाधिकार के रुप में परमोच्च शक्ति का विस्तार केवल भारतीय राज्यों पर है। असंदिग्ध रुप से परमोच्च शक्ति क्राउन के परमाधिकार का अभिन्न अंग है इन भिन्नताओं के होते हुए भी तथ्य यही है कि परमोच्च शक्ति क्राउन का परमाधिकार है।

(ii) परमोच्च शक्ति राजा का परमाधिकार होने पर परमोच्च शक्ति का प्रयोग, सामान्य राय के विपरीत, अंतर्राष्ट्रीय विधि के नियमों के अधीन न होकर ब्रिटिश साम्राज्य की उस राष्ट्रीय विधि के भाग के अधीन है जिसे संविधान का नियम कहते हैं।

(iii) ब्रिटिश साम्राज्य की सांविधानिक विधि के नियमों के अनुसार जबकि परमाधिकार राजा में निहित है, राजा अपने परमाधिकार का प्रयोग अपनी इच्छा से नहीं कर सकता। राजा अपने मंत्रियों की सलाह के बिना स्वतंत्र रुप से इसका प्रयोग नहीं कर सकता। वह इसका प्रयोग केवल मंत्रियों द्वारा उसको दी गई सलाह के अनुसार ही कर सकता है।

परमोच्च शक्ति का अंतरण

"सन् 1983 से 1935 के बीच भारत सरकार से संबंधित संसद द्वारा पारित विभिन्न अधिनियमों में परमोच्च शक्ति के निपटारे के लिए अपनाई गई भिन्न प्रणालियां किसी भी प्रकार से भारतीय लोगों द्वारा परमोच्च षक्ति के प्रयोग के लिए क्राउन को सलाह देने के दावे को प्रभावित नहीं करती या नहीं कर सकती। साम्राज्य की

सांविधानिक विधि के अंतर्गत जब देश डोमिनियन हो जाता है केवल तब ही वह क्राउन को सलाह देने के अधिकार का दावा कर सकता है, और यह तथ्य कि डोमिनियन बनने से पूर्व, क्राउन को भिन्न रुप में सलाह दी गई थी, इसके दावे के लिए कोई बाधा नहीं है। 1935 के अधिनियम के अधीन भारत को उत्तरदायी सरकार प्रदान नहीं की गई थी।

अभी उनके वक्तव्य के अन्य भाग पर विचार करना शेष है जिसमें उन्होंने कहा है कि क्राउन भारतीय सरकार को परमोच्च शक्ति अंतरित नहीं करेगा। केबिनेट मिशन के अनुसार परमोच्च शक्ति जापगत हो जाएगी। यह अत्यधिक विस्मयकारी वक्तव्य है और यह दूसरे सुस्थापित सांविधानिक विधि के नियम के विपरीत है। इस नियम के अनुसार राजा अपने परमाधिकारों को अभ्यर्पित या परित्यक्त नहीं कर सकता। यदि क्राउन परमोच्च षक्ति को अंतरित नहीं कर सकता तो क्राउन उसका परित्याग भी नहीं कर सकता....

एक प्रश्न पूछा जा सकता हैः क्या होगा जब भारत स्वतंत्र होगा? क्राउन लुप्त हो जाएगा और क्राउन को सलाह देने का प्रश्न भी नहीं रहेगा। क्या स्वतंत्र भारत क्राउन के परमाधिकारों को उत्तराधिकार में पाने का दावा कर सकता है? इस प्रश्न के उत्तर के लिए राज्यों में उत्तराधिकार से संबंधित अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्रावधानों को अवश्य ध्यान में रखना चाहए। ओपनहीम ने स्वीकारा है कि उत्तरवर्ती राज्य पूर्ववर्ती राज्य के कुछेक अधिकार उत्तराधिकार में प्राप्त कर सकता है। हॉल की अंतर्राष्टीय विधि से यह पता चलेगा कि अन्य बातों में संधि द्वारा उत्तराधिकार राज्य होगा। परमोच्च शक्ति एक लाभ है जो उसे राजाओं के साथ की गई संधि से मिला है। इसलिए स्वतंत्र भारत परमोच्च शक्ति के उत्तराधिकार के लिए वैध दावा कर सकता है।

1 द् बाम्बे क्रोनिकल, दिनांक, 18 जून, 1948

परिशिष्ट–XI

बंबई में बहिष्कृत हितकारिणी सभा की गतिविधियां

I

बहिष्कृत हितकारिणी सभा निष्पादित कार्यों का सर्वेक्षण

दलित वर्गों के उत्थान के लिए समिति यथा बहिष्कृत हितकारिणी सभा की वार्षिक आम सभा की बैठक इसके मुख्यालय में वर्तमान मास की 18 तारीख को दामोदर ठाकरसे हॉल, पारेल, बंबई में आयोजित की गई थी। वर्ष 1925 के कार्यों की रिपोर्ट से पता चला कि सभा का कार्य तीन गुणा था। दलित वर्गों की शिक्षा के विषय में सभा माध्यमिक शिक्षा पा रहे दलित वर्गों के 15 छात्रों के लिए शोलापुर के निकट छात्रावास का संचालन रुपये 2,669–0–8 की कुल लागत पर कर रही है। छात्रावास में आवास बिल्कुल मुफ्त है। सभा अपने अस्तित्व के प्रथम वर्ष में दलित वर्गों के सांस्कृतिक और आर्थिक उत्थान के लिए अधिक नहीं कर सकी। तथापि, सभा ने नासिक जिले के गांवों के महारों की वतनदारी मामलों से संबंधित शिकायतों का निवारण करने में सहायता की। वर्ष के लिए वित्तीय विवरण से पता चला कि आय रुपये 3,169–1–0 और व्यय रुपये 2,938–13–6 था।

निष्पादित कार्य

सभा ने इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट चॉल, बाइकुला में दलित वर्गों के लिए पुस्तकालय और वाचनालय खोला है। सभा ने पारेल के निकट दलित वर्गों के युवाओं के लिए हॉकी क्लब भी स्थापित किया है। सभा द्वारा दलित वर्गों के छात्रों के एक महत्वपूर्ण संगठन बहिष्कृत विद्यार्थी सम्मेलन का आयोजन किया गया है। यह एक प्रकार से दलित वर्गों के छात्रों का भाईचारा है और यह विद्याविलास नामक मराठी मासिक का संचालन कर रही है जिसमें दलित वर्गों के छात्र लेख भेजते हैं। आर्थिक क्षेत्र में, सभा ने दलित वर्गों के लिए तीन सहकारी बचत और उधार समितियां स्थापित की हैं। आशा है कि वर्ष 1926 के लिए कार्यक्रम की लागत रुपये 25,000 से रुपये 30,000 के बीच पहुंच जाएगी–ए.पी. दलित वर्ग संस्थान से स्मारक पर पी.एस.जी. की

कार्यालय टिप्पणियां। 1926 के पी.पी.केस सं. 34/6 नीचे प्रस्तुत है:–

शिष्टमंडल को पर्ची 'डी' पर रखे हुए महामहिम के उत्तर में चिहनित अंश 'ए' पर विशेश रुप से ध्यान आकर्षित किया जा रहा है

(ह.) एम.सी.बी.

इस पत्र में दो मांगें रखी गई हैं:–

(1) कि केंद्रीय संगठन होने के नाते दलित वर्गों को प्रभावित करने वाले सभी मामलों में सरकार को संस्थान से परामर्श करना चाहिए।

(2) कि महा महिम को संस्थान का मानद संरक्षक बनाकर प्रसन्न किया जा सकेगा।

ये मांगें मुख्य सचिव को शायद उनकी सलाह के लिए भेजी जा सकती हैं।

(ह.) जे.पी.के.

1 जुलाई

---

1 द् बाम्बे क्रॉनिकल, 29 अप्रैल, 1

II

"नीचे सामान्य विभाग से यू.ओ.आर. संख्या तारीख 26 जुलाई, 1926 पढ़ा गया वर्तमान मास की 27 तारीख को

सी.आई.डी.

27 जुलाई, 1926

(1) क्या सभा का गठन निर्धारित कर दिया गया है? यदि ऐसा है तो प्रति प्रस्तुत करें

(2) कितने पदाधिकारी दलित वर्गों से संबंधित हैं?

(3) अभिदान और सदस्यता क्या है?

(4) कृपया क्लार्क रोड पर पुस्तकालय का अवलोकन करके, प्रदान किए गए साहित्य की मात्रा और किस्म तथा किस हद तक यह दलित वर्गों द्वारा उपयोग किया जा रहा है, इस संबंध में रिपोर्ट प्रस्तुत करें। क्या यह सभी के लिए या केवल सभा के सदस्यों के लिए खुला है?

(5) क्या सभा ने चालू वर्ष में कोई अपना कार्यक्रम यहां पर किया है?

(ह.)

---

1 स्रोत सामग्री खंड 1, पृष्ठ 10

III

महोदय,

सामान्य विभाग के संलग्न यू.ओ.आर.सं. दिनांक 26 जुलाई, 1926 के संदर्भ में और उस पर डी.सी.पी. की हिदायतों पर, मैं निम्न रुप में निवेदन करता हूं:–

1. बहिष्कृत हितकारिणी सभा का गठन मुद्रित पुस्तिका में दिया गया है जिसकी प्रति संलग्न है।

2. अध्यक्ष और छह उपाध्यक्ष (वार्षिक रिपोर्ट में ध्वज 'ख' पर) दलित वर्गों से संबंधित नहीं है। प्रबंध परिषद् जिसके सभापति डॉ. अम्बेडकर हैं, उसमें दलित वर्गों के लोग हैं।

3. अभिदान निम्न प्रकार से है:

क. वर्ग उनके लिए जो प्रति वर्ष रुपये 25 या अधिक अदा कर रहे हैं

ख. वर्ग उनके लिए जो प्रति वर्ष रुपये 10 या अधिक अदा कर रहे हैं

ग. वर्ग उनके लिए जो प्रति वर्ष रुपये 5 या अधिक अदा कर रहे हैं

घ. वर्ग उनके लिए जो प्रति वर्ष रुपये 3 या अधिक अदा कर रहे हैं

ड. वर्ग उनके लिए जो प्रति वर्ष रुपये 1 या अधिक अदा कर रहे हैं

ड. वर्ग की सदस्यता की संख्या अधिकाशतः लगभग 200 है। लगभग 10 एसोसिएट सदस्य हैं जिन्होंने रुपये 200 दलित वर्गों के कल्याण के लिए अदा किए थे। वे ठेकेदारों के वर्ग के हैं और दलित वर्गों के नहीं है।

4. क्लार्क रोड़ पर पुस्तकालय 4 माह पूर्व बंबई सुधार न्यास, क्लार्ड रोड के चॉल के दूसरे तल पर रुपये 7–3–0 के किराए के एक छोटे कमरे में खोला गया था। यह बहुत गंदा कमरा था। जिसमे एक टूटा हुआ बैंच, एक टूटी हुई अलमारी जिसमें कोई किताब नहीं थी, एक मेज और एक कुर्सी थी। मेज पर पुराने अखबार जीर्ण–क्षीण अवस्था में विकृत रुप में पड़े थे। उनके पास लगभग 64 पुस्तकें थीं जो अधिकांशतः मराठी भाषा में थीं; उनमें से कुछ सदस्यों को जारी की गई थीं और अन्य दो ट्रंकों में रखी हुई थीं जो सामाजिक सेवा लीग के थे।

सामाजिक सेवा लीग ने 200 पुस्तकों की आपूर्ति दो लोहे के ट्रंकों में की है जिनमें प्रत्येक में लगभग 100 पुस्तकें हैं। पुस्तकालय में अधिकांशतया पुस्तकें

सामाजिक और धार्मिक विशयों से संबंधित हैं, लेकिन कुछेक स्वराज (राजनीतिक) पुस्तकें भी हैं जो मराठी में हैं। दलित वर्गों के लगभग 10 से 12 सदस्य पुस्तकालय कक्ष में औसतन रोज आते हैं। यह सभी के लिए खुला है लेकिन दलित वर्गों के अलावा सामान्यतः अन्य लोग ऐसे स्थानों पर नहीं आते जहां दलित वर्ग आते हैं। संक्षेप में, यदि कोई बाहरी व्यक्ति पुस्तकालय में आए तो उसे यह पता नहीं चलेगा कि यह कक्ष पुस्तकालय के प्रयोजन के लिए उपयोग किया जा रहा है जब तक कि उसे बताया ना जाए।

5. यहां पर कोई ध्यान देने योग्य कार्य निशपादित नहीं किया गया है। एक छात्र छोटे से कागज पर लिखता है और उसे पांडुलिपि में अन्य छात्रों को परिचालित कर दिया जाता है।

बहिष्कृत हितकारिणी सभा का पंजीकरण 1 अप्रैल, 1926 को किया गया था।

सभा से संबंधित रिकार्ड पर पी.पी. प्रस्तुत हैं।

डी.सी.पी.एस.बी.

(ह.)

1 स्रोत सामग्री खंड I पृष्ठ सं. 10–11

“अभिनंदन के साथ वापस।

1. यह सभा, महामहिम गवर्नर के निजी सचिव को भेजे मेरे पत्र सं. एच–3447 दिनांक 9 मार्च, 1926 के विशय से संबंधित थी जब इसने लार्ड इर्विन के आगमन पर उन्हें मानपत्र प्रस्तुत करने की अनुमति के लिए निवेदन किया था।

2. गठन के नियमों की एक प्रति संलग्न है। सभा की सदस्यता संख्या लगभग 200 है जिनमें से लगभग 10 को छोड़कर सभी ड.वर्ग के हैं। तथा कथित पुस्तकालय एक कक्ष है जो क्लार्क रोड में एक सुधार न्यास के दूसरे तल पर स्थित है। अधिकांश पुस्तकों की आपूर्ति सामाजिक सेवा लीग द्वारा की गई है। कुछेक अखबारों की भी आपूर्ति की जाती है और रोजमर्रा उपस्थिति की औसत 10 या 12 है। यह सभी के लिए खुला है लेकिन इसका उपयोग अनन्य रुप से दलित वर्गों के सदस्यों द्वारा किया जाता है। असल में सभा की कोई अन्य गतिविधि नहीं है।

3. इस प्रकार हॉलाकि यह सभी आपत्तियों से मुक्त है, यह संस्था होने का दावा नहीं कर सकती। फिर भी, कोई अन्य संस्था दलित वर्गों का प्रतिनिधित्व करने के लिए इससे बेहतर योग्य नहीं है। अतः दलित वर्गों से संबंधित किसी विशय पर दृष्टिकोण की आवश्यकता हो तो उससे परामर्श करने में कोई आपत्ति नहीं होगी।

4. जहां तक पदाधिकारियों का प्रश्न है प्रबंध परिषद् के सभी सदस्य दलित वर्गों के हैं।

(ह.)

पुलिस आयुक्त

1 यू.ओ.आर.सं. एच–3447 तारीख 11 अगस्त, 1926

परिशिष्ट-XII

बंबई, नवी बंबई, औरंगाबाद, महाड, पंढारपुर, दपोली, नांदेड, पुणे और बंगलौर में पीपुल्स एज्यूकेशन सोसाइटी की संस्थाएं

कालेज

1. सिद्धार्थ कॉलेज ऑफ आर्टस, साइन्स एंड कॉमर्स, बंबई : 1946
2. मिलिंद कॉलेज ऑफ आर्टस, औरंगाबाद : 1950
3. मिलिंद कॉलेज ऑफ साइंस, औरंगाबाद : 1950
4. सिद्धार्थ कॉलेज ऑफ आर्टस, साइंस एंड कॉमर्स, बंबई : 1953
5. सिद्धार्थ कॉलेज ऑफ लॉ, बंबई : 1956
6. डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर कॉलेज ऑफ आर्टस एंड कॉमर्स, औरंगाबाद : 1963
7. डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर कॉलेज ऑफ आर्टस, साइंस एंड कॉमर्स, महाड़ जिला रायगढ़ : 1963
8. डॉ. अम्बेडकर कॉलेज ऑफ लॉ, औरंगाबाद : 1968
9. डॉ. अम्बेडकर कॉलेज ऑफ कॉमर्स एंड इकोनॉमिक्स वाडाला, बंबई : 1971
10. डॉ. अम्बेडकर कॉलेज ऑफ लॉ. वाडाला, बंबई : 1978
11. पीईएस कॉलेज ऑफ फिजिकल एल्यूकेशन औरंगाबाद : 1984
12. डॉ. अम्बेडकर कॉलेज ऑफ आर्टस एंड कॉमर्स, यर्वदा, पुणे : 1985
13. पीईएस इंग्लिश मीडियम स्कूल, यवर्दा, पुणे : 1985
14. पीईएस कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग, औरंगाबाद : 19

डिप्लोमा संस्थान

15. सिद्धार्थ इंस्टीटूयट ऑफ इंडस्ट्री एंड एडमिनिस्ट्रेशन, मुबंई : 1967

हाई स्कूल

16. सिद्धार्थ नाइट हाई स्कूल, मुंबई : 1947
17. मिलिंद मल्टीपर्पज़ हाई स्कूल, औरंगाबाद : 1955
18. मातोश्री रमाबाई अम्बेडकर हाई स्कूल औरंगाबाद : 1965
19. पीईएस सैंकडरी स्कूल एंड जूनियर कॉलेज, नवी मुंबई : 1978
20. नागसेन हाई स्कूल एंड जूनियर कॉलेज नांदेड : 1981
21. नागसेन विद्यालय प्राथमिक शाला नांदेड : 1981
22. पीपुल्स एज्यूकेशन सोसाइटी इंग्लिश मीडियम : 1984
    के.जी. स्कूल, बंगलौर
23. पीईएस प्राइमरी मराठी स्कूल, नवी मुंबई : 19
24. मिलिंद मल्टीपर्पज़ श्री–प्राइमरी एंड प्राइमरी स्कूल और औरंगाबाद : 19
25. गौतम विद्यालय, पंढारपुर, जिला शोलापुर : 19

छात्रावास

26. संत गाडगे महाराज चौरवामेला, विद्यार्थी वासातिगृह, पढारपुर : 1949
27. सिद्धार्थ बिहार हॉस्टल, वाडाला, मुंबई : 1964
28. सूबेदार सावरकर विद्यार्थी आश्रम, महाड, जिला रायगढ़ : 1978

परिशिष्ट–XIII

महामान्य सयाजीराव गायकवाड़ को पत्र

नई दिल्ली,

21 मई, 1946

महामान्य,

सामान्यतः मैं महामान्य को निजी मामले में कष्ट देने का साहस नहीं कर सकता था, लेकिन मामले की परिस्थितियां असाधारण हैं। डॉ. अम्बेडकर ने दलित वर्गों के विशेष हितलाभ के लिए बंबई में कॉलेज के संस्थापन की परियोजना के लिए वित्तीय सहायता के लिए संलग्न अपील मुझे सौंपी है। जैसा महामान्य को ज्ञात है दलित वर्ग अपनी निराशाजनक स्थिति में सहायता के लिए उच्च जातियों के हिंदुओं के अलावा किसी और पर निर्भर नहीं रह सकते; न ही हम शलीनता के साथ इस अपील को पूर्ण रुप में अस्वीकार कर सकते हैं क्योंकि हम उनकी वर्तमान स्थिति के लिए अपने पूर्ण उत्तर दायित्व का परित्याग कर सकते हैं। यह मामला सहायता–योग्य है, चूंकि केवल शिक्षा ही नैतिक और आर्थिक रुप से दलित वर्गों के उत्थान का प्रभावी उपाय है। महामान्य डॉ. अम्बेडकर स्वयं कृतज्ञता के साथ आपके दादा की उदारता के लिए ऋणी महसूस करते हैं और इसीलिए अनुभव करते हैं कि वे अभी भी आपके राजघराने से नैतिक रुप से जुड़े हुए है। वे सोचते हैं कि वे आपको सीधे सहायता के लिए आवेदन करने में असमर्थ हैं, लेकिन चूंकि मैं महामान्य आपको सादर व्यक्तिगत रुप से जानता हूं इसलिए आपको इसकी सूचना देने की जिम्मेवारी मैंने ली है। भारत सरकार कॉलेज को अनुदान सहायता दे रही है और अनेक राजाओं ने भी दान देने का वचन दिया है, लेकिन निधियां अभी भी अत्यावष्यक रुप से जरुरी हैं ताकि परियोजना को उपयुक्त आधार पर चलाया जा सके। महामान्य यदि आप उचित चंदे के साथ उदारता से योजना की सहायता करेंगे, तो डॉ. अम्बेडकर और उनका बदकिस्मत समुदाय दोनों हमेशा के लिए आपके ऋणी हो जाएंगे।

भवदीय,

के.ए.केलुसकर

रत्तू नानक चंद : लिटिल नोन फेसिस्ट्स ऑफ डॉ. अम्बडकर पृष्ठ 233 समाप्त 495–96

खण्ड – 17

भाग – 2

परिच्छेद – 1

लेख – संदेश – प्राक्कथन आदि

(1)

धर्म एवं पुरोहितों को समुचित नियंत्रण में लाया जाए।

लेखक

डॉ. बी.आर. अम्बेडकर, एम.ए., पी.एच.डी.,

डी.एस.सी., बार–एट–लॉ, एम.एल.सी.

बेलगाँम में प्रवास के दौरान मैंने बम्बई में कुछ पारसियों द्वारा संघ के गठन हेतु एक आन्दोलन आरम्भ करने के बारे में सुना है, जिसका मुख्य उद्देश्य यह माना गया है कि भारत के अधिसंख्य शिक्षित युवा इसे तत्परतापूर्वक स्वीकार करेंगे। मुझे नहीं लगता कि पारसी जन–समुदाय की कार्यपद्धति पर चर्चा हेतु मुझे आमंत्रित किया जाएगा। लेकिन मेरे पारसी मित्र आश्वस्त रहें कि हिन्दू पुरोहित वर्ग किसी भी रूप में पारसी पुरोहित वर्ग से नैतिक, शैक्षिक अथवा किसी अन्य प्रकार से औसत पारसी पुरोहित वर्ग के सदस्य से श्रेष्ठ नहीं है।

चक्रगति में गतिरोध

विरासती हिन्दू पुरोहितों के विरुद्ध दोषारोपणों की संख्या अत्याधिक एवं भयावह है। वह हमारी सभ्यता के चक्र में एक बाधा है। मनुष्य पैदा होता है, विवाह करता है, एक परिवार का मुखिया बनता है एवं तब समय आने पर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। पुजारी जिन्न के रूप में दिखाई देता है। उसके स्वयं द्वारा बनाये शास्त्रों एवं स्मृतियों के अनुसार नियत क्रूर नियमों के अतिक्रमण की सजा क्रूरता से दी जाती है जिसे 99 प्रतिशत बर्दाश्त नहीं कर सकते। शैतान पुरोहितों में समाज से निर्वासन या बहिष्कार किये जाने का हथियार स्वयं द्वारा निर्मित किया हुआ है। इस का निष्पादन पुजारी द्वारा निष्ठुरता, निर्ममता एवं क्रूरता से किया जाता है। मुझे यह स्वीकार करना होगा कि काम चलाऊ ब्राह्मण विधि विधान मानवता का एक घृणित प्रतिरूप है। उसके प्रति हमारी जो छवि है, उसे वह भी जानता है। वह अदृश्य शक्तियों एवं निःसहाय व्यक्तियों के बीच बिचौलिये की लज्जाजनक भूमिका निभाता है और इसके माध्यम से आजीविका चलता है। दार्शनिक भलीभाँति पूछ सकते हैं कि क्या यह भ्रष्ट वर्ग दिल से स्वीकार्य है? लेकिन इस प्रश्न का जो भी उत्तर हो, समाज के महत्त्वपूर्ण अवयवों पर आश्रित एवं उनका भक्षण करने वाले परजीवी को बिना रोक एवं नियंत्रण के अब और अधिक कार्य करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। हम

भारत में अंग्रेजों द्वारा किये गए सुधार का अनुकरण करें एवं धर्म तथा पुजारियों को उचित नियंत्रण मं लाएँ तथा उसकी पदवी एवं अनियंत्रित वृद्धि को रोकें।

प्रभावी महत्त्वपूर्ण कार्य

जन साधारण के मध्य प्रचलित अंधविश्वासी प्रथाओं के विरुद्ध प्रभावी कानून बनाया जाना अत्यंत आवश्यक है। अंधविश्वासों का समर्थन पुजारी करते हैं। देवी–देवताओं को अपव्ययी भेंट, मृत्यु पर लम्बी अवधि तक शोक एवं अनेक अनुष्ठान, जन्म एवं विवाहों पर बहुवधि समारोह, असंवेदनशील जातिगत भाव जैसी कुछ अव्यावहारिक एवं निरर्थक प्रथाएँ हैं जिनमें पुजारी आनन्दित होते हैं। जैसे विवाह का आनंदपूर्ण अवसर हो अथवा मृत्यु का अवपूर्ण अवसर पुजारियों द्वारा दोनों में समान रूप से लाभ उठाया जाता है, एक पारसी संवाददाता ने उत्कृष्ट रूप से बताया है कि कुछ पुजारी प्रार्थना करते हैं। ताकि वे अपने शिकार को फंसाने में सफल हों। मेरा मानना है कि पुरोहिताई की बुराइयों की विषय सूची वास्तव में भयावह है। इसके पूर्णतया उन्मूलन को एक ध्येय के रूप में दृष्टिगत रखा जा सकता है लेकिन हम अपने इस सार्वजनिक हित के अभियान को इतनी जल्दी प्रारंभ नहीं कर सकते। मैं कुछ प्रतिष्ठित पारसियों द्वारा संगठित रूप से उठाये गये कदमों का हार्दिक रूप से स्वागत करता हूँ। यह वास्तव में आश्चर्यजनक है कि पारसी समुदाय पुजारियों के जाल में कितना जकड़ा हुआ है।

कुछ पारसी मित्रों द्वारा किये गये आकलन से पाया गया है कि एक निर्धन पारसी परिवार में किसी के जीवित रहने की अपेक्षा उसकी मृत्यु के पश्चात् एक वर्ष तक मृतक के परिवार पर आर्थिक बोझ अधिक होता है। एक पारसी समाचार पत्र में हाल ही में एक व्यक्ति का दृष्टांत दिया गया था जो जीवित रहते हुए बड़ी कठिनाई से एल्युमीनियम का एक गिलास खरीद सका था, लेकिन जब उसकी मृत्यु हुई तो पुरोहित ने दबाव डाला कि उसके अंतिम संस्कार में एक चाँदी का गिलास होना चाहिए। मैंने इसका उदाहरण यह दर्शाने के लिए दिया है कि पारसियों ने अपनी व्यावहारिक बुद्धिमता से भारत को पुरोहितों की छल रूपी बुराई से मुक्ति दिलाने में अग्रणी भूमिका निभाई है एवं मुझे कोई संदेह नहीं है कि सभी प्रबुद्ध हिन्दू, मुसलमान एवं इसाई पुरोहितवाद के उन्मूलन के इस महान एवं उत्कृष्ट कार्य में शामिल होंगे और इसमें उन्हें अपने पारसी भाइयों की तुलना में कम मशक्कत करनी पड़ेगी।[1]

---

[1]:'द बम्बई क्रानिकल, दिनांक नवम्बर–08, 1929''

(2)

बंबई प्रेजीडेन्सी में कानूनी शिक्षा के सुधार पर विचार

द्वारा

डॉ. बी.आर. अम्बेडकर, एम.ए., पी.एच.डी.,

डी.एस.सी., बार–एट–लॉ, एम.एल.सी.

प्रधानाचार्य गवर्नमैंट लॉ कालेज, बम्बई,

बम्बई प्रेजीडेन्सी में कानूनी व्यवसाय में विभिन्न प्रकार के तत्व सम्मिलित हैं। यहाँ पद–प्रतिष्ठा में अंतर के साथ–साथ प्रशिक्षण में भी अंतर है। प्रेजीडेन्सी में कानूनी प्रेक्टिशनरों का छः विभिन्न श्रेणियाँ हैं, यथा–

1. बैरिस्टर–एट–लॉ
2. वकील (मूल क्षेत्र)
3. वकील (अपीलीय क्षेत्र)
4. बॉर काउंसिल के वकील (अपीलीय क्षेत्र)
5. न्यायाभिकर्ता (सालिसीटर)/प्रतिवक्ता एवं
6. मुख्तियार (इनको बम्बई के न्यायालयों में प्रैटिक्स करने का अधिकार है)

पक्टिशनरों की इन छः श्रेणियों में अपेक्षित कानूनी प्रशिक्षण की सीमा में पर्याप्त रूप से भिन्नता है। बैरिस्टर के कानूनी प्रशिक्षण का कार्यकाल तीन वर्ष के साथ एक वर्ष का चैम्बर प्रशिक्षण है। बम्बई विश्वविद्यालय से स्नातक का वकील/अधिवक्ता अपीलीय–क्षेत्र (ए.एस.) के लिये बम्बई विश्व विद्यालय से स्नातक के साथ–साथ किसी मान्यता प्राप्त संस्थान से कानून में 2 वर्ष का अनिवार्य प्रशिक्षण आवश्यक रूप से प्राप्त करना होता है। इस प्रकार कानूनी व्यवसाय करने का पात्र होने के लिए दसवीं के उपरान्त उसे छः वर्ष तक अध्ययन करना होता है। बार–काउंसिल का वकील (अपीलीय क्षेत्र) बम्बई विश्वविद्यालय के वकील (अपीलीय क्षेत्र) से भिन्न, केवल मैट्रिक होता है

तथा उसे किसी मान्यता प्राप्त संस्थान से कानूनी प्रशिक्षण लेना अनिवार्य नहीं है तथा वह किसी अन्तराल के बार–काउंसिल की परीक्षा में बैठने हेतु पात्र है। वकील (मूल क्षेत्र) वकील (अपील क्षेत्र) की तरह कानून में स्नातक (एल.एल.बी.) होता है एवं वह कुल 5 वर्ष का कानूनी प्रशिक्षण प्राप्त होता है। कानून में स्नातक की डिग्री लेने के उपरान्त 2 वर्ष के अन्तराल में प्रत्याशी वकील मूल क्षेत्र की परीक्षा में बैठता है। वह तब तक व्यवसाय करने का पात्र बनता, जब तक कि वह किसी वरिष्ठ प्रेक्टिशनर (अधिवक्ता) के चैम्बर में एक वर्ष का अध्ययन पूर्ण नहीं कर लेता एवं इस प्रकार उसे मैट्रिक करने के उपरान्त कुल 9 वर्ष बिताने पड़ते हैं। न्यायाभिकर्ता (सालिसीटर) फर्म के साथ करारनामे पर हस्ताक्षर करने से करारनामा हस्ताक्षर करने के तीन वर्ष पश्चात् परीक्षा होती है। इस प्रकार यदि कोई स्नातक के पश्चात् फर्म में नियुक्त होता है तो सात वर्ष का प्रशिक्षण और यदि कोई एल.एल.बी. के पश्चात् नियुक्त होता है तो उसे 9 वर्ष का प्रशिक्षण लेना होता है। इन सबमें मुख्तियार सबसे निचले क्रम पर है। इसके लिए उसे न तो कानून में कोई प्रशिक्षण लेने की आवश्यकता है और न ही कोई योग्यता परीक्षा पास करना आवश्यक है। यह स्थिति दो अन्य परिस्थितियाँ विद्यमान होने के कारण और जटिल हो जाती हैं। पहली तो विभिन्न प्राधिकरण जिन के पास कानूनी परीक्षा में बैठने वाले प्रत्याशियों की परीक्षा लेने का अधिकार है। जहाँ तक अपीलीय क्षेत्र के वकीलों की दो श्रेणियों का संबंध है, वहाँ दो विभिन्न प्राधिकरण हैं जिनके पास परीक्षा लेने का अधिकार है। एक श्रेणी की परीक्षा बम्बई विश्वविद्यालय एवं दूसरी श्रेणी की बार काउंसिल द्वारा ली जाती है। वकील (मूल क्षेत्र) एवं सालिसीटर (न्यायाभिकर्ता) के संबंध में परीक्षा लेने वाला निकाय उच्च न्यायालय है। यह अवश्य नोट किया जाये कि परीक्षा लेने वाले ये निकाय, जिनकी वे परीक्षा लेते हैं, उनके अध्यापन का कोई उत्तरदायित्व नहीं लेते। दूसरी परिस्थिति, जो स्थिति की जटिलता को बढ़ाती है। प्रेजीडेन्सी में कानूनी व्यवसायों के मध्य हैसियत की भिन्नता है। वकील (मूल क्षेत्र) एवं बैरिस्टरों के लिये व्यवसाय हेतु सभी विकल्प खुले हैं। वे किसी भी न्यायालय में प्रैक्टिस कर सकते हैं एवं उच्च न्यायालय के भी किसी क्षेत्र में यद्यपि वे केवल न्यायालय में बहस हेतु उपस्थित हो सकते हैं लेकिन न्यायालीन दस्तावेजों को हस्ताक्षरित नहीं कर सकते। वकील (अपीलीय क्षेत्र) उच्च न्यायालय के संबंध में अपीलीय क्षेत्र तक सीमित हैं''। दूसरी ओर, सालिसीटर (न्यायाभिकर्ता) कहीं भी (प्रैक्टिस) कर सकता है, जहाँ तक उच्च न्यायालय का संबंध है, स्थानीय क्षेत्र में वह केवल दस्तावेज संबंधी कार्य कर सकता है, जबकि अपीलीय न्यायालय में वह जिरह के साथ–साथ दस्तावेज संबंधी कार्य भी कर सकता है।

कॉलेज टिप्पणी

हम संतोषजनक रूप से नोट करते हैं कि मि. फिजी, जो डॉ. अम्बेडकर से किसी भी रूप में कम नहीं, जैसे व्यक्ति को कार्यभार सौंपा है। एक प्रतिष्ठित कानूनविद् होने के साथ–साथ, वह अर्थशास्त्र का प्रतिभाशाली छात्र एवं जिसका संवैधानिक कानून पर पूर्ण अधिकार है एवं जिसके व्यक्तित्व की ख्याति भारत के साथ–साथ विदेशों तक फैली हुई है। उसके बारे में और अधिक लिना निरर्थक है। प्रधानाचार्य से अधिक अपेक्षा रखते हुए हमें उसे अभी किंकर्त्तव्यविमूढ़ नहीं बनाना है। हमें प्रतीक्षा करनी चाहिए।

एक ही व्यवसाय में कार्यरत व्यक्तियों के मध्य योग्यता के मामले में, परीक्षा के मामले एवं हैसियत के मामले में इस प्रकार की विभिन्नता एक अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य है। जबकि यह स्वीकार किया जा सकता है कि यह सब अत्यन्त असंतोषजनक होने के साथ–साथ खेदजनक भी है। मैं नहीं समझता कि इस पर तर्क–वितर्क किया जाये क्यों कि इस से समस्या ही खड़ी होती है। चूँकि मैं इस बात को नहीं मानता हूँ कि यह प्रणाली जटिल एवं अतार्किक है क्योंकि इससे भयानक परिणाम उत्पन्न होते हैं कि इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इस स्थिति में अनियमिततयें हैं लेकिन शिक्षा के अन्य क्षेत्रों में भी अनियमिततयें हैं। केवल दो उदाहरण देखें, एक चिकित्सा क्षेत्र तथा दूसरा इंजीनियरिंग व्यवसाय से। बम्बई विश्वविद्यालय ने चिकित्सा अध्ययन के लिए पाठ्यक्रम प्रारंभ किया हुआ है, जिसके उत्तीर्ण करने पर एक व्यक्ति एम.बी.बी.एस. डिग्री धारक बन जाता है। इसके समानान्तर एवं साथ–साथ सरकार द्वारा आयोजित एल.सी.पी.एस. पाठ्यक्रम प्रारंभ किया हुआ है, जिसके पूर्ण किये जाने पर व्यक्ति पर एक डिप्लोमा प्राप्त करने का अधिकारी बनजाता है। बम्बई विश्वविद्यालय ने इंजीनियरिंग का पाठ्यक्रम निर्धारित किया हुआ है, जिसके पूर्ण होने पर सफल प्रत्याशियों को (बी.ई.) इंजीनियरिंग में स्नातक की डिग्री प्रदान की जाती है। विक्टोरिया जुबली तकनीकी संस्थान में भी इंजीनियरिंग का एक पाठ्यक्रम है, जिसकी समाप्ति पर विद्यार्थी को एक डिप्लोमा प्रदान किया जाता है। व्यक्ति जो विश्वविद्यालय से डिग्री प्राप्त करता है, व्यवसाय में प्रैक्टिस करता है, तथा सरकारी एवं गैर–सरकारी दोनों विभागों में रोजगार प्राप्त कर सकता है। इस संबंध में कोई शिकायत नहीं करता क्योंकि प्रत्येक श्रेणी वाले व्यक्ति को अपने प्रशिक्षण के अनुरूप कार्य मिल जाता है। यह बिल्कुल वैसा ही है जैसा कानूनी व्यवसाय में होता है यदि कोई इसके कार्यकलाप को समझना चाहे तो उसको समझ सकता है। मुख्तियार निम्नतम क्रम में फौजदारी न्यायालयों तक ही सीमित है और छुट–पुट मामले ही लेता है। बार काउंसिल के वकील अपीलीय न्यायालय तालुका में उप–न्यायाधीश

एवं उप–मण्डल मजिस्ट्रेट के मुफस्फिल न्यायालय में प्रैक्टिस करने वालों की आँख का काँटा बन जाते हैं। यह तो वकील (अपीलीय क्षेत्र) एवं वकील ओ. एस. (मूल क्षेत्र) हैं जो केवल जिला न्यायालय एवं उच्च न्यायालय में प्रेक्टिस करते हैं। प्रैक्टिस में व्यावसायिक कार्यकलापों पर अपना दृष्टिकोण केन्द्रित करने पर यह नहीं कहा जा सकता कि कानूनी शिक्षा की प्रणाली में कोई गंभीर कमियाँ है। यह सत्य है कि प्रणाली जटिल एवं अव्यवस्थित है, लेकिन केवल जटिलता एवं असंगतता को एक समस्या उत्पन्न करने वाले तत्व के रूप में नहीं लिया जा सकता, विशेषकर जब गुरूत्वाकर्षण के सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति उस कार्य की श्रेणी एवं स्थिति का चुनाव करता है जो उसके प्रशिक्षण के अनुकूल होता है।

कल्पना करते हैं कि यहाँ समस्या है तो मामले के भ्रम को टालने हेतु उसमें कुछ विशेष अन्तर कर देना आवश्यक हो जाता है। कानूनी व्यवसाय में अत्यधिक व्यक्तियों के आने की समस्या को कानूनी शिक्षा की समस्या को आवश्यक रूप से अलग किया जाये। कानूनी व्यवसाय को केवल कुछ व्यक्तियों के लिए आरक्षित करने के आधार पर कानूनी शिक्षा की योजना तैयार करना शिक्षा एवं सामाजिक न्याय की दृष्टि से असमर्थनीय होगा।

यह प्रश्न कि, किस प्रकार की कानूनी शिक्षा दी जानी चाहिए ताकि दक्ष वकील तैयार किया जा सके, यह पूर्णतया शैक्षणिक प्रश्न है, तथा इसका समाधान शिक्षाविदों द्वारा बिना इस बात से प्रभावित हुये किया जाना चाहिए कि अन्ततः क्या परिणाम निकलेगा। यदि कानून को व्यवसाय के रूप में चुनने वालों की संख्या नियत सीमा से अधिक हो जाती है। मेरे विचार से एक अन्तर अवश्य रखा जाये– कानूनी शिक्षा का इस प्रश्न से कोई अन्तर्निहित संबंध नहीं होना चाहिए कि, क्या संस्थानों को कानूनी शिक्षा पूर्ण दिवसीय या अंशकालिक रूप से प्रदान करने का कार्य सौंपा जाता है। यह संभव है कि अंशकालिक रूप से कार्यरत विधि–विद्यालय या विधि–महाविद्यालय के साथ सरलता एवं सहजता से कानूनी शिक्षा की प्रणाली की संकल्पना तैयार की जा सकती है।

इन प्रारम्भिक अवलोकनों के साथ मैं अपने आप से कानूनी शिक्षा के सुधार की समस्याओं पर विचार करने हेतु कुछ प्रश्न पूछता हूँ। यहाँ विचार हेतु कुल चार प्रश्नों का उद्भव होता है :

1. छात्र को अपनी शिक्षा के किस स्तर पर कानून का अध्ययन प्रारम्भ करने की अनुमति दी जानी चाहिए?
2. कानूनी शिक्षा के पूर्ण पाठ्यक्रम हेतु क्या अवधि होनी चाहिए?
3. कानूनी शिक्षा के पूर्ण पाठ्यक्रम के लिये क्या विषय सम्मिलित किये जाने चाहिए?

4. विधि–महाविद्यालय का गठन किस प्रकार किया जाना चाहिये ताकि निर्धारित पाठ्यक्रम पर अधिकतम दक्ष पद्धति से कार्यवाही की जा सके।

मुझे प्रश्न सं. 3 निर्णायक एवं उपयुक्त प्रतीत होता है। शेष तीन प्रश्नों का समाधान इसके सही उत्तर पर निर्भर करता है। बम्बई विश्वविद्यालय द्वारा एल.एल.बी. परीक्षा के लिए नियुक्त परीक्षकों द्वारा समय–समय पर दी गई रिपोर्ट, जिसमें प्रत्याशियों के कार्यों के प्रति उनके विचार भी सम्मिलित किये गये हैं, में इस विषय पर सटीक हल दिया गया है। इन रिपोर्टों के परिशीलन से यह भी ज्ञात होता है कि परीक्षकों ने परीक्षार्थियों के कार्य में निम्नलिखित त्रुटियों पर भी बल दिया है :

1. कानून, जिनका उन्हें अध्ययन करना है, के अन्तर्निहित मूलभूत सिद्धान्तों को सही रूप से समझने के किसी संकेत का अभाव।
2. सामान्य ज्ञान में किसी मूल सिद्धान्तों की पूर्व शिक्षा का अभाव।
3. विषय के सुव्यवस्थित प्रस्तुतीकरण की आवश्यकता।
4. पूछे गये प्रश्न के दिये गये उत्तर की प्रासंगिता में अर्थ का अभाव।
5. तथ्यों, तर्कों व विचारों के वर्णन में विशुद्ध ज्ञान का अभाव।
6. अपने विचारों को स्पष्ट भाषा में व्यक्त करने में विद्यार्थियों की असमर्थता।

निस्संदेह कानून के विद्यार्थियों में अत्यन्त गंभीर त्रुटियाँ हैं एवं इन्हें दूर करने के लिए कुछ आवश्यक कदम उठाये जाने चाहिए। इन त्रुटियों को कैसे दूर किया जा सकता है? हमें सबसे पहले यह समझना चाहिए की ये त्रुटियाँ किस कारण से हैं? मेरे विचार से ये त्रुटियाँ दो कारणों से हैं यथा त्रुटिपूर्ण पाठ्यक्रम एवं शिक्षा प्रदान करने की दोषयुक्त प्रणाली।

शिक्षाविदों के विचार से कानून के अध्ययन में कुछ अन्य विशेष सहायक विषयों का अध्ययन अपेक्षित है, जिसके बिना केवल कानून का अध्ययन व्यवसाय की प्रैक्टिस के लिए अधूरा अध्ययन होना। ये सहायक विषय क्या होने चाहिये, इनका आकलन करना कठिन नहीं होगा यदि हम याद रखें कि एक वकील के पास एक कानूनी मस्तिष्क होना चाहिए जो अपने ज्ञान का प्रदर्शन सार्वजनिक स्थल पर साक्ष्यों के माध्यम से स्पष्ट रूप से कर सके।

अपने वक्तव्य में किये गये व्यंग्य की एक क्षण के लिए उपेक्षा कर दी जाए तो मेरे

विचार से जो कुछ भी व्यक्त किया गया है उसमें सच्चाई का महत्त्वपूर्ण अंश होता है और वकील का यही वास्तविक व्यवसाय है। टिप्पणी के अनुसार वकील का व्यवसाय तर्क करना है, अतः वकील के व्यवसाय में तर्क महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

मैं यह कहने के लिए तैयार हूँ कि एक वकील होने के लिये तर्क–वितर्क एक महत्त्वपूर्ण आधार है। तर्क–वितर्क क्षमता के विकास हेतु अनिवार्य अपेक्षायें हैं :–

क) किसी व्यक्ति की जानकारी एवं समाज में उसका कार्य–व्यवहार कैसा है।

ख) मानव मस्तिष्क की कार्यशीलता की जानकारी।

ग) तार्किक निष्कर्ष तैयार करने हेतु प्रशिक्षित मस्तिष्क।

तार्किक सामर्थ्य की मूलभूत अपेक्षाओं के अतिरिक्त अन्य अपेक्षायें भी हैं जो पूर्णतया अलंकरित हैं परन्तु वे किसी भी रूप में भाषा की शालीनता एवं व्यवस्थित प्रस्तुतीकरण से किसी भी रूप में कम नहीं हैं। यदि सशक्त शब्दों में कहा जाए तो एक वकील के प्रशिक्षण में कानून के अध्ययन के अलावा निम्नलिखित विषयों का अध्ययन अवश्य सम्मिलित किया जाये : (1) समाज शास्त्र (2) मनोविज्ञान (3) तर्क (4) अलंकार शास्त्र एवं सार्वजनिक अभिव्यक्ति की कला एवं (5) भाषा पर अधिकार। कानूनी पाठ्यक्रम की वर्तमान विषय–सूची में इनमें से कोई विषय नहीं है। अतः पहला कदम पाठ्यक्रम में सुधार किया जाए एवं यह देखा जाए कि इन विषयों को इसमें सम्मिलित कर लिया गया है या नहीं।

यदि सुझावानुसार पाठ्य–विषय का विस्तार किया जाता है तो मुझे महसूस होता है कि द्वितीय प्रश्न कि कानूनी शिक्षा के पूर्ण पाठ्यक्रम हेतु क्या अवधि होनी चाहिये तो उसका केवल एक ही उत्तर है कि यह दो वर्ष का पाठ्यक्रम नहीं हो सकता जैसाकि यह अब है। यह दो वर्ष से अधिक का होना चाहिए। वास्तविक रूप में यह अवधि कितनी होनी चाहिये, यह एक ऐसा प्रश्न है जिसमें विचारों में भिन्नता हो सकती है। मेरे विचार से यह अवधि चार वर्ष की होनी चाहिये। मैं 4 वर्ष के इस पाठ्यक्रम को दो–दो वर्षों की दो अवधियों में विभक्त करूँगा। प्रथम दो वर्षों की समाप्ति पर विश्वविद्यालय या इस उद्देश्य हेतु नियुक्त किसी निकाय द्वारा एक परीक्षा आयोजित की जाये एवं इस परीक्षा को कानून में स्नातक की प्रथम परीक्षा के नाम से जाना जाये। दूसरी दो वर्षीय अवधि के अंत में उसी प्राधिकरण द्वारा एक अन्य परीक्षा ली जाये एवं उसे कानून में स्नातक की द्वितीय परीक्षा के नाम से जाना जाये।

मैं अब अपनी योजना के अन्तर्गत कानून में स्नातक के प्रथम भाग एवं द्वितीय भाग के पाठ्यक्रमों के विभाजन के प्रश्न पर चर्चा करूँगा। प्रथम एल.एल.बी. के पाठ्यक्रम में निम्नलिखित विषय सम्मिलित किये जाने चाहियेः–

(1) समाज शास्त्र एवं मनोविज्ञान (2) तर्क एवं वाक्पटुता (3) अंग्रेजी (4) अनुबंधों का कानून (5) कानूनी दर्शनशास्त्र एवं कानूनी सिद्धान्त (6) संवैधानिक कानून (7) भारत सरकार के अधिनियम (8) अपराध का कानून एवं फौज़दारी प्रक्रिया।

वर्तमान में प्रथम व द्वितीय एल.एल.बी. के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम में से संवैधानिक कानून, भारत सरकार के अधिनियम, आपराधिक नियम एवं फौज़दारी प्रक्रिया एवं अनुबंधी विषयों को कम कर शेष विषयों कों द्वितीय एल.एल.बी. के पाठ्यक्रम में सम्मिलित कर दिया जाए। मेरी योजना के विषयों को प्रथम एल.एल.बी.में शामिल कर दिया जाये। मैं द्वितीय एल.एल.बी. के पाठ्यक्रम में निम्नलिखित अधिनियमों को सम्मिलित करना चाहूँगा :–

(1) प्रांतीय एवं महाप्रान्तीय लघुवाद न्यायालय अधिनियम, एवं

(2) बम्बई सिविल न्यायालय अधिनियम।

मैं दीवानी एवं फौज़दारी प्रक्रिया के अध्ययन को समाप्त करने के पक्ष में नहीं हूँ, जैसा कि कॉलेज के अध्ययन पाठ्यक्रम के कुछ सत्रों में सुझाया गया है और मेरी योजना के अनुसार विद्यार्थियों के पास अध्ययन हेतु पर्याप्त समय होगा।

अध्ययन के पाठ्यक्रम एवं अवधि से संबंधित प्रश्नों पर अपने विचारों को प्रकट करते हुए मैं प्रथम प्रश्न कि एक विद्यार्थी को अपनी शिक्षा के कौन से स्तर पर कानून के अध्ययन को आरंभ करने की अनुमति दी जाये, के संबंध में अपने विचार प्रकट करता हूँ। मुझे यह कहने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि विद्यार्थी को मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करने के तत्काल बाद कानून की शिक्षा देनी चाहिए। मैं स्वयं निम्नलिखित प्रश्नों के संतोषजनक उत्तर देने में अपनी असमर्थता के द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ :–

1. कानून के अध्ययन को एक स्नातकोत्तर अध्ययन के रूप में क्यों माना जाना चाहिये?

2. क्या एक कला महाविद्यालय में एक छात्र द्वारा अध्ययन पूर्व–स्नातक पाठ्यक्रम, जो उसे एक काबिल वकील बनाने के लिए प्रारम्भिक तैयारी के रूप में आवश्यक है, का अध्ययन किया है एवं इसके अध्ययन किये जाने के संबंध में परीक्षकों को

हमेशा शिकायत रही है।

प्रथम प्रश्न के संबंध में, यह उल्लेख किया जाता है कि बम्बई विश्वविद्यालय में किसी वैज्ञानिक विषय जैसे इंजीनियरिंग, चिकित्सा, रसायन एवं भौतिकी में किसी डिग्री को स्नातकोत्तर डिग्री के रूप में नहीं माना जाता, जिसमें डिग्री पाठ्यक्रम में प्रवेश लेने से पूर्व कला स्नातक की परीक्षा उत्तीर्ण करना आवश्यक होता है।

केवल कानून को एक अपवाद के रूप में क्यों माना जाना चाहिये। मैं न्यायोचितता के लिये किसी बेहतर आधार का सुझाव नहीं दे सकता। दूसरा, एक छात्र एक कला महाविद्यालय में एक कला–स्नातक की डिग्री प्राप्त करने हेतु अपनी चार वर्षों की अवधि के दौरान क्या अध्ययन करता है। पूर्व अनुमानों में पाया गया है कि कानून के अध्ययन में इसका उसे कोई ठोस लाभ नहीं मिलता, जैसाकि मैंने कहा है कि इस दृष्टिकोण ने कि कानून को एक स्नातकोत्तर अध्ययन के रूप में नहीं लिया जाना चाहिये बल्कि इसे मैट्रिक के बाद आरम्भ कर दिया जाना चाहिए। एक स्नातक अध्ययन के रूप में बम्बई विश्वविद्यालय में वर्तमान स्नातक पाठ्यक्रम में सहजता अथवा विशिष्टता की दृष्टि से अच्छा नहीं है। जिसे एक अच्छा वकील बनने के लिए अध्ययन किया जा सके एवं विशिष्टता की दृष्टि से भी अच्छा नहीं है जो हमें यह मतन बनाये रखने के लिए विवश करे कि कानून का अध्ययन प्रारम्भ करने के लिए पूर्व–अपेक्षा आवश्यक है। मैं उल्लेख करना चाहूँगा कि बैरिस्टर पाठ्यक्रम उर्त्तीण करना स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम नहीं है।

एक मत यह भी है कि विद्यार्थी को इंटरमीडियट के उपरान्त कानून का अध्ययन प्रारम्भ करना चाहिए। यह सुझाव अच्छा है क्योंकि यह पुरानी प्रणाली की ओर ले जाता है जब कानून एक स्नातकोत्तर डिग्री के रूप में नहीं था। मेरे विचार से इस सुझाव को अपनाना दो कारणों से गलती होगी। अनुभव से पता चलता है कि कला स्नातक की डिग्री पर्याप्त रूप से अच्छी नहीं है। इस अनुभव से मुझे प्रतीत होता है कि यह असगंत के बारे में सोचना है। यदि हम इंटरमीडियट के निम्न एवं न्यून स्तर को अपनाये तो हम कानून महाविद्यालय से बी.ए. स्नातक के उच्च एवं बेहतर स्तर से प्राप्त अपरिपक्व वकीलों की अपेक्षा अधिक कुशाग्र वकील बना सकते हैं। यदि कला स्नातक पर्याप्त रूप से उपयुक्त नहीं है तो मैं नहीं समझता कि कैसे मान लिया जाये कि इंटरमीडियट बेहतर होगी। दूसरा एक छात्र को कला विद्यालय में दो वर्षों के लिए क्यों छोड़ दिया जाए, जो उसे कानून के लिये आवश्यक प्रारम्भिक प्रशिक्षण भी नहीं दे सकता। यदि छात्र के प्रारम्भिक प्रशिक्षण में कोई कमी है तो उसे बिल्कुल आरम्भ से अपने अधीन लेकर प्रशिक्षण क्यों नहीं दिया जाता? उसे

कला–महाविद्यालय में दो वर्षों के लिये क्यों भेजा जाता है जहाँ वकील के लिए नियत अध्ययन पाठ्यक्रम की प्रारम्भिक शिक्षा भी प्रदान नहीं की जाती।

मेरे विचार से मैट्रिक के तत्काल उपरान्त विद्यार्थी को कानून का अध्ययन आरम्भ करने की अनुमति प्रदान करने के प्रस्ताव से तीन लाभ होंगे :–

प्रथम लाभ जिसके साथ मैं उत्कृष्टता मूल्य जोड़ता हूँ वह है वर्तमान में एक विद्यार्थी जो विधि–पाठ्यक्रम में प्रवेश लेता है, उसका व्यवसाय हेतु स्वयं को सफल करने के उद्देश्य हेतु कानून के अध्ययन का कोई निर्धारित लक्ष्य नहीं है। वह यहाँ केवल अपने लाभ के साथ एक और डिग्री जोड़ने के उद्देश्य से आता है। यह उसकी अन्तिम शरण स्थली है जहाँ वह आश्रय ले या नहीं अर्थात् यह उसका जीविका उपार्जन का अन्तिम अवसर होता है, जिसे वह अपनाये या नहीं। संभवतः वह विधि महाविद्यालय में इसलिये आता है क्योंकि वह बेरोजगार है और यह नहीं जानता कि इस वक्त वह क्या करें। अपने जीवन के लक्ष्य में अस्थिरता के कारण कानून के छात्र में कोई गम्भीरता नहीं होती है एवं इस कारण से उसका कानून का अध्ययन अव्यवस्थित रहता है। उसे इस पर दृढ़ रहने के लिये विवश किया जाना आवश्यक है। एक छात्र जो कला स्नातक है, उसे इस उद्देश्य में स्थिरता नहीं हो सकती, क्योंकि एक कला स्नातक बी.ए. के रूप में उसके पास अन्य क्षेत्रों के अवसर भी उपलब्ध हैं। मेरी योजना में छात्र की प्रारम्भिक अवस्था में अपनी इच्छा अनुसार कार्य करने हेतु दबाव बनाने का लाभ है और हमारे देश में इस अवस्था में हरेक को अपने व्यवसाय का चुनाव कर लेना चाहिए।

2. मेरे प्रस्ताव का दूसरा लाभ अर्थव्यवस्था एवं दक्षता के सम्मिलित रूप में है। एक छात्र अपनी कानूनी शिक्षा 4 वर्ष में पूरी करेगा। इससे वर्तमान प्रणाली की अपेक्षा दो वर्ष कम लगेंगे। वैकल्पिक सुझाव में भी छः वर्ष अपेक्षित हैं। निर्धन विद्यार्थियों के मतानुसार वर्तमान प्रणाली की तुलना में इस प्रणाली से कोई लाभ नहीं है। प्रशिक्षण की दृष्टि से मैंने यह कहने का साहस जुटाया है कि वर्तमान प्रणाली के साथ–साथ समिति द्वारा सुझाई गई वैकल्पिक प्रणाली मेरी प्रणाली की तुलना में कमजोर है। वर्तमान प्रणाली अध्ययन हेतु केवल दो वर्ष की अनुमति देती है जो कि निःसन्देह अपर्याप्त है। वैकल्पिक योजना में 3 वर्ष की अवधि रखी गई है, लेकिन मेरी योजना में पूरे चार वर्षों की व्यवस्था है अतः दक्षता की दृष्टि से यह दोनों से बेहतर है।

3. तीसरा लाभ यह कि इससे चयन की प्रक्रिया एवं दक्षता लागू होगी। जिनका इस व्यवसाय में प्रविष्टि का कोई निश्चित उद्देश्य नहीं है उन्हें इससे बाहर

> कर दिया जायेगा। केवल निश्चित उद्देश्य रखने वाले ही इसमें प्रवेश लेंगे। इस प्रकार इससे व्यवसाय में अत्यधिक भीड़भाड़ होने पर रोक लगेगी। मैंने इस संबंध में जिनसे चर्चा की है उन्होंने एक आपत्ति करते हुए अपना तर्क दिया है। वह यह है कि एक मैट्रिक पास विद्यार्थी कानून के व्याख्यान को समझने के लिए समर्थ नहीं हो सकता। इसके लिये मैं दोतरफा उत्तर देता हूँ। मेरे मित्र श्री एस.जी. जोशी, एम.ए., एल.एल.बी., बम्बई उच्च न्यायालय के वकील ने मुझे आश्वस्त किया है कि इस आपत्ति में कोई सार नहीं है। जैसाकि परिणाम दर्शाते हैं वे गत कई वर्षों से बार काउंसिल की परीक्षा हेतु कक्षाओं का बखूबी संचालन कर रहे हैं। उन्हें मैट्रिक विद्यार्थियों को कानून की शिक्षा प्रदान करने का अनुभव है एवं इस संबंध में उनके विचारों को काफी महत्त्व देता हूँ। मेरा दूसरा उत्तर यह है कि मेरी योजना के अनुसार एल.एल.बी. पाठ्यक्रम की अवधि दो वर्ष है एवं कानून के अध्ययन को प्रथम वर्ष से आरंभ किये जाने की आवश्यकता नहीं है। इसे दूसरे वर्ष से आरंभ किया जाये।

विधि—महाविद्यालयों के पुनर्गठन के अन्तिम प्रश्न पर आता हूँ इस प्रश्न पर सन् 1898 में नियुक्त एक समिति एवं वर्ष 1915 में नियुक्त एक अन्य समिति, जिसे चंदावरकर कमेटी के नाम से जाना जाता है, द्वारा विचार किया गया था एवं प्रस्ताव रद्द कर दिया गया था। मैं मानता हूँ कि विधि—महाविद्यालय को पूर्ण दिवसीय बनाने के प्रस्ताव के विरुद्ध मेरा विचार भेदभावपूर्ण है। यह सच्चाई है कि वर्तमान में काफी छात्र, जो कानून का अध्ययन कर रहे हैं, दिन के समय अपनी आजीविका अर्जन हेतु कार्य कर रहे हैं। वास्वत में अधिकतर छात्रों के लिये कानूनी—शिक्षा संभव नहीं हो सकेगी यदि वे अध्ययन के दौरान अपनी जीविका अर्जित करने की स्थिति में नहीं होंगे। यदि अध्ययन की कुल अवधि को बढ़ाकर 6 वर्ष कर दिया जाता जैसाकि वर्तमान में हो रहा है तब भी मैं महाविद्यालय को पूर्ण दिवसीय बनाने के प्रस्ताव का विरोध करूँगा। मेरे विचार से कोई भी शिक्षाविद् शिक्षा की ऐसी पद्धति की योजना बनाने में न्यायोचित नहीं होगा जो अभिभावकों पर एक विद्यार्थी की पढ़ाई का भार छः वर्षों के लिए लाद दिया जाये। लेकिन वास्तविकता को दृष्टिगत रखते हुए मेरे विचार से पाठ्यक्रम समापन के लिए केवल चार वर्ष ही अपेक्षित हैं, इस तथ्य को भी दृष्टिगत रखा जाए कि छात्र किस हद तक अपरिवक्ता के स्तर पर ही अध्ययन प्रारंभ करता है मैं अपने दृष्टिकोण परिवर्तन करते हुए यह अनुभव करता हूँ कि पूर्णकालिक महाविद्यालय की नितात आवश्यकता है।

महाविद्यालय के कर्मचारियों के संबंध में इसे दो भागों में विभाजित करूँगा—

शिक्षक एवं प्राध्यापक। मैं चाहता हूँ कि कानून की वास्तविक पढ़ाई व्यवसाय की प्रैक्टिस करने वाले सदस्यों में से चुने हुए व्यक्तियों द्वारा कराई जानी चाहिए। व्यवसाय प्रैक्टिस करने वाले सदस्यों से पारस्परिक विचार–विमर्श पर ही चलता है। उसे व्यावहारिकता के पक्ष में प्रोत्साहित किया जाये। केवल प्रैक्टिस करने वाले सदस्यों के सम्पर्क से ही उसके प्रशिक्षण में व्यावहारिक रूप से प्रोत्साहन मिलेगा। अतः प्राध्यापक स्टाफ के स्थायी सदस्य होना अपेक्षित नहीं है। केवल प्रधानाध्यापक एवं शिक्षक स्टाफ के सदस्य होने चाहिए। शिक्षकों का कार्य छात्रों को पढ़ाना तथा परीक्षा के लिए तैयार करना होना चाहिए एवं प्रधानाचार्य केवल व्याख्यान देने का कार्य करेंगे।

स्टाफ को दो श्रेणियों में विभाजित करने का उद्देश्य मुख्य रूप से शिक्षण प्रणाली में त्रुटियों को दूर करना है। शिक्षण प्रणाली में वर्तमान प्रचलित दोष विधि महाविद्यालय में पढ़ाने का अनुभव रखने वाले किसी भी व्यक्ति को सुगमता से स्पष्ट हो जाएगा। वर्तमान प्रणाली के अन्तर्गत छात्र द्वारा शिक्षा का जो अंश ग्रहण किया जाता है वह प्राध्यापकों द्वारा दिये गये व्याख्यानों के नोट लिखना ही होता है।

यह प्रणाली अधिकतम विद्यार्थियों को विभिन्न अधिनियमों के प्रावधानों से परिचित कराती है। लेकिन यह संदेहास्पद है कि क्या मात्र व्याख्यान देने की प्रणाली से विद्यार्थियों के मस्तिष्क में इतना प्रशिक्षण पर्याप्त रूप में प्राप्त हो जाता है जो प्रैक्टिस के दौरान उत्पन्न तथ्यों की जटिलता में कानूनी सिद्धांतों को लागू करने में समर्थ हो सके। प्रणाली में ऐसा कुछ नहीं है जो विद्यार्थियों को निर्धारित पाठ्यपुस्तकों के पठन द्वारा व्याख्यानों के अनुसरण हेतु विवश करें, ऐसा न होने के परिणामस्वरूप विद्यार्थी परीक्षा की तिथि से कुछ दिनों पूर्व तक कुछ भी पढ़ाई नहीं करता एवं तब वह पढ़ाई के अधिकतम हिस्से को पूरा करने हेतु नोट्स एवं पुस्तकों को कंठस्थ करने का सहारा लेता है।

कानून में शिक्षण देने की उपयुक्त प्रणाली के बारे में विभिन्न विचार हैं। कुछ केस प्रणाली को तथा अन्य व्याख्यानों द्वारा अनुपूरक पाठ्यपुस्तक प्रणाली को प्रमुखता देते हैं। कोई भी दावे से नहीं कह सकता कि दोनों में से कौन–सी प्रणाली सही है? शिक्षण की पद्धति को सामान्यतया शिक्षकों के व्यक्तिगत विवेक पर छोड़ दिया जाना चाहिए। लेकिन मेरा विश्वास है शिक्षकों की जानकारी के लिए कुछ सकारात्मक निर्देश दिये जाने आवश्यक हैं कि वर्तमान प्रणाली त्रुटिपूर्ण है एवं प्रयास अधिक करने होंगे और वे शिक्षित होते हुए प्रशिक्षित भी होंगे। मेरी यह राय है केवल व्याख्यानों की बजाय व्याख्यान एवं शिक्षण को सम्मिलित अनुपूरक के रूप में नहीं माना जाए। नये एवं बेहतर श्रेणी के वकील तैयार करने की महाविद्यालयों से अधिक आशा नहीं की जा सकती।

मेरे विचार से कानूनी शिक्षा की पद्धति में सुधार अन्य दिशाओं में सुधार के साथ किया जाना चाहिए :–

1. कानून में विभिन्न परीक्षाओं को समाप्त कर दिया जाना चाहिए तथा इसके स्थान पर सभी पेशेवरों के लिए एक संयुक्त परीक्षा आयोजित की जानी चाहिए तथा विधिवेता (अपीलीय क्षेत्र) एवं विधिवेता (मूल क्षेत्र) के मध्य कोई अन्तर पाया जाता है तो उसे समाप्त कर दिया जाना चाहिए। यदि भिन्नता बनाये रखी जाती है तो यह व्यवसायी के विकल्प पर होनी चाहिए और उसके सनद् के लिये आवेदन करने पर उसे इस निर्णय हेतु बुलाया जा सके कि वह विधिवेता (अपीलीय क्षेत्र) या विधिवेता (मूल क्षेत्र) अथवा एक न्यायाभिकर्त्ता के रूप में प्रैक्टिस (व्यवसाय) करेगा।

2. यहाँ एक सांझी परीक्षण संस्था होनी चाहिए। पुनर्गठन की इस योजना के एक भाग के रूप में मैं सोचता हूँ कि कानूनी शिक्षा के पर्यवेक्षण के साथ–साथ कानून में परीक्षा आयोजित करने के लिए भी एक कानूनी शिक्षा परिषद् स्थापित की जानी चाहिए। इस संस्था में निम्नलिखित सम्मिलित होने चाहिए :–

क) विश्वविद्यालय के प्रतिनिधि।

ख) उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के प्रतिनिधि।

ग) बार के प्रतिनिधि।

घ) विधि–महाविद्यालयों के प्राध्यापकों के प्रतिनिधि।

ड.) जनता के प्रतिनिधि।

मैं बार कांउसिल को परीक्षा का कार्य सौंपने के लिए तैयार नहीं हूँ। काउंसिल से ट्रेड यूनियन की मानसिकता विकसित होने का खतरा है। कानूनी शिक्षा की सम्पूर्ण प्रणाली के लिये यह घातक होगा यदि परीक्षा आयोजन में यह मानसिकता एक कार्यशील ताकत का रूप ले लेती है। परीक्षा की इस पद्धति ने पहले ही कानून के अध्ययन में सभी हितों को समाप्त कर दिया है। इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि इस दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम हेतु कोई उत्तेजना न हो।

3. सनद प्रदान करना केवल परीक्षा पास करने पर आधारित नहीं होना चाहिए। इसे तीन शर्तों के पूरा होने के अधीन होना चाहिए :–

(क)कानून में एक डिग्री प्राप्त होने पर,

(ख) एक वरिष्ठ विधिवेत्ता के चैम्बर में एक वर्ष तक प्रशिक्षण एवं अदालती जिरह के कानून एवं व्यवसाय के सिद्धांत में परीक्षा पास की हो और इसके अतिरिक्त।

(ग)(।) जो व्यक्ति विधिवेत्ता (मूल क्षेत्र) की सनद् लेने का इच्छुक हो उसे उच्च न्यायालय नियमों (मूल पक्ष) की परीक्षा उत्तीर्ण करनी होगी।

(II) जो व्यक्ति विधिवेता अपीलीय क्षेत्र (ए.एस.) की सनद लेने का इच्छुक हो, उसे उच्च न्यायालय के अपीलीय पक्ष के नियमों की परीक्षा उत्तीण करनी होगी।

(III) जो व्यक्ति सालीसिटर (न्यायाभिकर्त्ता) की सनद् लेने का इच्छुक हो, उसे

(अ) उच्च न्यायालय नियमों (मूल एवं अपीलीय पक्ष) तथा

(ब) दस्तावेज़ नवासी की परीक्षा उत्तीर्ण करनी होगी।

(घ) अच्छे नैतिक चरित्र का प्रमाण–पत्र प्रस्तुत करने पर।

जब शिक्षा पद्धति व्यवसायों की सभी श्रेणियों के लिये एक समान एवं पर्याप्त व्यापक बना दी जाती है तो विद्यमानता, भिन्नता एवं असंगतता के लिये कोई न्यायसंगतता नहीं रह जाएगी।

वरिष्ठ वकील के चैम्बर में व्यावहारिक प्रशिक्षण के संबंध में उत्पन्न प्रश्न के संबध में विचारार्थ उत्पन्न निम्नलिखित बिंदुओं का उल्लेख करना आवश्यक है :–

1. क्या प्रशिक्षण के लिये कोई सुविधायें हैं?
2. यदि कोई वरिष्ठ अपने चैम्बर में प्रशिक्षण हेतु कानून के किसी विद्यार्थी को प्रवेश नहीं देता या अत्यधिक शुल्क की माँग करता है तो उस स्थिति में क्या होगा?

यदि प्रशिक्षण की परीक्षा व्यावहारिक हो तो इन सभी बिन्दुओं का निपटान अवश्य किया जाये। बिन्दु सं.–1 के संबंध में, मैं पूर्णतया निश्चित नहीं हो सकता। लेकिन मैं सोचता हूँ कि व्यावहारिक प्रशिक्षण की सुविधायें प्रदान करने के लिये बम्बई एवं जिला–नगरों में पर्याप्त संख्या में वरिष्ठ वकीलों को खोजा जा सकना संभव है। दूसरे बिन्दु पर मैं आश्वस्त हूँ कि जब तक उच्च न्यायालय वरिष्ठ वकील को अपने

चैम्बर में विद्यार्थी को प्रशिक्षण हेतु प्रवेश देने के लिये मजबूर करने के लिये तैयार नहीं होता, यह प्रणाली निष्फल हो जायेगी। किसी को व्यवसाय के दांव पेंच न सिखाने की आदत कि संभवतः भविष्य में प्रशिक्षणार्थी प्रतिद्वंद्वी बन सकता है एवं यह भय कि छात्र प्रशिक्षण के दौरान मुवक्किलों से मिल जाएगा एवं उनमें से कुछ को अपने साथ लेकर चला जायेगा, यह वरिष्ठों के मस्तिष्क में इतनी गहराई तक बैठा हुआ है एवं मैं इस बात से आश्वस्त हूँ कि जब तक उन्हें मजबूर न कर दिया जाये वे अपने चैम्बरों में विद्यार्थियों को लेने हेतु कभी सहमत नहीं होंगे। तीसरे बिन्दु के संबंध में मेरा विचार है कि उच्च न्यायालय को चैम्बरों में प्रशिक्षण हेतु शुल्क निर्धारित करना चाहिए अन्यथा शुल्क निषेध होना चाहिए नहीं तो इसके परिणामस्वरूप कानूनी व्यवसाय केवल धनिकों के लिये ही सुरक्षित रह जाएगा।[1]

---

1. राजकीय विधि महाविद्यालय पत्रिकाः
खण्ड–7 : क्र. 1, जनवरी, 1936

(3)

डॉ. अम्बेडकर का सर एस. राधाकृष्णन को उत्तर

अतिजीवन्त सिद्धान्त

"प्रो. राधाकृष्णन ने एक बार कहा था कि हिन्दुओं की महानता को सिद्ध करने के लिये एक तर्क है और यह इस प्रकार है: हिन्दू समय के हिचकोलों के बावजूद जीवित है। यह अभी भी विद्यमान है जबकि अन्य प्राचीन धर्म एवं सम्प्रदाय बहुत पहले समाप्त हो चुके हैं।

इस तर्क के उत्तर में डॉ. अम्बेडकर का कहना है:–

मुझे भय है कि यह कथन उग्र तर्क का आधार बन सकता है कि जीवित रहने का अंश जीवित रहने के लिए स्वस्थता का प्रमाण है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि प्रश्न यह नहीं है कि एक समुदाय जीवित रहता है या समाप्त हो जाता है, बल्कि प्रश्न यह है कि किस अवस्था में जीवित है। जीवित रहने हेतु विभिन्न पद्धतियाँ हैं, लेकिन सभी समान रूप से सम्मानीय नहीं हैं। एक व्यक्ति के साथ–साथ एक समाज का केवल जीना एवं यथेष्ठ रूप से जीने के मध्य एक गहरी खाई है। एक युद्ध में केवल लड़ना एवं यश के साथ जीना एक पद्धति है। एकान्तवास अपनाना, आत्मसमर्पण करना, बन्धक जीव के रूप में जीवित रहना भी एक प्रकार की शैली है। हिन्दुओं के लिये यह निरर्थक है कि इस तथ्य से सन्तुष्ट हो कि वे एवं उनके लोग जीवित हैं। उन्हें इस पर अवश्य विचार करना चाहिये कि उनके जीवित रहने की गुणवत्ता अर्थात् रहन–सहन की शैली क्या है। यदि वह ऐसा करता है तो मैं आश्वस्त हूँ कि वह जीवित रहने के तथ्य पर गर्व करना बंद कर देगा। हिन्दू हमेशा से पराजय का जीवन जीते रहे हैं एवं उन्हें शाश्वत प्रतीत होने वाला जीवन हमेशा शाश्वत नहीं बना रहेगा। यह जीवित बने रहने की शैली है विशुद्ध सोच वाले हिन्दू जो सच्चाई को स्वीकार करने से नहीं डरते वे इस जीवन शैली को अपनाकर अपने आपको शर्मसार अनुभव करेंगे।[1]

---

1. "लैम्प" में दिनांक 25 जून, 1936 को प्रकाशित, खैरमौड खण्ड–6 पृष्ठ–266

(4)

और लार्ड ने – तक कहा

प्रिवी काउंसिल 1829–31 के लार्डों के समक्ष बहस एवं निश्चित किये गए मामलों की रिपोर्टें जेरोम विम.नेप. बैरिस्टर–एट–लॉ के द्वारा खण्ड–1 (डॉ. बी. आर. अम्बेडकर द्वारा लिखित एक नोट)

सर्वोच्च न्यायालय का मामला जिसका निर्णय 14 मई, 1829 को किया गया था को नीचे पुनः मुद्रित किया गाय है। यह सोचना गलत होगा कि मामला केवल पुरातत्ववेत्ता विषयक रुचि का है क्योंकि यह 107 वर्ष पुराना है। यह मामला केवल इतिहास के विद्यार्थियों की रुचि का ही नहीं है, बल्कि यह कानून के छात्रों के साथ–साथ जन–साधारण की रुचि का भी है। इतिहास के छात्र ईस्ट इण्डिया कम्पनी एवं क्राउन राज के अधिकारियों के मध्य दोहरी शासन पद्धति के दौरान ईर्ष्या एवं द्वेष के बारे में जानते हैं, जिसके परिणामस्वरूप विद्रोह हुआ। सर एडवर्ड वैस्ट के जीवन वृत्त एवं संस्मरण को पाठक याद करेंगे कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा नियुक्त एक गवर्नर ने राजा द्वारा नियुक्त सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश के साथ झगड़ा करने का कैसे षड्यंत्र रचा था। इतिहास के विद्यार्थियों के लिए मामला रुचिकर है क्योंकि यह विस्तारपूर्वक स्पष्ट करता है कि उन पुराने दिनों में कम्पनी के अधिकारियों तथा एक राजा के अधिकारियों के मध्य कितनी अधिक ईर्ष्या एवं नफरत हो गई थी। यह मामला पुराना होते हुये भी कानून के विद्यार्थियों के लिए एक बड़ा एवं महत्त्वपूर्ण मामला है। इस मामले में उठाया गया मुद्दा कि क्या बम्बई में स्थापित सर्वोच्च न्यायालय को ऐसे व्यक्ति के विरुद्ध बन्दी प्रत्यक्षीकरण का आदेश जारी करने का अधिकार है जो अपने स्थानीय क्षेत्र में नही रह रहा है। इस निर्णय का सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियों से संबंध है, सर्वोच्च न्यायालय की विद्यमानता समाप्त कर दी गई है फिर भी वर्तमान कानून के छात्रों के लिए मामले का महत्त्व निस्संदेह समाप्त नहीं हुआ है। मूल स्थानीय क्षेत्र के अतिरिक्त क्षेत्र के व्यक्ति के लिए बन्दी प्रत्यक्षीकरण संबंधी याचिका जारी करने की शक्ति को रोक देने के प्रश्न का उत्तर केवल शक्तियों के संदर्भ में दिया जा सकता है जो कभी

सर्वोच्च न्यायालय के पास थी। ऐसा इसलिये है कि अधिकार लेख के अनुसार उच्च न्यायालय के पास केवल वही शक्तियाँ हैं जो कभी सर्वोच्च न्यायालय के पास थीं। उच्च न्यायालय की शक्तियों को जानने के लिये व्यक्ति को सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियों की जानकारी होनी चाहिए।

इसलिए सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश—सर जॉन ग्रांट को प्रिवी काउंसिल में आवेदन करने हेतु बाध्य होना पड़ा था जो कि निर्णय का एक विचारणीय विषय बन गया था। यद्यपि सामान्य प्रश्न यह था कि क्या कानून में यह प्रावधान होना चाहिये कि न्यायपालिका के आदेशों के कार्यान्वयन हेतु वे बाध्य होंगे, मामले का प्रत्यक्ष प्रश्न नहीं था लेकिन जन साधारण के दृष्टिकोण से अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न अन्य कोई और नहीं हो सकता है। किसी राजनैतिक संविधान में विधायिका एवं कार्यपालिका की तुलना में न्यायपालिका एक कमजोर अंग है। यह स्वयं की शक्तियों के लिए विधायिका पर एवं अपने आदेशों के कार्यान्वयन हेतु कार्यपालिका पर आश्रित है। कार्यपालिका सामान्यतः न्यायपालिका के आदेशों का सम्मान करती है एवं उनको कार्यान्वित करती है। यह सत्य है कि सूचित किये गये मामले में न्यायपालिका हुक्मनामा/आदेश जारी करने हेतु अधिकृत नहीं है, अतः निष्पादकों/प्रशासकों द्वारा कार्यान्वयन हेतु इन्कार किया जाना उचित था। लेकिन ऐसा अवसर आ सकता है, जब कार्यपालिका ईर्ष्या या द्वेष के कारण न्यायपालिका के आदेश को कार्यान्वित करने से इंकार कर सकती है। यदि ऐसा होता है तो न्याय अधर में लटक जायेगा और नागरिकों के जीवन, स्वतंत्रता एवं संपत्ति को खतरे संबंधी जन—साधारण के गंभीर प्रश्न उत्पन्न हो जाने की आंशका होगी। इन कथनों का सुझाव परस्पर विरोधी कारण द्वारा दिया गया है। इस विरोध को संघीय न्यायालय या उच्च—न्यायालय के आदेशों को कार्यान्वित करने की निष्पादकों/प्रशासकों की बाध्यताओं और संघ राज्यों एवं केसर के अंत एवं हिटलर के उदय के बीच के समय के जर्मन गणतंत्र के संविधान में इसी प्रकार के प्रावधानों में देखा जा सकता है। इस मामले के अनुसंधान का अध्ययन निश्चित रूप से लाभकारी होगा तथा जिज्ञासु स्वाभाविक रूप से ऐसा करेंगे।

(बम्बई से याचिका द्वारा)

सर्वोच्च न्यायालय में माननीय न्यायाधीश गण (14 मई, 1829)

बम्बई सर्वोच्च न्यायालय को बन्दी प्रत्यक्षीकरण के आदेश जारी करने का अधिकार नहीं है सिवाय जब इन स्थानीय क्षेत्रों, जिनमें सामान्य क्षेत्राधिकार है, के किसी व्यक्ति को या एक व्यक्ति जो उन सीमाओं से बाहर है परन्तु व्यक्तिगत रूप

से उसके क्षेत्राधिकार में आता है, को निर्दिष्ट न हो। (1 नेप–58)

सर्वोच्च न्यायालय को उस जेल अधिकारी या स्थानीय न्यायालय के अधिकारी जिसके पास स्थानीय न्यायालय के आदेश से बन्दी बनाये व्यक्ति को रिहा करने का अधिकार नहीं है, बन्दी प्रत्यक्षीकरण का अधिकार नहीं है। (1 नेप–58)

सर्वोच्च न्यायालय बिना किसी सूचना या घोषणा के स्थानीय न्यायालय की न्यायिक सीमा की जानकारी प्राप्त करने के लिए बाध्य है विशेषकर बन्दी प्रत्यक्षीकरण के आदेश के प्रत्युत्तर में (1 नेप–59)

यह मामला सर्वोच्च न्यायालय के एकमात्र जीवित न्यायाधीश सर जॉन पीटर ग्रांट की याचिका में बम्बई में उजागर हुआ। इसमें उल्लेख है कि वर्तमान शासन के चौथे वर्ष में महामहिम ने अपने अधिकृत लेख में स्वीकृत, निर्देश, आदेश एवं प्रतिपादन किया है, ये कोर्ट ऑफ रिकार्ड बम्बई के अधिवासित क्षेत्र के लिए होगा, इस न्यायालय को बम्बई का सर्वोच्च न्यायालय कहा जाए और इस प्रकार बम्बई में कोर्ट ऑफ रिकार्ड का सृजन एवं गठन सर्वोच्च न्यायालय के रूप में हुआ और बम्बई में इस सर्वोच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश नियुक्त किया गया और बम्बई के इस सर्वोच्च न्यायालय में दो अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति कनिष्ठ न्यायाधीश के रूप में की गई।

और कथित मुख्य न्यायाधीश और कथित न्यायाधीशों की नियुक्ति इस प्रकार की जाती है कि वे बम्बई की सम्पूर्ण बस्तियों, नगरों और बम्बई के द्वीपों और इसकी सीमा के अधीन फैक्टरियों और सभी क्षेत्रों या भविष्य में उक्त बम्बई सरकार द्वारा वर्धित क्षेत्रों में किए जाने वाले परिवर्तनों और महामहिम की न्यायिक पीठ द्वारा ग्रेट ब्रिटेन के हिस्से इंग्लैण्ड में विधिवत् या परिस्थितियों वश नियत क्षेत्रों में न्यायाधीश, शान्ति के संरक्षक और घटित घटनाओं के समीक्षक एवं जानकारी के रूप में होंगे।

और उक्त बम्बई स्थित सर्वोच्च न्यायालय समय की माँग के अनुसार महामहिम के शाही चिह्न की मुहर का प्रयोग करते हुए सभी लेख, सम्मन, सिद्धान्त, नियम, आदेश एवं अन्य बाध्यकारी प्रक्रिया, जो बम्बई स्थित उक्त सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग, जारी या निर्णित किया जाता है वह राजा के नाम एवं आदेश से होना चाहिये एवं उसे सर्वोच्च न्यायालय की मुहर के साथ मुहरबन्द किया जाए।

तथा राजा द्वारा उक्त अधिकार लेख द्वारा बम्बई के तदेन रिकार्डर सर एडवर्ड वैस्ट, नाइट को प्रथम मुख्य न्यायाधीश एवं सर राल्फ राइस, नाईट जो प्रिंस ऑफ वेल्स द्वीप के तदेन रिकार्डर एवं सर चार्ल्स हरकोर्ट चैम्बर्स, नाइट को बम्बई स्थित सर्वोच्च न्यायालय के प्रथम अधीनस्थ न्यायाधीशों के रूप में नियुक्त किया।

और इसके अतिरिक्त राजा ने सर्वोच्च न्यायालय को अनुबन्धित करने के लिए निदेश जारी किए, विधान बनाये और आधिकारिक क्षेत्र नियत किए। यह न्यायालय क्षेत्रों में सुनवाई और मुकदमों व कार्यप्रणालियों को उक्त अधिकार–लेख में उल्लिखित कई प्रावधानों, छूटों और घोषणाओं की शर्त पर कथित सरकार के कार्यक्षेत्र में सुनवाई एवं मुकदमों के निर्धारण हेतु कार्यशील रहेगा और ऐसे दीवानी दावों और कार्यवाहियों को प्रारम्भ, मुकदमा चलाने और निर्धारित करने तथा उन पर निर्णय देने एवं दिये निर्णयों को क्रियान्वित करने के लिए कार्यप्रणाली तैयार करेगा।

राजा ने कृपापूर्वक स्वीकृति प्रदान करते, निर्देश देते एवं नियुक्ति करते हुए कहा कि उक्त सर्वोच्च न्यायालय समानता का न्यायालय होना चाहिए तथा इस अधिकार के अनुसार इस न्यायालय में बम्बई नगर एवं द्वीप और इसकी सीमाओं तथा इन क्षेत्रों में स्थित फैक्टरियों के सभी व्यक्तियों के लिए एक समान न्यायिक अधिकार होना चाहिए एवं न्यायकरण के लिए नियुक्त न्यायाधीशों को अधिकार प्रदान किए जाने चाहिएँ एवं बन्दीगृह में बन्द करने व रिहा करने का अधिकार भी होना चाहिए।

न्यायालय को बम्बई नगर एवं द्वीप तथा इसकी सीमाओं में धर्मसम्बन्धी अधिकार भी होने चाहिए एवं इसके साथ ही उक्त सर्वोच्च न्यायालय बम्बई शहर, द्वीप एवं उसके अधीन समीओं, फैक्टरियों, उक्त कथित सरकार के निर्णय के अनुसार भविष्य में जुड़ने व कम होने वाले क्षेत्रों के लिए नौसेना अधिकरण का भी न्यायालय होगा।

तथा उक्त सर आर राईस, नाइट ने नवम्बर, 1827 में बम्बई के उक्त सर्वोच्च न्यायालय से वरिष्ठतम कनिष्ठ न्यायाधीश के पद से त्यागपत्र दे दिया, जब उक्त सर सी. एच. चैम्बर्स उक्त स्थान पर वरिष्ठतम कनिष्ठ न्यायाधीश बन गए एवं उक्त सर आर राईस द्वारा त्यागप्रत्र दिये जाने पर प्रार्थी को दिनांक 30 अगस्त, 1827 के अधिकार–लेख द्वारा उक्त सर्वोच्च न्यायालय में एक कनिष्ठ न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किया गया एवं उसने 9 फरवरी, 1828 को बम्बई में अपना कार्यभार संभाला।

तथा उक्त मुख्य न्यायाधीश सर एडवर्ड वैस्ट का 18 अगस्त, 1828 को देहान्त हो गया एवं उस वर्ष 3 अक्टूबर को एक पत्र सम्बोधित किया गया।

"सेवा में, माननीय सी.एच. चैम्बर्स एवं सर्वोच्च न्यायालय के कनिष्ठ न्यायाधीश के रूप में प्रार्थी को सम्बन्धित बम्बई कैसल 3 अक्टूबर, 1828 तथा गवर्नर जॉन मैलकाम, टी ब्रेडफोर्ड, लैफ्टिनैट जनरल, सशस्त्र सेनाओं के कमांडर जे.जे. स्पैरो एवं जॉन रोमर परिषद के द्वितीय एवं तृतीय सदस्य द्वारा हस्ताक्षर किए गए।"

उक्त पत्र का भाव निम्न प्रकार से था –

सम्माननीय महानुभावों :

हमें पूरी तरह से विदित है कि हमने इस पत्र को आपको सम्बोधित करने में साधारण प्रक्रिया का उल्लंघन किया है, परन्तु जिन परिस्थितियों में हमें धकेल दिया गया है, हमें विश्वास है, उनको दृष्टिगत रखते हुए, यह उल्लंघन उचित है। आपके निजी एवं सार्वजनिक आचरण के संबंध में हम अपनी जानकारी के अनुसार आशा करते हैं कि हमारे कथन को आप उसी भावना से ग्रहण करेंगे जिस भावना से यह लिखा गया है यद्यपि ब्रिटिश न्यायाधीश के रूप में आपके उच्च एवं प्रतिष्ठित कार्यों के प्रत्येक दायित्व को पूर्ण करने की आप कड़ी बाध्यता है। आप इस असाधारण मौके पर अनेक विषयों एवं न्यायालय जिसमें आप पीठासीन हैं, के नियमों पर विचार, विधान–मण डल को उसके अपने प्रतिष्ठान के रूप में निरीक्षण करना, जैसा कि इस प्रैजीडेन्सी के प्रशासन के लिए, अनुदेशित के साथ सरकार की सहायता एवं समर्थन के अनुसार आप हमारे प्रतिवेदन से अल्पावधि के लिए किसी कार्य (कितना भी आप उन्हें कानूनी समझें) को न करने के लिए प्रेरित होंगे, जिनको नियमाधीन हम करने के लिए बाध्य हैं और इनको हम दोनों अपने दायित्व निभाने के लिए अनिवार्य समझते हैं, क्योंकि इससे आपके व हमारे अधिकारों का टकराव होगा और ऐसा करने से इस देश के मूल नागरिकों की नज़रों में आदरभाव, जो कि हम दोनों के लिए अनिवार्य है न केवल कम होगा बल्कि हमारे साम्राज्य के प्रस्तावित विभाजन से गंभीर रूप से कमजोर हो जायेगा, जबकि हमारे मूल निवासियों के मन में जो धारणा बनी हुई है वह भारतीय साम्राज्य की शान्ति, उन्नति और स्थायित्व के लिए आवश्यक है। इस निष्कर्ष से अनेक परिस्थितियाँ उत्पन्न होंगी, जिनका स्पष्टीकरण यहाँ करना उचित नहीं है, परन्तु हम ने दृढ़तापूर्वक जो कहा है उसके संबंध में सत्य के प्रति अपनी आस्था को व्यक्त करना इस आशा के साथ आवश्यक समझा है कि इसमें सरकार में आपके अधिकार के संबंध में आप पर कुछ दबाव पड़ेगा। आपके पास यह अधिकार हमारे सभी क्षेत्रों और विशेषकर इन क्षेत्रों जिनको हाल ही में हासिल किया है। यह अधिकार केवल सामान्य शान्ति को बनाये रखने के लिए प्राप्त किए हुए हैं परन्तु इन अधिकारों के बने रहने का अर्थ अच्छे शासन और कानूनों के व्यवस्थित रूप से प्रबन्धन पर निर्भर करेगा।

"2 मोरो रघुनाथ (1 नेप 8) और बापू गुनास (1 नेप 11) के मामले में सर्वोच्च न्यायालय की हाल की कार्यवाहियों के परिणामस्वरूप हम अपने–अपने उच्च अधिकारियों को पूरी तरह से बता देने के लिए बाध्य हैं, कि मोरो रघुनाथ के मामले में कोई अन्य कानूनी कार्यवाही स्वीकार नहीं की जाएगी और बन्दी प्रत्यक्षीकरण के संबंध में हाल ही में जारी आदेश या प्रान्तीय न्यायालयों के अधिकारियों को दिये

गये निर्देश कि हमारे उन मूल नागरिकों, जो बम्बई द्वीप में नहीं रहते हैं, को दिये गये आदेशों के प्रत्युत्तर के लिए कुछ नहीं करेंगे।

"3 हम इन नियमों द्वारा प्रदत्त जिम्मेदारियों के प्रति पूरी तरह सचेत हैं, परन्तु हमें स्थिति की माँग के अनुरूप अपने औचित्य को देखना चाहिए। हमें कार्य सिविल गवर्नमेंट और राज्य की नीति को दृष्टिगत रखते हुए करने चाहिए, परन्तु हमारे प्रस्ताव तब तक परिवर्तित नहीं हो सकते जब तक हमें उन उच्च्य प्राधिकारियों से आदेश प्राप्त नहीं हो जाते जिनके अधीन हम कार्यरत हैं। हम पूरी उत्सुकता से आशा करते हैं कि हमने जो उक्त तर्क व्यक्त किए हैं आपको निर्दिष्ट मामलों में हमारे आचरण के विरुद्ध उन प्रतिरोधों एवं याचिकाओं के प्रति रोकेंगे, जिन्हें आप अपने दायित्वपूर्ण उल्लिखित कारणों से समझेंगे कि सरकार द्वारा पारित प्रस्ताव एवं स्वीकृति से इस विस्तृत सीमा में वर्तमान तथा भावी संस्थापनाओं से कोई अनुकूल परिणाम नहीं निकलेगा और जनहित के लिए गंभीर रूप से हानिकारक होगा। इस विषय पर हमारे सभी प्रश्नों का उत्तर अल्पावधि में ही प्राप्त हो गया और हमें अपनी आशा पुनः उन दायित्वों के प्रति जिनके लिए हम जागरूक हैं, करनी चाहिए कि दायित्व इतने आवश्यक नहीं हैं जिससे ऐसे कार्यों के लिए प्रवृत्त हो जिसके संबंध में सरकार ने स्पष्ट रूप से प्रस्ताव का विरोध किया है।

"हमें ऐसा होने का गौरव प्राप्त हुआ है आदि आदि।

तब याचिका में कहा गया है कि सोमवार, 6 अक्टूबर को सर्वोच्च्य न्यायालय की अपने न्यायिक मामलों को निपटाने के लिए बैठक हुई, सर सी.एच. चैम्बर्स ने सम्राट के लिपिक को इस पत्र को पढ़ने के लिए कहा, इसके पश्चात् याचिकादाता सर सी.एच. चैम्बर्स की राय एवं पत्राचार के विषय पर सहमति प्रदान की गई। न्यायालय ने निर्देश दिया कि सम्राट का लिपिक प्रैजीडेन्सी सरकार के मुख्य सचिव को पत्र द्वारा सूचित करें कि उक्त पत्र प्राप्त हो चुका है और न्यायाधीशों ने इसकी उपेक्षा की है।

कि उक्त सर सी.एच. चैम्बर्स का यह आशय था और याचिकादाता को महामहिम के समक्ष साधारण याचिका द्वारा याचिकादाता की उन परिस्थितियों, जिन्हें उपरोक्त रूप से नियत किया गया है पर कर्त्तव्यनिष्ठता एवं समर्पित भाव से सभी प्रकार की प्रैजीडेन्सी सिविल और मिलीटरी शक्तियों से युक्त होने पर भी, मामले के असंवैधानिक एवं आपराधिक प्रयासों पर विचार करते समय सहमति हुई कि मामलों पर सरंक्षण प्राप्त किया जाए ताकि सर्वोच्च्य न्यायालय से बिना किसी साधारण याचिका या खुले न्यायालय में स्वयं या अपने वकील द्वारा सम्पर्क किया जा सके। केवल यह एक ही रास्ता है जिसमें कानून दूरदर्शी उद्देश्यों के लिए महामहिम न्यायाधीशों को

सम्बोधित करने की सहमति प्रदान करें और सदियों से दूरदर्शियों द्वारा निषिद्ध ऐसे गुप्त या निजी पत्राचार द्वारा अपने व्यक्तियों को खतरे एवं भ्रष्टता से बचाने के लिए बेवजह विनती या धमकी और न्यायाधीशों को प्रेरित/प्रलोभित करने पर प्रतिबन्ध लगाया जाये ताकि न्यायाधीश ईश्वर, सम्राट और अपने प्रति निष्ठा के दायित्व को पूरा कर सकें तथा जिनको वे कानून समझते हैं, या ऐसी धारणाएँ जिनके द्वारा वे समय–समय पर निर्धारित नीति को प्रतिपादित करते हैं, उनके अनुसार निर्णय देने के लिए मना कर सकें।

कि इस संबंध में याचिका इंग्लैण्ड में भेजने के लिए तैयार की जा रही थी तो उक्त सर्वोच्च न्यायालय के तत्कालीन कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश सर चार्ल्स हरकोर्ट चैम्बर्स का 13 अक्टूबर, 1828 को अचानक देहान्त हो गया।

तब याचिका पर विस्तारपूर्वक चर्चा उन उद्देश्यों को स्पष्ट करने के लिए की गई जिन्होंने गवर्नर एवं परिषद् के आचरण को आरोपित करने की कार्यवाहियों के दौरान याचिकादाताओं एवं उनके साथियों को प्रभावित किया और उन को बताया कि बन्दी प्रत्यक्षीकरण का आदेश जिस प्रकार वे चाहते हैं उसके अधिकार सर्वोच्च न्यायालय के पास हैं। अन्ततः उन्होंने अनुरोध किया कि महामहिम इस मामले पर शाही एवं कृपापूर्वक विचार करें जिससे महामहिम की शाही दूरदर्शिता की झलक मिले तथा जिससे बम्बई के गरिमामयी सर्वोच्च न्यायालय का रक्षण हो तथा उसकी गरिमा एवं कानूनी प्राधिकार धूमिल न हो।

मोरो रघुनाथ (1 नेप, 5) के मामले जिसे याचिका के रूप में निर्देशित किया गया है, का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार से है : 25 अगस्त, 1828 को बन्दी प्रत्यक्षीकरण के आदेश में पाण्डुरंग रामचन्द्र को मोरो रघुनाथ को पेश करने का निर्देश दिया गया। उसका संरक्षक, याचिकादाता न्यायाधीश ग्रांट के समक्ष दिनकर गोपाल देव के शपथ–पत्र के साथ उपस्थित हुआ, जिसमें कहा गया था कि मोरो रघुनाथ लगभग एक वर्ष से बन्दी हैं और अभी भी इच्छा के विरुद्ध पाण्डुरंग रामचन्द्र द्वारा बन्दी बनाया हुआ है और अत्यन्त कठिन एवं निर्दयी वातावरण में रह रहा है। इस प्रस्ताव का महाधिवक्ता ने इस आधार पर विरोध किया कि पाण्डुरंग रामचन्द्र और मोरो रघुनाथ स्थानीय निवासी हैं और सर्वोच्च न्यायालय की न्यायिक सीमा में नहीं आते। आदेश को स्वीकार किए जाने को विभिन्न कारणों से 30 अगस्त तक टाला गया, इस दौरान अतिरिक्त शपथ–पत्र दायर किये गये और इनमें कहा गया कि मोरो रघुनाथ 12 जुलाई को पाण्ड्रूरंग रामचन्द्र की कैद से भाग गया था और वापिस पकड़ लिया गयाऔर जान एन्ड्रज डनलप, एक ब्रिटिश नागरिक और पूना में प्रान्तीय

जज के आदेश एवं निर्देशों से वापिस उसको कैद में भेज दिया गया है। काफी विचार–विमर्श के पश्चात् आदेश जारी किये गए और 15 सितम्बर तक उत्तर देने के लिए कहा गया। न्यायालय के इस आदेश को मराठी भाषा में अनुवाद किया गया और पाण्डुरंग रामचन्द्र को सौंपा गया। पाण्डुरंग रामचन्द्र उपस्थित हुआ और अपनी याचिका इन शब्दों में दायर की।

मैं पाण्डुरंग रामचन्द्र दामोदर, पेशवा का रिश्तेदार एवं मित्र हूँ। मैं जीवन में अंग्रेज सरकार या अंग्रेजों का नौकर नहीं रहा हूँ। कम्पनी के इस देश को अधिग्रहण करते समय मुझे वचन दिया गया था कि मैं बिना भय या पीड़ा के रहूँ। इस भरोसे पर मैं पूना में रहा और जहाँ तक मेरे पौत्र मोरो रघुनाि का संबंध है, मैं उसका दादा हूँ, उसे मेरी देखरेख में छोड़ दिया गया कि सामान्य प्रथा के अनुसार मैं उसकी देखभाल करूँ। यह बच्चा चौदह वर्ष का है, हिन्दू शास्त्र के अनुसार वह नासमझ है, उसे उस व्यक्ति के आदेशों का पालन करना होगा जिसकी निगरानी में वह रह रहा है और इसके साथ, यह भी आवश्यक है कि बच्चे की सम्पत्ति एवं धन की देखभाल तथा सुरक्षा की जाए, इसके अतिरिक्त यहाँ ऐसा कुछ नहीं है और ऐसा कुछ नहीं किया सिवाय इसके कि बच्चे को मेरी सुपुर्दी में छोड़ा गया है क्योंकि मैं हिन्दू परिवार में वरीयता के क्रम में सबसे वरिष्ठ हूँ। संयोगवश मैं इसके साथ कुछ ज्यादती करता हूँ, तो उसकी जानकारी पूना में एड्वल्ट को दे दी जाए, तो ऐसा करना मैं तत्काल बन्द कर दूँगा। मोरो रघुनाथ की दादी के देहान्त के पश्चात् नियम एवं प्रथा के अनुसार उसे मेरी निगरानी में सौंप दिया गया था। मैंने उसकी देखभाल करने की सहमति दे दी ताकि मेरे पौत्र की सम्पत्ति नष्ट न हो। जिनकी सहमति से मैंने जो दायित्व संभाला है उनकी अनुमति के बिना इसे छोड़ नहीं सकता हूँ। दिनांक 10 सितम्बर, 1828 भाद्रपद सूद शालावार, 1750 सुरोधरी वर्ष की प्रथमा।

इस प्रत्युत्तर पर दो आधारों पर आपत्ति की गई, प्रथम कि यहाँ किसी बन्दी का प्रत्यक्षीकरण नहीं किया गया। दूसरा अवज्ञा को क्षमा करने का कोई कारण उल्लिखित नहीं किया गया है, यही कारण न्यायालय को मान्य नहीं होना चाहिए, और पाण्डुरंग रामचन्द्र के विरुद्ध कुर्की की कार्यवाही प्रारम्भ की जानी चाहिए थी। न्यायाधीशों ने प्रश्न पर विचार–विमर्श के लिए समय लिया और 29 सितम्बर को अपना निर्णय सुनाया कि बन्दी प्रत्यक्षीकरण पर याचिका दायर की जानी चाहिए, अगली सुनवाई 10 अक्तूबर को होगी।

बापू गणेश का मामला सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष बन्दी प्रत्यक्षीकरण का था। तन्नाह जेल के मुख्य जेलाधिकारी के विरुद्ध याचिका के संबंध में आया जिसमें उसे

बापू गणेश को इस व्यक्ति को प्रस्तुत करने का निर्देश दिया गया था, जो उस समय उसकी कैद में था, बबूल रणजी के शपथ–पत्र पर याचिका स्वीकार की गई थी, शपथ–पत्र में कहा गया था कि उसने जेल–अधिकारी को उस वारण्ट की प्रति देने के लिए आवेदन किया था जिसके तहत् बापू गणेश को हिरासत में रखा गया था और इसकी प्रति उसको देने के लिए मना कर दिया गया था। आदेश 10 तारीख को जारी किया गया और सुनवाई 19 सितम्बर, 1928 के लिए रखी गई। उत्तरी कोणकण के एडाव्ल न्यायालय के नज़ीर द्वारा सुनवाई की गई और जेल–अधिकारी की याचिका पर इन शब्दों से निर्देश दिये गये –'कि याचिका दायर करने से पूर्व उत्तरी कोणकण के जिला एडाव्लट न्यायालय के लिखित आदेश से बापू गणेश को पकड़ा गया और हिरासत में रखा गया। आदेश मराठी भाषा में इस प्रकार थे : जिसमें प्रारम्भ में इस प्रकार उल्लिखित किया गया है कि बापू गणेश धोखेधड़ी के अपराधी पाये जाने के कारण उनको दो वर्ष की जेल की सज़ा एवं 350 रुपये का जुर्माना किया जाता है और इस राशि का भुगतान न करने की दशा में एक वर्ष की अतिरिक्त जेल की सज़ा दी जाती है। कैदी को 19 तारीख को प्रस्तुत न किये जाने के कारण उत्तर को पढ़ने की अनुमति न्यायाधीश नहीं देंगे और निर्देश दिया कि जेल–अधिकारी के विरुद्ध कुर्की आदेश जारी कर दिया जाए। महाधिवक्ता के निर्देश पर 26 तारीख को लागत का भुगतान करने पर कुर्की आदेश हटा दिया गया और बापू गणेश को न्यायालय में लाया गया, प्रतिवाद पढ़ा गया और अपर्याप्त पाया गया क्योंकि एडाव्लट न्यायालय के अधिकार क्षेत्र का इसमें उल्लेख नहीं था। इसके संशोधन के लिए चार दिन का समय दिया गया, इस दौरान कैदी को बम्बई की जेल में रखा गया। नियत समय के भीतर प्रतिवाद का संशोधन नहीं किया गया था, महाधिवक्ता ने न्यायालय को कारण सूचित किया कि इसमें संशोधन क्यों नहीं किया जा सका। इसका कारण यह था कि सरकार द्वारा कथित मामले में प्रादेशिक न्यायालयों के अधिकार क्षेत्रों की अनुमति प्रदान नहीं की जा सकी और बापू गणेश को हिरासत से मुक्त कर दिया गया था।

डेनेमेन (कामन सरजेंट) और एल्डरसन, याचिकादाता के लिए – यह बिल्कुल स्पष्ट है कि सर्वोच्च न्यायालय के पास बन्दी प्रत्यक्षीकरण की याचिका जारी करने का अधिकार है। इस न्यायालय को राजा के शासनाधीन सभी मामलों में, बम्बई के क्षेत्र के किसी निवासी को किसी मामले में बन्दी बनाये जाने पर रिहा करने का आदेश जारी करने का अधिकार है।

सर्वोच्च न्यायालय, बम्बई ने अपनी अनेक शक्तियाँ वर्तमान राजा चतुर्थ के अधिनियम (8 दिसम्बर, 1823, देखें मोरले का डाइजेस्ट खण्ड–।। पृष्ठ 638) के अनुक्रम में चार्टर, जिसके अन्तर्गत इसका (सर्वोच्च न्यायालय) गठन किया गया है, से प्राप्त की है। हमारी ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकार क्षेत्र के न्यायालयों को ये शक्तियाँ प्रदान करने की आवश्यकता पूर्व शासनकाल में शोषण व अत्याचारों और

अधिकृत व्यक्तियों के विवादों की शिकयतें इस देश में कम्पनी एवं संसद के समक्ष समय–समय पर लाये जाने के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुईं।

स्वामियों के न्यायालय ने अपनी दिनांक 10 मई, 1773 की बैठक में इस महत्त्वपूर्ण विषय पर एक प्रस्ताव स्वीकार किया ''कि न्याय के अधिकार के लिए आवेदन किया जाना चाहिए ताकि कम्पनी तीनों प्रेजीडेन्सियों में एक–एक महापौर न्यायालय बनाया जाए और महापौर के न्यायालयों की शक्तियों में वृद्धि करने के लिए राज्यपालों एवं परिषदों के न्यायालयों को न्याय करने के अधिकार प्रदत्त किये जाएं। बेरिस्टर रिकार्डर के रूप में कार्य करेगा। ''वर्तमान अवसर पर प्रस्तावों के अन्य शब्द अत्यधिक उल्लेखनीय है'' और विशेषकर भारत में बन्दी प्रत्यक्षीकरण के अधिकार को लागू करना।'' यह भी उल्लेखनीय है कि इसी वर्ष राजा के समक्ष प्रस्तुत याचिका में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने कहा, ''कि कम्पनी द्वारा किये गये सभी प्रावधानों में से कम्पनी द्वारा अभिस्तावित अत्यधिक प्रभावी प्रावधान शोषण को रोकना है जो कि बन्दी प्रत्यक्षीकरण का अधिकार है। इस प्रावधान से एक व्यक्ति को यह जानकारी मिल सकेगी कि उसको किस अपराध के लिए और किसके द्वारा दोषी पाया गया है, जो कि शामिल नहीं था।''

कलकत्ता सर्वोच्च न्यायालय का शुभारम्भ 22 अक्तूबर, 1774 को किया गया। इस दिन से काफी वर्षों तक बन्दी प्रत्यक्षीकरण की याचिका नियमित रूप से अधिकतर देशज मामलों या व्यक्तियों के संबंध में जारी होती रही और इन क्षेत्रों में उन विषयों या व्यक्तियों के लिए जारी नहीं हुई जिनको भेदभाव के कारण ब्रिटिश मामले या व्यक्ति कहा जाता है। आगामी वर्ष की 16 जनवरी को दीवानी कचहरी के जेल अधिकारी के पास बन्दी प्रत्यक्षीकरण का प्रस्ताव भेजा गया कि वहाँ बन्दी व्यक्ति का पोषण किया जाए और याचिका दायर करने का आदेश जारी किया गया। इसका पालन किया जाना चाहिए कि 13वें जियो III सी. 63 (विनियमित अधिनियम 1773) के अन्तर्गत कलकत्ता में राजा के न्यायालय में स्थानीय नागरिक या अन्य के लिए कोई न्यायिक अधिकार नहीं है सिवाय कि प्रेजीडेन्सी में ब्रिटिश साम्राज्य के शासन द्वोत्र में निर्णय के लिए अधिकृत न्यायालयों एवं जेल की सज़ा देने के लिए। इसके साथ ही कम्पनी के ज़मींदारी न्यायालय कलकत्ता के मूल निवासियों के लिए न्यायिक अधिकार का प्रयोग करना जारी रखेंगे जैसे कि वर्तमान में ज़मींदारी न्यायालय कर रहे हैं। ये न्यायालय कम्पनी के रोज़गार या सेवा में न होने वाले स्थानीय नागरिकों के विरुद्ध शिकायतों, मुकदमों एवं अन्य कार्यवाहियों या ब्रिटिश मामलों या ऐसे मामले जो न्यायिक निर्णयों और जेल की सज़ा के लिए न्यायालय में नहीं आते थे, के लिए थे। 17 जनवरी को बन्दी प्रत्यक्षीकरण के संबंध में एक विवरण दाखिल किया गया और इसके निर्णय में

गुलाम हैदर नाम के व्यक्ति को स्वीकृति प्रदान की गई कि ग्यारह वर्ष की बालिका सुम–जू को पेश करें क्योंकि उसने विवरण में कहा था कि बच्ची स्वेच्छा से उसकी देखरेख में है और न कि किसी दबाव में रह रही है। इसी वर्ष की 19 जनवरी को कलकत्ता में दीवानी अदालत के जेल अधिकारी को हुक्मनामा जारी किया गया कि बंचूराम राय का पोषण करे। इस हुक्मनामे पर शनिवार 21 जनवरी को वकील द्वारा आपत्ति की गई चूँकि यह च. II के अध्यादेश पर जारी किया गया था और परिस्थितियों के अनुसार नहीं था। मुख्य न्यायाधीश द्वारा दिये गये उत्तर में कहा गया कि हुक्मनामा सामान्य कानून के रूप में माना जा सकता है। तब एक प्रस्ताव हुक्मनामे को रद्द करने के लिए प्रस्तुत किया गया क्योंकि इंग्लैण्ड का सामान्य कानून भारत पर लागू नहीं होता था या ब्रिटिश मामले के अलावा किसी अन्य मामले पर लागू नहीं होता था परन्तु न्यायालय द्वारा यह प्रस्ताव रद्द कर दिया गया, 31 जनवरी को हुक्मनामे पर एक विवरण दाखिल किया गया और परिणामस्वरूप इस वाद को अस्वीकृत कर दिया गया। परन्तु जब इस वर्ष 2 मार्च को विवरण पुनः पढ़ा गया और इसमें उल्लेख किया गया कि दीवानी अदालत के न्यायालय के आदेश द्वारा ऋण के लिए दीवानी दावे में सज़ा दी जा सकती है, के संबंध में कलकत्ता के सर्वोच्च न्यायालय में जाँच करना प्रारम्भ किया कि क्या न्यायालय, जिसको कई मामलों में निःसन्देह सक्षम न्यायिक अधिकार प्राप्त हैं, तत्कालीन विचाराधीन मामले की जाँच करने के लिए सक्षम है। वादी ब्रिटिश शासनाधीश था और प्रतिवादी उसके अधीनस्थ है, इस प्रकार ब्रिटिश शासन के अधीन रोज़गार में होने के कारण दोनों पक्ष सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकारी के अधीन तर्क–वितर्क के लिए बाध्य हैं और दोनों में से कोई भी दीवानी अदालत के अधीन बाध्य नहीं है। जेल अधिकारी को न्यायालय में होने के कारण अपना विवरण तैयार करना था कि कैदी को रिहा कर दिया गया है। इस प्रकार सर्वोच्च न्यायालय ने अपने अधिकारों का प्रयोग करते हुए निर्दिष्ट किया कि प्रत्युत्तर के अनुसार कैदी को निचली अदालत के क्षेत्राधिकार में नहीं लाया जा सकता।

पुनः 28 मार्च, 1775 को फ़ौजदारी अदालत के जेल अधिकारी जौन मलिक ने बन्दी प्रत्यक्षीकरण के मामले में दिये निर्णय कि उसकी जेल के एक कैदी शेरेमणी का पोषण किया जाए, का उत्तर दिया। इसी वर्ष 23 दिसम्बर को बन्दी प्रत्यक्षीकरण के हुक्मनामे में माननीय गवर्नर जनरल वेरेन हेस्टिंग को निर्देशित किया गया कि जोसफ पावेसी (पृष्ठ नं० 32) का पोषण किया जाए, इसका भी उत्तर न्यायालय में दिया गया। माननीय गवर्नर जनरल ने किंचित आपत्ति को प्रदर्शित किये बिना स्वयं उत्तर तैयार किया और कथित पावेसी रिहा हो गया था। गवर्नर जनरल ने वास्तविकता को कहने से मना करते हुए संशोधित प्रतिवाद में उन्होंने जो रिपोर्ट

उनके पास थी, उसी के आधार पर आवश्यक तथ्य प्रस्तुत किये। पावेसी को हिरासत में ले लिया गया ताकि कानून का उल्लंघन करते हुए उसे भारत से बाहर भेज दिया जाए, वह ब्रिटिश शासन के अधीन नहीं था। अतः यह प्रतीत होता है कि समझौते के उपरान्त भारतीय शासन के सुधार और अंग्रेजी कानून के अधीक्षण के प्रारम्भिक काल पर समान रूप से विचार किया गया और कम्पनी द्वारा व्यक्ति प्रत्यक्षीकरण का आदेश लागू कर स्वयं ही अपने आदेश का उल्लंघन किया गया। इस आदेश में व्यक्ति, जो अपनी निजी स्वतन्त्रता से वंचित हो गया है, को अधिकृत किया गया है कि पार्टी जिसने उसे किसी कानून के तहत बन्दी बनाया है, को यह बताने के लिए बाध्य कर सकता है कि उसका दोष क्या है?

कलकत्ता में ऐसे अनेक उदाहरणों का उल्लेख किया जा सकता है और मद्रास में भी ऐसे अनेक मामले घटित हुए हैं। बन्दी प्रत्यक्षीकरण को निर्णय की महत्ता को गंभीरता एवं उचित रूप से अनुभव किया गया है। कोई भी अधिनियम पारित किया गया हो, जो भी चार्टर स्वीकार किया गया हो, शक्तियों की कोई भी सीमा हो, निर्णय में कोई अपवाद नहीं था और इनमें से किसी अधिनियम या चार्टर के कार्य क्षेत्र की कोई सीमा नियत नहीं है।

परन्तु बन्दी प्रत्यक्षीकरण की याचिका कलकत्ता के सर्वोच्च न्यायालय को अधिकार पत्र 13वें जियो. III के अन्तर्गत स्पष्ट रूप से सौंपी गई थी, उन्होंने न्यायालय को यह अधिकार प्रदत्त किया ''ऐसे न्यायिक क्षेत्र एवं अधिकार प्रदान किये गये जो राजा की पीठ के हमारे न्यायाधीशों को प्रदत्त हैं और वे इनका कानूनी रूप से इंग्लैण्ड कहे जाने वाले ग्रेट ब्रिटेन के हिस्से में परिस्थितियों के अनुरूप प्रयोग कर सकते हैं।'' बन्दी प्रत्यक्षीकरण की याचिकायें ऐसी शक्तियों के अन्तर्गत जारी की गई जिन पर किसी भी रूप से प्रश्न नहीं किया सकता और जिससे उनकी अधिकारिता के संबंध में कोई संदेह उत्पन्न न हो सके। बम्बई के सर्वोच्च न्यायालय के संस्थापन में कलकत्ता के सर्वोच्च न्यायालय को प्रदत्त शक्तियों का संदर्भ दिया हुआ है। चौथा जियो. 4 (सी. 71) महामहिम को निःसन्देह चार्टर या अधिकार पत्र द्वारा शक्ति प्रदान करता है ''बम्बई में सर्वोच्च न्यायालय को संगठित एवं स्थापित किया जाए, इसे स्थानीय नागरिकों एवं ब्रिटिश शासनाधीन व्यक्तियों दोनों पर दीवानी, फौज़दारी, नाविक न्यायालयों और धर्म संबंधी न्याय अधिकार की सभी शक्तियाँ प्रदान की जाए, इसके साथ ही अपने कार्य क्षेत्र में बेहतर प्रशासन के लिए शक्तियाँ व प्राधिकार, विशेष–अधिकार एवं स्वतंत्रता इस शर्त पर प्रदान की जाए कि बम्बई नगर और द्वीप एवं इसकी सीमाओं में और इसके अधीनस्थ क्षेत्रों तथा बाद में बम्बई सरकार द्वारा परिवर्तित क्षेत्र में उन्हीं मर्यादाओं, प्रतिबन्धों एवं नियंत्रण जो कि बंगाल में फोर्ट विलियम

पर सर्वोच्च न्यायालय को तत्कालीन लागू कानूनों एवं प्रदत्त शक्तियों या इस संबंध में सरकार द्वारा किये गये परिवर्तनों के अनुसार लागू हैं, बशर्ते कि बम्बई के गवर्नर एवं परिषद तथा उक्त फोर्ट विलियम के गवर्नर जनरल को एक समान सुविधायें मिलेंगी, बम्बई के सर्वोच्च न्यायालय को किसी अन्य प्राधिकरण को स्थापित करने का अधिकार नहीं होगा जैसाकि फिलहाल फोर्ट विलियम पर सर्वोच्च न्यायालय तथा उक्त गवर्नर जनरल और परिषद् को प्रदान किया हुआ है।'' कि केवल यह एक ऐसा प्रावधान है जिसके अधिकार से बम्बई के गवर्नर एवं परिषद् को वंचित रखा गया है परन्तु फोर्टविलियम के गवर्नर जनरल एवं परिषद को न्यायालय के कार्य क्षेत्र से ही वंचित नहीं रखा गया है बल्कि 21वें जियो, III द्वारा अन्य को भी अपने कार्य क्षेत्र में अपने लिखित आदेश द्वारा वंचित रखने की शक्ति है। बम्बई सर्वोच्च न्यायालय को प्रदत्त शक्तियाँ लगभग फोर्ट विलियम सर्वोच्च न्यायालय के अनुरूप है।

चौथे जियो. IV (सी.71) के इस अधिनियम के अनुक्रम में महामहिम ने अपने अधिकार–पत्र (मोरले डिग. खण्ड–II पृष्ठ 638) द्वारा सर्वोच्च न्यायालय का संस्थापन किया। इन पत्रों के द्वारा उन्होंने अनेक शक्तियाँ एवं अधिकार प्रदान किये जिनका प्रयोग इंग्लैण्ड के साम्राज्य में सामान्य याचिकाओं के लिए किया गया और उन्होंने अपने दीवानी न्याय क्षेत्र, अपने धार्मिक न्याय क्षेत्र और निर्णय देने वाले न्यायालय के न्यायिक क्षेत्र के विस्तार को सीमित रखना उचित समझा। केवल इन्हीं न्यायिक क्षेत्रों को सीमित रखा गया और जहाँ क्षेत्र का संबंध है, उस मामले में शक्तियाँ न्यायालय को प्रदत्त होनी चाहिए। दीवानी कार्य क्षेत्र को सीमित करने वाला अनुच्छेद इस प्रकार है (अनुच्छेद 28) और हम इसके साथ निर्देश, निर्दिष्ट एवं निश्चित करते हैं कि उक्त बम्बई सर्वोच्च न्यायालय का न्यायिक क्षेत्र, शक्तियाँ एवं अधिकार उन सभी व्यक्तियों पर लागू होंगे जो इससे पूर्व ब्रिटिश शासन की परिभाषा द्वारा बम्बई के लिए हमारे न्यायिक चार्टर में विभाजित किये हुए थे। किसी भी फैक्टरी/कार्यालय के शासनाधीन या बम्बई सरकार के आश्रय में रहने वाले हैं।'' इस प्रकार यह वर्णित करता है कि बम्बई के सर्वोच्च न्यायालय का सम्पूर्ण न्यायिक क्षेत्र, शक्तियाँ और अधिकार उन व्यक्तियों पर लागू होंगे परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि न्यायालयों का साधारण न्यायिक क्षेत्र अन्य व्यक्तियों पर लागू नहीं होता है। पूरे अनुच्छेद को इस प्रकार पढ़ा जाए, ''कि बम्बई सर्वोच्च न्यायालय का न्यायिक क्षेत्र, शक्ति और अधिकार हमारे उक्त सभी मामलों (और कि उक्त न्यायालय सक्षम एवं प्रभावी होगा तथा सभी मुकदमों एवं कार्यवाहियों की सुनवाई कर निर्णय देगा) पर लागू होंगे'', तब यह केवल दीवानी न्यायिक क्षेत्र जैसे मुकदमों एवं विवादों पर लागू होगा और न्यायालय के अन्य न्यायिक क्षेत्र की किसी भी सीमा में संदर्भित नहीं होगा। इसी प्रकार समान न्याय उन सभी

व्यक्तियों को मिलेगा जिन पर दीवानी मुकदमा चल रहा है।

फ़ौजदारी न्यायिक क्षेत्र के संबंध में उल्लिखित है कि चार्टर (अनुच्छेद 44) उक्त सर्वोच्च न्यायालय को अधिकृत एवं शक्ति प्रदान करता है कि राजा के अधीन किसी भी क्षेत्र या बम्बई सरकार पर आश्रित किसी भी व्यक्ति द्वारा राजद्रोह, हत्या, अत्याचार, दुराचरण आदि करने पर उसकी जाँच व सुनवाई करे तथा निर्णय करे। अब यदि चार्टर के अनुच्छेद द्वारा न्यायालय की शक्तियाँ क्षेत्र में रहने वाले नागरिकों के लिए सीमित थी, इसलिए यह अनुच्छेद अप्रासंगिक है। अतः यह मर्यादायें दर्शाती हैं कि इसकी सभी शक्तियाँ एवं प्राधिकार सभी पर लागू न किये जाए परन्तु केवल दीवानी न्यायिक क्षेत्र पर लागू किये जाएँ। इसका हल यह है कि प्रथमतः राजा की पीठ के न्यायालय की सामान्य शक्तियाँ पूना एवं थाने सहित पूरे जिले को प्रदान की जाएँ। इन कथित स्थानों को सर्वोच्च न्यायालय के अधीन सौंप दिया जाए, तब दीवानी अधिकार छोटे जिले के लिए प्रदान किए जाएँ और तब इसी प्रकार अधिकार छोटे–छोटे जिलों के लिए प्रदान किए जाएँ। इस प्रकार इस चार्टर की भाषा उसके सिद्धान्त, जिस पर आधारित है, के समान सुबोध बन गई है। मूल नागरिक अपने आशय की व्याख्या विदेशी कानून द्वारा नहीं करें, परन्तु यह समान रूप से महत्त्वपूर्ण है कि क्या मुकदमा किसी अन्य नागरिक या ब्रिटिश नागरिक से है और यह मामला व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के अतिक्रमण के परिणामस्वरूप है। इसके बिना किसी प्रकार का कोई न्याय प्राप्त नहीं किया जा सकता। दीवानी एवं आपराधिक न्याय के साधारण मामलों के मध्य अंतर सुस्पष्ट है और अपने सभी नागरिकों की तत्काल सुरक्षा के लिए शासकों के पास विशेषाधिकार है। अपनी राजशाही गद्दी के कारण महामहिम को जो शक्तियाँ प्राप्त हैं, उनका प्रयोग राजा की पीठ के न्यायालय में न्यायाधीशों के माध्यम से किया जाएगा, यह शक्तियाँ विजित देशों के साथ–साथ उन देशों में भी लागू हैं जो राजा ने राज्याभिषेक के पश्चात् जीते हैं। ये उससे वापिस नहीं लिये जा सकते परन्तु वह विधानमण्डल की दो शाखाओं के साथ अपनी सहमति से कर सकता है, दूसरे शब्दों में कहा जाए कि इतना बड़ा त्याग करने के लिए कोई सन्देह न रहे।

इन अधिकार–पत्रों में यह भी प्रावधान है (अनुच्छे छ 45) : "कि सर्वोच्च न्यायालय गवर्नर जनरल एवं अन्य, जो निर्दिष्ट है, के विरुद्ध कुछ विशेष मामलों को छोड़कर दोषारोपण या सूचना पर मुकदमा चलाने के लिए सक्षम नहीं है।" अब मुकदमों की कार्यवाहियाँ एवं दोषारोपणों में आपराधिक सूचना की स्वीकृति प्रदान करना शामिल नहीं है फिर भी प्रावधान में स्पष्ट रूप से उल्लिखित है कि सभी मामले इससे अलग कर दिये गये हैं फिर भी यदि परिस्थितियाँ निर्देशित करें तो सर्वोच्च न्यायालय आपराधिक सूचना के लिए मामले पर सुनवाई कर सकता है।

यह वर्ष 1827 (आर.वी.राइट, 1827 मोरले की डाइजेस्ट खण्ड 1 पृष्ठ 120) ही था कि सर चार्ल्स ग्रे को निर्णय देने का अवसर मिला था जिससे विद्वान मुख्य न्यायाधीश की नागरिक के प्रति राय प्रमाणित होती है। अनेक प्रकार के व्यक्तियों जिन्होंने शेरिफ के अधिकारियों द्वारा न्यायालय की प्रक्रिया के निष्पादन में बाधा डालने का प्रयास किया, के विरुद्ध आपराधिक मामले की कार्यवाही करने का प्रस्ताव रखा गया। कुछ लोगों द्वारा की गई शिकायतें मूल नागरिकों के विरुद्ध थी, जो साधारण न्यायिक क्षेत्र के अन्तर्गत नहीं थी, उनके विरुद्ध कोई दोषारोपण को अधिमान्यता प्रदान नहीं की जा सकी परन्तु जो अन्य ब्रिटिश नागरिक थे या ब्रिटिश नागरिकों के अधीन कार्यरत थे, जो स्पष्ट रूप से अपवादित नहीं थे। सर चार्ल्स ग्रे ने हमारे द्वारा की गई भिन्नता को अभिव्यक्त रूप से मान्यता प्रदान की। "एक प्रश्न किया गया था कि क्या न्यायालय को मेंहदी अली खान के विरुद्ध आपराधिक कार्यवाही का अधिकार प्राप्त नहीं है क्योंकि वह क्षेत्रीय निवासी नहीं था।

उसकी अपनी राय में (बंगाल के मुख्य न्यायाधीश की राय) न्यायालय के न्यायिक क्षेत्र पर विचार नहीं किया जाना चाहिए। न्यायालय के न्यायिक क्षेत्र में दो भिन्न शक्तियों जैसे न्याय संबंधी निर्णय (ओयर एण्ड टर्मिनर) और सम्राट की पीठ का न्यायालय निहित है। पहली वाली शक्ति सीमित है परन्तु दूसरी सीमित नहीं है बल्कि इस शासन के अधीन सभी प्रान्तों में लागू है। यह उसकी राय थी कि सर्वोच्च न्यायालय को कम्पनी के कार्य क्षेत्र में किसी भी स्थान पर किसी प्रकार के कार्य एवं अपराध के लिए कार्यवाही का अधिकार प्राप्त है जिस प्रकार सम्राट की पीठ का न्यायालय सभी प्रकार की कार्यवाहियाँ करने के लिए अधिकृत है।

न्यायालय को किसी नागरिक, विदेशी या किसी अन्य व्यक्ति को न्यायालय की प्रक्रिया की अवहेलना या गंभीर रूप से अवरोध करने वाले को सजा देने का सम्राट की पीठ के न्यायालय की प्रक्रिया के अनुसार पूर्व अधिकार है। यह कहना बिल्कुल असंगत होगा कि सूचना की बेहतर एवं सुविचारित पद्धति द्वारा सज़ा देने का अधिकार नहीं है और कुर्सी अधिग्रहण की केवल संक्षिप्त प्रक्रिया द्वारा सज़ा दी जा सकती है। वह केवल उस प्रश्न तक सीमित नहीं रह सकते यद्यपि उनके पास सम्राट की पीठ के न्यायालय का न्यायिक अधिकार है। उन्हें जानकारी नहीं है कि न्यायालय किसी भी व्यक्ति के विरुद्ध आपराधिक अभियोग चला सकता है लेकिन उसे अभिव्यक्त करना होगा कि ऐसे कार्य का निष्पादन सावधानीपूर्वक करना चाहिए ताकि किसी को ठेस नहीं पहुँचे। इससे आपराधिक अभियोग के आधार का प्रश्न हल होगा क्योंकि मेंहदी अली पर उनका न्यायिक क्षेत्र उनका कलकत्ते का निवासी होने पर निर्भर नहीं था। तब उन्होंने कहा "कि चूँकि इनमें से कुछ नागरिक दोषारोपित नहीं

किये जा सकते थे और जो किये जा सकते थे वे बहुत ही कम आपराधिक प्रकृति के थे, उनके विरुद्ध आपराधिक मुकदमा चलाने की अनुमति नहीं दी जा सकती थी परन्तु यह उचित माना गया कि उन सबको दोषारोपित किया जाए।

इसके साथ ही दोषारोपितों पर मुकदमा चलाने की अवहेलना के लिए कुर्की का आदेश जारी करने के सभी आपराधिक मुकदमों के लिए स्वीकृति प्रदान करने से अलग कर दिया गया। दोषारोपण पर मुकदमा केवल सर्वोच्च्व न्यायालय द्वारा निर्णय देने वाले न्यायालय के अनुरूप चलाया जा सकता है और मुकदमा चलाने के अधिकार अपवादित शर्तों के साथ जुड़े हैं परन्तु अवहेलना की सज़ा देने का अधिकार सभी न्यायालयों को प्रदत्त है। आपराधिक सूचनाओं के आधार पर कार्यवाही करने का अधिकार राजा की पीठ के न्यायालय को प्रदत्त है और व्यक्तियों की बिना किसी सीमा के चार्टर की शर्तों पर मामले को सर्वोच्च्व न्यायालय में स्थानांतरित किया जा सकता है।

महामहिम को सूचित किया जाता है कि पुस्तकों में ऐसे अनेक मामले देखे जा सकते हैं जिनके प्राधिकारी चाहते हैं कि उनके लिए उनके अनुरूप वर्णित पद्धति में अधिकार प्रदत्त हों। ब्राऊन के मामले में क्रो जेम्स पृष्ठ 543'' मोन्टाग्यू, मुख्य न्यायाधीश ने कहा था कि सिन्क पोर्ट, जहाँ राजा का कोई आदेश नहीं था, का विशेषाधिकार पार्टियों द्वारा निर्दिष्ट था, परन्तु राजा के विरुद्ध ऐसा विशेषाधिकार नहीं हो सकता और यह आदेश को (बन्दी प्रत्यक्षीकरण की याचिका) अधिकृत आदेश है जो राजा के न्याय, जो उसने अपनी नागरिक के लिए सुनाना है, से संबंधित है और सम्राट के पास उत्तर होना चाहिए कि उसके किसी नागरिक को सज़ा क्यों दी गई और यह सभी व्यक्तियों को स्वीकार्य होना चाहिए और यह बन्दी प्रत्यक्षीकरण की धारा के अनुरूप होना चाहिए और इस याचिका पर कैलिस एवं राज्य के अन्य स्थानों एवं विवाद है कि यह न्यायिक क्षेत्र का विवाद नहीं है, के लिए निर्णय दिया परन्तु साम्राज्य एवं उसके न्यायालय विवादास्पद नहीं हो सकते, अन्य सभी न्यायाधीशों की भी यह राय है।' महामहिम मुख्य न्यायाधीश मोन्टाग्यू के सिद्धान्त कालिस एवं ब्रिटिश साम्राज्य की रियासत के भीतर अन्य स्थानों पर सुनाये गये राजा के हुक्मनामों और जिनको न्यायालयों द्वारा उस समय तथा वर्तमान में पूरी तरह से मान्यता प्रदान की गई है, का दृष्टान्त देते हुए सशक्त किया गया है।

लार्ड मेसफील्ड ने काउले, 2 बरोस की रिपोर्ट, पृष्ठ 834 में निर्दिष्ट किया गया है कि सम्राट का हुक्म उसकी पूरी रियासत में सभी स्थानों पर लागू होना चाहिए और जब उस मामले में नियम निर्धारित किया जाने लगा तो महामहिम ने निर्देश

दिया कि बारविक नगर में लागू नहीं हुए जूरी के हुक्म को लागू किया जाए परन्तु यह भी निर्णय लिया गया कि विभिन्न स्रोतों से उद्भूत उच्च अधिकृत हुक्मनामे का क्षेत्र अधिक व्यापक है। अब इस स्वाभाविक निष्ठा के उद्भव उच्च अधिकृतता के लिए नागरिक सम्राट के आभारी हैं और नागरिक इस निष्ठा के लिए सम्राट से सुरक्षा की अपेक्षा करते हैं। यह वही सिद्धान्त है जो सातवीं रिपोर्ट में केलविन के मामले में अभिव्यक्त है। अतः नागरिक निष्ठा के प्रति तथा सम्राट सुरक्षा के प्रति सचेत रहते थे। अब क्या इस पर तर्क किया जा सकता है कि किसी विजित क्षेत्र को महामहिम के शासन में सम्मिलित कर दिया जाता है तो उस देश के निवासी सम्राट के प्रति निष्ठावान होंगे। यदि वे ऐसा करेंगे तो यह समझ लेना चाहिए कि सम्राट उनको सुरक्षा प्रदान करेंगे और यह सुरक्षा का स्वरूप वैसा ही होगा जो कि वर्तमान विजित देशों को प्रदान की जा रही है। इसके लिए बन्दी प्रत्यक्षीकरण का अधिकृत हुक्मनामा भी जारी किया जाएगा ताकि यह जानकारी मिल सके कि उनको कानूनी रूप से बन्दी बनाया गया है या नहीं या उसके आदेश पत्र कि उसको जानकारी दी जाए कि क्या उनके विरुद्ध की गई कार्यवाही कानून के अनुकूल है या उसके निषेधाज्ञा का हुक्मनामा ताकि वह अपनी रियासत में संबंधित न्यायालयों को अपने कर्त्तव्यों का पालन करवा सके या उसका हुक्मनामा जिससे वे व्यक्तियों को ऐसे कार्य करने के लिए बाध्य कर सके जिसके लिए वे बाध्य हैं। अतः जब सम्राट अपने अधिकृत होने की शक्ति से संसद के अधिनियम से किसी न्यायालय को अधिकार प्रदान करता है तो न्यायालय जब तब तक उसके न्यायिक क्षेत्र को या किसी अन्य रूप से प्रतिबन्धित न किया जाए, को व्यापक रूप से कार्य करने का अधिकार होगा। यहाँ सम्राट ने वही शक्तियाँ प्रदान की हैं जिनका इंग्लैण्ड में सम्राट की पीठ प्रयोग करती है, ताकि इन शक्तियों का प्रयोग सर्वोच्च न्यायालय सम्पूर्ण कार्यक्षेत्र के साथ–साथ उन स्थानों पर भी कर सके जहाँ पर ये हुक्मनामे भेजे गये हैं। यह भी सत्य है कि भारत के मूल निवासी एक–दूसरे के प्रति विवाद के निजी मामलों के लिए सर्वोच्च न्यायालय के न्यायिक क्षेत्र में नहीं आते हैं कि कुछ हुक्मनामे, जो हमारे कानून के रूप में माने जाते हैं, एक पार्टी और दूसरी पार्टी पर लागू नहीं होते हैं और इसके बावजूद कि सम्राट के अधिकृत आदेश, जो चार्टर में किसी अनुच्छेद द्वारा प्रतिबन्धित नहीं है और न ही संसद के अधिनियम से हटाये गये हैं, के उद्देश्य के लिए सम्पूर्ण अधिकार सम्राट के पास होगा और उस न्यायालय द्वारा इसका प्रयोग किया जा सकेगा जिसके लिए संविधान ने अत्यधिक एवं असीमित अधिकार प्रदान किये हुए हैं।

बम्बई न्यायालय में अपने सशक्त तर्क के पूर्व भाग में एडवोकेट जनरल–बंबई ने वर्ष 1777 में सर एलिजा एम्पे के समक्ष घटना के बहुचर्चित मामले का उल्लेख

करते हुए अपनी अभिव्यक्तियों से सूचित करने का प्रयास किया है कि न्यायालय को वर्तमान जैसे मूल नागरिकों के मामले में कोई न्यायिक अधिकार नहीं है (पटना परिशिष्ट सं. 17, नदारा बेगम बनाम बेहेदर बेग के मामले में सर ई.एम्पे का निर्णय) इस देश में सभी नागरिक नहीं बल्कि केवल कुछ व्यक्ति ही विशेष विवरणों के लिए उत्तरदायी हैं जो सम्राट के कानून या इस न्यायालय के न्यायिक क्षेत्र में आते हैं। चूँकि यहाँ अन्य कानून हैं जिसके प्रति अधिकतर नागरिक उत्तरदायी हैं और हम अपने न्यायिक क्षेत्र का विस्तार करने के इच्छुक नहीं हैं, हमने न्यायिक क्षेत्र का तर्क इसलिए प्रस्तुत किया है ताकि इस तर्क का अन्य तर्कों में स्वतंत्र रूप से प्रयोग किया जा सके। इस सिद्धान्त पर श्री दीवार द्वारा पर्याप्त दवाब डाला गया परन्तु सर इलिजा एम्पे के प्राधिकारी इस तथ्य के समर्थन के पक्ष में नहीं थे कि मूल निवासियों को सर्वोच्च न्यायालय के न्यायिक क्षेत्र से छूट है। फिर यही प्रश्न उत्पन्न होता है कि यहाँ कोई सी न्यायिक सीमा संकल्पित है।

क्या ऐसा न्यायिक क्षेत्र है कि जहाँ उच्च अधिकृत आदेश जारी किये जाए, जिसको सकारात्मक अधिनियम के बिना समाप्त नहीं किया जा सकता था यह एक ऐसा न्यायिक क्षेत्र है जहाँ एक पार्टी और दूसरी पार्टी के मध्य विवादों पर निर्णय किया जाए और मुकदमों व कार्यवाहियों को किस कानूनी नाम द्वारा नामित किया जाएगा? सर एलिजा ने अवश्य ही मामले में अंतिम तर्क का संदर्भ दिया होगा ताकि उसे न्यायिक क्षेत्र के मामले में स्वतंत्र रूप से तर्क करने की स्वीकृति प्राप्त हो सके।

उसने तब तर्क दिया कि चूँकि 21 वीं जियो. 3 के.प. 70 के इस अधिनियम में अधिनियमित है कि "गवर्नर जनरल और परिषद् अपने अधिकार क्षेत्र के निवासियों तथा ईस्ट इंडिया कम्पनी की सेवा में कार्यरत सभी नागरिकों का उनके कार्यालयों का उल्लेख करते हुए नाम तथा रहने के स्थान का नाम दर्ज करते हुए वर्णक्रमानुसार रजिस्टर बनायेंगे। "यह सुनिचित करने के लिए सावधानी से काम नहीं किया गया कि कौन से मूल–नागरिक न्यायिक क्षेत्र के अधीन आते हैं और क्या किसी को भी छूट प्रदान नहीं की गई। परन्तु संक्षेप में कहा जाए तो हमें यह स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है कि केवल कुछ ही श्रेणियाँ न्यायिक क्षेत्र में थी। सभी वर्णित व्यक्तियों का पंजीकरण इस उद्देश्य के लिए समान रूप से वांछनीय है कि क्या हमारा तर्क इन सभी को उदारता से इसमें सम्मिलित कर लिया जाए, न्यायसंगत है या तर्कहीन है।

सामान्यतया उच्च अधिकृत आदेशों के सम्बन्ध में कहे जाने के बाद हम विशेष रूप से बन्दी प्रत्यक्षीकरण के आदेश के संबंध में जिक्र करते हैं। वर्ष 1818 में इस आदेश से संबंधित सैद्धान्तिक आदेश पर लार्ड एल्डन ने क्रोले के मामले, दूसरा

स्वानस्टन पी.1, में जाँच की गई। दिवालियेपन की स्थिति में मामलों की सुनवाई करने वाले आयुक्त ने एक व्यक्ति को संतोषजनक उत्तर न देने के लिए बन्दी बनाये जाने पर अवकाश के दौरान बन्दी प्रत्यक्षीकरण की याचिका के लिए एक प्रस्ताव तैयार किया, और इस पर यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि क्या जो अधिकार उनके पास हैं उन पर बारीकी से विचार–विमर्श किया गया है।' उसने लार्ड चान्सलर नौटिघंम (जेनकिस का मामला 1676, 6, टाउ स्ट.ट्र 1189) द्वारा निर्णित मामले को देखा परन्तु उसने दृढ़ता से उस निर्णय को अस्वीकार कर दिया जब उसने उसे ब्रिटेन के कानून के सिद्धान्त के प्रति असंगत पाया। उसने ऐसा व्यवहार किया जिससे यह लगे कि उसे कानून की जानकारी है कि किसी व्यक्ति की स्वतन्त्रता पर बिना सर्वोच्च कानूनी प्राधिकार के हस्तक्षेप न किया जाए तब तक कि प्रतिरोध के कारण पर तत्काल निर्णय देने का अधिकार न हो, और कि सम्राट का अधिकृत आदेश किसी भी समय कार्यान्वित किया जा सकता है और अधिनियम में सामान्य शब्दों द्वारा प्रभावित नहीं हो सकता।

मोरो रघुनाथ (1 नेप, 8) के मामले में बम्बई के गवर्नर एवं परिषद् ने असाधारण हस्तक्षेप किया उस मामले में यद्यपि बन्दी प्रत्यक्षीकरण के हुक्मनामा का कोई प्रत्युत्तर प्राप्त नहीं हुआ, बल्कि एक विचित्र, असंगत, संदेहात्मक दस्तावेज उस व्यक्ति से प्राप्त हुआ जिसको यह हुक्मनामा भेजा गया था। उस दस्तावेज में उल्लिखित वास्तविकता, यदि सत्य है, न्यायालय में प्रस्तुत की जानी चाहिए थी और कारण यदि पर्याप्त थे तो भी न्यायालय में प्रस्तुत किये जाने चाहिए थे। यदि कार्यवाही में भी उल्लिखित था कि व्यक्ति जिसको हुक्मनामा निर्देशित किया गया था, ने श्री डनलप, जो विश्व के उस हिस्से का शान्ति का न्यायाधीश, से अधिकार प्राप्त कर रखा था कि मोरो रघुनाथ को हिरासत में रखे और हमारी आशंका पर पूणतया विचार किया जाए कि क्या यह व्यक्ति श्री डनलप के एजेंट के रूप में नियुक्त था और इस प्रकार उनके संक्षिप्तम विवरण का उत्तर न्यायिक सीमा के भीतर दिया जाए।

यह कानून की कल्पना की अपेक्षा छोटी सी साहसिक धारणा है कि बन्दी प्रत्यक्षीकरण द्वारा समान प्रतिवाद के मामलों को न्यायालय के समक्ष लाया गया कि व्यक्ति विशेषाधिकारप्राप्त व्यक्ति है और इसलिए लार्ड एलडन और महामहिम न्यायाधीश ब्लैकस्टोन समान प्रतिवाद की संस्तुति करते हैं कि हिरासत में लिए जाने वाले व्यक्ति के पास विशेषाधिकार है जबकि इसकी जानकारी उस व्यक्ति को नहीं ह है क्योंकि कानून यह सहन नहीं कर सकता कि व्यक्ति जो अनुचित ढंग से हिरासत में है वापिस हिरासत में आये।

ऐसा कभी मुश्किल से हुआ होगा कि भारतीय क्षेत्र में कोई व्यक्ति बिना ब्रिटिश नागरिकों के हस्तक्षेप के हिरासत में रहा हो।

लगभग प्रत्येक मामले में जेल अधिकारी स्थानीय निवासी है, स्थानीय न्यायालयों के सभी अधिकारी स्थानीय हैं परन्तु स्थानीय न्यायालयों का प्राधिकार हमेशा से अधिकतर ब्रिटिश नागरिकों के नियंत्रण में ही रहा है। ईस्ट इंडिया कम्पनी के कर्मचारी ही उनके न्यायिक क्षेत्रों पर पीठासीन हैं। इसमें बहुत चतुराई एवं गंभीरता से पता लगाना होगा कि कभी ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई हैं जब किसी व्यक्ति ने किसी व्यक्ति को हिरासत में रखा हो जब कि वह ब्रिटिश नागरिकों के अधीन कार्यरत न हो।

सर्वोच्च न्यायालय (1 नेप, 4) के गठन के पत्र से सम्राट द्वारा प्रदत्त सभी अधिकार पत्र के सिवाय उनके जो बम्बई द्वीप में रह रहे हैं या ब्रिटिश प्राधिकारियों द्वारा नियुक्त हैं, निरस्त हो जायेंगे, इससे प्रान्तीय न्यायालयों के किसी अधिकारी को निर्देशित हुक्मनामे के निष्पादन से मना कर सकता है और सरकार द्वारा अधिग्रहण किये गये अधिकारों के अनुरूप बापू गणेश (1 नेप, 6) के मामले में कार्यवाही होनी चाहिए।

तत्पश्चात् अधिवक्ता ने न्यायाधीशों के समक्ष गवर्नर एवं परिषद् के पत्र के आशय पर टिप्पणी देनी प्रारम्भ की।

लार्ड चान्सलर (लार्ड लायनडहर्स्ट) ने अवलोकन किया, "हम यहाँ बम्बई के सर्वोच्च न्यायालय का न्यायिक क्षेत्र निश्चित करने के लिए इकट्ठे हुए हैं। विचार–विमर्श का मुद्दा है कि उसके अधिकार क्या है।"

सम्राट को बन्दी प्रत्यक्षीकरण का आदेश जारी करने का अधिकार है और इसको केवल स्पष्ट शब्दों द्वारा निरस्त किया जा सकता है और ये शब्द चार्टर में उल्लिखित नहीं हैं। ऐसे आदेश सम्राट की पीठ के न्यायालय में ब्रिटिश कानून द्वारा जारी किये जा सकते हैं और ये पीठ ब्रिटिश साम्राज्य के शासनाधीन किसी रियासत में सम्मिलित होनी चाहिए। ऐसे आदेश ब्रिटिश सर्वोच्च न्यायालयों से अनेक भारतीय प्रेजीडेन्सियों, जिनके संसद के अधिनियम द्वारा ब्रिटिश सम्राट के पीठ की सभी शक्तियाँ प्रदत्त हैं, पर लागू किये जाते हैं। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायिक क्षेत्र पर व्यक्ति विशेष के संबंध में प्रतिबन्ध जारी किए हुए हैं, परन्तु ये उचित कारण से ओयर एण्ड टर्मिनर एवं कारावास के आदेश देने वाले न्यायालयों की सामान्य प्रक्रिया के रूप में लागू होंगे। ये आदेश उन उच्च अधिकृत आदेशों को जारी करने के अधिकार क्षेत्र में नहीं आते जो

सम्राट के सभी निष्ठावान नागरिकों की सुरक्षा के लिए अनिवार्य हैं तथा जिन मामलों में तत्कालिक एवं निर्णयात्मक आन्तरिक–स्थिति उत्पन्न न हो। परन्तु इसके बावजूद भी नागरिक पूर्णतया मूल निवासी है तो भी उसके साथी–नागरिक की हिरासत के संबंध में उससे प्रश्न नहीं किया जा सकता, ऐसा उन न्यायालयों के एजेंट भी नहीं कर सकते, जो ब्रिटिश न्यायाधीशों के अधीन हैं तथा महत्वाकांक्षी छूट से स्पष्ट बहिष्कृत हैं।

बन्दी प्रत्यक्षीकरण (31 कार.II सी. 2) के प्रतिष्ठित अधिनियम में अभिनिहित है "नागरिक की स्वतंत्रता को बेहतर ढंग से प्राप्त तथा समुद्र पार कारावास पर रोक के लिए अधिनियम तथा सम्राट बनाम काऊले, (आर.बनाम काऊले 1759, दूसरा बर 835) में यह उल्लिखित है कि ब्रिटेन में सम्राट की पीठ को अपने अधीनस्थ क्षेत्रों में नागरिकों को इस प्रकार के आदेश देने का अधिकार है जबकि इन आदेशों को जारी करने की आवश्यकता उत्पन्न नहीं होती कि लार्ड मेन्सफील्ड के प्राधिकार से ज्ञात होता है कि न्यायालय के पास ऐसा अधिकार है तथा इस तथ्य से भी ज्ञात होता है कि इंग्लैंण्ड के सम्राट की सभी रियासतों ने तत्संबंधी आदेश जारी किये हुए हैं। अतः वे न्यायालय के साधारण सिविल न्यायिक क्षेत्र की स्वीकृत सीमा को बढ़ा सकते हैं और इस प्रकार भारत में सर्वोच्च न्यायालय का न्यायिक क्षेत्र सभी विजित क्षेत्रों पर लागू होगा यद्यपि इसका सिविल न्यायिक क्षेत्र केवल बम्बई तक ही सीमित रहेगा। इंग्लैण्ड में ऐसे मामलों में राजा की पीठ के न्यायालय का दायित्व लार्ड कोक द्वारा सम्राट की पीठ के न्यायालय के अधिकार के संबंध में अपने वक्तत्व में कहा है कि (क.संस्थ.प. 4, केप.7) महामहिम अपने नागरिकों के सुखों, अपनी अर्न्तात्मा की शान्ति और अपने शब्दों पर कायम रहने के लिए, अपने महानुभावों और परिषद् के सदस्यों की सहमति से अपने न्यायाधीशों को हिदायत देते हैं कि वे अब से बिना किसी व्यक्ति विशेष के भेदभाव चाहे अमीर हो या गरीब, इसके साथ ही हमारे द्वारा उनको किसी के साथ कैसा व्यवहार करना है, के संबंध में भेजी गई हिदायतों एवं पत्रों को नजरअंदाज कर सभी नागरिकों के साथ कानूनी रूप से एक समान व्यवहार करेंगे। यदि ब्रिटेन में सम्राट की पीठ के न्यायालय द्वारा ब्रिटेन के सम्राट द्वारा भेजे गये पत्र की उपेक्षा न कर न्याय करते हैं तो यह आशा करना गलत होगा कि बम्बई के सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश संबंधित क्षेत्र के गवर्नर एवं परिषद् से बिना कोई प्रतिवाद किये अपने कार्यकलापों का निपटान पूरी ईमानदारी एवं विवेक से कर पत्र या हिदायतें जारी करते हैं।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के लिए बोसनक्वेट एण्ड स्पेन को उसके वर्तमान महामहिम के चतुर्थ अधिनियम से स्पष्ट है कि बम्बई सर्वोच्च न्यायालय को बम्बई के अतिरिक्त कोई अन्य क्षेत्र देने का आशय नहीं है और बम्बई से बाहर प्रेजीडेन्सी ऑफ फोर्ड विलियम के क्षेत्र के भीतर सर्वोच्च न्यायालय का कार्य क्षेत्र होगा। एक तरह से इससे

यह परिणाम निकलेगा कि चार्टर में दिये गये कार्यक्षेत्र की तुलना में अधिनियम के उद्देश्य कम प्रभावी होंगे।

परन्तु वर्तमान के लिए हम मान लेते हैं कि प्रदत्त अधिकार पूर्णतया फोर्ड विलियम के सर्वोच्च न्यायालय को प्रदत्त अधिकारों के समान हैं। भारत में जियो–III के 13 वें (मारले की डिग. खण्ड–II पृष्ठ 549) द्वारा संस्थापित नये न्यायालयों के कार्यक्षेत्र का प्रतिष्ठित सिद्धान्त था कि जहाँ तक कलकत्ता नगर में कालोनी का संबंध है, सभी निवासियों को अमान्य क्षेत्राधिकार प्रदत्त था। यहाँ एक ओर कार्यक्षेत्र है, जो अपने आप में व्यापक नहीं है, जिसकी पूरी रियासत में जाना प्रेजीडेन्सी पर निर्भर करता है और यह निर्दिष्ट वर्गों के लोगों के लिए स्वीकार्य है। दो चीजें बिल्कुल भिन्न हैं और हम स्वीकार करते हैं कि जहाँ तक इंग्लैंण्ड में सम्राट की पीठ के न्यायालय के विशेषाधिकार और प्राधिकार कलकत्ता या बम्बई की कालोनियों या निर्दिष्ट वर्गो के लिए लागू किये जा सकते हैं तो कार्यक्षेत्रों को स्वीकार किया जा सकता है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि वे जिस क्षेत्र में हैं उसका सम्पूर्ण क्षेत्र उनका कार्य क्षेत्र होगा चाहे निर्दिष्ट वर्ग के नागरिक से न जुड़ा हो या भिन्न प्राधिकरण के अन्य न्यायालयों की कार्यवाहियों का नियंत्रण करे। इस अन्तर को विधानमण्डल द्वारा सोच समझ कर बुद्धिमत्ता से अपनाया है। मद्रास एवं बम्बई में फोर्ट विलियम पर ब्रिटिश कानून कम से कम पिछले सौ वर्षो से लागू है। यह जियो–I (1726:13 जियो–I) के चार्टर से सम्पूर्ण रूप से लागू हैं। यह वर्ष 1774 से पूर्व से वर्तमान नियम के रूप में जाना जाता है। नागरिकों पर कलकत्ता के स्थानीय न्यायिक क्षेत्र के अन्तर्गत जालसाजी एवं ब्रिटिश कानून द्वारा अपराधों के लिए मुकदमा चलाकर दोषी ठहराया जाता है। उन नगरों जो एक प्रकार की ब्रिटिश कालोनियाँ हैं, में आते थे, उन पर ब्रिटिश कानून लागू होता था, वे ऐसे स्थान पर पहुँच जाते थे जहाँ वे ऐसे व्यक्तियों, जो इंग्लैंड में तो आते हैं और उन पर उस स्थान के कानून के अनुसार मुकदमा चलता है जहाँ से वे आये हैं, की अपेक्षा न्यायिक क्षेत्र की उपेक्षा नहीं कर सकते थे। अन्य वर्ग ऐसा वर्ग था जो अपने कार्यकलापों से कम्पनी की नौकरी से ब्रिटिश नागरिक बन गया था ब्रिटिश नागरिक जो स्वेच्छा से उन सेवाओं में आये जो सम्राट के न्यायालयों के न्यायिक क्षेत्र में थे। यह कानूनी नीति थी कि उन व्यक्तियों को स्थानीय सीमाओं या निर्दिष्ट वर्गों को न्यायिक क्षेत्र के मुद्दे पर स्थानीय सीमा से बाहर कर दिया जाए ताकि वे अपने स्वयं के कानून द्वारा शासित हो सकें और अपवाद यह था कि उनको यह छूट थी कि वे अपने आप न्यायिक क्षेत्र का चुनाव कर सकते हैं और सर इलिजा एम्पेय ने हाऊस ऑफ कामन्स में अपने भाषण में इसी अभिमत को चुना [संसदीय इतिहास खण्ड 26 (1341–1416)]।

स्थानीय या प्रान्तीय न्यायालयों के पास जो अधिकार थे वे अधिकार भारत पर ब्रिटिश की विजय से काफी समय पूर्व के थे और सिवाय उनके अभी भी लागू हैं, जिनको विधानमण्डल प्राधिकरण द्वारा परिवर्तित किया है और इनका ब्रिटिश संसद द्वारा प्रत्यक्ष रूप से प्रयोग नहीं किया जाता बल्कि परिषद में गवर्नर जनरल को सौंपे गये हैं। इस प्रकार सभी लोग सम्राट के न्यायालयों के अधीन न होकर अपने निजी कानूनों के अधीन ब्रिटिश विधानमण्डल के प्राधिकरण में रह रहे हैं और अनेक उद्देश्यों के लिए विभिन्न शासनों के अधीन एक अलग राष्ट्र के रूप में रह रहे हैं सम्राट की पीठ के न्यायालय के क्या अधिकार माने जाएँ ? पूर्व में सम्राट न्यायालय में अपनी प्रभु–सम्पन्नता का प्रयोग करता रहा है जिसका प्रयोग अब न्यायालय द्वारा किया जा रहा है, इसलिए अभी भी हमारे अधिपति का न्यायालय, राजा स्वयं राजा के समक्ष कहा जाता है। पूरे प्रशासन का आकलन प्राचीन न्यायालयों व सभी न्यायिक प्राधिकरणों को दृष्टिगत रखकर किया गया है और सभी बिना किसी अपवाद या भेद के सम्राट के न्यायालय सम्राट की पीठ के न्यायालय के नियंत्रण में है। परन्तु इंग्लैंड के कानून भारत के कानून नहीं हैं। यह कानूनी संहिता है जिसे सम्राट अपनी संसद की सहमति से उचित मानते हैं कार्यशील या अधिनियमित करता है और जो सम्राट के कानून नहीं हैं वे इंग्लैण्ड के कानून हैं। अतः यहाँ परिस्थितियों में कोई समानता नहीं है। इंग्लैण्ड में न्यायालय एक समान स्रोत से गठित किये जाते हैं और वे एक जैसी प्रक्रिया में कार्य करते हैं, ये कानून एक जैसे लोगों पर लागू होते हैं। परन्तु भारत में कानून विभिन्न स्रोतों से बनाये जाते हैं, वे विभिन्न वर्गों के व्यक्तियों से जुड़े रहते हैं, इन कानूनों की ब्रिटिश कानूनों से कोई समानता नहीं होती है। कलकत्ता या बम्बई में स्थानीय रूप से लागू स्थानीय कानूनों एवं न्यायालयों पर नियंत्रण के लिए ब्रिटिश न्यायालय को अधिकार प्रदत्त करना असंगत न्यायिक असंगत न्याायिक प्रशासन की किस्म होगी, इसके लिए हमें विश्वास है ब्रिटिश विधानमण्डल इसे कभी भी स्वीकार नहीं करेगा।

वर्ष 1773 में सर्वोच्च न्यायालय के संस्थापन से पूर्व कलकत्ता, मद्रास एवं बम्बई में महापौर न्यायालय थे। 13 वें जियो–III (सी.63) का अधिनियम केवल कलकत्ता में सर्वोच्च न्यायालय के संस्थापन के लिए अधिकृत करता है। उस अधिनियम की भाषा और उस पर निर्धारित चार्टर से अनेक आलोचनायें होने लगीं। दूसरी ओर अनेक परिस्थितियाँ, जो पूर्व उदाहरण के रूप में देखी जाने लगी थीं, 21 वीं जियो–III (सी.70) से पूर्व घटित हुई परन्तु सर्वोत्तम सूचना जो हमें प्राप्त हुई, के अनुसार वर्ष 1781 (सी.70) में 21 वीं जियो–III के पारित होने तक ऐसा काई उदाहरण नहीं मिला है जिसमें तीनों प्रेजीडेंसियों में से किसी ने यह प्रयास नहीं किया कि बन्दी प्रत्यक्षीकरण का आदेश जारी किया जाए, जिसके संबंध में प्रतिवाद पर अब तक कार्य किया जा रहा है।

वर्ष 1773 में जियो–III (केप 63) के 13 वें अधिनियम में प्रावधान है (सेक्ट 13) कि महामहिम को फोर्ट विलियम में सर्वोच्च न्यायालय संस्थापित करने का अधिकार है और इस संबंध में प्रावधान संलग्न हैं (सेक्ट 14) "कि उक्त उन नये चार्टर, नियत किये गये अतिरिक्त न्यायिक क्षेत्र, शक्तियाँ और प्राधिकार, सिवाय उन सभी ब्रिटिश नागरिकों पर लागू नहीं होंगे जो बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा या इसमें से किसी में भी उक्त यूनाइटिड कम्पनी के संरक्षण में रहते हैं, सभी पर चार्टर सक्षमता एवं प्रभावी रूप से लागू होगा तथा इसमें संस्थापित एवं संस्थपित किये जाने वाले सर्वोच्च न्यायालय को महामहिम के किसी नागरिक के विरुद्ध किये गये या किये जाने वाले अपराधों, दुराचरण या अत्याचारों के लिए सुनवाई करने तथा शिकायतों को निर्धारित करने का पूर्ण अधिकार एवं शक्ति होगी और बंगाल, बिहार और उड़ीसा में महामहिम के किसी नागरिक के विरुद्ध किसी मुकदमे पर कार्यवाही पर विचार, सुनवाई और निर्णय भी करेगा और कोई व्यक्ति, जिसके विरुद्ध उस ऐसा ऋण हो या कार्यवाही का कारण या शिकायत हो, जो यूनाइटेड कम्पनी या महामहिम के किसी व्यक्ति के अधीन कार्यरत हो या प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कम्पनी में नौकरी कर रहा हो पर भी लागू होगा।

इस चार्टर की किसी धारा या अभिव्यक्ति या संसद के किसी अधिनियम में कोई भी अव्यक्तता या संदिग्धता पाई गई हो इस संबंध में हम अनुभव करते हैं कि संस्थापित किये गये न्यायालय सभी प्रान्तों में सामान्य न्यायिक क्षेत्र, सम्राट की पीठ के न्यायालय की प्रकृति के न्यायालय नहीं है, इनमें कुछ अपवाद है कि ये न्यायालय स्थानीय एवं सीमित न्यायिक क्षेत्र की अपेक्षा विस्तृत न्यायिक क्षेत्र के साथ अनेक मामलों में अनेक व्यक्तियों पर न्यायिक सीमा वाले न्यायालय हैं। निःसन्देह सैद्धान्तिक रूप से यह एक बहुत बड़ी भिन्नता है। सार्वभौमिक रूप से यह मान लिया गया है कि इन न्यायालयों का सीमित एवं स्थानीय न्यायिक क्षेत्र स्थानीय सीमाओं तक सीमित है, और यह न्यायिक क्षेत्र ब्रिटिश नागरिकों पर ही नहीं बल्कि सभी स्थानीय नागरिकों, मुसलमानों और हिन्दुओं के साथ–साथ ईसाइयों पर आपराधिक एवं सिविल मामलों पर इस प्रावधान के साथ लागू होता है कि विभिन्न धर्मों के लोगों पर उनके धर्मानुसार न्याय किया जाएगा, कुछ मामलों में और इन सीमाओं से हटकर न्यायालयों में वर्णित कुछ ब्रिटिश नागरिकों और ईस्ट इण्डिया कम्पनी में सेवारत व्यक्तियों के लिए अलग न्यायिक क्षेत्र होगा।

अगला ठोस प्रावधान (सेक्ट 16) है : " सर्वोच्च न्यायालय भारत के बंगाल, बिहार, उड़ीसा या इनमें से किसी एक में रह रहे भारत के किसी निवासी के विरूद्ध महामहिम के किसी भी मामले/नागरिक की किसी सुनवाई या मुकदमें या कार्यवाही को निश्चित करेगा जिसमें कार्यवाही वर्तमान 500 रूपये से अधिक की हो और उक्त

निवासी ने उक्त अनुबन्ध से सहमति दी हो कि विवाद की स्थिति में मामले पर उक्त सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सुनवाई की जाएगी।'' अधिनियम में सम्मिलित किया गया यह प्रावधान निश्चित रूप से असाधारण प्रावधान है जिससे सामान्य न्यायिक क्षेत्र का न्यायालय स्थापित होगा।

13 वें जियो–III (सी.13) के अधिनियम और तत्पश्चात् तैयार किये चार्टर से बन्दी प्रत्यक्षीकरण का आदेश जारी करने से अन्य मुद्दों के साथ–साथ विभिन्न विवाद भी उत्पन्न हो गये, इसके परिणामस्वरूप 21 जियो–III केप 70 का अधिनियम सर्वोच्च न्यायालय की न्यायिक सीमा के संबंध में लोगों के संदेह को दूर करने के लिए पारित किया गया। बन्दी प्रत्यक्षीकरण का आदेश उन व्यक्तियों के लिए जारी किया गया जो भू–स्वामी थे और ये तर्क दिया गया कि कोई व्यक्ति जिसके पास भूमि है और जो किराया देता है परन्तु ईस्ट इण्डिया कम्पनी से जुड़ने के लिए अन्य कोई व्यवसाय नहीं है, को ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सेवा में होना माना जाएगा और इस प्रकार न्यायालय की सामान्य सीमा के भीतर माना जाएगा। ऐसा कहा गया है कि आवेदन ईस्ट इण्डिया कम्पनी को किये गये कि बन्दी प्रत्यक्षीकरण का आदेश जारी करने के अधिकार प्रदान करने के लिए अधिनियम में प्रावधान किया जाए। किन श्रेणी के व्यक्तियों के लिए इस आदेश के निर्देश सीमित रखे जाए, का उल्लेख नहीं किया गया परन्तु यदि मामला सरकार के विचारार्थ प्रस्तुत किया गया होता और तब भी 21 जियो–III (सी.70) के अधिनियम में कोई अनुच्छेद न जोड़ा गया होता तो यह अनुमान लगाने के कारण कम होते कि विधानमण्डल का विशेष आशय तर्क करने के लिए अधिकार देना है। निश्चित रूप से यह स्पष्ट रूप से उल्लिखित नहीं है परन्तु बन्दी प्रत्यक्षीकरण का आदेश जिन व्यक्तियों को सम्बोधित किया गया है अधिनियम की धारा 9 एवं 10 में उल्लेख के अनुसार न्यायिक क्षेत्र से स्पष्ट वर्णन की अपेक्षा रखते हैं इन धाराओं में कहा गया है कि इसमें विशेष रूप से उल्लिखित परिस्थितियों से उनको विशिष्ट नागरिक बनाया गया है वे परिस्थितियाँ न्यायालय के न्यायिक क्षेत्र में नहीं आती। इसके लिए इसमें एक धारा जोड़ी गयी, '' कि ऐसे नागरिकों को सुनिश्चित करने के लिए जो सर्वोच्च न्यायालय के कार्य क्षेत्र में आते हैं, गवर्नर जनरल और परिषद् द्वारा उन सभी नागरिकों के नाम, विवरण एवं आवास का सामान्य पते का वर्णाक्रमानुसार रजिस्टर ईस्ट इण्डिया कम्पनी में काम करने वाले लोगों के कुछ अपवादों के साथ बनाये गये। तब कैसे यह मामला 21 वें जियो–III (सी.70) के पारित होने के तत्काल बाद समझ में आ गया ? वर्ष 1773 और वर्ष 1781 के मध्य हुए कार्य–व्यवहार से कुछ उच्च पदों पर आसीन व्यक्तियों के विरुद्ध अभियोग प्रारम्भ हो गये तथा अन्यों के साथ सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश सर इलिजा एम्पे, के विरुद्ध आरोप

लगे। इन्होंने हाऊस ऑफ कामन्स में अपने भाषण में अपना बचाव किया था और यह भाषण एक अलग प्रकाशन के रूप में बाद में प्रकाशित हुआ था और संसदीय इतिहास के 26 वें खण्ड (1341–1413) में इसकी नकल छापी गयी। सर इलिजा एम्पे ने इस प्रकाशन के पृष्ठ 1358 पर कहा है कि '' दी चार्टर'' ने आपराधिक न्याय क्षेत्र बताया है बल्कि प्रान्तों में स्थानीय एवं क्षेत्रीय न्याय क्षेत्र नहीं बताये गये

यह न्यायिक क्षेत्र निवासियों के कुछ हिस्से पर लागू हुआ तथा इसमें कुछ वर्जन भी दिया गया है, परन्तु कलकत्ता के निवासियों के लिए दिया गया न्यायिक क्षेत्र सार्वभौमिक है जो कि कलकत्ता के सम्पूर्ण नगर की क्षेत्रीय न्यायिक सीमा है। ''विद्वान न्यायाधीश का इस अवसर पर उद्देश्य उस से भिन्न है जो अब विचारणीय मुद्दा है। उसके लिए यह दर्शाना महत्वपूर्ण हो गया है कि कलकत्ता का न्यायिक क्षेत्र एक सामान्य न्यायिक क्षेत्र था और प्रान्तों के न्यायिक क्षेत्र के समान न्यायिक क्षेत्र नहीं था। पहला आशय सम्पूर्ण प्रान्तों के लिए नया है और चार्टर द्वारा लागू किया गया है। इंग्लैण्ड के सभी कानून उस चार्टर के प्राधिकरण द्वारा समर्थित हैं परन्तु कलकत्ता नगर के संबंध में अधिनियम का संचालन भिन्न था। वर्ष 1774 में सर्वोच्च न्यायालय के संस्थापन से काफी समय पूर्व कलकत्ता कोर्ट निर्णय देने एवं कारावास की सजा देने वाले न्यायालय थे जहाँ कलकत्ता पर क्षेत्रीय न्यायिक क्षेत्र के साथ इंग्लैण्ड के आपराधिक कानून लागू थे। 13वें जियो–III (सी.63) के द्वारा इन न्यायालयों को निरस्त कर सर्वोच्च न्यायालय के संस्थापन के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया। इसने पुराने न्यायालय के समकक्ष क्षेत्रीय न्यायिक क्षेत्र के साथ अपराधों के लिए मुकदमा चलाने का अधिकार प्रदान किया।''

यह सूचित किया गया कि जिस कार्य क्षेत्र के लिए अब तर्क किया जा रहा है, वह मद्रास में लागू है। यह कार्य क्षेत्र न्यायिक क्षेत्र सर थामस स्ट्रेन्ज, मद्रास के मुख्य न्यायाधीश ने वर्ष 1802 में अपनी रिपोर्टों (मद्रास के मामलों पर टिप्पणी) के प्रथम संस्करण के पृष्ठ 135 पर बताया है कि नागपा चेट्टी बनाम रचमा एवं अन्य में वर्णित सिद्धांत से भिन्न हैं। उसने वर्णित किया है, ''यह बिल्कुल सही रूप में अवलोकित किया गया है कि इस न्यायालय में किसी पैतृक न्यायालय के न्यायिक क्षेत्र के इसी प्रकार के मामले पर तर्क करना असंभव है। न्यायालय अपने संविधान द्वारा, कार्यवाही की अपनी पद्धतियों एवं उद्देश्यों के अनुसार, प्रान्त के सार्वभौमिक न्याय के महान उदाहरण और इस प्रकार प्रत्येक उदाहरण जिसमें अपने विवेक से मामले वापिस लेने के प्रयास, भिन्नता एवं सुस्पष्टता से मामले को देखने की बाध्यता, उद्देश्य प्राप्ति के लिए पर्याप्त न्यायिक क्षेत्र, जो अन्यत्र विद्यमान हो, के अनुसार कार्यवाही करेगा। न्यायालय को यदि प्रतीत होता है कि ऐसा उल्लेख नहीं किया

गया है तो न्यायिक क्षेत्र का तर्क समाप्त हो जाता है और यदि न्यायिक क्षेत्र रहता है परन्तु यह यहाँ भिन्न है क्योंकि उन न्यायालयों जिनके न्यायिक क्षेत्र जहाँ तक इनके साथ जुड़े हैं उनके साथ समन्वय करने पर इस न्यायालय का न्यायिक क्षेत्र ब्रिटिश नागरिक न होने के कारण सीमित है।''

यह अनुच्छेद हमारे अनुसार सभी विचारणीय विषयों पर लागू होता है। यद्यपि इस चार्टर में ऐसे शब्द हैं जो न्यायालय को सम्राट की पीठ के न्यायालय को अधिकार प्रदान करते हैं, यह अधिकार की प्रकृति है जिसका वर्णन किया गया है और न्यायिक क्षेत्र की सीमा नहीं दी गई है। अन्य अनुच्छेदों द्वारा न्यायिक क्षेत्र की सीमा सीमित है परन्तु अधिकार की प्रकृति है जिसका न्यायाधीश को प्रयोग करने का हक है परन्तु उनका न्यायिक क्षेत्र कहाँ है, निवासियों के संबंध में स्थानीय सीमायें क्या हैं तथा ब्रिटिश नागरिकों के लिए क्या हैं ? क्या यह ब्रिटिश कानून इंग्लैण्ड में सम्राट की पीठ के न्यायालय द्वारा प्रयोग किए जा रहे अधिकारों की प्रकृति के अनुसार है तथा लागू करने के लिए स्थानीय न्यायिक क्षेत्र से बाहर हैं। सर थामस स्ट्रेन्ज ने (पृष्ठ 136) बोलते हुए कहा कि मद्रास के मूल निवासियों के लिए सीमित है (क्या विवेकशीलता है या नहीं, यह हमारा विचारणीय विषय नहीं है) और तर्क इन तथ्यों तक सीमित हैं जिसके लिए न्यायालय को स्पष्ट रूप से अपना वक्तव्य देने के लिए कहा गया है क्या प्रतिवादी स्थानीय निवासी होने के कारण हमारे वर्तमान विधेयक में न्यायिक क्षेत्र के उद्देश्य के लिए मद्रास का निवासी माना जा सकता है। अनेक मामलों में न्यायिक क्षेत्र के उद्देश्य एवं मामलों में न्यायाधीश पर निर्भर करेगा जहाँ तक परिस्थितियाँ स्वीकृति दें, व्यापक एवं विस्तृत न्याय करे तथा हर दृष्टिकोण से मामले की सभी पार्टियों के हितों और सभी अभिप्रायों का सम्मान करें। मुझे ऐसा लगता है कि प्रत्येक न्यायिक क्षेत्र की शक्ति मुख्यतः उनके द्वारा उचित विभाजन पर निर्धारित की जानी चाहिए। न्यायाधीशों के पास सत्ता में बैठे अन्य न्यायाधीशों के लिए उदाहरण प्रस्तुत करने के बजाए भ्रान्तिपूर्ण कार्य कर रहे हैं और इस पर कृत्रिम कल्पनायें की जा रही हैं और उनके आयोग द्वारा नियत सीमाओं की उपेक्षा की जा रही है। हम में से कोई भी यह नहीं मानेगा कि न्याय नहीं होगा जब तक यह न्यायालय तर्क का संरक्षण करते हुए प्रतिपादन के कार्यालय की ओर अपना रुझान नहीं बनायेंगे।

विभिन्न अधिनियमों में पाये जाने वाले अनेक अनुच्छेद पूरी तरह से यह दर्शाते हैं कि शायद भारतीय मूल के सभी नागरिकों को सर्वोच्च न्यायालय के न्यायिक क्षेत्र से छूट मिली हो परन्तु सर्वोच्च न्यायालय के प्राधिकरण ने उन्हें कभी अंगीकार नहीं करना चाहा, और कि उन्हें कभी इतने व्यापक अधिकार नहीं प्रदान किये गये जो

ब्रिटिश नागरिकों के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय को प्रदत्त थे।

महामहिम आप जियो–III के 53 वें कैप.155 में, विभिन्न धाराओं के अन्तर्गत किये गये अपराधों की लम्बी सूची पाएँगे, इन सभी धाराओं में न्यायालय के स्थानीय एवं निजी कार्यक्षेत्रों में स्पष्ट रूप से व्याख्या की गई है। धारा 114 का वर्णन करने के पश्चात् यह व्यावहारिक होगा कि ईस्ट इण्डिया के भीतर राशि का भुगतान करने के लिए प्रतिभूतियों की चोरी को एक घोर अपराध माना गया और यह अधिनियमित किया कि फोर्ट विलियम फोर्ट सेन्टजार्ज, बम्बई, या प्रिन्स ऑफ वेल्स महाद्वीप में महामहिम के किसी न्यायालय की आपराधिक न्यायिक क्षेत्र की स्थानीय सीमा या कोई व्यक्ति जो व्यक्तिगत रूप से ईस्ट इण्डिया में किसी स्थान पर उक्त न्यायालयों के स्थानीय और न्यायालय के व्यक्तिगत न्यायिक क्षेत्र में आता है, की भिन्नता को मान्य किया गया और यहाँ ऐसे लोग भी हैं जो स्थानीय न्यायिक सीमाओं में आते हैं परन्तु व्यक्तिगत न्यायिक सीमा में नहीं आते हैं, वो स्थानीय एवं व्यक्तिगत न्यायिक क्षेत्र की भिन्नता को स्वीकृति प्रदान करते हैं।

तब ये प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या एक मूल नागरिक जो प्रान्तीय न्यायालय का एक अधिकारी उदाहरणार्थ एक जेल अधिकारी और जिसे ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सेवा का एक व्यक्ति माना जाता है, जिसे बन्दी प्रत्यक्षीकरण का अधिकार है और जेलाधिकारी के रूप में अपनी हिरासत में कैदी के रूप में मूल नागरिक को बम्बई के सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत कर सकता है। हम यदि यह मानने में सही हैं कि प्रान्तीय न्यायालयों की कार्यवाहियों पर सर्वोच्च न्यायालय को नियन्त्रण देने का कभी आशय नहीं रहा है, यदि प्रान्तीय न्यायालयों से उच्चतम अपीलीय ट्रिब्युनल तक अपीलों के और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित एवं इस बोर्ड द्वारा महामहिम के समक्ष न्यायोचित की प्रक्रिया से पूर्णतया भिन्न कार्यवाही किये जाने वाले पर्याप्त महत्ता के मामले में उत्तराधिकार स्थापित किये जाने की स्थिति कैसी होगी। यह अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न है कि क्या वर्ष 1773 और 1781 के मध्य घटित घटनाओं के अनुरूप आधार पर कार्यवाही की प्रक्रिया को पूरी तरह से टाल दिया जाए। उस समय अनेक मूल–निवासियों चूँकि उनके पास भूमि थी या विभिन्न कार्यकलापों में कार्यरत थे, को संसद के अधिनियम और चार्टर की अभिव्यंजना पर तर्क करते हुए उन्हें ईस्ट इण्डिया कम्पनी को सेवा कर्मी मानते हुए सर्वोच्च न्यायालय के न्यायिक क्षेत्र में रखा गया। तर्क के लिए यह मान लिया जाए कि वह कम्पनी का सेवा कर्मी है और इस प्रकार यदि वह हिरासत में रखा जाता है तो जब भी आवश्यकता होगी तो इस कैदी को प्रत्यक्ष रूप से न्यायालय में प्रस्तुत किया जायेगा। इसलिए क्या यह मान लिया जाए कि कम्पनी का कर्मचारी होने के नाते न्यायालय को अधिकार

होगा कि ऐसे व्यक्ति को बन्दी प्रत्यक्षीकरण के लिए निर्देशित करें। हिरासत में रखे हुए व्यक्ति को स्थानीय न्यायालय में एक कैदी के रूप में लाएँ। क्या इससे सर्वोच्च न्यायालय को अधिकार होगा कि न्यायालय के संविधान की जाँच करें (जिसके लिए दृढ़तापूर्वक कहा गया है) और इसकी कार्यवाही की समीक्षा करें ? यह कहा गया है कि न्यायालय के समक्ष सभी विनियम एवं कानून होने चाहिए जिनसे प्रान्तीय न्यायालयों का गठन किया गया था, क्या ऐसे न्यायालय मुगल शासन, जहाँ अभी तक परिवर्तित नहीं हुए हैं या संसद द्वारा सरकार को अधिनियम बनाने के लिए दिये गये अधिकार के अन्तर्गत स्थापित नये न्यायालय हैं। तर्कशील सिद्धान्त के अनुसार इन सबको न्यायालय के समक्ष प्रतिप्रेषित किया जाए, प्रथमतः सर्वोच्च न्यायालय में यह निर्णय करने के लिए क्या प्रान्तीय न्यायालय कानूनी रूप से गठित किया गया, इसकी कार्यवाही उचित रूप से संचालित की जा रही है। हम अनुभव करते हैं कि संसद एवं चार्टर के अधिनियमों की पूरी गतिविधियों से स्पष्ट होता है कि ऐसा कोई न्यायिक अधिकार प्रदान करने का अभिप्राय नहीं था। 21वें जियो–III (सी.70), धारा 23 के अधिनियम में यह अधिनियमित है कि गवर्नर जनरल और परिषद को प्रान्तीय न्यायालयों एवं परिषदों के लिए समय–समय पर विनियम तैयार करने के लिए शक्ति एवं अधिकार होंगे। इन प्रान्तीय न्यायालयों की विधान मण्डलीय मान्यता भिन्न होगी। इसी प्रकार की शक्ति मद्रास एवं बम्बई सरकारों को भी दी गई हैं कि अपनी–अपनी प्रेजीडेन्सी में प्रान्तीय न्यायालयों की कार्यवाहियों एवं परिषद में महामहिम द्वारा संशोधित सभी विनियमों को विनियमित करें।

इन सब को निर्देशित किया गया है कि इनको राज्य के सचिव को प्रतिप्रेषित किया जाए और यदि इनमें कोई बदलाव नहीं किया गया है तो ये प्रान्तों के कानून होंगे जिनके द्वारा वे न्यायालय अधिशासित होंगे। अतः यह बिल्कुल स्पष्ट है कि विधानमण्डल ने इन न्यायालयों के अस्तित्व को स्पष्ट रूप से मान्यता उस रूप में प्रदान की है, जिस रूप में यह विनियमित है और जिस कानून द्वारा यह अधिशासित है। प्रान्तों के शासन के विनियमन के लिए सर्वोच्च न्यायालय में पंजीकरण की आवश्यकता नहीं है जबकि कलकत्ता, मद्रास और बम्बई के निवासियों तथा सभी ब्रिटिश नागरिकों पर लागू होता है, कि वे इन न्यायालयों में पंजीकृत एवं अनुमोदित होने चाहिए।

अब हम इस धारा (धारा 24) पर चर्चा करते हैं : किसी व्यक्ति, जो देश के न्यायालय में किसी भी न्यायिक कार्यालय में कार्यरत हो, के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में गलत अन्याय करने के लिए, कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती। इसके साथ ही उक्त न्यायालय के किसी निर्णय, डिग्री या आदेश के विरुद्ध और न ही उक्त

न्यायालय के किसी व्यक्ति के विरुद्ध किए गये कार्य या उस के आदेश की वजह से कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती ताकि एक स्थानीय निवासी ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सेवा के अधीन प्रान्तीय न्यायालय में एक अधिकारी के रूप में सेवारत होना चाहिए और ब्रिटिश नागरिक ऐसे न्यायालय का न्यायाधीश होना चाहिए और उसके द्वारा किए गये न्यायिक कार्यों के लिए उसके विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं हो सकती। चार्टर में भी यही भाषा पाई जाती है परन्तु हालाँकि मुकदमे के लिए किसी कार्यवाही की स्वीकृति नहीं है चाहे मामला सर्वोच्च न्यायालय में कानूनी है या नहीं, फिर भी यह तर्क दिया जाता है कि कार्यवाही की कानूनी मान्यता की जाँच बन्दी प्रत्यक्षीकरण की मान्यता के माध्यम से कराई जाए। यह एक असाधारण तर्क प्रतीत होता है और यह देखते हुए कि किसी भी अधिनियम में इस संबंध में कोई प्रावधान नहीं है फिर भी हम यह कहने का साहस कर रहे हैं कि आदेश जारी करने का कोई आधार नहीं है।

अब हम बम्बई को हाल ही में प्रदत्त चार्टर पर विचार करते है (मॉरले डि. खण्ड–।। पृष्ठ–638)। इस चार्टर में एक धारा है जिस से पूरा प्रश्न बदल जाता है और उसके लिए तर्क का कोई आधार नहीं बनता। यह धारा (धारा 10) इस प्रकार से है : कि उक्त मुख्य न्यायाधीश और उक्त अधीनस्थ न्यायाधीशों को एतद्द्वारा सम्मानपूर्वक रूप से पूरे बम्बई शहर और बम्बई के नगरों एवं द्वीपों और उनकी सीमाओं में और इनके अधीनस्थ फैक्टरियों में और उक्त कथित बम्बई शासन के अधीन वर्तमान तथा इसके बाद भविष्य में इसके अधीन आने वाले सभी क्षेत्रों में शान्ति के संरक्षक एवं असामयिक मृत्यु की जाँचकर्ता के रूप में नियुक्त किया जाता है और इनका वही न्यायिक क्षेत्र एवं अधिकार होगा जो सम्राट पीठ के हमारे न्यायालयों के हमारे न्यायाधीशों को प्रदत्त है और जहाँ तक परिस्थितियाँ स्वीकृति प्रदान करती हैं ग्रेट ब्रिटेन के एक हिस्से इंग्लैण्ड मे कानूनी रूप से प्रयोग करते हैं। अब इस धारा की व्याख्या करना संभव है इसके बजाय कि यह कहना कि वे सम्पूर्ण बम्बई प्रेजीडेन्सी में न्यायाधीश एवं शान्ति के संरक्षक होंगे और ऐसी न्यायिक सीमा एवं प्राधिकार होगा जिसमें मामले के अनुरूप निर्णय दिया जाएगा। चूँकि ये ऐसे न्यायाधीश एवं शान्ति के संरक्षक होंगे जैसे सम्राट की पीठ के हैं तथा जिन्हें हम शान्ति के न्यायाधीश के रूप में मानते हैं इन्हीं के अनुरूप परिस्थितियों के अनुसार जिस प्रकार सम्पूर्ण ब्रिटिश साम्राज्य में अधिकारों एवं शक्तियों का प्रयोग किया जाता है, उसी के अनुरूप अधिकारों एवं शक्तियों का प्रयोग करेंगे। निस्संदेह सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश सम्पूर्ण प्रान्तों में सभी के साथ ब्रिटिश नागरिकों के समान व्यवहार करेंगे और इस प्रकार उनकी न्यायिक सीमा सम्राट के पीठ के न्यायाधीशों,

जब वे शान्ति के न्यायाधीश एवं संरक्षक के रूप में कार्य कर रहे होंगे, के न्यायिक अधिकारों के समान होंगी। यह दबाव डाला गया कि इस धारा के द्वारा इंग्लैण्ड में सम्राट की पीठ के न्यायालय की सभी शक्तियाँ बम्बई सर्वोच्च न्यायालय को प्रदान की जाती हैं, यह शक्तियाँ केवल बम्बई के आवासीय क्षेत्रों के लिए नहीं होंगी बल्कि प्रेजीडेन्सी के सम्पूर्ण क्षेत्र में लागू होंगी और व्यक्तियों की इसमें कोई सीमा नहीं होगी और सम्राट की पीठ के न्यायालय को अधिकार होगा कि भारत' के विभिन्न प्रेजीडेन्सियों की शर्त पर प्रान्तों के किसी भाग के लिए आदेश जारी कर सकेंगे यह एक ऐसी स्थिति है जिसे हमें आवश्यक रूप से पूर्णतया स्वीकार करनी है परन्तु हम महामहिम मेसफील्ड (काउले का मामला दूसरे ब्रो पृष्ठ 856) के एक वक्तव्य में पाते हैं कि उन्होंने 'उपनिवेश' शब्द का प्रयोग किया है। लेकिन उस निर्णय में महामहिम ने कहा है कि उन्हें याद नहीं या उनकी जानकारी में ऐसा कोई उदाहरण नहीं है जिस से यह ज्ञात हो कि बन्दी प्रत्यक्षीकरण का कोई आदेश जारी हुआ है। उन्होंने कहा कि इस विषय पर बोर्ड को आवेदन किया गया है और हम सभी जानते हैं कि इस बोर्ड को कालोनियों के कानून के मामले में सामान्य अधीक्षण का अधिकार है। अतः न्यायालय के समक्ष एक शपथ पत्र दाखिल किया गया होता जिसमें तर्क किये जा रहे सिद्धान्त के अनुसार प्रत्यक्षतः न्यायिक क्षेत्र का हवाला देने का साहस कर इस बात के लिए कहा जाता है कि यदि कोई व्यक्ति हिमालय पर्वत के तल पर हिरासत में लिया जाता है तो उसे वहाँ से वेस्ट मिनिस्टर पर सम्राट की पीठ के न्यायालय में लाया जाना चाहिए बशर्ते कि सम्राट की पीठ का न्यायालय आदेश जारी करने का यह एक उपयुक्त मामला समझते। यह कहा गया है कि न्यायालय को यह अधिकार प्राप्त है और इसका प्रयोग तब किया गया जब देश अधीन था। इसमें कोई संदेह नहीं है केलिस ने सदस्यों को संसद में भेजा और वहां इंग्लैंड का कानून प्रभावी कहा। हैले लेकिन, यह आवश्यक नहीं कि इस प्रश्न पर विचार किया जाए। हम जानते हैं कि न्यायालय में लार्ड के सिद्धान्त पर विद्वतापूर्ण व्याख्या की गई थी जिसमें Jura Summi Imperia और the jura mixtiemperia या potests jurisdiction में अन्तर स्पष्ट किया गया (हैले द्वारा इंग्लैण्ड के कानून के सिविल भाग का विश्लेषण, धारा–6) और यहा तर्क दिया गया कि यद्यपि सर्वोच्च न्यायालय में उस शब्द का साधारण अर्थों में स्थानीय निवासियों पर कोई सिविल न्यायिक सीमा नहीं है, कि इसके पास आपराधिक न्यायिक सीमा नहीं है, कि इसके पास नौवाधिकरण की न्यायिक सीमा नहीं है, फिर भी इसके पास सम्राट के सभी नागरिकों पर प्रयोग करने के लिए विशेष अधिकार है। अब यह उल्लेखनीय है कि इस चार्टर के लगभग सभी भाग, जो अब विचाराधीन हैं में "शक्ति–न्यायिक क्षेत्र एवं प्राधिकार शब्द मिलेंगे।

परन्तु इस विशिष्ट धारा में "शक्ति" शब्द नहीं पाया गया। यह बहुत ही विचित्र बात है कि शक्ति शब्द से भिन्न न्यायिक सीमा से भिन्न बहुत कुछ बना है परन्तु शक्ति की व्याख्या करने वाले शब्द नहीं पाये जाते हैं। परन्तु शक्ति से न्यायिक सीमा क्या है? विधिसंहिता में न्यायिक सीमा की प्रकृति पर पूरी–तरह से विचार–विमर्श किया है और एक व्याख्यानकर्ता ने एक ही पंक्ति में इसकी परिभाषा दी है। "न्यायिक सीमा कुछ भी परन्तु न्याय के लिए न्यायाधीश सक्षम होना चाहिए"।

यह कहा जाता है कि सम्राट की पीठ के सभी अधिकारों से युक्त सर्वोच्च न्यायालय सम्राट की पीठ के न्यायालय हैं। बेल्स में सर्वोच्च व्यावहारिक न्यायालय की न्यायिक सीमा हेनरी–8 के 34वें, एवं 35वें, सी–28 में लगभग इन्हीं शब्दों में व्यक्त की गई है। इन्हें महामहिम की लगभग सभी कालोनियों के चार्टरों में लागू किया गया है और वास्तव में एक सामान्य सूत्र, जिस विशिष्ट प्रावधान के साथ इसको सम्मिलित किया गया उसको व्यापक अर्थ दिया गया है। यहाँ यह उल्लिखित करना भी उचित होगा कि फोर्ट विलियम (मारलें डाइजेस्ट– ।। पृष्ठ–551) में सर्वोच्च न्यायालय को दिये गये चार्टर में इसी प्रकार की धारा दी गई है, और यह कम्पनी के चार्टर की धारा 26वें जियो– ।। पृष्ठ–446 से लिया गया है और इसका कानूनी प्रावधान निर्दिष्ट, स्थापित, प्रमाणित और प्रतिपादित करता है कि "बंगाल में फोर्ट विलियम्स के गवर्नर या प्रेजीडेन्ट और परिषद फिलहाल कुछ समय के लिए शान्ति के न्यायाधीश होंगे और उनके पास शान्ति के न्यायाधीश और ओयर एण्ड टर्मिनर (निर्णय देने वाले न्यायालयों के) के आयुक्त के सामान्य जेल के अधिकारी के रूप में कार्य करेंगे और कि वे या इनमें से तीन या अधिक (जहाँ गवर्नर या प्रेजीडेन्ट या उनकी अनुपस्थिति में परिषद् उक्त फोर्ट में रह रहे एक वरिष्ठ सदस्य) निर्णय देने, हिरासत की सजा देने के लिए क्रमशः बंगाल में फोर्ट विलियम पर कलकत्ता के उक्त नगर या फैक्टरी और इसके अधीनस्थ फैक्टरियों के लिए सत्र आयोजित करेंगे या कर सकेंगे, तथा शान्ति के न्यायाधीश और निर्णय और जेल की सज़ा देने वाले आयुक्त के रूप में अन्य कार्य ऐसी शक्ति, न्यायसीमा और प्राधिकार के साथ और मद्रासपट्टनम जेल की सज़ा देने वाले आयुक्त और शान्ति के न्यायाधीश के रूप में विनियमों एवं प्रतिबन्धनों के अधीन प्रदत्त अधिकारों के साथ करेंगे। मद्रास से संबंधित धारा पृष्ठ–430 पर है और यह इन शब्दों में है : हम उक्त कम्पनी और उसके उत्तराधिकारियों को अपनी इच्छा, कानूनी प्रावधान, प्रतिपादित और निरूपित करते हैं कि वे फिलहाल कुछ समय के लिए फोर्ट सेन्ट जार्ज के गवर्नर या प्रेजीडेन्ट और परिषद् शान्ति के न्यायाधीश होंगे तथा मद्रासपट्टनम् और फोर्ट सेन्ट जार्ज, फोर्ट सेन्ट डेविड, वीजपट्टनम, सुमात्रा के समुद्री तट पर फैक्टरियों और उक्त फोर्ट

सेन्ट जार्ज के अन्तर्गत अन्य सभी फैक्टरियों के लिए शान्ति के न्यायाधीश होंगे तथा उनके पास शान्ति के न्यायाधीश के रूप में कार्य करने के अधिकार होंगे।

यह अधिकार उनको उसी रूप में जिस रूप में ग्रेट ब्रिटेन द्वारा किसी देश, शहर या नगर, जो हमारे इंग्लैण्ड के नाम से उक्त साम्राज्य में सम्मिलित हैं, को ग्रेट ब्रिटेन की मुहर लगे अधिकार पत्र या आयोग द्वारा गठित शान्ति के न्यायाधीश को प्रदान किये गये हैं, प्रदान किये जायेंगे और वे इन का प्रयोग करेंगे या कर सकेंगे। जब सर्वोच्च न्यायालय का गठन किया गया था तब यह सही था कि उस न्यायालय के न्यायाधीशों को उस पूरे क्षेत्र जिसमें उसे अपनी साधारण न्यायिक सीमा या अधिक विस्तृत न्यायिक सीमा के साथ, शान्ति का संरक्षक और न्यायाधीश घोषित किया गया, और तब यह स्वाभाविक था कि न्यायाधीशों को उनके कमीशन द्वारा शान्ति के न्यायाधीश की सम्मिलित न्यायिक सीमा प्रदान करने की बजाय, उनके पास शान्ति एवं न्यायाधीश की शक्ति, जिस प्रकृति की सम्राट के पीठ के न्यायालय के जजों के पास है, होनी चाहिए और यही इस धारा का स्पष्ट आशय प्रतीत होता है। दूसरी ओर यह भी तर्क दिया गया है कि सर्वोच्च न्यायालय को सभी न्यायालयों को सम्राट के अनिवार्य आदेश, किसी भी विषय में हो, बम्बई की प्रेजीडेन्सी के सम्पूर्ण क्षेत्र में जारी करने का अधिकार है। यदि यह शक्ति पूर्व के सामान्य परिच्छेद में होती तो याचना और त्रैमासिक सत्रीय न्यायालयों की स्थापना के पश्चात् तब चार्टर पर वैधानिक कार्यवाही क्यों की गई कि उक्त न्यायालयों और बम्बई के द्वीप और नगरों एवं इसके अधीनस्थ फैक्टरियों के लिए नियुक्त न्यायाधीशों एवं मैजिस्ट्रेटों को चार्टर के अधीन कानूनी अधिकार प्रदान किये गये कि ये सर्वोच्च न्यायालय के आदेशों एवं नियंत्रण अधीन इस वर्ग, रीति एवं स्वरूप में होगा जैसे कि इंग्लैण्ड की निचली अदालतें एवं मैजिस्ट्रेट नियमाधीन सम्राट की पीठ के आदेशाधीन हमारे न्यायालय एवं उनके नियंत्रण में होंगे और इसके लिए उक्त सर्वोच्च न्यायालय को शक्ति प्रदान की जाती है तथा अधिकृत किया जाता है कि अनुदेश, सभादेश, कार्यवाही करने पर गलती सुधारने के आदेश जारी करें (धारा 59 मॉरले डाइजेस्ट ।। पृष्ठ 677) न्यायालय को बम्बई की स्थानीय सीमा में कई न्यायालय स्थापित करने के संबंध में न्यायिक अधिकार प्रदान करने से इस अनुच्छेद का क्या औचित्य है यदि प्रेजीडेन्सी के सभी क्षेत्रों की सीमा–स्थापित प्रत्येक न्यायालय के पास सामान्य न्यायिक अधिकार है। वास्तव में न्यायालय को निर्णय देने वाले न्यायालय के अपने स्वरूप के अतिरिक्त न्यायिक अधिकार प्रदान किये गये।

34 जियो ।।।, अध्याय–52 जो अन्तिम से पूर्ववर्ती चार्टर अधिनियम था, के अधिनियम में बंगाल के गवर्नर–जनरल को शक्ति प्रदान की गई कि महामहिम के नाम से

शासनादेश जारी किया जाए और बम्बई प्रान्त, प्रेजीडेन्सी, द्वीप नगर और फैक्टरी और इससे संबंधित एवं अधीनस्थ क्षेत्रों के लिए शान्ति के न्यायाधीश नियुक्त किए जाएँ और यह घोषित करते हुए एक नियम (धारा 153) जोड़ा गया, "सभी दोषियों, निर्णयों, आदेशों और कार्यवाहियों की पेशकश किसी भी ब्रिटिश क्षेत्र या भारत के अधिकार क्षेत्र में किसी भी शान्ति के न्यायाधीश या न्यायाधीशों के समक्ष निर्णय देने वाला न्यायालय के अतिरिक्त अन्य न्यायालयों में की गई, या घोषित की गई को निर्णय देने वाले एवं जेल की सज़ा देने वाले न्यायालयों और उसी प्रेजीडेन्सी से तथा प्रभावी या असंतुष्ट किसी पार्टी के की गई 'कि सभी आपराधिक घोषणाओं' पर समादेश के आदेश द्वारा हटाया जाए' जा सकेंगे।"

इसी प्रकार का प्रावधान स्व. सम्राट के 53वें केप 155, धारा 105 के द्वारा जिला न्यायाधीशों के समक्ष अपराधों के संबंध में किया गया जिसके द्वारा समादेश के तहत उन्हें प्रेजीडेन्सी के निर्णय देने के न्यायालय द्वारा हटाने की शक्ति प्रदान की गई। अब यह सिद्धान्त है कि यहाँ समादेश के आदेश को जारी करने का निर्णय स्पष्ट रूप से वापिस नहीं लिया जाता तो यह सम्राट की पीठ के न्यायालय में सामान्य कानून द्वारा विद्यमान रहता है, और इसको न्यायिक अधिकार से स्पष्ट रूप से वापिस लिया जाना चाहिए। परन्तु यहाँ इसे वापिस लेने का प्रश्न नहीं है बल्कि इसे स्पष्ट रूप देने का प्रश्न है और क्या यह विद्यमान होता जब तक इस प्रकार प्रदत्त न किया गया होता। बम्बई में न्यायिक निर्णय करने वाले न्यायालयों के जज सर्वोच्च न्यायालय के जज हैं परन्तु वे जिला न्यायालयों पर सर्वोच्च न्यायालय की हैसियत से अधीक्षण का प्राधिकार नहीं रखते हैं परन्तु उन्हें न्यायिक निर्णय देने वाले न्यायालय से समादेश जारी करने के उद्देश्य से विशेष अधिकार प्रदान किया जाता है। यह स्पष्ट रूप से यह दर्शाता है कि सर्वोच्च न्यायालय के पास वह अधिकार नहीं है जिसके लिए तर्क किया जा रहा है।

महामहिम टेन्टरडेन– "शान्ति के न्याय संबंधी मुकदमे लिखित आदेश द्वारा प्रेजीडेन्सी ऑफ सर्वोच्च न्यायालय में स्थानान्तरित किये जायें।"

न्यायिक निर्णय देने वाले न्यायालयों का गठन उन्हीं व्यक्तियों से होता है परन्तु उन्हें सर्वोच्च न्यायालय के जज के रूप में प्राधिकार नहीं दिये जाते बल्कि न्यायिक निर्णय करने वाले जजों के रूप में प्राधिकार प्रदान किये जाते हैं।

बम्बई के चार्टर में सार्वभौमिक आपराधिक न्यायिक सीमा प्रदत्त नहीं है और इसके लिए न्यायिक निर्णय एवं जेल की सज़ा देने वाले न्यायालय गठित किये हुए हैं ताकि

न्यायालय आपराधिक न्यायिक क्षेत्र का प्रयोग कर सके। सिविल न्यायिक सीमा की शक्ति विशिष्ट रूप से दी गई है। जिन व्यक्तियों को न्यायिक अधिकार प्रदान किये जाने चाहिए उनका विशिष्ट रूप से उल्लेख किया जाना चाहिए। प्रांतों पर सामान्य न्यायिक अधिकार आयोग को सम्राट की पीठ के न्यायालय के विशेष अधिकार एवं प्राधिकृत करने के साथ प्रदान नहीं किये जा सकते। सर्वोच्च न्यायालय एक सिविल कोर्ट है और समानता का न्यायालय है तथा दूसरी ओर गठन के लागू नियमों के अनुसार आप सभी कुछ देते हैं या कोई हिस्सा देते हैं, आप सभी न्यायिक अधिकार प्रदान करते हैं, आप इसे इस प्रकार प्रदान करते हैं जैसे कि यह एक सम्पूर्ण सम्पदा है और तब आप इन छोटी–छोटी लाभकारी सम्पदायें विस्तृत रूप से वितरित करते हैं। जिनको पहले से ही गठन के इस नियम के अनुसार सब कुछ प्राप्त हो चुका है या सम्पूर्ण से कुछ कम प्राप्त हुआ है।

लेकिन मोरो रघुनाथ (1 नेप, 8) के संबंध में यह तर्क देना असंभव है कि यह शक्ति बम्बई के सर्वोच्च न्यायालय को दी जा सकती थी जैसाकि उसके मामले में प्रयोग करने का प्रयास किया गया था। वह पूना में रहता था। वह चाहता था कि उसका मामला बम्बई के न्यायालय में स्थानान्तरित कर दिया जाए। बन्दी प्रत्यक्षीकरण का अधिकार एक शपथ–पत्र द्वारा प्रदान किया गया था और एक उच्च दर्जे का व्यक्ति, जो अधिकारच्युत परिवार से संबंधित था, को बुलाया गया और निर्देशित किया गया कि उस बच्चे को पेश किया जाए जिसका वह कानूनी संरक्षक है परन्तु उसके बारे में यह कहा गया था कि उसे बेवजह हिरासत में रखा गया है। तत्काल ही यह प्रश्न उठा कि उसे इस न्यायिक क्षेत्र में क्यों रखा गया है? यदि उसने विरोध किया होता और विवाद होता कि जिन्होंने अवज्ञा की है उनके विरुद्ध कुर्की के आदेश कैसे जारी किये जा सकते थे? कुर्की जारी करने की इस शक्ति द्वारा आप स्थानीय न्यायिक अधिकार प्रदान करते हैं, जो चार्टर की नियमित निर्धारित शर्तों के अनुसार विद्यमान नहीं है। यदि अवज्ञा करने वाली पार्टी मनोनीत वर्ग की होती और उसे सर्वोच्च न्यायालय के न्यायिक अधिकार प्रदत्त होते हैं वह पंजीकृत होना चाहिए : यह व्यक्ति पंजीकृत नहीं था और इस प्रकार उसे न्यायालय में आदेश जारी करने का कोई न्यायिक अधिकार न होना प्रतीत होता है, और वह इसकी अवज्ञा की अवेहलना करने का दोषी नहीं हो सकता। जबकि रोमन सम्राट अपने नागरिकों को बताते हैं कि जहाँ जज अपनी क्षेत्रीय सीमा का अतिक्रमण करता है वे आज्ञा का पालन करने के लिए बाध्य नहीं हैं। (पेंड लिब, 2, टिड 1, धारा 20)

बापू गणेश के मामले में (1 नेप 11) प्रान्तीय न्यायालय के जेल अधिकारी को

बन्दी प्रत्यक्षीकरण का आदेश निर्देशित किया गया था। यदि आदेश जारी करने के अधिकार प्रदान किये जाते हैं और ऐसे आदेश प्राप्त होने पर न्यायालय के अधिकार के अधीन कार्य करता है तो उसे प्रेजीडेन्सी के समक्ष व्यक्ति को पेश करना होगा या उसे हिरासत में रखने का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करना होगा कि उसको किसने हिरासत में रखा और अन्य संबंधित जानकारी प्रस्तुत की जाए। ऐसे अधिकारी इतनी सूक्ष्मता/सुनिश्चितता से परिस्थितियों का उल्लेख कर सकते हैं ताकि आपत्तियों का निवारण किया जा सके। दिल्ली या पूना में तैयार किया गया बन्दी प्रत्यक्षीकरण का नियम हमारी शैली के अनुसार पूर्णतया दोषपूर्ण पाया जायेगा जिन्होंने इन नियमों को तैयार किया होगा उन्होंने उन के द्वारा तर्कों को नजर अंदाज नहीं किया जा सकता था और यह स्पष्ट है कि उन्होंने मामले को इतना गंभीर हो जाने के संबंध में नहीं सोचा होगा।

महामहिम आपका ध्यान इस परिस्थिति की ओर आकर्षित करना महत्त्वपूर्ण समझते हैं कि प्रान्तीय न्यायालयों की स्थापना एवं विनियम के लिए विभिन्न अधिनियमों में अपील की व्यवस्था सहित प्रावधान किये जाएँ। 37वें जियो III केप 142 धारा 8 के द्वारा गवर्नर जनरल के स्थानीय नागरिकों पर लागू होने वाले विनियमों को संहिता के रूप में बनाया जाए तथा इन्हें सभी स्थानीय भाषाओं में मुद्रित करवाया जाए ताकि स्थानीय नागरिक जान सकें कि नियम क्या हैं जिनका उनको पालन करना है। स्व. मारक्यूस कार्नवालिस ने सर्वप्रथम यह कदम उठाया था और इतना लाभकारी सिद्ध हुआ कि इसे बाद में विधानमण्डल द्वारा स्वीकार कर लिया गया और देश के कानून का एक हिस्सा बना दिया।

उनके प्रेजीडेन्सियों में नियमित रूप से प्रांतीय न्यायालयों की स्थापना इस उत्तराधिकार के साथ होती रही कि ये आपराधिक एवं सिविल मामलों में निचली अदालतों से उच्चतम अपीलीय न्यायिक क्षेत्रों की अपीलें सुन सुकेंगे। भारत में सिविल मामलों की अलीपों की सुनवाई के लिए सुदूर दीवानी अदालत सबसे बड़ा न्यायालय था जबकि आपराधिक मामलों मं अपीलों की सुनवाई के लिए सुदूर निजामत अदालत सबसे बड़ा न्यायालय था। इन दोनों न्यायालयों को 53वें जिया III (सी. 155) के अन्तर्गत मान्यता प्राप्त थी। यह भी प्रावधान किया गया था कि सर्वोच्च न्यायालय के माध्यम से भारत में अपीलीय न्यायालयों से 5000 पौंड से अधिक के मामलों के संबंध में महामहिम की परिषद में अपील की जा सकती है। बम्बई में न्याय के न्यायालयों से संबंधित अनेक विनियमों पर बाद में काफी मश्क्कत एवं सावधानी से समीक्षा कर एक संहिता को रूप दिया गया। यह संहिता वर्ष 1827 में प्रकाशित हुई और

यह स्पष्ट रूप से दर्शाती है कि नागरिकों के संरक्षण के लिए काफी मेहनत करनी पड़ी ताकि महामहिम के साम्राज्य के किसी भाग में, बम्बई के प्रान्तीय न्यायालयों या न्यायाधीशों से मिले अन्याय का निवारण किया जा सके।

व्यक्तियों की अनुचित रूप से हुई हिरासत के लिए विशिष्ट विनियम हैं जिनके निष्पादन के लिए सभी न्यायाधीश अपनी शपथ द्वारा बाध्य हैं; और यदि उनका आचरण भ्रष्ट होता है तो उनके विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में कार्यवाही की जा सकती है जिसके लिए अधिनियम में विशेष प्रावधान है। विनियम 12 में वरिष्ठ मेजिस्ट्रेट द्वारा अपने अधीनस्थ अधिकारियों का अधीक्षण करने की विधि इंगित है और विनियम 13 में उल्लिखित है कि न्यायधीश को यह सुनिश्चित करने के लिए सभी लेजों का दौरा करना होगा कि क्या व्यक्ति गैर कानूनी रूप से हिरासत में हैं, उसे आपराधिक एवं सिविल जेलों में इस लिए दौरा करना होगा कि संबंधित अधिकारियों की जानकारी में गलत या भ्रांतिपूर्ण निर्णय लाना होगा ओर ताकि आवश्यक हो तो मामला सुदूर फौजी अदालत में संशोधित निर्ण के लिए प्रेषित किया जा सके।

यहाँ यह कहने का कोई इरादा नहीं है कि एक व्यक्ति जो कम्पनी की सेवा में प्रांतीय न्यायालय में एक अधिकारी के रूप में कार्यरत है इसलिए जिन मामलों में वह एक व्यक्ति के रूप में काम कर रहा है उसे सर्वोच्च न्यायालयों की न्यायिक सीमा में छूट है परन्तु यह घोषित किया जाता है कि यदि वह प्रांतीय न्यायालय के आदेशों स किसी व्यक्ति का हिरासत मेंलेता है तो न तो वह इस कार्य के लिए कार्यवाही का दोषी है और न ही न्यायाधीश पर कोई कार्यवाही की जा सकती है। सर्वोच्च न्यायालय में उसके विरुद्ध कोई कार्यवाही भ्रष्टता के मामले में सूचना क आधार पर की जा सकती है। जब किसी व्यक्ति को प्रांतों में न्यायालयों क आदेशों से हिरासत में लिया जाता है तो सर्वोच्च न्यायालय इस व्यक्ति को उसके मामले की जांच करने के उद्देश्य से लाने के आदेश नहीं द सकता कि न्यायालय का न्यायालयों पर अधीक्षण पर ऐसा कोई न्यायिक अधिकार नहीं होगा, इसके लिए महामहिम कोक ने अपने चतुर्थ विधि संग्रह में उल्लिखित किया है कि सम्राट की पीठ के न्यायालय को वे अधिकार हैं जो सर्वोच्च न्यायालय को प्रदान नहीं किये गये हैं, कारण वह देश की सभी निचली अदालतों का अधीक्षण करने एवं ज्यादती को रोकने का अधिकार होगा और परिणामस्वरूप याचिका में उल्लिखित मामलों में नागरिक स्वतंत्रता/बंदी प्रत्यक्षीकरण के जारी किये गये आदेश गैर कानूनी हैं।

श्री डेनमेन ने अपने उत्तर में कहा है– बम्बई के सर्वोच्च न्यायालय को निर्णायक

न्यायालय बनाया जाए, इसके पास इंग्लैण्ड में सम्राट की पीठ के न्यायालय का न्यायिक क्षेत्र भी है और न्यायालय के लिए अनिवार्य हो कि वर्तमान अधिकार प्रतिपादित किये जाएं।

याचना न्यायालय एवं त्रैमासिक न्यायालय को अधिकार (खण्ड 59 मारले डाइनेस्ट II. पृष्ठ 677 प्रदान किये गये कि अनुदेश समादेश कार्यवाही करने या गलत करने संबंधी आदेश जारी करें इसकी अवमानना करने या जानबूझकर अवज्ञा करने पर जुर्माना या कारावास द्वारा सजा दी जाए। अब यह प्रश्न पूछा जाए कि चार्ट्र में ये विवरण क्यों दें जबकि ये पहल से ही सामान्य अधिकार–पत्र में सम्मिलित हैं। तब क्या ये प्रथम बार है कि संसद के ब्रिटिश अधिनियम के सभी दस्तावेजों में अनावश्यक अधिकार सृजित किये गये या प्रयोग किये गये नियमों को दिखाया जा सकते है जहाँ वे स्पष्ट आशय द्वारा अतिक्रमण या अतिश्योक्ति जैसी पुनरुक्ति का पता लगाया जा सके। जब तक इस सीमा तक तर्क नहीं किया जायेगा तब तक यह किसी महत्त्व का नहीं है और यह उचित रूप से उस सीमा तक नहीं ले जाया जा सकता चूंकि प्रत्येक सत्रा का अनुभव कुछ जानकारी देता है।

परन्तु यदि यह धारा किसी बात को सिद्ध करती है तो इससे काफी कुछ सिद्ध हो जाता है। इसमें केवल अनुदेश समादेश कार्यवाही करने और गलती के आदेश निर्देशित किये गये हैं। परन्तु सभी द्वारा यह कहा गया है कि बंदी प्रत्यक्षीकरण नागरिक स्वतंत्रता के आदेश लगातार जारी होते रहते हैं और यदि नहीं तो दोष–सिद्ध पर सजा एवं मैजिस्ट्रट के आदेशों को समापत करने के लिए समादेश की महत्ता बहुत कम होगी। एक व्यक्ति जो न्यायिक निर्णय द्वारा दोषी ठहराया गया था, के विरूद्ध निर्णय को अस्वीकृत क्यों कर दिया गया, यदि एक व्यक्ति अपने आप ही जेल में रहना चाहता है तो नागरिक स्वतंत्रता का आदेश उसका बचाव नहीं कर सकता?

यह स्वीकृत है कि बंगाल में फोर्ट बिलियम में बंदी प्रत्यक्षीकरण का आदेश जारी करने के लिए कोलकता का सर्वोच्च न्यायालय अधिकृत है अतः वर्तमान महामहिम (4 जियो. 4 सी 71) के चतुर्थ में वर्णित के अनुसार बम्बई क्षेत्र में यह अधिकार सर्वोच्च न्यायालय को है।

यह न्यायालय "बम्बई के नगर एंव द्वीप और इसकी सीमायें और इससे जुड़ी फैक्टरियों और फैक्टरियों के भीतर जो अब है या इसके बाद जो होगी, की शर्त एवं इस पर अवलम्बित रहते हुए, सभी के लिए उपरोक्त उल्लिखित बंगाल में फोर्ट

विलियम या स्थानों या वहाँ की सरकार के अनुसार प्रदत्त अधिकारों के साथ लागू होगा। (मारॅले डाइ. II पृष्ठ 645)

इस प्रकार नियुक्ति करते हुए उन्होंने सर्वोच्च न्यायालय का गठन किया "जिसके पास ऐसे न्यायिक क्षेत्र और अधिकार हैं जो हमारे सम्राट की पीठ के हमारे न्यायाधीशों को प्रदत्त हैं और जिनका ग्रेट ब्रिटेन के हिस्से इंग्लैण्ड में, जहां तक परिस्थितियां स्वीकृति करती है, कानूनी रूप से प्रयोग करते हैं । यहां ऐसे सभी अधिकारों के साथ न्यायालय है (धारा 10) जो इस देश में सम्प्रट की पीठ के न्यायालय के पास है। तब अपवाद कहां है जो किसी विशिष्ट मामले में इसके न्यायिक क्षेत्र से जुड़ने को रोकती है? हम इसे कार्यवाहियों, मुकदमों और अभियोगों को प्रभावित करने वाला पाते हैं और इस प्रकार आपराधिक सूचना, बंदी प्रत्यक्षीकरण के आदेश और अन्य उच्च अधिकृत आदेशों को प्रभावित करते हैं ऐसा अन्य कहीं भी नहीं पाया जाता है।

सर थामस स्ट्रेंज नागथा चिट्टी बनाम राजूमॉ? के एकल निर्णय का हमारे प्रश्न से कोई संबंध नहीं है। एक व्यक्ति जो मद्रास न्यायालय की न्यायिक सीमा में नहीं आता उसको कानून की कपटपूर्ण प्रक्रिया से इस न्यायिक सीमा में लाया गया।

मुख्य न्यायाधीश ने वहां निर्णय दिया (स्टेंज के मद्रास मामले, पृ. 135)" कि किसी नागरिक को मद्रास सरकार द्वारा उसकी इच्छा के विरुद्ध किसी उद्देश्य हेतु लाया जाता है और तीसरे पक्ष, जिसको इसके यहां लाने का कोई संबंध नहीं है, इसकी सीमाओं में होने का लाभ उठाता है और उसे इसी न्यायिक सीमा में रखता है, ऐसा प्रतीत होता है कि वह सहमत है जबकि ऐसा करने की स्वीकृति नहीं है, जबकि मामले में ऐसा नहीं होना चाहिए जबकि उन्हें यहां वादी के अन्यायपूर्ण कार्यों के विरुद्ध उनके बचाव के लिए यहां लाया गया है, इसके परिणामस्वरूप हमने लाभ उठाकर इसे यहां बिठा लिया, वास्तविकता के विपरीत कोई भी व्यक्ति अपनी गलती का लाभ नहीं उठा सकता।"

तब यहाँ उल्लिखित मामले का पूरा प्रभाव, जो दो व्यक्तियों के मध्य सिविल मुकदमे में जहां प्रतिवादी स्पष्ट रूप से न्यायिक सीमा में नहीं आता है जब तक कि वादी अपने कपटपूर्ण कार्यकलाप से उस सीमा में ले आता है, ऐसी कार्यवाही से गलत कार्य करने का लाभ गलत कार्य करने वाले को किसी प्रकार के भेदभाव से नहीं दिया जा सकता।

यह सत्य कहा गया है कि कोई धारा स्पष्ट रूप से अनिवार्य आदेश जारी करने

का अधिकार नहीं देती, परन्तु इस अधिकार के अस्तित्व पर प्रश्न नहीं किया जा सकता, चूंकि इसका हमेशा से प्रयोग होता रहा है और कब से व कैसे लागू है, इस संबंध में जानकारी नहीं है परन्तु सर्वोच्च न्यायालय का ब्रिटिश साम्राज्य पीठ के सभी कार्यकलापों के साथ स्थापित किया गया था, हमारे पास यहां एक और प्रमाण है कि इसे स्थापित करना मात्रा एक सूत्र से अधिक है और उसने पूर्ण अधिकार प्राप्त किया ह। शवें जियो. III (सी 70) के अधिनियम में किया गया भेद आसानी से नहीं समझा जा सकता, क्या उसका वास्तविक उद्देश्य 13वें जियो. III (सी 63) को उसके विस्तृत कार्यक्षेत्र से रोकना था, यह संशोधन साधारण विनियम द्वारा भी किया जा सकता था।

इस मामले में कोई निर्णय नहीं दिया गया परन्तु महामहिम द्वारा पुष्टि की गई प्रिवी परिषद की रिपोर्ट निम्न प्रकार से थी।

''कि उक्त याचिका में उल्लिखित बंदी प्रत्यक्षीकरण के दो मामलों में दिये गये निर्णय अनुचित थे।'' कि सर्वोच्च न्यायालय को बंदी प्रत्यक्षीकरण आदेश जारी करने की शक्ति या अधिकार नहीं है सिवाय जब कि व्यक्ति उस स्थानीय सीमा में रह रहा हो जहां न्यायालय की सामान्य न्यायिक सीमा हो या व्यक्ति उस स्थानीय सीमा से बाहर रह रहा हो और व्यक्तिगत रूप से सर्वोच्च न्यायालय की सिविल एवं आपराधिक न्यायिक सीमा के अंतर्गत आता हो।

''कि सर्वोच्च न्यायालय को बंदी प्रत्यक्षीकरण का आदेश जेल अधिकारी या स्थानीय न्यायालय को जारी करने की शक्ति या अधिकार नहीं है, सर्वोचच न्यायालय को स्थानीय न्यायालय के अधिकार से हिरासत में लिए व्यक्ति को रिहा करने का अधिकार नहीं है।

''कि सर्वोच्च न्यायालय को स्थानीय न्यायालय की न्यायिक सीमा की जानकारी रखनी होगी बंदी प्रत्यक्षीकरण के आदेश में विशिष्ट रूप से नियत की गई न्यायिक सीमा नहीं होगी।''

नोट—इस निर्णय की घोषणा से पूर्व निम्न परिस्थितियों में बंबई सर्वोच्च न्यायालय बंद हो गया। पाण्डुरंग रामचन्द्र को निर्देशित करने वाले बुंदी प्रत्यक्षीकरण के आदेश की प्रत्तयुतर में 10 अक्टूबर, 1828 को कोई उपस्थित नहीं हुआ। बंदी प्रत्यक्षीकरण के आदेश जारी कर तुरन्त उपस्थित होने का आदेश जारी किया जाए और 10,000 रुपये का जुर्माना किया जाए। इस आदेश के बाद भी कोई उपस्थित नहीं हुआ और

23 फरवरी, 1829 को न्यायूर्ति ग्रांट ने अपने आदेश में कहा कि पाण्ड्रंग के विरूद्ध कुर्की का आदेश जारी कर दिया जाये और गवर्नर एवं परिषद को यह निर्देशित किया जाये कि वे इसके वे जैसा ठीक समझे व्यक्ति लगाकर आदेश को कार्यान्वित कराये। उन्होंने यह भी निर्देश दिया कि राज्य के सचिव को भी पत्र भेजा जाए।

न्यायालय द्वारा इस प्रकार की कार्यवाही क्यों की गई और मामले के शपथ–पत्रों एवं कार्यवाहियों की प्रतियाँ भी संलग्न करें। इस पत्र एवं ओदश के प्रत्युत्तर में सचिव ने उत्तर दिया कि सरकार का यह आशय था कि पत्र दिनांक 3 अक्टूबर, 1829 में उल्लिखित कार्यपद्धति के अनुसार ही कार्यवाही की जाए जब तक कि इंग्लैण्ड से उच्च अधिकारियों से आदेश प्राप्त न हो जायें। इस उत्तर के पश्चात् महामहिम न्यायाधीश ग्रांट ने पहली अप्रैल, 1829 को घोषित किया कि न्यायालय ने अपने आपको सभी मामलों से हटा लिया है और वह तब तक न्यायाधीश के रूप में कोई कार्य नहीं करेंगे जब तक न्यायालय को यह आश्वासन नहीं मिल जाता है कि उसके प्रभुत्व का सम्मान किया जायेगा और उनकी प्रक्रिया का पालन किया जायेगा और प्रेजीडेन्सी सरकार द्वारा वैध ठहराया जायेगा। एशियाटिक रजिस्टर खण्ड 28, पृष्ठ 351

[अधिकार–पत्र, जिसके अन्तर्ग वर्तमान उच्च न्यायालयों का गठन किया गया और जो भारतीय उच्च न्यायालय अधिनियम, 1861 (विक्ट सी 104 का 24 व 25) के अन्तर्गत जारी किया गया, दिनांक के क्रमानुसार इस प्रकार है : कलकत्ता, 28 दिसम्बर, 1865; मद्रास 28 दिसम्बर, 1865; बम्बई 28 दिसम्बर, 1865; उत्तरी–पश्चिमी प्रान्त, 17 मार्च, 1866; अधिकार–पत्रों का विस्तृत विवरण स्टे. आर एण्ड ओ. खण्ड 4 पृ.82–131 पर है। उच्च न्यायालयों की न्यायिक सीमा के लिए देखें (आईबर्ट, भारत सरकार, पृ. 241–255 इस को देखे पृ. 387–405 (जन्मजात भारतीयों पर ब्रिटिश कानून लागू होना) पृ.सं. 406–463) (स्थानीय राज्यों में ब्रिटिश न्यायिक सीमा)]

(5)

बम्बई शहर के अस्पृश्नीय कर्मचारी

द्वारा –जी.आर प्रधान, पी.एच.डी.

डॉ. बी.आर. अम्बेडकर, एम.ए., पी.एच.डी.

डी.एससी., बार–एट–लॉ जे.पी. की

प्रस्तावना के साथ

प्रस्तावना

यह लेख एक शोध प्रबन्ध है जिसे लेखक ने बम्बई विश्वविद्यालय द्वारा कला में दर्शनशास्त्र में डाक्टर की उपाधि प्राप्त करने की निर्धारित अपेक्षाओं को पूर्ण करते हुए लिखा है। इसे विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकार किया गया, उसकी गुणवत्ता के पक्ष में पर्याप्त अनुशंसायें की जानी चाहिये थी एवं चूँकि मेरे द्वारा प्रस्तावना लिखी जाने के कारण ऐसा किया जाना आवश्यक नहीं समझा गया। मैं नहीं जानता कि लेखक ने मुझ से प्रस्तावना लिखवाने की आवश्यकता क्यों अनुभव की। संभवतः मैं उस समुदाय से संबंधित हूँ जिस समुदाय का जीवन चरित इस अनुसंधान का विषय होने के कारण उन्होंने मुझसे प्रस्तावना लिखने के लिए कहा और मैंने उनके आमंत्रण को प्रसन्नतापूर्वक कर प्रस्तावना लिखी।

लेखक ने बम्बई नगर में विभिन्न विषयों के अन्तर्गत अस्पृश्यों के जीवन का अध्ययन किया है एवं इस प्रकार अस्पृश्यों की अत्याधिक संख्या आमदनी, रोजगार, ऋण आदि की परिणामात्मक जानकारी देने वाले विचार अपनी प्रस्तावना में दिये हैं। उसने आंकड़ों को एकत्रित किया है जो वास्तव में अमूल्य हैं। किसी भी सांख्यिकीय अनुसंधान में यह प्रश्न उठता है कि क्या अध्ययन किये गये मामले आदर्शात्मक हैं या नहीं? औसत सामान्य हो सकते हैं लेकिन अनुसंधान किये गये मामले आदर्शात्मक होने चाहिए अतः उसके द्वारा अस्पृश्यों के जीवन–चरित की प्रस्तुत तस्वीर सही है।

यह अध्ययन अत्यधिक मूल्य का होता, यदि यह अस्पृश्यों व हिन्दू जाति की सामाजिक स्थिति का अध्ययन तुलनात्मक रूप में किया गया होता। लेकिन वह ऐसा नही है, एक ओर सामान्य धारणा एवं दूसरी ओर हिन्दू–जाति को दृष्टिगत रखकर अध्ययन अधिक आवश्यक था यदि इससे यह सिद्ध किया जाता कि अस्पृश्नीय अपनी अस्पृश्नीयता के कारण पीड़ित नहीं होते हैं। लेकन तुलना करने पर यह पाया जाता है कि प्रतिस्पर्धात्मक समाज, जैसा कि हिन्दू समाज की तुलना में अस्पृश्नीय अपनी आमदनी, अपने रोजगार और अन्य किसी रूप में पीड़ित होते हैं और यदि यह अहित अस्पृश्नीयता के अतिरिक्त किसी अन्य कारण से नहीं है तो यह स्वीकार करना होगा कि धर्मान्तरण के लिए मामला प्रबल था।

इसे स्पृश्यों और अस्पृश्यों भी लिखा जा सकता है। लेकिन इस सबके तुलनात्मक अध्ययन की प्रतीक्षा करनी होगी। इस प्रकार का अध्ययन किसी समय इस पुस्तक के लेखक या किसी अन्य व्यक्ति को करना पड़ेगा यदि वर्तमान अध्ययन यह समझने हेतु उपयोगी व मार्गदर्शी होगा कि लेखक द्वारा निकाला गया निष्कर्ष क्या है और क्या स्पृश्नीयों एवं अस्पृश्नीयों की स्थिति में कोई भिन्नता है और यह भिन्नता अस्पृश्नीय जैसे सामाजिक कारण से है। इस प्रयास के प्रारम्भिक दौर के रूप में यह पुस्तक अभिनन्दनीय है।

बी.आर. अम्बेडकर

राजगृह, दादर

10–2–1938

कर्नाटक पब्लिशिंग हाउस, बम्बई, 1938

(6)

क्या गाँधी एक महात्मा है?

क्या गाँधी एक महात्मा है। मैं इस प्रश्न से असहमत हूँ। यह प्रश्न मुझे क्यों परेशान करता है, इसके दो कारण हैं। पहला, मैं सभी महात्माओं से घृणा करता हूँ एवं मेरा दृढ़ विश्वास है कि इन सब को हटा दिया जाना चाहिए। मेरी यह राय इसलिए है कि उनका अस्तित्व उस राष्ट्र, जिसमें उनका जन्म हुआ, में अभिशाप के रूप में हैं।

मैं ऐसा क्यों कहता हूँ इसका कारण है कि वे ज्ञान एवं तर्क के स्थान पर अन्धविश्वास को शाश्वत बनाने का प्रयास करते हैं।

दूसरा, मैं नहीं जानता, कि जनसाधारण महात्मा शब्द द्वारा वास्तव में क्या समझते हैं।

इसके बावजूद चूँकि 'चित्रा' का सम्पादक मुझ से प्रत्युत्तर प्राप्त करने के लिये महत्त्वाकांक्षी प्रतीत हो रहा है, इसलिए मैंने इस प्रश्न का उत्तर देने हेतु गम्भीरता से प्रयास करने का निर्णय किया है।

एक साधरण हिन्दू के अनुसार सामान्यतया कहा जाता है कि एक महात्मा के रूप में जीवन–यापन करने वाले व्यक्ति के पास तीन वस्तुएँ अवश्य होनी चाहिए यथा–उसकी वेशभूषा, उसका चरित्र एवं उसका विशेष सिद्धान्त। यदि एक महात्मा को परखने हेतु इन विशेषताओं को कसौटी के रूप में लिया जाता है तो अज्ञानी एवं अशिक्षित व्यक्ति, जो उद्धार के लिये दूसरों की ओर देखते हैं, तो उनकी दृष्टि से मोहनदास करमचन्द गाँधी को महात्मा के रूप में पुकारा जा सकता है। भारत में किसी व्यक्ति के लिये सिर्फ अपनी वेशभूषा को बदलकर महात्मा बनना अत्यंत सरल है। यदि आप ने साधारण कपड़े पहने हुए हैं तथा साधारण जीवन जी रहे है फिर भी यदि आप असाधारण श्रेष्ठ कार्य कर रहे हैं तो कोई व्यक्ति आपकी तरफ ध्यान नहीं देगा। लेकिन यदि कोई व्यक्ति जो सामान्य शिष्टाचार से व्यवहार नहीं करता एवं अपने चरित्र का विलक्षण रवैया एवं असामान्यता दर्शाता है तो वह सन्त या महात्मा बन जाता है। यदि आप सूट या साधारण कपड़े पहनते हैं एवं कुछ करते हैं तो लोग आपकी तरफ देखना भी पसन्द नहीं करेंगे। लेकिन यदि वही व्यक्ति

कपड़ों का त्याग कर देता है नंगा होकर घूमता है, लम्बे–लम्बे बाल रख लेता है, लोगों को गालियाँ देता है, गटर का गन्दा पानी पीता है, तो लोग उसके चरणों में गिर जाते हैं और उसकी पूजा करने लगते हैं। इन परिस्थितियों में यदि भारत में गाँधी महात्मा बन जाता है, तो इसमें कुछ कभी आश्चर्यजनक नहीं है। यदि इस प्रकार के कार्य किसी अन्य सभ्य राष्ट्र में व्यवहार में लाये गये होते तो लोग उस पर हँसे होते। एक सामान्य पर्यवेक्षक की नज़र में गाँधी का उपदेश अत्यंत कर्णप्रिय एवं प्रभावशाली प्रतीत होता है। सच्चाई एवं अहिंसा अत्यंत प्रभावशाली सिद्धांत हैं। गाँधी का दावा है कि वह सत्य एवं अहिंसा का प्रचार करते हैं एवं जनता इसे इतना पसंद करती है कि हज़ारों की संख्या में लोग उन्हें घेरे रहते हैं। मैं यह नहीं समझ सका कि वे ऐसा क्यों करते हैं? क्या यह सत्य नहीं है कि हजारों वर्ष पूर्व भगवान बुद्ध ने संसार को सत्य एवं अहिंसा का संदेश दिया था।

इस मामले में मौलिकता के लिए गाँधी को अज्ञानी, मूर्ख या सहज रूप से मंदबुद्धि के सिवाय कोई श्रेय नहीं देगा। इस उद्घोषणा में कुछ भी नया नहीं है कि मानव सभ्यता के संरक्षण के लिए सत्य एवं अहिंसा आवश्यक हैं। इसमें कुछ भी नया नहीं है जो गाँधी ने इस कहावत में जोड़ा है। जैसाकि मैं पूर्व में उल्लिखित कर चुका हूँ कि भगवान बुद्ध ने हजारों वर्ष पूर्व इन सिद्धांतों को सिखाया था। यदि गाँधी ने सत्य एवं अहिंसा के प्रयोग से उत्पन्न गंभीर समस्याओं पर कुछ प्रकाश डाला होता तो इससे उसकी महात्मापन के यश में वृद्धि होती तथा यह संसार सदैव उसका कृतज्ञ रहता। विश्व दो पहलुओं के हल की उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहा है जैसे 'सत्य' के महान् सिद्धांत को कैसे बनाए रखा जाए तथा किन परिस्थितियों में 'हिंसा' को एक सही कार्यवाही के रूप में माना जाये। भगवान बुद्ध ने उपदेश दिया था कि 'सत्य' एवं 'अहिंसा' के प्रति मानसिकता व्यावहारिक होनी चाहिये। जीसस क्राइस्ट ने इस प्रश्न का क्या उत्तर दिया होगा, दुर्भाग्य से हमारे पास यह जानने का कोई साधन नहीं है।

शायद पिलेट ने इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए पर्याप्त समय नहीं दिया होगा। क्या गाँधी ने इस प्रश्न का उत्तर दिया है? मैंने इसे कहीं नहीं पाया है। यदि हम उसकी शिक्षाओं एवं उपदेशों का अध्ययन करते हैं तो हम पाते हैं कि उन्होंने अन्य व्यक्तियों की पूंजी पर व्यापार किया है अर्थात् दूसरों के कंधे पर बन्दूक चलाई है सत्य एवं अहिंसा उसकी मौलिक खोज नहीं है। जब मैं गम्भीरतापूर्वक गाँधी के चरित्र का अध्ययन करता हूँ तो मैं अत्यधिक आश्वस्त हो जाता हूँ कि उसके चरित्र में गम्भीरता एवं ईमानदारी की तुलना में छल कपट अधिक झलकता है। मेरे अनुसार उसकी सार्थकताओं की तुलना एक खोटे सिक्के से की जा सकती है। उसकी विनम्रता प्रसिद्ध अंग्रेजी उपन्यास 'डेविड कॉपर फील्ड के चरित्रों में 'यूनिया हीप' की विनम्रता के समान है। उसने छल

कपट एवं सहज चातुर्य से अपने आपको नेतृत्व वाले स्थान पर बनाया हुआ है। एक व्यक्ति जिसे अपनी क्षमता एवं चरित्र पर विश्वास है वह जीवन की वास्तविकताओं का सामना करता है, साहसपूर्वक एवं निर्भीकता से सामना करता है। नेपोलियन सदैव सामने से आक्रमण करता था। वह विश्वासघात में विश्वास नहीं करता था एवं उसने कभी भी धोखे से हमला नहीं किया। विश्वास एवं धोखा कमज़ोर लोगों के हथियार हैं गाँधी ने हमेशा इन हथियारों का प्रयोग किया है। कई वर्षों तक वह अपने आपको गोखले का विनम्र अनुयायी बताते रहे हैं। उसके पश्चात् वह कई वर्षों तक तिलक की प्रशंसा करते रहे हैं। बाद में तिलक से घृणा भी की है। प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि यदि कुछ समय पश्चात् उसने धन इक्ट्ठा करने के लिए तिलक का नाम नहीं लिया होता तो वह स्वराज्य कोष हेतु एक करोड़ की राशि एकत्रा नहीं कर सकता था। एक चतुर राजनीति की भांति अपने निजी सम्बंधों को भुलाने एवं अन्य मुद्दों को एक तरफ रखते हुए, उसने फंड के साथ तिलक का नाम जोड़ा।

गाँधी इसाई धर्म का घोर विरोधी था। पश्चिमी जगत को प्रसन्न करने के लिये संकट की घड़ी में वह प्रायः बाइबिल से उद्वरण देता था। उसकी मानसिक कार्यशैली को समझने के लिये मेरे पास उद्धृत करने हेतु दो अन्य उदाहरण हैं।

गोलमेज सम्म्लेन के दौरान उसने जनता से कहा था "मैं दलित वर्गों के प्रतिनिधियों के द्वारा प्रस्तुत माँगों के विरुद्ध कोई आपत्ति नहीं उठाऊँगा।" लेकिन जैसे ही दलित वर्गों के प्रतिनिधियों ने अपनी माँगे रखी, गाँधी अपने स्वयं द्वारा दिये गये आश्वासन को बिल्कुल भूल गये। मैं इसे दलित वर्गों के साथ विश्वासघात करना कहूँगा। वह मुसलमानों के पास गये एवं उन्हें कहा कि वह उनकी 14 माँगों का समर्थन करेंगे, यदि वे बदले में दलित वर्गों के प्रतिनिधियों द्वारा रखी गई माँगों का विरोध करें। एक दुष्ट व्यक्ति ने भी ऐसा नहीं किया होगा। यह तो गाँधी के विश्वासघात का एक उदाहरण है।

नेहरू कमेटी की रिपोर्ट कांग्रेस के खुले सत्र में चर्चा हेतु प्रस्तुत की गई थी। रिपोर्ट में कुछ संशोधन किये जाने थे। आप सभी इस संबंध में अवश्य जानते होंगे। इन संशोधनों का विरोध करने के लिए श्री गाँधी ने श्री जयकर को भाड़े पर लिया था। इन संशोधनों का श्री जयकर एवं उसके समर्थकों द्वारा जोरदार ढंग से विरोध किया गया था। उनसे सच्चाई के संबंध में प्रश्न करने का कोई कारण नहीं है। इसकी जानकारी कई लोगों को है। लेकिन ये संशोधन क्या थे एवं इसका इतना प्रबल विरोध क्यों किया गया? इन संशोधनों की पृष्ठभूमि के बारे में बहुत से लोग नहीं जानते। मुझे जयकर के विरोध के बारे में पता चला। यह सत्य है कि मेरे पास जिन लोगों ने

संशोधनों का विरोध किया था उनसे पं. मोतीलाल नेहरु और श्री जिन्ना, जिनके साथ श्री गाँधी द्वारा विश्वासघात किया गया था, ने इन सबकी जानकारी दी थी। नेहरु कमेटी की रिपोर्ट में किये जाने वाले प्रस्तावित संशोधनों का सुझाव श्री जिन्ना द्वारा दिया गया था और ये संशोधन उनके समुदाय के हित के लिए थे। लेकिन जब गाँधी को इस के बारे में पता चला तो उन्होंने सोचा कि पं. मोतीलाल नेहरु ने मुसलमानों को जितना वह मूल रुप से देना चाहते थे, की तुलना में बहुत अधिक दे दिया है।

पं. मोतीलाल नेहरु की प्रतिष्ठा कम करने के लिए उसने इन प्रसतावों का जोरदार ढंग से विरोध किया। गाँधी द्वारा किए गये इस कपट पूर्ण कार्य का परिणाम हिंदू–मुस्लिम विद्वेष है।

व्यक्ति जो अस्पृश्नीयों एवं मुसलमानों का दोस्त समझा जाता था, ने उन्हीं लोगों को उसी प्रयोजन में धोखा दिया, जिस प्रयोजन में वह उनका चेम्पियन होने का दावा करता है इससे मुझे अत्यधिक दुःख हुआ। एक पुरानी कहावत है जो इस समय खरी उतरती है 'बगल में छुरी मुख में राम'। यदि ऐसे किसी व्यक्ति को महात्मा कहा जा सकता है तो गाँधी सही अर्थों में एक महात्मा हैं। मेरे अनुसार वह एक साधारण मोहनदास करमचन्द गाँधी से अधिक कुछ नहीं है।

चित्रा के सम्पादक ने जो माँग की थी मैंने उससे अधिक दे दिया है। चित्रा के पाठक जितना आत्म–सात कर सकते थे, मैंने अवश्य ही उससे अधिक बताया होगा।

यहाँ उद्धृत घटनाओं के अतिरिक्त दो अन्य बातें भी हैं जिन्हें मैं बताकर अपनी बात को समाप्त करूँगा। राणा डे, गोखले, अगरकर एवं तिलक तथा उनके द्वारा आरम्भ किये गये आन्दोलन का युग गाँधी के युग से भिन्न था। उनका युग ज्ञान का युग था। इस संबंध में बिल्कुल कोई सन्देह नहीं है। गाँधी युग को भारत का 'तमो युग' कहा जा सकता है। अगरकर तथा तिलक की राजनीति ईमानदारी और सच्चाई पर आधारित थी। यह थोथा चना बाजे घना वाली नहीं थी। लेकिन गाँधी की राजनीति थोथा चना बाजे घना वाली है। भारतीय शासन प्रणाली के इतिहास में यह राजनीति अत्यन्त कपटपूर्ण ह। गांधी राजनीति समाप्त करने और इसके स्थान पर भारतीय राजनीति में व्यावसायिकता लाने के लिए जिम्मेदार व्यक्ति था। राजनीति को उसके सदाचारों से विहीन कर दिया गया है। फैरिसीस के जीसस क्राइस्ट ने कहा है जब नमक ने अपना जायका खो दिया हो किसके साथ इसे नमकीन बनाया जाए। दूसरा एवं अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि भारतीय सार्वजनिक जीवन से गाँधी की घातक सन्त प्रवृत्ति से कैसे छुटकारा पाया जाये? यदि भारत के हिन्दू इसे आज महसूस नहीं करते तो बाद में इससे छुटकारा पाने के लिए काफी समय लगेगा। अधिकतर भारतीय

नागरिक अशिक्षित, अज्ञानी एवं असभ्य हैं। इसमें लोगों का दोष नहीं है। समाज के कुछ विशेषाधिकार प्राप्त व्यक्तियों ने जानबूझ कर अधिकतर लोगों को अशिक्षित एवं अज्ञानी रखा है। यह वास्तविकता है कि पूर्णतया तर्क बुद्धि एवं शास्त्र दृष्टिकोण के विरुद्ध है अकेला कारण महात्मापन के चमत्कार के सम्माहेन प्रभाव को मिटा नहीं सकता। इन परिस्थितियों में, मैं कुछ सुझाव देना चाहूँगा। महात्मा के कार्यकलापों को समाप्त करने के लिए अन्य महात्माओं को भारतीय सार्वजनिक जीवन में सक्रिय रूप से भाग लेने हेतु आगे आना चाहिये तथा अपनी–अपनी निजी राजनीतिक इकाई गठित करनी चाहिये। भारत में महात्माओं की कोई कमी नहीं है। उपासनी बुवा, दादा महाराज, मेहर बाबा, नारायण बुवा केटगोनकर आदि कुछ विख्यात नाम हैं। अनेक सन्त एवं महात्मा भारत में रहते हैं। वे मासूम लोगों को मूर्ख बनाने एवं जाल में फंसाने की कला जानते हैं। यह सत्य है, कि उनके अनुयायियों की संख्या गाँधी जी के अनुयायियों से काफी कम है। लेकिन अक्षमता या असमर्थता ही इस का एक मात्र कारण नहीं हो सकता। उनके पास अपने हिन्दू जन समुदाय के उद्धार के साथ–साथ स्वंतत्रता प्राप्त करने की शक्ति एवं सामर्थ्य है। वे ये जानने में क्यों समर्थ नहीं हैं इसके कई कारण हैं। अपनी दोहरी नीति एवं कपटी चरित्र के कारण गाँधी जी सभी के लिए आध्यात्मिक एवं राजनीतिक आजादी प्राप्त करने के आश्वासन के द्वारा अनुयायी बनाने में सफल हुए हैं मुझे विश्वास है कि यदि उपासनी बुवा, नारायण महाराज आदि गाँधी जी की नीति अपना लें, तो निःसन्देह वे भी ऐसी इकाई स्थापित करने में सफल हो जायेंगे जो प्रभावी ढंग से गाँधी के अन्ध अनुयायियों का सामना कर सकते हैं। भारत की मुक्ति इसमें ही निहित है। देश में वर्तमान में काफी संख्या में पार्टियों का होना देश के लिये तो लाभकारी है। यदि इन लक्ष्यों एवं उद्‌देश्यों के साथ एक संगठन की स्थापना की जाती है तो यह उन्हीं उद्‌देश्यों को पूरा करने में सफल होगा, जैसाकि पुराणों की अप्सराओं द्वारा अपने शत्रुओं का संहार हेतु किया गया था और यदि यह घटित नहीं हुआ होता तथा यह संगठन प्रक्रियात्मक रहता है, तब भी इसकी विद्यमानता उपयोगी रहेगी। इस प्रकार से कम से कम फासिस्टवाद का घातक सम्प्रदाय जो चारों तरफ अपने पंख फैला रहा है, रोका जा सकेगा। मुझे विश्वास है कि यदि एक महात्मा आता है तथा सीधे ढंग से वर्णन करते हुये अपना चुनाव घोषणा पत्र रखता है तो वह मुक्ति प्राप्त कर सकता है तो शायद भारत बौद्धिक स्वतंत्रता प्राप्त कर लेगा। यह मज़ाक नहीं है। यहाँ किसी व्यक्ति की निन्दा या आलोचना करना नहीं है। मैं इसे पूर्ण गंभीरता के साथ लिख रहा हूँ।

क्या हिन्दू दादा महाराजा, मेहर बाबा या नारायण बुवा जैसे महात्माओं के विचारों में परिवर्तन करते हुए भारत सेवा का प्रयास करेंगे।

यह लेख चित्रा (मराठी) दीपावली विशेषांक नम्बर 1938 में सर्वप्रथम प्रकाशित हुआ था।

(7)

मराठी विद्वान को सहायता–निधि के लिए अपील

डॉ. अम्बेडकर ने बताया है कि विख्यात मराठी विद्वान श्री जे.आर. अजगांवकर को उनके 60वें जन्मदिन पर उसके मित्रों एवं प्रशंसकों द्वारा सहायता–राशि प्रदान करने का निर्णय लिया गया है।

डॉ. अम्बेडकर ने यह भी बताया है कि श्री अजगांवकर ने प्राचीन साहित्य के अध्ययन को अपने जीवन का लक्ष्य बनाया था, इससे इन्हें कोई बड़ा प्रतिफल प्राप्त नहीं हुआ है।

उनके द्वारा मराठी साहित्य को समृद्ध बनाने के सफल प्रयासों में यह पाया गया है कि वह वृद्ध विद्वान अपने 61वें साल की दहलीज पर निर्धन एवं निःसहाय रूप में खड़ा है। कुछ समय पूर्व कुछ अत्यन्त खेदजनक घरेलू विपत्ति ने मराठी साहित्य प्रेमियों के लिए अनिवार्य कर दिया है कि संकट की घड़ी में वयोवृद्ध कुशल विद्वान का साथ दे तथा संकट के समय उसकी सहायता करें।

डॉ. अम्बेडकर नागरिकों से अनुरोध करते हैं कि सहायता राशि के लिए अपना अंशदान यथासंभव शीघ्र भेजें।

हस्ता. / बी. आर. अम्बेडकर

बम्बई क्रानिकल, दिनांक 14 जुलाई, 1939
तिथि उल्लेखित नहीं है – संपादक

(8)

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में ज्ञान ही शक्ति है

'द मराठा प्रथम वार्षिक स्मारिक (पत्रिका)

("मराठा" विशेषांक)

अम्बेडकर स्कूल ऑफ पालिटिक्स, पूना

स्थापित 30 जुलाई 1944

"अध्ययन, सेवा एवं त्याग"

संदेश

मेरी सदैव यह धारणा रही है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में ज्ञान ही शक्ति है। अनुसूचित जातियाँ आज़ादी एवं स्वतंत्रता के अपने लक्ष्य को तब तक प्राप्त नहीं करेंगी जब तक वे सभी प्रकार के ज्ञान को गहराई तक आत्मसात नहीं कर लेंती। मुझे विश्वास है कि 'अम्बेडकर स्कूल ऑफ पालिटिक्स पूना' उस दिशा में एक विश्वसनीय प्रयास करेगा। 'द मराठा प्रथम वार्षिक स्मारिका' एक अच्छा प्रयास है एवं मैं उन्हें उज्ज्वल भविष्य की कामनायें देता हूँ।

हस्ता./बी.आर. अम्बेडकर

प्रकाशन तिथि उपलब्ध नहीं है — संपादक

(9)

कांग्रेस का अस्पृश्यों को हटाने का प्रयास

भारतीय राजनीति के इतिहास में 12 नवम्बर, 1930 एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण दिन था, इस दिन स्व. महामहिम राजा जार्ज पंचम ने औपचारिक रूप से भारतीय गोल –मेज सम्मेलन का उद्‌घाटन किया। भारतीयों की दृष्टि से यह एक महत्त्वपूर्ण घटना थी, यह पहला अवसर था जब भारतीयों के अधिकारों को मान्यता प्रदान की गई थी। इण्डियन नेशनल कांग्रेस (भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस) केवल ऐसी संस्था थी जिसने इस सम्मेलन में भाग नहीं लिया। सम्मेलन का कार्य नौ समितियों में विभाजित किया गया था, जिसमें से एक अल्पसंख्यक समिति थी।

वर्ष 1919 का अधिनियम, जो दलित वर्गों के संरक्षण की आवश्यकता पर बल देता है ने वास्तव में कुछ नहीं किया। यह केवल एक काल्पनिक दावा था। अतः मैनें एक ज्ञापन प्रस्तुत किया, जिसमें मैंने निम्नलिखित हेतु तर्क दिए :

(1) दलित वर्गों हेतु समान नागरिकता

(2) समान अधिकारों का स्वतंत्रतापूर्वक उपभोग

(3) भेदभाव के विरुद्ध संरक्षण

(4) दलित वर्गों के लिए पर्याप्त राजनीतिक शक्ति ताकि विधायी एवं कार्यकारी कार्यवाही को अपने कल्याण के लिए क्रियान्वित कर सके इसमें ये बातें सम्मिलित हैं:

(अ) विधान सभा में पर्याप्त प्रतिनिधियों का अधिकार, एवं

(ब) अपने स्वयं के व्यक्तियों को चुनने का अधिकार,

(1) वयस्क मताधिकार द्वारा, एवं

(2) प्रथम दस वर्षों के लिए पृथक निर्वाचन क्षेत्र द्वारा एवं तत्पश्चात् आरक्षित सीटों

के साथ संयुक्त निर्वाचन क्षेत्र द्वारा।

(5) सेना में पर्याप्त प्रतिनिधित्व। सभी प्रदेशों में लोक सेवा आयोग स्थापित करने पर बल दिया गया था, जिसके कार्य होंगे–

(क) सेवाओं मं इस प्रकार भर्ती की जाये ताकि सेवाओं में सभी समुदायों को उचित एवं पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्राप्त हो, एवं

(ख) किसी विशेष सेवा के संबंध में विभिन्न समुदायों के प्रतिनिधित्व की वर्तमान सीमा के अनुसार रोज़गार में समय–समय पर प्राथमिकता को विनियमित करना।

(6) पक्षपातपूर्ण कार्यवाही या हितों की उपेक्षा के विरुद्ध निवारणात्मक कार्यवाही।

(7) विशेष विभागीय देखरेख।

(8) मंत्रिमण्डल में उनकी जनसंख्या के अनुसार उचित प्रतिनिधित्व।

अब हम बात करते हैं कि अस्पृश्यों की अन्य माँगों का क्या हुआ? अल्पसंख्यक समिति द्वारा गोलमेज़ सम्मेलन को प्रस्तुत की गई रिपोर्ट का हमें अवलोकन अवश्य करना चाहिए। मद सं. 16 एवं 18 से हमें जानकारी मिलती है कि दलित वर्ग अपने लिए अलग निर्वाचन क्षेत्र प्राप्त करने हेतु दृढ निश्चयी है। संक्षेप में, सर्वसम्मति से यह सहमति व्यक्त की गई थी कि अस्पृश्य भारत के राजनीतिक जीवन में पृथक घटक के रूप में मान्यता प्रदान किये जाने के पात्र हैं। यहाँ हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि अस्पृश्यों की पृथक मान्यता के मुद्दे पर सर्वसम्मति से करार केवल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की अनुपस्थिति के कारण ही संभव हो सका था।

द्वितीय गोलमेज सम्मेलन का अवलोकन करते हुये हम पाते हैं कि कांग्रेस का इसमें पूर्ण प्रतिनिधित्व था। सम्मलेन को सफल बनाने के लिए सबकी नज़र कांग्रेस पर थी। दुर्भाग्य से श्री गाँधी को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रतिनिधित्व करने हेतु चुना गया था। भारत के भाग्य का फैसला करने के लिए एक दुष्ट व्यक्ति को नहीं चुना जा सकता। उसने एक विचित्र व्यक्ति की तस्वीर प्रस्तुत की जो अनेक मामलों में सम्मेलन को आतंकित ऐसे मामले में हर प्रकार से विरोध करेगा जिसके समझौते को वह अपने सिद्धानत से छोटा मानेगा यद्यपि अन्यों को पक्षपातपूर्व कहेगा और अन्य मामलों के अनावश्यक महत्त्वपूर्ण मद्दों पर मौन रहेगा जिनको अन्य व्यक्ति सैद्धान्तिक मामला मानेंगे। 15 सितम्बर, 1931 को श्री गाँधी ने अपना पहला भाषण दिया जिसमें उसने कहा कि अस्पृश्यता की समस्या बिल्कुल नहीं है। उसने

सामाजिक सम्मेलन की गतिविधियों का उल्लेख किया जिसके बारे में हम जानते हैं कि कांग्रेस ने इस संस्था को अपना वार्षिक सत्र कांग्रेस के पण्डाल में आयोजित करने हेतु केवल इस लिये स्वीकृति प्रदान नहीं की थी क्योंकि श्री तिलक ने धमकी दी थी कि यदि सोशल कांफ्रेस पार्टी के प्रयोग की स्वीकृति दी जाने की स्थिति में वह उसे जला देंगे।

17 सितम्बर 1931 को संघीय संरचना समिति (फेडरल स्ट्रक्चरल कमेटी) में श्री गाँधी ने दोषारोपण करते हुए निम्न शब्द कहे :

कांग्रेस अस्पृश्यों के हितों का प्रतिनिधित्व करने के लिए डॉ. अम्बेडकर को प्राप्त गौरव के अनुरूप साथ निभायेगी। वे कांग्रेस को उतने ही प्रिय हैं जितने भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक कोई संस्था है। इसलिए, मैं और अधिक विशेष प्रतिनिधित्व का अत्यन्त सशक्तता से विरोध कर सका।

वास्तव में, यह कुछ और नहीं था बल्कि अस्पृश्यों के विरुद्ध लड़ाई हेतु श्री गाँधी एवं कांग्रेस की घोषणा थी। वह योजना बना रहे थे कि अस्पृश्यों को एक तरफ कर दिया जाये तथा हिन्दुओं, मुसलमानों और सिक्खों के मध्य एक समझौता करा कर उनकी समस्याओं को समाप्त कर दिया जाए। इस कार्य को गोपनीयता से किया गया था। यह जानते हुए कि यह एक विद्वेषपूर्ण कदम है, मैंने खड़े होकर कहा, मैं कहना चाहता हूँ कि मैंने मामला पहले से अल्पसंख्यक समिति के समक्ष प्रस्तुत कर दिया है। लेकिन मैं अत्यन्त दृढ़तापूर्वक यह कहना चाहता हूँ कि जो भी इसका दावा करता है तो उसे मैं अपने हिस्से में से नहीं दे सकता। मैं इसे पूर्णतया सुस्पष्ट बनाना चाहता हूँ। "इस मुद्दे पर श्री गाँधी मौन रहे तथा हिन्दू, मुस्लिम एवं सिखों के मध्य समझौते के संबंध में विचार–विमर्श करते रहे। श्री गाँधी इस समझौते में सफलता प्राप्त करने में असफल रहे। विचार–विमर्श करते रहे कि सफलता प्राप्त करने में असफलता इस कारण से हुई उन्होंने यह कहते हुए खेद प्रकट किया कि प्रतिनिधियों का प्रतिनिधित्व त्रुटिपूर्ण था क्योंकि सभी प्रतिनिधियों को मनोनीत सरकार द्वारा किया गया था। यह अप्रत्यक्ष रूप से मेरे द्वारा अस्पृश्यों के लिए किये गये प्रतिनिधित्व की विश्वसनीयता को चुनौती थी। श्री गाँधी इस बात पर दबाव डालते रहे थे कि वह दलित वर्गों के एकमात्र समर्थक हैं। श्री गाँधी की चुनौती के उत्तर में, मैंने कहा "यदि भारत के दलित वर्ग को इस सम्मेलन के लिये अपने प्रतिनिधियों के चयन का अवसर दिया जाता है तो उसमें मेरा ही नाम होगा। इसलिए मैं कहता हूँ कि यदि मैं यहाँ नामित हूँ या नहीं, मैं पूर्णतया अपने समुदाय की माँगों का प्रतिनिधित्व करता हूँ। अपने भाषण के दौरान मैंने उनको एक तार भी

दिखाया जो मुझे हाल ही में प्राप्त हुआ था, यह तार ऐसे व्यक्ति द्वारा भेजा गया था, जिसे मैं कभी भी नहीं मिला था, यह ऐसे स्थान से भेजा गया था जहाँ मैं कभी भी नहीं गया था। इतना ही नहीं सम्मेलन के दौरान मेरे पक्ष में अत्यधिक तार प्राप्त हुए, यह श्री गाँधी की हार थी। जो अब मौन रहने तथा माँगों की प्रत्यक्षता के सम्मुख अपयशकारी हार को स्वीकार करने के लिए मजबूर थे।

यह सामुदायिक समस्या का समाधान करने के लिये अल्पसंख्यक समिति के सभी प्रयासों के अंत की एक पुरानी कहानी है। यह कहना अतिशयोक्ति होगी, कि श्री गाँधी का गोलमेज़ सम्मेलन में जाने का मुख्य उद्देश्य अस्पृश्यों की विधिसम्मत माँगों का विरोध करना था। श्री गाँधी को मुस्लिम या सिखों के लिए पृथक निर्वाचन क्षेत्र हेतु आपत्ति नहीं होगी लेकिन जब अस्पृश्य अपनी अलग पहचान बनाये जाने के लिए प्रयास कर रहे हैं, तो उसने उसकी माँगों को बिल्कुल निष्प्रायोजित बताया। श्री गाधी के पास कोई तर्क नहीं था, उसका कोई सिद्धान्त नहीं था। यह उसकी 'अन्तर्रात्मा की पीड़ा थी' जो उसे नैतिक रूप से अस्पृश्यता के प्रति सद्भावना युक्त शब्द बोलने के लिए बाध्य कर रहे हैं। उसने उस कटु भाषा में मुसलमानों का विरोध करने की कभी हिम्मत नहीं दिखाई। वह कैसे कर सकता था? उसने अस्पृश्यों की माँगों के विरोध करने की हिम्मत केवल इसलिए की, क्योंकि उसे पूर्वानुमान था कि वे अस्पृश्यों जो हिन्दू जाति के मुफ्त के गुलाम थे, को दास–प्रथा से मुक्त कराया गया था, दूसरे शब्दों में इसका अर्थ है कि हिन्दू जाति को अवैतनिक बंधुआ मजदूरों से वंचित किया जाना था जिन्होंने अनन्तकाल से उनकी प्रतिष्ठा को बढ़ाया था।

यद्यपि कांग्रेस अपने अत्यधिक प्रतिनिधित्व स्वरूप का ढोल पीट रही थी, इस घटना ने स्पष्टतः दिखा दिया था कि कांग्रेस कुछ नहीं थी बल्कि यह हिन्दू जाति का दूसरा नाम है। इसी कारण से हम देखते हैं कि कांग्रेस अस्पृश्यों के शेष हिन्दू जाति से अलगाव के मुद्दे पर अधिक सतर्क थी। क्या इस आपत्ति को किसी अन्य संस्था द्वारा उठाया गया, इस पर विधि–सम्मत रूप में विचार किया जाना चाहिए था। लेकिन जब कांग्रेस अस्पृश्यों के पक्ष में बोलती है तो उसे अपना कौन–सा प्रयोजन सिद्ध करना होता है? क्या इस का यह अर्थ नहीं है कि कांग्रेस स्पष्टतः एक हिन्दू पार्टी है, अछूतों की समस्या वास्तव में हिन्दू जाति की समस्या थी एवं कांग्रेस एक हिन्दू संगठन नहीं था तब उसने इस समस्या में अपने आपको क्यों संलिप्त कर लिया जो उसके अपने अधिकार क्षेत्र में पूर्णतया बाह्य समस्या थी? वह केवल अस्पृश्यों को उनके विधि–सम्मत अधिकारों की स्वीकृति न देते हुए हज़ारों वर्षों तक अस्पृश्यों को लोरी सुनाकर करना चाहती है।

कांग्रेस ने अस्पृश्यों को उपेक्षित करने की दिशा में अपनी पूरी ऊर्जा केन्द्रित की हुई है। श्री गाँधी ने मुसलमानों से सम्पर्क किया है तथा अस्पृश्यों को हटाने की एक योजना तैयार की है। वे अस्पृश्यों का समर्थन नहीं करेंगे तथा उनसे अपना समर्थन वापिस ले लेंगे। श्री गाँधी ने मुसलमानों के 14 बिन्दुओं पर सहमति इस शर्त पर प्रदान की कि वे अस्पृश्यों का समर्थन नहीं करेंगे तथा उनसे अपना समर्थन वापिस ले लेंगे। लेकिन मुसलमानों की मानवता की उदार भावना का आभार व्यक्त करते हैं कि उन्होंने कांग्रेस द्वारा की गई पेशकश को ठुकरा दिया एवं इस प्रकार अस्पृश्यों हेतु एक और प्रयास किया। यह कितना आश्चर्यजनक लगता है कि जब कुछ प्रत्यक्षदर्शी बताते हैं कि यहाँ कोई अस्पृश्य नहीं था। यह दर्शाता है कि कांग्रेस कैसे स्वार्थतावश अस्पृश्यों के विरुद्ध गुप्त एवं सुविचारित रूप से षड्यंत्र रच सकती है और अप्रत्यक्ष रूप से जो कुछ किया है वह प्रत्यक्ष रूप से नहीं कर सकती है।

जय भीम दिनांक 12 मार्च, 1946
पुनर्मुद्रित – खैरमोडे खण्ड–8, पृष्ठ 43–48

(10)

मैं पराजयवादी मानसिकता में विश्वास नहीं करता।

सन्देश

अनुसूचित जाति संघ पिछला आम चुनाव हार गया। इसकी हार के परिणामस्वरूप कुछ ने इसे छोड़ दिया है कुछ ने इसमें अपना विश्वास खो दिया। मैं इस पराजयवादी मानसिकता में विश्वास नहीं करता हूँ। संघ का ध्येय चुनाव जीतना नहीं है। संघ के लिये सीटों के जीतने का तात्पर्य एक प्रयोजन को पूर्ण करना है। इसका ध्येय जनता की सेवा करना है जिसके लिये यह स्थापित किया गया है जब तक यह समस्या रहेगी संघ किसी न किसी रूप में कार्यरत रहेगा।

संघ की हार का स्वागत किया जाना चाहिए। इस पराजय ने संघ में प्रविष्ट अत्यंत अवांछनीय तत्वों को बाहर निकालने में सहायता की है। जो लोग अभी संघ में रह गये हैं उनके ऊपर अत्यधिक उत्तरदायित्व आ गया है। उनके लिये मेरा संदेश है कि संघ की पराजय खराब मौसम में ध्वस्त हुए वृक्ष की भांति है, लेकिन यह निश्चित है कि वह जड़ों से मृत नहीं हुआ है।

हस्ता./–

बी.आर. अम्बेडकर

+सन् 1946 में हुये

1 : जय भीम : दिनांक 12, 1946

पुर्नर्मुद्रित : खौरमोड़े, खण्ड–8 पृष्ठ–48

(11)

हमारे विद्यार्थी सीखें एवं नेतृत्व करें अखिल भारतीय अनुसूचित जाति विद्यार्थी संघ का 25–27 दिसम्बर, 1946 को होने वाले सम्मेलन के लिए

डॉ. अम्बेडकर का संदेश

'आखिल भारतीय अनुसूचित जाति विद्यार्थी संघ' का द्वितीय सम्मेलन 25 से 27 दिसम्बर, 1946 को नागपुर में संघ के लिए संविधान तैयार करने के उद्देश्य से आयोजित किया गया। इस संघ की नींव 12 मई, 1945 को बम्बई में प्रथम सम्मेलन के दौरान रखी गई थी।

डॉ. अम्बेडकर की नागपुर में होने वाले इस सम्मलेन में भाग लेने की इच्छा थी, परन्तु अपनी पूर्व व्यस्तता के कारण वह इसमें भाग नहीं ले सके। लेकिन उन्होंने भारत की अन्तरिम सरकार में विधि सदस्य श्री जोगेन्द्रनाथ मण्डल को नागपुर में होने वाले इस विद्यार्थी सम्मेलन में अध्यक्ष बनने का परामर्श दिया है।

यह सम्मेलन ऐतिहासिक महत्त्व का था। इसकी व्यवस्था अल्पावधि में की गई थी। 16 दिसम्बर, 1946 को स्वागत समिति का गठन किया गया था तथा वह सम्मेलन 25 से 27 दिसम्बर, 1946 को सम्पन्न हुआ। इस अल्प अवधि के बावजूद सम्पूर्ण भारत से प्रतिनिधियों के रूप में 3000 बाल विद्यार्थी एवं 500 बालिका विद्यार्थी उपस्थित हुए। लगभग तीस हजार प्रतिभागी इसमें सम्मिलित हुए थे। बम्बई, उत्तर प्रदेश, केन्द्रीय प्रदेश व ब्रार एवं मद्रास, बंगाल, हैदराबाद एवं दिल्ली के प्रतिनिधियों को नई कालोनी, नागपुर स्थित चौखमेला कन्याशाला में ठहराया गया था।

यह सम्मेलन कस्तूरचन्द पार्क के एक बड़े मैदान में अत्यन्त सज्ज़ित पण्डाल में सम्पन्न हुआ था। इस सम्मेलन के अध्यक्ष श्री जोगेन्द्रनाथ मण्डल थे। 40 हजार व्यक्तियों की भारी भीड़ ने 25 दिसम्बर, 1946 के सायं 6.30 बजे नागपुर रेलवे स्टेशन पर उनका भव्य स्वागत किया था। 'समता सैनिक दल' एवं 'मुस्लिम लीग गार्ड' द्वारा उन्हें सलामी दी गई। उनका स्वागत अनुसूचित जाति संघ, मुस्लिम लीग के नेताओं एवं सरकारी अधिकारियों द्वारा भी किया गया था।

संदेश

"2 वैस्टर्न कोर्ट,

नई दिल्ली,

20—12—1946

मेरे प्रिय गेदाम,

मुझे खेद है कि मैं अपनी अनेक पूर्व व्यस्तताओं के कारण आपको पहले पत्र लिखने में असमर्थ रहा।

मैं यह जानकर अत्यन्त प्रसन्न हूँ कि आपने अखिल भारतीय अनुसूचित जाति संघ के अधिवेशन से अलग अखिल भारतीय अनुसूचित जाति विद्यार्थी संघ का अधिवेशन आयोजित करने का निर्णय लिया है। यह एक दूरदर्शी एवं विवेकशील निर्णय है, जिसके लिए मैं पूर्णतया सहमत हूँ।

मैंने माननीय जे.एन. मण्डल से बात की है। वह आपके सम्मेलन की अध्यक्षता करने हेतु निश्चित रूप से आ रहे हैं। मेरी इच्छा है कि मैं उपस्थित हो सकूँ। लेकिन दुर्भाग्यवश यह संभव प्रतीत नहीं हो रहा है। लेकिन मैं इस सम्मेलन की सफलता के लिए अपनी शुभ कामनायें भेज रहा हूँ। हमारे बच्चों को दो बातें सीखनी चाहियें। पहली तो यह सिद्ध करना होगा कि प्राप्त अवसरों के अनुसार वे योग्यता एवं क्षमता में किसी से भी कम नहीं हैं। दूसरा यह सिद्ध करना होगा कि उन्हें केवल व्यक्तिगत हित व प्रसन्नता को ही प्राप्त नहीं करना है बल्कि अपने समुदाय को स्वतंत्र कराने, सशक्त बनाने एवं सम्मनीय बनाने की दिशा में अग्रसर करना है। यदि सम्मेलन में हमारे विद्यार्थियों के मस्तिष्क में इन दो उद्देश्यों को बैठा दिया जाता है तो यह अपने अस्तित्व की सार्थकता को सिद्ध करेंगे। मुझे विश्वास है कि ऐसा ही होगा।

आदर सहित

भवदीय

बी.आर. अम्बेडकर"[1]

+टी.वी. गेदाम, महासचिव, केन्द्रीय प्रदेश एवं ब्रार, 'अनुसूचित जाति विद्यार्थी संघ'

1. छहाण्डे बी.डी., सम्मेलन की रिपोर्ट

(12)

डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर का 'मराठा मन्दिर' को सन्देश

मैं अपने आपको यह विश्वास करने हेतु कभी भी प्रेरित नहीं कर सका कि मैं मराठा समुदाय को यह संदेश देने हेतु किसी रूप में योग्य हूँ कि उन्हें किन आदर्शों एवं उद्देश्यों का अनुसरण करना चाहिए। चूँकि मुझ पर मराठा के आयोजकों द्वारा दबाव डाला गया कि मराठा द्वारा अपने समुदाय की उन्नति के लिए जो कुछ चाहते हैं उस कार्य को उपयुक्त ढंग से करे, के संबंध में अपने विचार व्यक्त करूं, मैंने उनकी आकांक्षाओं के अनुरूप अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने की सहमति दी।

मेरा यह विश्वास है कि यह मराठा ही नहीं बल्कि यह प्रत्येक पिछड़े समुदाय पर भी लागू होता है, कि यदि वे शोषण से बचना चाहते हैं तो राजनीति एवं शिक्षा–दों विषयों में अवश्य भाग लें। एक समुदाय अपना अस्तित्व तभी बनाये रख सकता है जब वह राज्य पर नियंत्रणकारी प्रभाव रखने में समर्थ है। लेकिन एक अल्पसंख्यक समुदाय समाज में अपना आधिपत्य तभी रख सकता है जब राज्य पर उसका प्रभाव हो। भारत में ब्राह्मणों की स्थिति के उदाहरण से इसे बेहतर समझा जा सकता है। राज्य पर नियंत्रणकारी प्रभाव अत्यन्त आवश्यक है क्यों कि इनसे बिना राज्य की नीति को दिशा देना संभव नहीं है एवं इसकी प्रगति राज्य की नीति पर निर्भर करती है।

शिक्षित होना भी समान रुप से अनिवार्य है। लेकिन यह हमेशा याद रखना चाहिए कि विभिन्न समुदायों के मध्य पद प्रतिष्ठा के संघर्ष में क्या चीज़ देखी जाती है, यह केवल शिक्षा नहीं बल्कि उच्च्य शिक्षा का होना है। उच्च्य शिक्षा से मेरा तात्पर्य ऐसी शिक्षा से है जो एक मराठा को एक विशिष्ट महत्त्व के पद पर आसीन होने के योग्य बनाये–एक ऐसा पद जिस से वह सर्वेक्षण, नियंत्रण करने के साथ–साथ अपने समुदाय के व्यक्तियों का अन्याय से बचाव कर सके। यहाँ पुनः ब्राह्मण समुदाय का मामला केन्द्र बिन्दु में है। ब्राह्मण समुदाय सभी विषमताओं एवं सभी विरोधों के विरुद्ध अपने आपको बनाये रखने में समर्थ है, यह इस तथ्य के कारण संभव है कि सभी प्रतिष्ठित पदों पर ब्राह्मण आसीन हैं।

यह मेरे अपने विचार हैं, मैं यह अवश्य कहूँगा कि मराठा मन्दिर अपने समुदाय

की सेवा नहीं कर रहा होगा, यदि यह अपनी ऊर्जा को प्राथमिक या माध्यमिक शिक्षा के विस्तार जैसे सरल कार्य पर व्यय करेगा। भारत में अधिकतर प्रान्तों की सरकारें प्राथमिक शिक्षा के विस्तार की योजना बना रही हैं एवं भारत में अधिकतर जनता संतोष एवं कृतज्ञता भी अनुभव कर रही है। मेरा मानना है कि प्राथमिक शिक्षा का प्रसार हमें हमेशा उपेक्षित रखेगा। इससे मुझ में किसी प्रकार उत्साह जागृत तो नहीं होगा बल्कि मैं इसे मोहपाश में फँसाना मानता हूँ। मैं यह भूल नहीं सकता – मुझे खेद है कि अधिकतर लोग इस बात से भी अवगत नहीं है कि भारत में जाति प्रथा, उच्च एवं निम्न जाति के मध्य अन्तर ब्राह्मण एवं गैर–ब्राह्मण के मध्य अन्तर सैकड़ों वर्षों से चला आ रहा है तथा कई सदियों तक रहने वाला है तथा यह भेद ब्राह्मण तथा गैर–ब्राह्मणों के मध्य शैक्षणिक असमानता के कारण है। इस असमानता को केवल प्राथमिकत शिक्षा के विस्तार द्वारा नहीं मिटाया जा सकता। ब्राह्मण एवं गैर–ब्राह्मण के मध्य सामाजिक स्थिति में असमानता को शिक्षा की केवल ऐसी नीति को अपना कर मिटाया जा सकता है, जिसमें कुछ गैर–ब्राह्मण उच्च शिक्षित होकर प्रतिष्ठित पदों पर बैठे ब्राह्मणों के एकाधिकार को समाप्त कर देंगे। मेरी राय है कि प्रतिष्ठित पदों के लिये योग्य बनाने के आवश्यक स्तर तक गैर–ब्राह्मणों को शिक्षित करने का कार्य राज्य द्वारा निष्पादित किया जाना चाहिये। यदि राज्य यह कार्य नहीं करता तो यह कार्य मराठा मन्दिर द्वारा किया जाना चाहिये।

यहाँ मैं एक और मुद्दे का वर्णन करना चाहूँगा। कुलीन वर्ग की तुलना में मध्यवर्गीय एवं निम्न वर्ग में कुछ विशेष त्रुटियाँ हैं तथा ये त्रुटियाँ समस्त संसार में उस विशेष वर्ग में पाई जाती हैं। मध्यवर्गीय के पास निम्न वर्ग की प्रगति को सहन करने की कुलीन वर्ग के समान उदारता नहीं है तथा इसके पास निम्न वर्ग का आदर्शवाद भी नहीं है। इससे मध्यवर्गीय को दोनों वर्गों का शत्रु बना दिया है। यह कुलीनता से उसकी उच्च हैसियत के कारण घृणा करता है। यह निम्न वर्गों से घृणा करता है क्योंकि वह नहीं चाहता कि निम्न वर्ग उन्नति कर उनके समान बन जाए। मराठा भारत में मध्यवर्गीय हैं एवं जिस किसी ने भी इनके साथ कार्य किया है, वे ये जानते होंगे कि उनमें उपरोक्त उल्लिखित त्रुटियाँ हैं। मराठों के पास उन्नति के दो मार्ग हैं: एक तो अपने से उच्च वर्ग में सम्मिलित हो जाएँ तथा निम्न श्रेणी को उस स्तर तक उन्नति करने से रोके या निम्न वर्ग में सम्मिलित हो जाएं तथा उस वर्ग को समाप्त कर दें जो इन दोनों वर्गों से उच्च है। एक समय था जब वे निम्न वर्ग में सम्मिलित हो गये थे। हाल ही में वे उच्च वर्ग में सम्मिलित हो गये हैं। मुझे यह कहना उचित नहीं लगता है कि उनके द्वारा अनुसरण किये जाने वाला कौन सा मार्ग उचित है। इसमें कोई संदेह नहीं है, कि दूसरों के साथ–साथ स्वयं मराठों का भाग्य उन दो मार्गों में से उनके द्वारा चयन किये जाने वाले मार्ग पर निर्भर करता है। उसे मराठों के नेताओं की बुद्धिमत्ता पर छोड़ दिया जाये जिसका अत्यधिक अभाव प्रकट होता है।

हस्ता./–
बी.आर. अम्बेडकर

---

1. मराठा मन्दिर का विशेषांक मार्च 23, 1947

(13)

तब तक न ठहरो जब तक अस्पृश्य पुरुषार्थ न प्राप्त कर ले

(डॉ. अम्बेडकर का जय भीम के पाठकों को संदेश)

"आपने मुझे अपने 55वें जन्म दिन पर आपके विशेषांक हेतु संदेश भेजने के लिये कहा है। यह एक दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य है कि भारत में राजनीतिक नेताओं को पैगम्बरों के समतुल्य माना जाता है। विदेशों में लोग अपने पैगम्बरों का जन्मदिन मनाते हैं। यह केवल भारत में ऐसा होता है जहाँ पैगम्बरों के साथ–साथ राजनेताओं दोनों का जन्मदिन मनाया जाता है। यह खेद की बात है कि यहाँ ऐसा होता है। व्यक्तिगत रूप में मुझे अपना जन्मदिन मनाना पसन्द नहीं है। मैं आवश्यकता से अधिक लोकतांत्रिक हूँ मैं व्यक्ति पूजा को प्रजातंत्र को पथभ्रष्ट करने वाला मानता हूँ। एक नेता के लिए श्रद्धा, प्यार, आदर एवं सम्मान, यदि वह उनका पात्र है, स्वीकार्य है तथा नेता एवं अनुयायियों, दोनों के लिए उचित है। लेकिन नेता की पूजा किसी भी रूप में स्वीकार्य नहीं है। यह दोनों का नैतिक पतन करती है। लेकिन मैं इसे सभी मुद्दों से अलग मानता हूँ। यदि एक बार नेता को पैगम्बर के समकक्ष मान लिया जाता है, तो वह अवश्य ही पैगम्बर की भूमिका निभायेगा तथा वह अपने अनुयायियों को पैगम्बर की भांति सन्देश देगा।

मैं अस्पृश्यों को क्या संदेश दे सकता हूँ? मैं उन्हें कोई संदेश नहीं दे सकता, लेकिन मैं उन्हें ग्रीक पुराण से एक कथा सुना सकता हूँ तथा नैतिकता के संबंध में बता सकता हूँ। यह कहानी ग्रीक देवी डीमीटर को संबोधित स्तुति–गान से संबंधित है। डीमीटर के स्तुति गान में बताया गया है कि महान् देवी कैसे अपनी पुत्री की खोज में भटकते हुए कीलियोज के महल में पहुँची। एक दीन–हीन धाय के वेश में किसी ने भी देवी को नहीं पहचाना एवं रानी मीटोनेरिया ने उसे अपने नवजात शिशु डीमोफून जो कालान्तर में टिप्लटोलमिस के नाम से जाना गया, की देखभाल का कार्य सौंप दिया।

प्रतिदिन सायं जब घर के सदस्य सो रहे होते तो डीमीटर डीमोफून को उसके

आरामदायक पालने से निर्दयतापूर्वक उठाकर बंद कमरे में ले जाती उसे नंगा कर अंगारों पर लिटा देती लेकिन वास्तविकता में प्रेम एवं इच्छा द्वारा प्रेरित होकर अन्ततः उसे देवत्व की स्थिति में लाना चाहती थी। बालक डीमोफून जलते कोयलों की तपन को सहन करता। उसने दिव्य परीक्षा से शक्ति संग्रहित की। उसमें अलौकिकता, अद्भुतशक्ति और चमत्कारिक गुण झलकने लगे। पौराणिक कथा के अनुसार मीटोनेरिया व्याकुल हो गई एवं एक दिन सायं अचानक कमरे में आ गई जहाँ पर यह प्रयोग चल रहा था एवं अपने भ्रामक भय से बच्चे को अलौकिकता प्रदान करने वाली देवी को एक और धकेलते हुए बच्चे को अंगारों से उठा लिया और इसके परिणामस्वरूप उसने बच्चे को बचा लिया परन्तु एक अलौकिक पुरुष और अन्ततः ईश्वर को खो दिया।

यह कहानी हमें क्या शिक्षा देती है? मेरे विचार से यह हमें शिक्षा देती है कि महानता केवल संघर्ष एवं बलिदान से ही प्राप्त की जा सकती है। अग्नि परीक्षाा से गुजरे बगैर ने तो पुरुषत्व एवं न ही देवत्व प्राप्त किया जा सकता है। अग्नि शुद्ध करती है, अग्नि शक्तिशाली बनाती है, यही कार्य संघर्ष एवं यातना देते हैं। उत्पीड़ित व्यक्ति तब तक महानता प्राप्त नहीं कर सकता, जब तक वह संघर्ष एवं यातना के लिए अपने आपको तैयार नहीं कर लेता। उसे अपने भविष्य के निर्माण हेतु अपने सुखों एवं वर्तमान की आवश्यकताओं का बलिदान करने हेतु सदैव तत्पर रहना चाहिये। बाइबल के अनुसार जीवन की दौड़ के लिए सभी को बुलाया जाता है लेकिन चुना केवल कुछ को ही जाता है। क्यों कारण सुस्पष्ट है? अधिकतर उत्पीड़ित जीवन की इस दौड़ में महानता प्राप्त करने में असफल रह जाते हैं क्योंकि न तो उन के पास साहस होता है एवं न ही दृढ़ निश्चय जिससे वह अपने भविष्य के लिए अपनी वर्तमान की खुशियों का परित्याग कर दें।

क्या इस कथा में दिये गये सन्देश से बेहतर एवं महान कोई संदेश हो सकता है? मैं एक बता सकता हूँ। मेरे विचार से अस्पृश्यों के लिये यह बेहतर एवं अत्यन्त उपयुक्त संदेश है। मैं उनके संघर्षों एवं भावनाओं से परिचित हूँ। मैं जानता हूँ कि स्वतंत्रता के अपने संघर्ष में उन्होंने मुझ से अधिक यातनायें सही हैं। इस सब के साथ, मैं उन्हें कोई अन्य संदेश नहीं दे सकता। मेरा सन्देश है संघर्ष एवं और अधिक संघर्ष, यातना तथा और अधिक यातना है। इन बलिदानों या यातनाओं की गणना किये बगैर–संघर्ष एवं केवल संघर्ष है जिससे उनको मुक्ति मिलेगी। उनको और कोई मुक्ति नहीं दिला सकता।

अस्पृश्यों को उन्नति एवं प्रतिरोध के लिये सामूहिक इच्छा शक्ति विकसित करन

होगी तथा अपने कार्य की प्रतिष्ठा में विश्वास रखने के साथ–साथ अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए दृढ़ निश्चय का विकास करना होगा। उनका कार्य इतना महान् है एवं उद्देश्य इतना उत्कृष्ट है इसलिए अस्पृश्य के रूप में उन्हें प्रार्थना में सम्मिलित होकर यह गाना चाहिये : "वे सौभाग्यशाली हैं जो उनके उत्थान के लिए कार्य करने के लिए जीवित हैं जिनके मध्य वे जन्में हैं। वे सौभाग्यशाली हैं जो अपनी युवावस्था, अपनी आत्मा और शरीर की शक्ति और अपना सर्वस्य दासता के विरोध के प्रति चलाये जा रहे अभियान में तेजी लाने की दिशा में न्यौछावर करने के लिए दृढ़–संकल्प हैं, सौभाग्यशाली हैं वे जिन्होंने निश्चय किया है कि अच्छा हो, बुरा हो, कड़कती धूप हो, अन्धड़–तूफान हो, यश मिले, अपयश मिले–वे तब तक नहीं रुकेंगे जब तक अस्पृश्यों को पूर्ण रूप से उनका पौरुष प्राप्त नहीं हो जाता।"

जय भीम, मद्रास, डॉ. अम्बेडकर के जन्मदिवस पर विशेषांक 13 अप्रैल, 1947

(14)

'बौद्ध धर्म का सार' की प्रस्तावना

तृतीय संस्करण

इस पुस्तक का लेखक प्रो. पी. लक्ष्मी नारासु था। जब कि मुझे इस पुस्तक का लोकार्पण करते हुए हार्दिक प्रसन्नता हुई। मैं मानता हूँ कि मैं लेखक से नहीं मिला था और उसके व्यक्तिगत जीवन के बारे में बहुत कम जानकारी थी। मैं उसके व्यक्तिगत जीवन तथा उसके साहित्यिक कार्य के बारे में जितना विवरण प्राप्त कर सका, उसे प्राप्त करने का प्रयास किया। इस कार्य हेतु मैंने स्रोत रूप में पट्टाभि सीतारमैया को चुना। वह प्रो. नारसु को व्यक्तिगत रूप से जानता था तथा उसका मित्र था। डा. पट्टाभि द्वारा दी गई जानकारी के आधार पर मैं प्रो. नारासु के जीवन के कुछ मुख्य तथ्यों को निम्न प्रकार से प्रस्तुत कर रहा हूँ।

प्रो. पी. लक्ष्मी नारासु, स्नातक (बी.ए.) पिछली शताब्दी का एक प्रतिभाशाली व्यक्ति था। वह मद्रास क्रिश्चियन कालेज से भौतिकी में स्नातक था। एक शिक्षक एवं निर्देशक होते हुए वे सन् 1897 तक सहायक प्राध्यापक (प्रोफेसर) के पद पर प्रतिष्ठित हो गये। भौतिकी के स्थाई प्राध्यापक प्रो. मोफेट के अवकाश पर होने के कारण उनकी अनुपस्थिति में इन्हें स्नातक की कक्षाओं हेतु भौतिकी एवं रसायन का पूर्ण प्रभार सौंप दिया। प्रो. मोफेट, जो अपरिपक्व युवक थे, को प्रो. नारासु के ऊपर प्रोफेसर के पद पर नियुक्त कर दिया गया जबकि प्रो. नारासु बेतार के क्षेत्र में भौतिकी में पहले से उपाधि प्राप्त कर चुके थे, यह उपाधि उन्होंने जीवन की प्रारम्भिक अवस्था में पिछली शताब्दी के नब्बे के दशक में प्राप्त कर ली थी। वर्ष 1898–99 के दौरान प्रो. नारासु जिनको उन दिनों इसी नाम से बुलाया जाता था, भौतिकी एवं रसायन हेतु स्नातक एवं स्नातकोत्तर परीक्षाओं के परीक्षक के रूप में कार्यरत थे। प्रो. नारासु विशेष रूप से डायनामिक में दक्ष थे, जब एक बार डायनामिक के प्रश्न की सत्यता पर परिवर्तन प्रश्न उठा तो एक गर्ममिजाज अंग्रेज प्रो. विल्सन, जो प्रेजीडेन्सी कालेज, मद्रास में रसायन का प्रोफेसर तथा भौतिकी एवं रसायन में परीक्षकों के बोर्ड का अध्यक्ष था, ने डाइनामिक की किसी समस्या के संबंध में प्रो. नारासु द्वारा अभिव्यक्त विचारों

की सत्यता संबंधी प्रश्न किया तो प्रो. नारासु ने उनकी चुनौती तत्काल स्वीकार कर ली। अंहकारी विल्सन ने पूछा, ''मि. नारासु क्या तुम मुझे पढ़ाना चाहते हो? जिसके प्रत्युत्तर में प्रो. नारासु ने समस्या को हल करने के उपरान्त प्रत्युत्तर दिया– ''मुझे प्रसन्नता है कि मैं डाइनामिक में प्रो. विल्सन को कुछ पढ़ा रहा हूँ''। यह घटना इसके घटित होने के पचास वर्ष के उपरान्त भी हमारे लिए रुचिकर है, क्योंकि यह दर्शाती है कि प्रो. नारासु एक रुढ़िभंजक थे। प्रो. नारासु एक समाज सुधारक थे। उसने अपनी अधिकतम सकर्थता के साथ जातियों के विरुद्ध लड़ाई की एवं 18वीं शताब्दी के नौवें दशक में हिन्दूधर्म में इसके अत्याचारों के विरुद्ध विद्रोह को बुलन्द किया। वह बौद्ध धर्म का महान् अनुयायी था एवं इस विषय पर हर सप्ताह व्याख्यान भी देते थे। वे अपने विद्यार्थियों में अत्यधिक लोकप्रिय थे जिनके ऊपर वह अपने जादुई व्यक्तित्व का प्रभाव डालते थे ताकि उनके दृष्टिकोण एवं दूरर्शिता में विस्तार हो। उनकी आत्म–सम्मान की भावना व्यक्तिगत व राष्ट्रीय दोनों ऊँचे दर्जे की थी तथा वे अहंकारी नहीं थे। अपने यूरोपियन सहकर्मियों के साथ स्व–श्रेष्ठता के बोध की भावना भी नहीं रखते थे, जिसको वे सदैव छात्रवृत्ति का अपना देय देने को तत्पर रहते थे, लेकिन उनसे बेइज्जत नहीं होना चाहते थे।

प्रो. नारासु ने शिक्षाविद् के रूप में सामान्य एवं व्यापक रुप से ख्याति प्राप्त करने में अधिक समय नहीं लिया, कि वह पण्डिचापा कालेज के प्रधानाध्यापक पद पर पदोन्नत कर दिये गये।

प्रो. नारासु एक उच्च जन–भावना संजोये नागरिक थे जिन्होंने ''राष्ट्रीय निधि एवं औद्योगिक संघ'' के गठन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इसके अंतर्गत छुट–पुट दान एकत्रित किया जाता था, इस राशि से उच्च तकनीकी शिक्षा के लिए विदेश जाने के इच्छुक विद्यार्थियों को सहायता प्रदान की जाती थी। जापान एक ऐसा देश था जो युवाओं को आकर्षित करता था और यह उनकी महत्त्वाकांक्षा थी, कि लघु उद्योगों एवं उत्पादनकर्ताओं की तकनीकी को सीखा जाए विशेष रूप से साबुन बनाना, ईनेमल एवं पेंट उत्पादन एवं इसी प्रकार के अन्य उत्पाद। लेकिन प्रोफेसर का एक दोष यह था कि वह समाज सुधारक थे। बौद्ध धर्म में उन्होंने आत्मशक्ति प्राप्त की। वह जाति प्रथा, छोटी उम्र में विवाह, विधवा विवाह निषेध जैसी बुराइयों को महसूस करने वाले प्रारंभिक व्यक्तियों में से एक थे एवं उस समय इनको सुधार क्षेत्र में कार्य के लिए पारितोषिक हेतु चुना गया था क्योंकि इनका एक भाई एक विधवा से विवाह कर वास्तविक रूप से समाज सुधारक बन गया था। यह वह युग था, जब ईसाई मिशनरी न केवल समाज सुधार आन्दोलन का अनुमोदन कर रहे थे बल्कि इसका ज़ोरदार समर्थन भी कर रहे थे एवं रूढ़िवादी हिन्दुवाद एवं ईसाई मत में परिवर्तन हेतु समझौते

का मार्ग अपना रहे थे। इनके दृष्टिकोण में परिवर्तन करने में ज्यादा समय नहीं लगा एवं ऐसे प्रगतिशील आन्दोलनों को धर्मान्तरण की वास्तविक बाधा के रूप में देखा जाने लगा। प्रो. नारासु 19वीं शताब्दी का नायक था जिसने देशप्रेम के उत्साह से यूरोपियन अहंकार, रूढ़िभंजक जोश के साथ रूढ़िवादी हिन्दुवाद, राष्ट्रवादी दृष्टिकोण से वाममार्गी ब्राह्मणों और तर्कवादी दृष्टिकोण से आक्रमक ईसाई मत से संघर्ष महान् बुद्ध की शिक्षाओं में अपने दृढ़–विश्वास से प्रेरित होकर किया।

वर्तमान में भारत के विभिन्न भागों से अधिकतर व्यक्ति मुझे बौद्ध धर्म पर एक अच्छी पुस्तक की संस्तुति करने के लिये कह रहे हैं। उनकी इच्छाओं के प्रत्युत्तर में मुझे प्रो. नारासु की पुस्तक का सुझाव देने में कोई संकोच नहीं हो रहा है। मेरे विचारानुसार अब तक उपलब्ध सभी पुस्तकों में से बौद्ध धर्म पर यह एक सर्वोत्तम पुस्तक है। दुर्भाग्यवश यह पुस्तक काफी से उपलब्ध नहीं है। अतः मैंने इसे पुनर्मुद्रित कराने का निर्णय लिया ताकि उन व्यक्तियों की इच्छा पूर्ण हो जिनकी बौद्ध धर्म की शिक्षाओं में रुचि है, ताकि उनके हाथों में ऐसी पाठ्यपुस्तक हो जो इसकी विस्तृत व्याख्या में सुबोध होने के साथ–साथ प्रतिपदित रूप से पूर्ण है। मैं पुरानी फर्म वरदाचारी एण्ड कंपनी, मद्रास के प्रतिनिधियों का आभार अवश्य व्यक्त करता हूँ जिनके पास पुस्तक के पुनर्मुद्रण की अनुमति हेतु मूल प्रकाशन का स्वत्वाधिकार है।

इस पुनर्मुद्रण की प्रस्तावना लिखने में मेरा आशय कुछ आलोचनाओं का उत्तर देने में है, जो पूर्व एवं वर्तमान में विरोधियों द्वारा बुद्ध की शिक्षाओं के प्रति की गई थी। मैंने इस आशय को दो कारणों से छोड़ दिया है। सबसे पहले तो मेरा स्वास्थ्य मुझे इस कार्य को करने की अनुमति नहीं दे रहा है। दूसरा, मैं स्वयं बुद्ध के जीवन पर कार्य कर रहा हूँ एवं मेरा विचार है कि मैं इस मामले में किसी अन्य व्यक्ति की पुस्तक की प्रस्तावना की तुलना में अपनी पुस्तक में इस मामले का समाधान अधिक न्यायोचित रूप से कर सकूँगा। मैंने इस निर्णय को विशेष रूप से इसलिये लिया है क्योंकि मैं आश्वस्त हूँ, कि प्रो. नारासु की पुस्तक के पाठक किसी भी प्रकार से मेरे इस निर्णय से निराश नहीं होंगे।

बी.आर. अम्बेडकर

राजगृह
हिन्दू कालोनी, दादर
बम्बई–14

---

10 मार्च 1948 (प्रथम संस्करण 1907, द्वितीय संस्करण 1912) टक्कर एण्ड कम्पनी लि. रामपार्ट रो, बम्बई द्वारा तृतीय संस्करण

(15)

भारत की प्राचीन घटनाओं ने निराशावाद को जन्म दिया राष्ट्र रक्षा के वैदिक साधन 'स्वामी वेदानन्द तीर्थ द्वारा'

प्रस्तावना

मुझे स्वामी वेदानन्द की पुस्तक की प्रस्तावना लिखने हेतु कहा गया है। कार्य के दबाव में कारण मैंने लेखक के अनुरोध को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। लेकिन वह मुझसे कुछ शब्द लिखने का आग्रह कर रहे हैं। तो मैं ऐसा करने हेतु सहमत हो गया। लेखक का तर्क यह है कि स्वतंत्र भारत को वेदों द्वारा जो धार्मिक सिद्धान्त की शिक्षा दी गई है उसे धर्म के रूप में स्वीकार कर लेना चाहिए। ये सिद्धान्त वेदों में अलग–अलग स्थानों पर उल्लिखित हैं एवं इनको इस पुस्तक में एक स्थान पर संग्रहित किया गया है। मैं नहीं जानता कि यह पुस्तक नये भारत का धार्मिक सिद्धान्त बन जायेगा। लेकिन मैं यह कह सकता हूँ कि यह पुस्तक ने केवल प्राचीन आर्यों की धार्मिक पुस्तकों में से लिये गये कथनों को एक उत्कृष्ट संग्रह है, बल्कि इनमें प्राचीन आर्यों के मध्य प्रचलित विचारों एवं गतिशीलता के उत्साह को हृदयग्राही ढंग से प्रस्तुत किया गया है। पुस्तक में जो कुछ दर्शाया गया है उसमें ऐसा कुछ नहीं बताया गया है कि प्राचीन आर्यों में निराशावाद प्रचलित था जो आधुनिक हिन्दुओं में व्याप्त है। यह पुस्तक और अधिक उच्च मूल्यों की होती यदि लेखक ने इस बात पर विचार किया होता कि भारत के प्राचीन काल की स्वीकारात्मकता एवं आशावाद ने कालान्तर में निराशावाद को क्यों जन्म दिया। मैं आशा करता हूँ कि लेखक इस समस्या पर बाद में शोध करेगा। फिलहाल यह हमारी जानकारी के लिये कोई छोटा योगदान नहीं है यह सैद्धान्तिक विश्व एक मायावी है, एक नया आविष्कार है। इस दृष्टिकोण से मैं इस पुस्तक की सराहना करता हूँ।

बी.आर. अम्बेडकर

स्वामी वेदानन्द तीर्थ (1892–1956) राष्ट्र रक्षा के वैदिक साधन–1948

(16)

पावती शब्द का अर्थ

अनुच्छेद 198 के खण्ड (2) में प्रयोग किये गये शब्द पावती के अर्थ पर विचार करने का मुद्‌दा है। क्या इसका अर्थ विधान परिषद् के सचिवालय या विधान परिषद् द्वारा पावती है? वस्तुतः अन्तर महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह परिसीमन अवधि, जो वित्त विधेयक के लिए चौदह दिन है, के प्रारम्भिक समय को निश्चित करती है। मामला भारत सरकार को अपना मत व्यक्त करने के लिए संप्रेषित किया गया था क्योकि आर.एल.ए. एवं बिहार के महाधिवक्ता के मतों में भिन्नता थी, आर.एल.ए. पहली एवं महाधिवक्ता दूसरी व्याख्या का समर्थन कर रहे थेः—

आर.एल.ए. अपने तीन तर्कों पर अवलम्बित हैं :—

1. अनुच्छेद 198 की धारा (2) के अनुसार इसकी पावती से चौदह दिन
2. अनुच्छेद 197 की धारा (2)(ख) तथा अनुच्छेद 198 की धारा (2) प्रयुक्त में भाषा में अन्तर है
3. यदि बिहार के महाधिवक्ता के आशय को यदि वैध मान लिया जाए तो वित्त विधेयक के पास होने में विलंब संभव है।

आर.एल.ए. के प्रथम तर्क पर विचार करने पर मैं पाता हूँ कि उसके द्वारा निम्नलिखित मुद्‌दों को नोट न करने के कारण उसका तर्क अनुपयोगी है :

(1) आर.एल.ए. ने उसके द्वारा बिल की प्राप्ति'' शब्द अनुच्छेद 198 की धारा 2 से लिए हैं और अपना तर्क तैयार किया है। उसका तर्क है कि 'इसकी प्राप्ति' शब्दों के प्रयोग से संविधान का आशय केवल उच्च सदन के सचिवालय द्वारा सम्प्रेषित पावती प्रदान करना है न कि सदन द्वारा वास्तविक रूप से प्राप्त करना है। परन्तु विधान परिषद् को उसकी अभिशंसा के लिए सम्प्रेषित जो धारा (2) में भी उल्लेखित है, शब्दों का पूरी तरह से प्रयोग करने में चूक गया है जो मतानुसार धारा के मुख्य सांकेतिक शब्द हैं। इसकी पावती शब्द अपने आप में बिल्कुल अनुचित है। उनका अर्थ विधान परिषद् को उसकी अभिशंसा के लिए सम्प्रेषित शब्दों के साथ उन्हें पढ़ने से निकलता है। इस प्रकार पढ़ने से इसका अर्थ सचिवालय द्वारा पावती से नहीं हो सकता।

(2) आर.एल.ए. ने धारा (3) एवं (4) के प्रावधानों पर विचार नहीं किया है। वे परिणाम की औचित्यता के लिए धारा 5 पर अवलम्बित है। परन्तु वह भूल गये हैं कि धारा (5) तभी प्रभावी होती है जब अनुच्छेद 198 के धारा (3) एवं (4) में निर्धारित शर्तों पर विधान परिषद् द्वारा विचार किया गया हो। धारा (3) व (4) में अपेक्षित है कि परिषद् का अधिवेशन चल रहा हो और बिल पर विचार करने का अवसर प्राप्त हो। आर.एल.ए. द्वारा अपनाया गया गठन का नियम निर्माण का एक ठोस नियम नहीं है। इस मामले से सम्बद्ध सही नियम 'एक्स बाइसीरस एक्टस' के नाम का नियम है। इस पर 'कोक' से कम के व्यक्ति को पारंगतता नहीं है। कोक ने कहा है 'संसद' के अधिनियम का अच्छा व्याख्याता वही हो सकता है जो सभी मुद्दों का एक साथ निर्माण करें और न कि किसी एक भाग अपने आप निर्माण करने के लिए छोड़ दें। यह अधिनियम की सबसे बड़ी स्वाभाविक एवं वास्तविक व्याख्या है कि एक अधिनियम के किसी एक भाग का अर्थ उसी अधिनियम के दूसरे भाग से लगाना ही निर्माणकर्त्ता के अर्थ की सर्वोत्तम व्याख्या करता है (क्रेज के पृष्ठ 95 पर उदधृत)

आर.एल.एल. का दूसरा आशय अनुच्छेद 197 की धारा (2)(ख) और अनुच्छेद 198 की धारा (2) में भाषा के अन्तर पर आधारित है। यह सत्य है कि भाषा में अन्तर है। यह भी सत्य है कि इच्छुक पार्टियों द्वारा भाषा में अंतर से आशय के समर्थन पर तर्क करने पर अवलम्बित नहीं रहा जा सकता कि दोनों मामलों में आशय की भिन्नता है। आर.एल.ए. के तर्क पर मैं निम्नलिखित पर तर्क करना चाहता हूँ :

अनुच्छेद 197 की धारा (2) (ख) की मूल भाषा अनुच्छेद 198 की धारा (2) के समान थी। संविधान सभा को अनुच्छेद 197 के कुल चार प्रारूप प्रस्तुत किये गये थे। पहले तीन में अनुच्छेद 198 की भाषा समान थी। मैंने इन तथ्यों को संविधान सभा के रिकार्ड से सुनिश्चित किया है। इस परिस्थिति में अनेक प्रश्न खड़े होते हैं। अनुच्छेद 198 की भाषा तब क्यों नहीं बदली गई जब अनुच्छेद 197 की भाषा बदली गई थी? अनुच्छेद 197 (2)(ख) की भाषा बदलने का क्या कारण था? क्या भाषा इसलिए बदली गई कि अनुच्छेद (2)(ख) में अन्तर्निहित मूल आशय में परिवर्तन किया गया था? या ऐसा माना गया कि आशय वही था परन्तु यह अनुभव किया गया कि नई भाषा पुराने एवं मूल आशय को बेहतर ढंग से व्यक्त करेगी? इन प्रश्नों का कोई निश्चित उत्तर देना मुश्किल है? जहाँ तक मुझे याद है कि हमने अनुच्छेद 197 की भाषा में परिवर्तन इसलिए नहीं किया था कि हमारा मूल आशय बदल जाये परन्तु चूँकि यह अनुभव किया गया था कि परिवर्तित भाषा हमारे मूल आशय को बेहतर ढंग से अभिव्यक्त करेगी। किसी भी मामले में भाषा में अन्तर पर आधारित तर्क पूरी तरह से निर्णित नहीं होंगे।

मैं मानता हूँ कि अति सिद्धान्तवादी भाषा के अन्तर पर आधारित तर्क का हल नहीं हो सकता। इसके लिए यह संभव है कि हम कहें कि अनुच्छेद 198 में आपका आशय 197 (2) (ख) के समान है तो आप इसका अनुसरण करते हुए इसकी भाषा में परिवर्तन कर दें जबकि आपने अनुच्छेद 197 (2) की भाषा में परिवर्तन किया है और दोनों की भाषा समान कर दें? इस तर्क के लिए मेरा उत्तर बहुत साधारण है। यह तर्क करना गलत है कि प्रत्येक मामले में भाषा की भिन्नता का अर्थ आशयों की भिन्नता है। इसके लिए पूरी तरह से स्वीकार्य अभिव्यक्ति है कि आशय वही हो सकता है चाहे उसे भिन्न शब्दों में अभिव्यक्त किया जाए। इस संबंध में मैं 'क्रे' के अधिनियम पर निम्नलिखित सार उद्धत करना चाहूँगा।

जैसाकि न्यायिक समिति ने केसमेंट बनाम फाल्टन (i) में कहा है परन्तु यद्यपि जैसा कि कहा गया है यह परिकल्पना सामान्यता की जाती है और निश्चित रूप से इच्छित की जाती है "कि अधिनियम बनाते समय हमेशा समान शब्दों का समान अर्थों के लिए प्रयोग किया जाना चाहिए", फिर भी विधान में कई उदाहरण मिल जाएँगे कि किसी अर्थ को सम्प्रेषित करने के उद्देश्य से प्रयोग की गई भाषा में परिवर्तन किये गये परन्तु परिवर्तित भाषा से मूल आशय में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। आर.वी. बटले (को) में ब्लैक बर्न जे ने कहा है कि अधिनियम के शब्दों में परिवर्तन करें परन्तु प्रत्यक्षतया ऐसा कोई संदेह नहीं होना चाहिए जिससे यह लगे कि अर्थ परिवर्तन का कोई आशय है। लेकिन हम पाते हैं कि वास्तव में ऐसा जरूरी नहीं होता है जैसा कि ब्लैक बर्न जे ने हेडली बनाम पर्क (1) में अवलोकित किया है कि संसद, विधानमण्डल के अधिनियम तैयार करते समय हम देखते हैं कि शैली के अनुकूल अधिनियम सुधार करने तथा एक ही शब्द का बार–बार प्रयोग करने से बचने के लिए हम शब्दों को अक्सर बदल देते हैं। "ऐसे शब्दों का प्रयोग करने का आशय अर्थ में परिवर्तन करना नहीं है। इस प्रकार कि राइट (एम) में मेलिश एल.जे. ने कहा है कि निरस्त दिवालियापन अधिनियम, 1849 में प्रयोग भाषा से दिवालियापन अधिनियम, 1869 में परिवर्तन के संबंध में जिस किसी को भी वर्तमान अधिनियम की समझ है वह जानता है कि कई मामलों में पूर्व अधिनियमों की भाषा में परिवर्तन किया गया है जबकि कानून में कोई परिवर्तन करने का आशय नहीं हो सकता। महाधिवक्ता बी. ब्राडलाफ में यह तर्क था कि संसदीय शपथ अधिनियम, 1866, में अभिव्यक्ति शपथ Shall be made में made शब्द की व्याख्या की जानी चाहिए क्योंकि यह इसका अर्थ 'ली' शब्द से भिन्न है। परन्तु एम.आर. ब्रेट ने कहा, प्रस्तावना को पढ़ने एवं जिस ढंग से शब्द का प्रयोग किया गया है उससे मुझे ऐसा लगा कि 'Made' शब्द का निश्चित रूप से वही अर्थ है जो ली का है।

मोनटी बनाम मेकगेविन में महामहिम कोटनहेम ने कहा कि जब संसद किसी एक विशिष्ट मामले में कार्यवाही की विशिष्ट पद्धति निश्चित करती है और किसी अन्य मामले में ऐसी पद्धति निश्चित नहीं की जाती तो सामान्य नियम के अनुसार यह ऐसा नहीं माना जाना चाहिए कि ऐसा अधिनियम तैयारकर्ताओं की उपेक्षा एवं लापरवाही से हुआ है। "परन्तु एम.आर. ब्रेट ने नोटज बनाम जेकसन (पी) के मामले में कहा है कि जो व्यक्ति संसद के अधिनियम तैयार करते हैं कभी–कभी मुहावरों का प्रयोग करते हैं। जो अन्य कोई प्रयोग नहीं करता। इसके परिणामस्वरूप हमें अधिनियम में ऐसी अभिव्यक्तियाँ मिलती हैं जिन को पढ़ कर हम यह स्वीकार करने के लिए बाध्य हो जाते हैं कि इनका प्रयोग किसी विशिष्ट उद्‌देश्य के लिए नहीं किया गया बल्कि तैयारकर्त्ता के बेढंगेपन के परिणामस्वरूप ऐसा हो गया है। "इस प्रकार आर. बनाम बुटल (क्यू) में प्रश्न यह था कि जब 26 व 28 विक्ट.सी. 29, एस 7 अधिनियमित किये गये तब प्रश्न यह था कि "कई आयुक्तों द्वारा पूछे गये प्रश्नों पर किसी व्यक्ति ने उत्तर के रूप में कोई अभिव्यक्ति नहीं की, सिवाय झूठी गवाही के लिए दोषारोपण के मामलों में, जिसे किसी कार्यवाही में साक्ष्य रूप से स्वीकार किया जा सके। अभिव्यक्ति 'झूठी गवाही के लिए दोषारोपण' सामान्यता मिथ्या शपथ पर या आयुक्तों के समक्ष ली गई मिथ्या शपथ पर लागू होती है। ऐसा लगता है कि पूर्व अधिनियम में यही प्रावधान था परन्तु उस अधिनियम में प्रयोग अभिव्यक्ति यह थी "ऐसे उत्तरों में दोषारोपण के लिए झूठी गवाही"। परिणामस्वरूप यह तर्क दिया गया कि विधानमण्डल शब्दों के इस परिवर्तन से अर्थ परिवर्तन चाहता था। लेकिन यह स्वीकार किया गया कि बाद वाले अधिनियम में प्रयोग की गई अभिव्यक्ति के अर्थ से निश्चित रूप से सामान्य कानून के एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त को समाप्त कर देगा अतः यह आवश्यक रूप से मान लिया जाना चाहिए कि पूर्व अधिनियम में प्रयोग की गई भाषा को बदलने का कोई कारण नहीं था और इसके लिए सी.बी. कैले ने कहा है "जिस किसी ने भी अधिनियम को तैयार किया है उसने अव्यवस्थित रूप से कार्य किया है और उसे इसे तैयार करते समय बहुत सावधानी रखनी चाहिए थी।" यदि इससे यह भी प्रतीत हो कि पूर्व अधिनियम में शब्द अधिक हैं तो इन शब्दों को आगामी अधिनियम से हटा दिया जाये परन्तु विधानमण्डल का कानून को बदलने का कोई आशय न रहा हो। री वुड (आर) में एल.जे. मेलिश ने कहा है "मुझे ऐसा लगता है कि इस (बाद वाले) अधिनियम के निर्माताओं ने सोचा हो कि शब्दों को हटा देने से सुधार होगा क्योंकि मामलों में ऐसे अभिप्राय क्यों प्रस्तुत किये जाएँ। ऐसे अभिप्रायों को सिद्ध करना आवश्यक न हो, तब शब्द आधिक्य एवं भ्रामक लगते हैं और मेरा विचार है कि उन्होंने कानून को किसी रूप में परिवर्तित किये बिना इन शब्दों को उचित रूप से हटाया हो।" उनके तीसरे आशय के संबंध में मैं यह

अवश्य कहूँगा कि मैं इससे पूर्णतया सहमत नहीं हूँ। यहाँ विलम्ब के दो कारण हैं जिन्हें जानना चाहिए। परिषद् द्वारा बिल प्राप्ति में विलम्ब किया गया यद्यपि सत्र चल रहा था। परिषद् द्वारा विलम्ब किया गया जब बिल सम्प्रेषित किया जा रहा था सत्र नहीं चल रहा था। परिषद् में चौदह दिन से अधिक का विलम्ब नहीं चल रहा था। परिषद् में चौदह दिन से अधिक का विलम्ब नहीं हो सकता और न ही सदन को कोई हानि हो सकती है यदि विलम्ब होता है। इसके लिए जुर्माना है जिसका प्रावधान धारा (5) में है। जब बिल सम्प्रेषित किया जाता है और परिषद् का सत्र न चल रहा हो तो विलम्ब का कारण परिषद् की गलती नहीं हो सकता। यदि वे धारा (5) का लाभ उठाना चाहें तो उन्हें परिषद् का सत्र तत्काल बुलाना चाहिए और उसे चौदह दिन का समय देकर विलम्ब को टाल दिया जाये। यह उनके अधिकार क्षेत्र में है। परन्तु वे इसे दोनों तरह से नहीं करवा सकते हैं। उन्हें यह स्वीकृति प्रदान करना कि परिषद् का सत्र बुलाये या न बुलाये यह उनके विवेक पर और इसी के साथ उन्हें धारा (5) का लाभ उठाने की स्वीकृति प्रदान करने से उन्हें ने केवल विधानमण्डल के एक सदन को धोखा देने की स्वतंत्रता मिलेगी बल्कि संविधान के साथ धोखा करने का भी अवसर मिलेगा। यह बिल्कुल वैसा ही है जो बिहार सरकार ने किया है। जब वित्त विधेयक उच्च सदन में सम्प्रेषित कर दिया गया था तो सरकार का यह दायित्व था कि परिषद् का सत्र बुलाये और यह मामला पूर्णतया और केवल उनके अधिकार क्षेत्र में था। यदि ऐसा नहीं किया जाता तो अनुच्छेद 198 की धारा (5) का लाभ नहीं लिया जा सकता। इन कारणों से मैं विद्वान महाधिवक्ता, बिहार के विचारों से सहमत हूँ और विद्वान आर.एल.ए. के विचारों को रद्द करता हूँ। मैं उनका सम्मान करता हूँ। अन्यथा मैंने तुरन्त ही इसे रद्द कर दिया होता। मुझे यह मुद्दा स्पष्ट रूप में समझ आ चुका है। यह इतनी साधारण सी बात है कि जिस व्यक्ति के पास सामान्य ज्ञान से अधिक कुछ नहीं है वह भी संविधान निर्माताओं के आशय को समझ गया होगा। बिहार सरकार ने जो कुछ किया है वह एक पूर्व–निर्धारित धोखेबाजी से किया गया है। मैं इस मामले से इंकार करता हूँ कि इसने जो कुछ किया है वह समझौता करने की इच्छा से किया है। मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं हो रहा है कि बिहार सरकार धोखे–धड़ी के न्यूनतम स्तर तक गिर गई है। मैंने इसे इतनी गंभीरता से लिया है कि मुझे इस बात का बिल्कुल भी दुःख नहीं होगा यदि इस संबंध में मेरी भावनायें बिहार सरकार को संप्रेषित कर दी जाती हैं।

इसे समाप्त करने से पूर्व मैं एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ जो केवल विधि विभाग के विचारणीय है। हमें राज्य सरकार से संविधान से उत्पन्न विवादास्पद मुद्दों पर परामर्श देने के लिए पत्र प्राप्त हो रहे हैं। इन पत्रों पर विचार कर अपना परामर्श

दे रहे हैं। इस परामर्श का अनुपालन किया जाता है तो यह संवैधानिक व्यावहारिक हिस्सा बन जायेगा। मुझे आश्चर्य है कि क्या हम ऐसा बुद्धिमत्ता से कर रहे हैं। क्या ये बेहतर नहीं होगा कि पार्टियाँ जैसा करना चाहें, उन्हें वैसा करने दिया जाए और उनके मामले को न्यायालय में ले जाया जाए जैसा कि अधिनियम कानून पृ.(10) द्वारा इंगित किया गया है कि अधिनियम की व्याख्या में व्यावहारिकता एक महत्त्वपूर्ण तत्व होता है। हमारे अपने परामर्श से हमने व्यावहारिकता को स्थापित और इसके पश्चात् किसी विशिष्ट व्याख्या का समर्थन किया है जो कि इसकी अनुपस्थिति में समर्थनीय नहीं हो सकता है और यदि हमारा परामर्श गलत है तो हम गलत व्याख्या के लिए उत्तरदायी होंगे। शायद यह काफी लम्बा विचारणीय मुद्‌दा है और मैं अनुभव करता हूँ कि इसे बन्द करना कठिन होगा। इसके साथ ही यह याद रखना होगा कि इन मामलों में हमारा उत्तरदायित्व कितना बड़ा है।

बी.आर. अम्बेडकर

इस लेख के संबंध में यह उल्लेखनीय है कि तत्कालीन विशेष कार्य अधिकारी, डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर स्रोत सामग्री प्रकाशन समिति, ने पाया कि वर्ष 1979 में महाराष्ट्र राज्य के महा–प्रशासक से सरकार द्वारा प्राप्त रिकार्ड में दस्तावेज मिल गये हैं। यह टिप्पण डॉ. अम्बेडकर द्वारा हस्ताक्षरित है।

सम्पादक

(17)

बुद्ध एवं उसके धर्म का भविष्य

धर्म के अनेक प्रवर्तकों में से केवल चार ऐसे हैं जिनके धर्म ने विश्व को प्रारम्भ में संचालित किया परन्तु अभी भी विशाल जन–समुदाय पर अपना प्रभुत्व जमाये हुए हैं। ये हैं बुद्ध, ईसा, मोहम्मद एवं कृष्ण। इन चारों के व्यक्तित्व और अपने–अपने धर्मों के प्रचार से जो छवि उन्होंने प्राप्त की है, उसमें एक ओर बुद्ध तथा शेष को दूसरी ओर रखकर तुलना करने पर कई अन्तर झलकते हैं, जो महत्त्वपूर्ण हैं।

पहला मुद्दा जो बुद्ध को शेष से अलग करता है वह है उसका आत्म त्याग। सम्पूर्ण बाइबिल में ईसा इस बात पर अडिग रहे कि वह ईश्वर का बेटा है जो ईश्वर के साम्राज्य में प्रवेश करना चाहेगा, वह असफल होगा यदि वे उसे ईश्वर के बेटे के रूप में स्वीकार नहीं करेंगे। मोहम्मद एक कदम और आगे बढ़ गये। ईसा की तरह उन्होंने भी दावा किया कि वह धरती पर ईश्वर के दूत हैं। परन्तु वह इस बात पर भी अडिग रहे कि वह अन्तिम दूत हैं। इस आधार पर उन्होंने घोषणा की कि यदि कोई मोक्ष चाहता है तो वह न केवल मुझे ईश्वर का दूत स्वीकार करे बल्कि यह भी स्वीकार करे कि मैं ईश्वर का अन्तिम दूत हूँ। कृष्ण दोनों मोहम्मद एवं ईसा से एक कदम और आगे बढ़ गये। वह केवल ईश्वर का अन्तिम दूत होने या ईश्वर का दूत होने से ही सन्तुष्ट नहीं हुए। वह अपने आपको ईश्वर कहने से भी संतुष्ट नहीं हुए। उन्होंने दावा किया कि वे 'परमेश्वर' हैं या जैसे कि उनके अनुयायी उनको 'देवाधिदेव' देवताओं के भी देवता मानते हैं। बुद्ध ने कभी भी अपने लिए किसी ऐसी हैसियत की अनुचित माँग नहीं की। उसने एक मनुष्य के पुत्र के रूप में जन्म लिया और सामान्य जन बने रहने पर संतुष्ट थे और एक सामान्य जन के रूप में अपने धार्मिक सिद्धान्तों का प्रचार किया। उन्होंने कभी किसी अलौकिक पुरुष या अलौकिक शक्ति का दावा नहीं किया और न ही अपनी अलौकिक शक्ति को सिद्ध करने के लिए चमत्कार किया। बुद्ध ने मार्गदर्शक और मोक्षदाता के मध्य एक स्पष्ट अन्तर किया है। ईसा, मोहम्मद एवं कृष्ण ने अपने लिए मोक्ष का दावा किया है। बुद्ध मार्गदर्शक की भूमिका निभाने में ही संतुष्ट थे। चारों धार्मिक गुरुओं में और भी अन्तर है। ईसा एवं मोहम्मद दोनों ने दावा किया है कि वे जो शिक्षा दे

रहे हैं वे ईश्वर के शब्द हैं चूँकि ईश्वर के शब्द होने के कारण वे जो शिक्षा दे रहे हैं वह अचूक है और इस पर प्रश्न नहीं किया जा सकता। कृष्ण ने जो शिक्षा दी है वह ईश्वर के शब्द, ईश्वर द्वारा उच्चारित शब्द हैं इसलिए ये आदर्श एवं अन्तिम शब्द हैं जिनका अचूकता के संबंध में प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। बुद्ध ने जैसी भी शिक्षा दी, उसकी ऐसी अचूकता का कभी दावा नहीं किया। 'महापरिनिभाना सुत्त' मैं उन्होंने आनंद से कहा था कि उसका धर्म कारण एवं अनुभव पर आधारित है और उसके अनुयायी उसकी शिक्षा को केवल सही एवं बाध्यकारी मानकर स्वीकार न करें क्योंकि ये उससे उदभूत है। कारण एवं अनुभव पर आधारित होने के कारण वे उसकी किसी शिक्षा में संशोधन या उसे त्यागने के लिए स्वतंत्र हैं यदि यह पाया जाता है कि यह किसी समय और किन्हीं परिस्थितियों में ये लागू नहीं होती। उनकी कामना है कि उनका धर्म पूर्व की मृत मान्यताओं के साथ उलझा न रहे। वह चाहते थे कि यह हर समय सदाबहार एवं उपयोगी रहे। यही कारण था कि उन्होंने अपने अनुयायिओं को यह स्वतंत्रता दी हुई थी कि समय व मामले की माँग एवं अपेक्षाओं के अनुसार इसमें सुधार करने के लिए स्वतंत्र हैं। किसी अन्य धर्म–गुरु ने ऐसा साहस नहीं दिखाया है। वे संशोधन की स्वीकृति देने से डरते रहे। चूँकि सुधार की स्वतंत्रता का प्रयोग उस ढांचे को गिराने में भी किया जा सकता है जिसका उन्होंने पोषण किया है। बुद्ध को ऐसा कोई भय नहीं था। वह अपनी नींव से आश्वस्त थे। वे जानते थे कि घोर रूढ़ि भंजक भी उसके धर्म के अंतरतम् को नष्ट करने में समर्थ नहीं होगा।

II.

बुद्ध की ऐसी अद्वितीय स्थिति है। उसके धर्म के संबंध में क्या है? इसकी तुलना इसके प्रतिद्वन्द्वियों द्वारा स्थापित धर्म से कैसे की जाए? हम पहले बौद्ध धर्म की हिन्दूवाद से तुलना करते हैं। थोड़ा–सा स्थान उपलब्ध होने के कारण तुलना कुछ महत्त्वपूर्ण मुद्दों वास्तव में केवल दो तक सीमित होनी चाहिए।

हिन्दूवाद एक धर्म है जो सदाचार पर स्थापित नहीं किया गया। जो भी सदाचार हिन्दूवाद में है वह उसका अभिन्न अंग नहीं है। यह धर्म में सम्मिलित नहीं है। यह एक अलग ताकत है जो सामाजिक आवश्यकताओं द्वारा संरक्षित है न कि हिन्दू धर्म की हिदायतों पर संरक्षित है। बुद्ध का धर्म सदाचार है। यह धर्म में सम्मिलित है। बुद्ध का कोई धर्म नहीं है यदि उसमें सदाचार नहीं है। यह सत्य है कि बुद्ध धर्म में कोई देवता नहीं है। देवता के स्थान पर सदाचार है। अन्य धर्मों में जो स्थान देवता का है बुद्ध धर्म में वही स्थान सदाचार का है।

यह बहुत ही कम मान्य है कि उसने 'धम्म' शब्द का अत्यन्त क्रान्तिकारी अर्थ प्रतिपादित किया है। 'धर्म' शब्द के वैदिक अर्थ में किसी भी रूप में सदाचार का संकेत नहीं मिलता है। ब्राह्मणों द्वारा उच्चारित एवं 'यामिनी' के पूर्ण–मीमांसा' में प्रतिपादित 'धर्म' का अर्थ कुछ कार्यों के प्रदर्शन या रोमन शब्दावली में धार्मिक कर्मकाण्डों के लिए प्रयोग शब्द से है। ब्राह्मणों के लिए धर्म का अर्थ कर्मकाण्डों, अर्थात् यज्ञना, यज्ञ और देवताओं को बलि, को करते रहना है।

बुद्ध द्वारा प्रयुक्त शब्द 'धम्म' का धार्मिक रीति–रिवाजों एवं कर्मकाण्डों से कोई लेन–देन नहीं है। वास्तव में उसने यज्ञ और यज्ञना को धर्म का सार होने के रूप में सदाचार को प्रतिस्थापित किया है। यद्यपि 'धम्म' शब्द का प्रयोग ब्राह्मण अध्यापकों के साथ–साथ बुद्ध ने भी किया है परन्तु मौलिक एवं मूलभूत रूप से दोनों के आशय से अन्तर है। वास्तव में यह कहा जा सकता है कि बुद्ध विश्व में पहला अध्यापक था जिसने सदाचार को धर्म का सार एवं नींव बनाया हो। भगवद् गीता से यह देखा जा सकता है कि कृष्ण भी धर्म की रीति–रिवाज एवं कर्मकाण्डों जैसी पुरानी मान्यताओं से अपना उद्धार नहीं कर पाये। ऐसा प्रतीत होता है कि अनेक लोग भगवद् गीता में कृष्ण द्वारा दिये गये उपदेश निष्काम कर्म या अनासक्ति योग के सिद्धान्त द्वारा प्रलोभित या आकर्षित हुए हैं। इसका यह अर्थ माना गया है कि बालचर की भावना से नेक काम, फल की इच्छा किये बिना करते रहना चाहिए। निष्काम कर्म की व्याख्या इसके वास्तविक अर्थ में पूर्णतया भ्रामक है। निष्काम कर्म वाक्यांश में कर्म शब्द का अर्थ साधारण शब्दावली में कार्य नहीं है। कर्म का अर्थ है 'काम' इसका प्रयोग इसके मौलिक रूप में प्रयोग इस प्रकार से किया गया है जिस प्रकार ब्राह्मणों और ह्ममिनी द्वारा प्रयोग किया गया है। कर्मकाण्डों की दृष्टि से जैमिनी एवं भगवद् गीता में केवल एक ही अन्तर है। ब्राह्मणों द्वारा किये जा रहे कर्मकाण्ड दो वर्गों में आते हैं।

1. नित्य कर्म और
2. नेमितिक कार्य

नित्य कर्म ऐसे कर्मकाण्ड हैं जिन्हें नियमित रूप से करने के निर्देश हैं इसलिए इन्हें नित्य कहा गया है और धार्मिक दायित्व होने के कारण इससे फल की कोई कामना नहीं की जाती। इसलिए इन्हें निष्काम कर्म भी कहा जाता है। कर्म की अन्य श्रेणी को नेमितक कहा जाता था, इस संबंध में ऐसा कहा जाता है कि ये तभी किये जाते हैं जब कभी इसके लिए अवसर हो अर्थात् जब कभी उनको करने की इच्छा हो और इन्हें काम कर्म कहा गया है क्योंकि उनके निष्पादन से कुछ लाभ की आशा

की जाती है। कृष्ण ने भगवद् गीता में काम कर्म की निन्दा की है। उन्होंने निष्काम कर्म की निन्दा नहीं की है। दूसरी ओर उन्होंने इसकी प्रंशसा की है। यह याद रखने की बात है कि कृष्ण के धर्म में सदाचार निहित नहीं है। इसमें निष्काम कर्म श्रेणी के माध्यम से यज्ञना और यज्ञ निहित है।

यह हिन्दूवाद और बौद्धिकता में अन्तर का एक मुद्दा है। अन्तर का दूसरा मुद्दा इस तथ्य में निहित है कि हिन्दूवाद का मान्य धार्मिक सिद्धान्त असमानता है। चतुर्वर्ण का सिद्धान्त असमानता के इस धार्मिक सिद्धान्त का ठोस प्रतिरूप है। दूसरी ओर बौद्ध समानता पर अडिग है वह चतुर्वर्ण का घोर विरोधी है। उन्होंने न केवल इसके विरुद्ध प्रचार व संघर्ष किया है बल्कि इसके उन्मूलन के लिए हर संभव प्रयास किये हैं। हिन्दूवाद के अनुसार न तो शूद्र और न ही महिला धार्मिक गुरु बन सकते हैं और नहीं यह सन्यास धारण कर ईश्वर तक पहुँचने का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं। दूसरी और बुद्ध ने शूद्र को भिक्खुन संघ में सम्मिलित किया है। उन्होंने महिलाओं को भी सम्मिलित किया है ताकि वे भिक्खनी न बन सकें। उन्होंने ऐसा क्यों किया? बहुत कम लोग इस कदम के महत्त्व को समझ सकते हैं। इसका उत्तर यह है कि बुद्ध असमानता के सिद्धान्त को नष्ट करने के लिए यह ठोस कदम उठाना चाहते थे। हिन्दूवाद को बुद्ध द्वारा किये गये आक्रमण के परिणामस्वरूप अपने सिद्धान्त में कई संशोधन करने चाहिए थे। इसने हिंसा का त्याग कर दिया। यह वेदों की निर्भ्रान्ति के सिद्धान्त को समाप्त करने के लिए बनाया गया था। चतुर्वर्ण के मुद्दे पर कोई भी परित्याग करने को तैयार नहीं था। यही कारण है कि ब्राह्मणवाद को जैन धर्म की तुलना में बुद्ध धर्म के विरुद्ध अधिक नफरत एवं विरोध है। हिन्दूवाद को चतुर्वर्ण के विरुद्ध बुद्ध के तर्कों को मान्यता देनी चाहिए थी। परन्तु इसके तर्क के आगे झुकने की बजाय हिन्दूवाद ने चतुर्वर्ण के लिए नई दार्शनिक औचित्यता विकसित कर दी। नया दार्शनिक औचित्य भगवद् गीता में देखा जा सकता है। कोई भी व्यक्ति निश्चित रूप से यह नहीं कह सकता कि भगवद् गीता क्या शिक्षा देती है। परन्तु इस पर प्रश्न नहीं किया जा सकता कि भगवद् गीता चतुर्वर्ण के सिद्धान्त की स्वीकृति प्रदान करती है। वास्तव में यह प्रतीत होता है कि इसका मुख्य उद्देश्य यही था जिसके लिए उसे स्वीकृति प्रदान की गई। उसी के लिए यह लिखी गई थी और भगवद् गीता से इसे कैसे प्रमाणित किया? कृष्ण ने कहा है कि उसने देवता के रूप में चतुर्वर्ण प्रणाली सृजित की है और उसने उसका निर्माण गुण–कर्म के सिद्धान्त के आधार पर किया है जिसका अर्थ है कि उसने प्रत्येक व्यक्ति की हैसियत और व्यवसाय को उसके सहज गुणों के अनुसार नियत किया है। दो चीजें स्पष्ट हैं। एक यह कि सिद्धान्त नया है। पुराना सिद्धान्त भिन्न था। पुराने सिद्धान्त के अनुसार

चतुर्वर्ण का प्रतिष्ठान करना वेदों के प्रभुत्व में था। चूंकि वेद अचूक थे इसलिए चतुर्वर्ण की प्रणाली इसी पर आधारित है। वेदों की अचूकता पर बुद्ध के आक्रमण ने चतुर्वर्ण के पुराने प्रतिष्ठान की वैधता को नष्ट कर दिया। यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि हिन्दूवाद, जो चतुर्वर्ण को छोड़ने के लिए तैयार नहीं था और जो इसे इसकी आत्मा मानता है, इसके लिए बेहतर प्रतिष्ठान खोजने का प्रयास कर रहा है जिसे भगवद् गीता ने करना प्रस्तावित किया है। परन्तु भगवद् गीता में कृष्ण द्वारा दिये गये नये प्रमाण कितने अच्छे हैं? अधिकतम हिन्दुओं की ओर से यह विश्वसनीय लगता है, इतना विश्वसनीय लगता है कि वे इसे अखण्डनीय मानते हैं। कई गैर–हिन्दुओं को भी यह अत्यधिक न्यायसंगत व प्रलोभित/आकर्षित करने वाला प्रतीत होता है। यदि चतुर्वर्ण केवल वेदों की प्रभुसत्ता पर आधारित होता तो मुझे पूरा विश्वास है कि यह काफी समय पूर्व लुप्त हो चुका होता। यह भगवद् गीता का अनिष्टकारी एवं गलत सिद्धान्त है जिसने यह चतुर्वर्ण दिया है और इस चतुर्वर्ण ने जाति–प्रथा को जन्म दिया है इससे जीवन मूल्यों में लगातार गिरावट आ रही है। इस नये सिद्धान्त की मूल धारणा सांख्य दर्शन से ली गई है। इसमें कुछ भी मौलिक नहीं है। कृष्ण ने अपनी मौलिकता चतुर्वर्ण को न्यायोचित ठहराने में लगाई है। इसके प्रयोग में भी भ्रम है, सांख्य प्रणाली के लेखक कपिल ने स्वीकार किया है कि कोई ईश्वर नहीं है, ईश्वर की आवश्यकता केवल इसलिए है क्योंकि पदार्थ को मृत मान लिया गया है। लेकिन पदार्थ कभी मरता नहीं है। यह सक्रिय है। पदार्थ तीन गुणों से बना हुआ है। राजस, तमस और सत्त्व। प्रकृति मृत हो चुकी प्रतीत होती है। क्योंकि तीनों गुण संतुलित मात्रा में है। जब यह संतुलिन किसी एक गुण के कारण बिगड़ता है, जब कोई गुण अन्य गुणों पर हावी हो जाता है तो प्रकृति सक्रिय हो जाती है। यह सांख्य दर्शन का सार एवं तात्पर्य है। इस सिद्धान्त के साथ कोई झगड़ा नहीं हो सकता। शायद यह सत्य है। अतः यह माना जा सकता है कि प्रत्येक व्यक्ति प्रकृति के रूप में तीन गुणों से निर्मित है। यह भी स्वीकार किया जा सकता है कि तीनों के प्रभुत्व के लिए परस्पर प्रतिस्पर्धा होती है। परन्तु यह कैसे मान लिया जाए कि किसी समय कोई विशिष्ट गुण किसी व्यक्ति पर हावी होता है – मान लिया जाए कि एक व्यक्ति के जन्म के समय एक गुण अन्य गुणों पर हावी है तो ये गुण मृत्यु तक हमेशा हावी रहेंगे। इस धारणा के लिए सांख्य दर्शन या वास्तविक जीवन के लिए कोई आधार नहीं है। दुर्भाग्य से जब कृष्ण ने अपना सिद्धान्त प्रतिपादित किया जब न तो हिटलर और न ही मुसोलिनी का जन्म हुआ था। कृष्ण को यह स्पष्ट करने में अत्यन्त कठिनाई हुई होती कि एक साइन बोर्ड पेन्टर और राजमिस्त्री विश्व

पर प्रभुत्व जमाने के लिए तानाशाह कैसे बन गये। विचारणीय मामला यह है कि व्यक्ति की प्रकृति हमेशा बदलती है क्योंकि गुणों से सम्बद्ध स्थिति हमेशा बदलती रहती है। यदि गुणसत्ता की अपनी सम्बद्ध स्थिति में हमेशा परिवर्तन होता रहता है तो पुरुषों के वर्णों में स्थायी एवं स्थिर वर्गीकरण नहीं हो सकता और व्यवसाय भी नियत नहीं हो सकता। अतः भगवद् गीता का पूरा सिद्धान्त समाप्त हो जाता है। परन्तु जैसा मैंने कहा है कि हिन्दू इसके सत्याडम्बर और चकाचौंध पर मुग्ध होकर इसके दास बन गये हैं। इसका परिणाम यह है कि हिन्दूवाद ने अपनी सामाजिक असमानता के सिद्धान्त के साथ वर्ण पद्धति को अपनाया हुआ है। हिन्दूवाद में यह दो बुराइयाँ हैं जिनसे बौद्ध धर्म मुक्त है।

III.

कुछ ऐसे लोग जो मानते हैं कि केवल बुद्ध के सिद्धान्तों को स्वीकार करने से हिन्दुओं को बचाया जा सकता है, को बहुत दुःख होता है क्योंकि उनको भारत में बौद्ध धर्म वापिस आने की संभावना या पुनरुद्धार दिखाई नहीं दे रहा है। मैं इस निराशावादी दृष्टिकोण का भागीदार नहीं हूँ।

अपने धर्म के संबंध मैं अपने रवैये के मामले में आज हिन्दू दो वर्गों में बंट गये हैं। इनमें से कुछ का मानना है कि "हिन्दू सहित सभी धर्म सत्य हैं" और अन्य धर्मों के नेता भी इनकी इस घोषणा में सम्मिलित हो गये प्रतीत होते हैं। इस प्रतिपाद्य से झूठा कोई प्रतिपाद्य नहीं हो सकता कि सभी धर्म सत्य हैं। लेकिन हिन्दुओं के इस नारे से उनको अन्य धर्मों के अनुयायियों से समर्थन प्राप्त होता है। यहाँ कुछ ऐसे हिन्दू भी हैं जिनको अब अनुभव हो चुका है कि उनके धर्म में कुछ गलत है परन्तु वे उसकी खुले रूप में भर्त्सना नहीं कर सकते। यह रवैया समझने योग्य है। धर्म सामाजिक विरासत का एक हिस्सा होता है। प्रत्येक व्यक्ति का जीवन, प्रतिष्ठा एवं आत्म–सम्मान इससे जुड़ा होता है। अपने धर्म का परित्याग करना आसान नहीं है 'मेरा देश' सही है या गलत है परन्तु प्रत्येक मनुष्य में देशभक्ति होती है। मेरा 'धर्म' गलत है या सही। इसका परित्याग करने की बजाय हिन्दू बचने के अन्य उपाय ढूंढ रहे हैं। कुछ अपने आपको हम बात से सांत्वना दे रहे हैं कि सभी धर्म गलत हैं। इसलिए धर्म के संबंध में चिंता क्यों की जाए। स्वदेश प्रेम की यह भावना बौद्ध धर्म को अंगीकार करने से रोकती है। ऐसे रवैये का केवल एक परिणाम हो सकता है। हिन्दूवाद का पतन हो जाएगा और जीवन की सत्ताशक्ति नहीं रहेगी। यह प्रभावहीन हो जायेगा जिससे हिन्दू समाज विखण्डित हो जायेगा। जब वे ऐसा करेंगे तो उसके समक्ष बौद्ध धर्म अपनाने के सिवाय कोई विकल्प नहीं होगा।

यह केवल एक ही आशा की किरण नहीं है। बल्कि ऐसी ही किरणें अन्य धर्मों से भी आ रही हैं।

एक प्रश्न का उत्तर सभी धर्मों का अवश्य देना चाहिए। इससे शोषितों एवं उत्पीड़ितों को कितनी मानसिक एवं नैतिक राहत मिल रही है। यदि ऐसा नहीं है तो इसका विनाश हो रहा है। क्या हिन्दूवाद से पिछड़ी जातियों एवं अनुसूचित जातियों के लाखों लोगों को मानसिक एवं नैतिक राहत मिल रही है? ऐसा नहीं है। क्या हिन्दू इन पिछड्यी जातियों एवं अनुसूचित जातियों से आशा करें कि वे हिन्दूवाद की छत्रछाया में रहे जो उन्हें मानसिक एवं नैतिक राहत का कोई वचन नहीं देता। ऐसी आशा करना बिल्कुल निरर्थक होगा। हिन्दूवाद ज्वालामुखी पर तैर रहा है। वर्तमान में विलुप्त होता प्रतीत हो रहा है। परन्तु यह नहीं होगा। यह एक बार सक्रिय होगा जब पिछड़ी जातियों एवं अनुसूचित जाति के लाखों लोग अपनी गिरावट के प्रति जागरूक होंगे और उनको ज्ञात होगा कि ऐसा हिन्दू धर्म की सामाजिक दार्शनिकता के कारण हो रहा है। हम सब को याद होगा कि रोमन साम्राज्य में ईसाइयों ने अन्ध विश्वासियों को उखाड़ फेंका था। जब जन समुदाय को अनुभव हुआ कि अन्धविश्वास से उन्हें मानसिक एवं नैतिक राहत नहीं मिल सकती तो उन्होंने उसका त्याग कर दिया और ईसाई धर्म को अपना लिया। जो कुछ रोम में हुआ वही भारत में अवश्य होगा। जब हिन्दू समुदाय अन्धविश्वास से मुक्त होंगे तो निश्चय ही बौद्ध धर्म की ओर मुड़ेंगे।

IV.

हिन्दूवाद एवं बौद्ध धर्म के बीच तुलना से अन्य गैर–हिन्दू धर्म अपनी बौद्ध धर्म की तुलना में कहाँ ठहरेंगे? इन गैर हिन्दू धर्मों की बौद्ध धर्म से विस्तृत रूप से तुलना करना असंभव है। समग्र रूप से मैं अपना निष्कर्ष सार रूप में प्रस्तुत करता हूँ। मेरा मानना है कि :

(i) कि समाज को संगठित रखने के लिए कानून की स्वीकृति या सदाचार की सहमति होनी चाहिए। किसी एक के बिना समाज निश्चित रूप से खंडित होने के कगार पर चला जायेगा।

सभी समाजों में कानून बहुत ही छोटी–सी भूमिका निभाता है। इसका उद्देश्य अल्पसंख्यकों को सामाजिक अनुशासन में रखना होता हैं बहुमत को अपने सामाजिक जीवन के संरक्षण और सदाचार की सहमति के लिए छोड़ देना चाहिए। अतः प्रत्येक समाज में सदचार के रूप में धर्म

हमेशा शासकीय सिद्धान्त में रहना चाहिए।

(ii) प्रथम वक्तव्य में पारिभाषिक धर्म विज्ञान के अनुरूप होना चाहिए। यदि यह विज्ञान के अनुरूप नहीं होगा तो धर्म को अपना सम्मान खोना पड़ेगा और इस प्रकार उपहास नहीं होगा और जीवन के शासकीय सिद्धान्त के रूप में अपनी शक्ति को ही नहीं खो देगा बल्कि कालान्तर में विखण्डित एवं विलुप्त हो जाएगा। दूसरे शब्दों में यदि धर्म को अपने कार्य कलाप करने हैं तो यह कार्यकलाप कारण के अनुसार होने चाहिए जो कि विज्ञान का दूसरा नाम है।

(iii) कि धर्म को सामाजिक सदाचार की संहिता के रूप में एक और परीक्षा के लिए भी तैयार रहना चाहिए। यह पर्याप्त नहीं है कि धर्म नैतिक संहिता से बने परन्तु इसकी नैतिकता/सदाचार की संहिता स्वतंत्रता, समानता एवं मित्रता के मूलभूत सिद्धान्तों को मान्यता प्रदान करें। यदि धर्म सामाजिक जीवन के इन मूलभूत सिद्धान्तों को मान्यता नहीं प्रदान करेगा तो धर्म विलुप्त हो जायेगा।

(iv) कि धर्म गरीबी की इजाजत या बढ़ावा देने वाला नहीं होना चाहिए।

सम्पन्नता में वैराग्य एक सुखद स्थिति है परन्तु दरिद्रता में सुखद स्थिति नहीं हो सकती। दरिद्रता को सुखद स्थिति बताने से धर्म को गुमराह करना दुराचार एवं अपराध को बढ़ावा देना और धरती को जीवन्त नर्क बनाने की स्वीकृति देना है।

कौन–सा धर्म इन अपेक्षाओं को पूर्ण करता है? इस प्रश्न पर विचार करते हुए यह अवश्य याद रखना चाहिए कि महात्माओं के दिन लद गये और विश्व में कोई नया धर्म नहीं हो सकता। विद्यमान धर्मों में से ही विकल्प चुनना होगा। अतः प्रश्न विद्यमान धर्मों तक ही सीमित रहेगा। यह संभव हो सकता है कि कोई विद्यमान धर्म इनमें से एक कोई दो परीक्षायें उत्तीर्ण कर सके। प्रश्न यह है :– क्या यहाँ कोई धर्म है जो इन सभी परीक्षाओं को उत्तीर्ण कर सकेगा। जहाँ तक मैं जानता हूँ केवल बौद्ध धर्म ही इन सभी परीक्षाओं में खरा उतरता है। दूसरे शब्दों में केवल बौद्ध धर्म ऐसा धर्म है जो विश्व धारण कर सकता है। यदि नया विश्व जैसा भी हो, पुराने से भिन्न होगा और उसका धर्म अवश्य होगा और नये विश्व को पुराने विश्व की अपेक्षा बेहतर धर्म की आवश्यकता होगी तब केवल बुद्ध का ही धर्म हो सकता है।

यह सभी सुनने में बड़ा विचित्र लगता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि अधिकतर लोग

जिन्होंने बुद्ध के बारे में लिखा है, ने इस विचार का प्रचार किया है कि केवल एक बात जो बुद्ध ने सिखाई है वह है अहिंसा। यह एक बहुत बड़ी भूल है। यह सच है कि बुद्ध ने अहिंसा का पाठ पढ़ाया है। मैं इसकी महत्ता को कम नहीं करना चाहता। इसके लिए एक बहुत बड़ा सिद्धान्त है। विश्व को बचाया नहीं जा सकता जब तक इसका अनुसरण न किया जाए। मैं इस बात पर बल देना चाहता हूँ कि बुद्ध ने अहिंसा के अतिरिक्त कई और शिक्षायें दी हैं। उन्होंने अपने धर्म के रूप में सामाजिक सुधार, बौद्धिक स्वतंत्रता, आर्थिक स्वतंत्रता और राजनैतिक स्वतंत्रता का पाठ पढ़ाया है। उन्होंने समानता का पाठ पढ़ाया है केवल पुरुष एवं पुरुष के मध्य ही समानता नहीं बल्कि पुरुष एवं महिला के मध्य भी समानता की शिक्षा दी है। ऐसा धार्मिक गुरु ढूंढ़ना कठिन है जिसकी तुलना बुद्ध से की जाए, जिसकी शिक्षाओं ने लोगों के सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं को अंगीकार किया हो, उसके सिद्धान्त इतने आधुनिक हों और उनका मुख्य संबंध मनुष्य को उसके जीवनकाल में मोक्ष की प्राप्ति कराये और न कि उसकी मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग में मोक्ष दिलवाने का वचन दे।

V.

बौद्ध धर्म के प्रचार के इस ध्येय को कैसे चरितार्थ किया जा सकता है? तीन उपाय आवश्यक प्रतीत होते हैं :–

प्रथम : बौद्ध धर्म की बाइबिल तैयार की जाए।

द्वितीय : भिक्खू संघ के संगठन, उद्देश्यों एवं लक्ष्यों में परिवर्तन किया जाए।

तृतीय : विश्व बौद्ध मिशन स्थापित किया जाए।

बौद्ध धर्म की बाइबिल तैयार करने की पहली एवं सर्वोपरि आवश्यकता है। बौद्ध साहित्य एक विस्तृत साहित्य है। यह आशा करना असंभव है कि एक व्यक्ति जो बौद्ध धर्म के सार को जानना चाहता है वह साहित्य रूपी सागर में गोते लगाये। बौद्ध धर्म की अपेक्षा अन्य धर्मों का सबसे बड़ा लाभ यह है कि प्रत्येक धर्म की अपनी धार्मिक पुस्तक जिन्हें हर कोई अपने साथ ले जा सकता है और जहाँ कहीं जाता है पढ़ सकता है। यह एक सुविधाजनक है। बौद्ध धर्म को हानि इसलिए हो रही कि उसकी कोई ऐसी धार्मिक पुस्तक नहीं है जिसे सुविधापूर्वक उठाया जा सके। भारतीय धम्मपद वह कार्य करने में असफल रहा है जिसकी धार्मिक पुस्तक से अपेक्षा की जाती है। प्रत्येक बड़ा धर्म विश्वास पर निर्मित होता है। परन्तु विश्वास

को आत्मसात् नहीं किया जा सकता यदि उसे संक्षिप्त और काल्पनिक सिद्धान्तों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसे कुछ ऐसी चीजों की आवश्यकता होती है जिन पर काल्पनिकता थोपी जा सके जैसे कुछ पौराणिक या महाकाव्य या सिद्धान्त जिन्हें पत्रकारिता की भाषा में कहानी कहा जाता है। धम्मपद को कहानी से बांधा नहीं जा सकता। सारांश रूढ़ियों पर विश्वास निर्मित करने की आवश्यकता है।

बौद्ध धर्म की प्रस्तावित सैद्धान्तिक पुस्तक में होना चाहिए – 1. बुद्ध का संक्षिप्त जीवन–चरित; 2. चीन का धम्मपद; 3. बुद्ध के कुछ महत्त्वपूर्ण संवाद; और 4. बौद्ध के अनुष्ठान, जन्म, दीक्षा, विवाह और मृत्यु। ऐसी पुस्तक को तैयार करने में भाषा की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। इसमें ऐसी भाषा का प्रयोग किया जाये जो इसे जीवन्त रूप प्रदान करे। इसे वर्णनात्मक रूप से पढ़ा जाने वाला कथनात्मक या नैतिक अभिव्यक्ति बनाने की बजाय जादुई मंत्र बनाया जाये। इसकी शैली सुव्यक्त, प्रवाही एवं सम्मोही प्रभाव की होनी चाहिए।

हिन्दू संन्यासी और बौद्ध भिक्खू में विश्वव्यापी अन्तर है। हिन्दू संन्यासी का विश्व से कुछ लेन–देन नहीं है। वह विश्व के लिए निर्जीव है।

भिक्खू को पूरे विश्व से सरोकार है। इससे प्रश्न उत्पन्न होता है कि बुद्ध ने किस उद्देश्य से भिक्खू संघ स्थापित करने की सोची थी। भिक्खुओं के लिए अलग समाज बनाने की क्या आवश्यकता थी? समाज स्थापित करने का एक उद्देश्य यह था कि जो बौद्ध के आदर्शों, जिसमें बौद्ध धर्म के सिद्धान्त हों और सामान्य जन के लिए एक आदर्श रूप में कार्य करें, के अनुरूप जीवन–यापन करें। बुद्ध जानते थे कि सामान्य जन के लिए यह संभव नहीं है कि बौद्ध के आदर्श को समझ सके। परन्तु वह यह भी चाहते थे कि सामान्य जन समझे की आदर्श क्या हैं और समाज उनके आदर्शों का व्यावहारिक रूप से प्रयोग करे। इसकी कारण से उन्होंने भिम्खू संघ का गठन किया और उसे विनय के नियमों से बाँध दिया। परन्तु उनके मस्तिष्क में अन्य उद्देश्य भी थे जब उन्होंने संघ की स्थापना करने की सोची। इसमें से एक उद्देश्य यह था कि बुद्धिजीवी लोगों की एक संस्था बनाई जाए जो सामान्य जन का सही एवं निष्पक्ष मार्गदर्शन दें। इसी कारण से उन्होंने भिक्षुओं को भू–स्वामित्व से रोका था। सम्पत्ति का स्वामित्व स्वतंत्र सोच एवं स्वतंत्र विचारों के प्रयोग में सबसे बड़ी बाधा है।

भिक्खू संघ की स्थापना करने का उद्देश्य ऐसे व्यक्तियों का समाज बनाना था जो लोगों की सेवा करने के लिए स्वतंत्र हो। इसी कारण से वह नहीं चाहते थे कि भिक्खू विवाह करे।

क्या आज का भिक्खू संघ इन आदर्शों पर जीवित है?

इसका उत्तर स्पष्ट रूप से नकारात्मक है। यह न तो लोगों का मार्गदर्शन करते हैं और न ही उनकी सेवा करते हैं।

अतः अपनी वर्तमान दशा में भिक्खू संघ बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए किसी काम का नहीं है। प्रथमतः यहाँ अत्यधिक भिक्खू हैं। इनमें से अधिकतर केवल साधु एवं संन्यासी हैं जो अपना समय ध्यान–चिंतन या निठल्लेपन में व्यतीत कर रहे हैं। उनमें न तो ज्ञान है और न ही सेवा–भावना। जब पीड़ित मानवता की सेवा का विचार मन में आता है तो हर कोई रामकृष्ण मिशन के बारे में सोचता है। कोई भी बौद्ध संघ के बारे में नहीं सोचता है। मानव सेवा को कौन अपना पावन कर्त्तव्य मानेगा संघ या मिशन? इसके उत्तर के संबंध मे कोई संदेह नहीं हो सकता। अभी भी संघ निठल्लों की एक बहुत बड़ी जमात है। हम कुछ ही भिक्खू चाहते हैं और हम उच्च शिक्षित भिक्खू चाहते है, भिक्खू संघ ईसाई पुरोहिताई विशेषकर रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय की कुछ विशेषतायें ग्रहण करें। ईसाई धर्म एशिया में सेवा भावना, शिक्षा एवं चिकित्सा के माध्यम से फैला है। ऐसा इसलिए संभव हो पाया है क्योंकि ईसाई पुरोहित न केवल धार्मिक ज्ञान में ही पारंगत है बल्कि वे कला एवं विज्ञान में भी पारंगत हैं। वास्तव में प्राचीन समय में यह भिक्खुओं के आदर्श थे। जैसा कि हम भली–भाँति जानते हैं कि तक्षशिला एवं नालंदा विश्वविद्यालय भिक्खुओं द्वारा संचालित एवं शासित थे। स्पष्टतया वे बुद्धिजीवी लोग होंगे और जानते होंगे कि अपने मत के प्रचार के लिए समाज सेवा अनिवार्य है। वर्तमान के भिक्खुओं को पुराने आदर्शों को पुनः अंगीकर करना होगा। वर्तमान में जो संघ गठित हैं वे सामान्य जन की सेवा नहीं कर सकते और इस प्रकार वे लोगों को अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकते।

बिना किसी उद्देश्य के बौद्ध धर्म का प्रचार–प्रसार नहीं हो सकता। जैसे कि शिक्षा दी जानी अपेक्षित है उसी प्रकार धर्म का प्रचार–प्रसार भी अपेक्षित है। प्रचार बिना व्यक्तियों एवं धन के नहीं किया जा सकता। इनकी आपूर्ति कौन कर सकता है? स्पष्टता वे देश जहाँ बौद्ध धर्म एक जीवन्त धर्म है। ये वे देश हैं जो कम से कम अपनी प्रारंभिक अवस्था के लिए मनुष्य एवं धन की व्यवस्था कर सकते हैं। क्या वे ऐसा करेंगे? इन देशों में बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार के लिए इतना अधिक उत्साह नहीं दिखाई देता।

दूसरी ओर बौद्ध धर्म के प्रचार एवं प्रसार के लिए यह बिल्कुल अनुकूल समय है। एक समय था जब धर्म विरासत का एक हिस्सा होता था। एक समय था जब

लड़का या लड़की अपने माता–पिता की सम्पत्ति के साथ–साथ अपने माता–पिता के धर्म को भी विरासत में लेता था। धर्म की गुणवत्ता एवं महानता की जाँच करने का कोई प्रश्न ही नहीं था। कई बार उत्तराधिकारी प्रश्न करते थे कि क्या माता–पिता द्वारा छोड़ी गई सम्पत्ति स्वीकार योग्य है। परन्तु यहाँ ऐसा कोई उत्तराधिकारी नहीं था जो प्रश्न करे कि क्या उसके माता–पिता का धर्म ग्रहण के योग्य है। ऐसा लगता है कि समय बदल गया है। पूरे विश्व में अनेक लोगों ने अपने धर्म की विरासत के संबंध में अभूतपूर्व साहस प्रदर्शित किया है। वैज्ञानिक तथ्यों से प्रभावित होकर, अनेक लोग इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि धर्म एक भ्रान्त धारणा है, जिसे त्याग दिया जाना चाहिए। ऐसे अन्य लोग भी हैं जो मार्क्सवाद के प्रभाव से इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि धर्म एक नशा (अफीम) है जो गरीब व्यक्ति को धनवान् के प्रभुत्व के आगे झुकने के लिए प्रेरित करता है और इसलिए इसका त्याग कर देना चाहिए। कारण कुछ भी रहा हो वास्तविकता यही रहेगी कि लोगों का धर्म के प्रति रुझान अन्वेषी हो गया है। और कि यह प्रश्न कि धर्म धारण करने योग्य है और यदि हाँ तो कौन–सा धर्म धारण करने योग्य है, यह प्रश्न उन व्यक्तियों के मन में सर्वोपरि रूप से बना हुआ है जो इस विषय में सोचने का साहस दिखाते हैं। अब समय आ गया कि इच्छित को दृढ़ इच्छा शक्ति से प्राप्त किया जा सकता है। जो बौद्धिक धर्म को मानने वाले देश हैं उनके लिए बौद्ध के प्रचार–प्रसार का कार्य कठिन नहीं होगा। उन्हें यह समझना चाहिए कि एक बौद्ध का कर्त्तव्य केवल एक अच्छा बौद्ध होना ही नहीं है बल्कि बौद्ध धर्म का प्रचार करना उसका दायित्व होना चाहिए। उन्हें इस बात पर विश्वास करना चाहिए कि बौद्ध धर्म का प्रचार–प्रसार ही मानवता की सेवा है।

(18)

हिन्दू महिला का उत्थान एवं पतनः इसके लिए जिम्मेवार कौन था?

महाबोधि पत्रिका के मार्च, 1950 अंक में लामा गोविन्द का ''हिन्दूवाद एवं बौद्ध धर्म में महिलाओं की स्थिति'' लेख छपा था। इनका लेख ईवस् वीकली के 21 जनवरी, 1950 के संस्करण में प्रकशित लेख का प्रत्युत्तर था और इस लेख में बुद्ध को आरोपित किया था कि मनुष्य होने के नाते उसकी शिक्षायें भारत में महिलाओं की स्थिति में गिरावट के लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार हैं। लामा गोविन्द ने अपना कर्त्तव्य भली–भाँति निभाया। प्रत्येक बौद्ध को आगे बढ़कर आरोप का खण्डन करना चाहिए था। परन्तु मामला यहीं नहीं समाप्त हो सका। ऐसा पहली बार नहीं हुआ था कि बुद्ध पर ऐसे आरोप लगाये गये हों। ऐसा प्रायः ऐसे लोगों द्वारा किया जाता था जो बुद्ध की महानता को सहन नहीं कर सकते थे और उन वर्गों में थे जो ईवस् वीकली के लेखक से हर दृष्टि से बड़े थे। अतः यह आवश्यक है कि मामले पर गंभीरता से विचार किया जाए और बार–बार यह आरोप लगाने के आधार की जाँच की जाए। आरोप इतना गंभीर एवं घटिया है कि, मुझे विश्वास है, महाबोधि के पाठक इस मामले में और अधिक जाँच का स्वागत करेंगे।

बुद्ध के विरुद्ध ऐसे आरोप को केवल दो आधारों पर समर्थित किया जा सकता है :

पहला आधार संभवतः आनन्द द्वारा बुद्ध से पूछे गये प्रश्न का दिया गया उत्तर (अध्याय पाँच में–महापरिनिभाना सत्त) हो सकता हैः जो निम्न प्रकार से पढ़ा जाता है :

> *'9 हमें महिलाओं के प्रति अपना आचरण कैसा रखना चाहिए (आनन्द ने पूछा)*
>
> *उन्हें न देखना, आनन्द*
>
> *परन्तु यदि हम उन्हें देखें, तो हमें क्या करना चाहिए?*
>
> *बात न करना, आनन्द*

परन्तु यदि वे हम से बात करे,

तो महात्मन्, हमें क्या करना चाहिए?

हमें पूरी तरह से जागरूक हो जाना चाहिए, आनन्द

इस बात का खण्डन नहीं किया जा सकता कि यह अनुच्छेद ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय प्रैस द्वारा प्रकाशित महापरिनिभाना सुत्त के मूल पाठ में प्रकाशित है। लेकिन मुद्दा यह नहीं है कि अनुच्छेद है या नहीं। मुद्दा यह है कि इस अनुच्छेद पर कोई तर्क किया जाए, क्या यह सिद्ध करना आवश्यक नहीं है कि मूल–पाठ मौलिक और प्रमाणित है और भिक्खुओं द्वारा बाद में सम्मिलित नहीं किया गया है?

जो कोई बुद्ध की मुख्य शिक्षाओं से अवगत है वह सुत्त पिटाका को पढ़ने के पश्चात् किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाएगा क्यों कि अब हम देखते हैं कि उन्हें पौराणिक आवरण से ढक दिया है, बौद्ध की मूल शिक्षा में ब्राह्मण विचारों का समावेश कर विकृत एवं मठीय आदर्शों को लागू करने की इच्छा से मठीय विचारों से विरूपित कर दिया गया है। इसलिए वास्तविकता की जानकारी रखने वाला व्यक्ति श्रीमती रायस डेविड के आश्चर्य के साथ जुड़ना चाहेगा और पूछेगाः

'इन पृष्ठों' (सुत्त पिटाका) में गौतम कहाँ है? इसमें से कम से कम कितना मौलिक शिक्षा में जोड़ा गया है, स्पष्ट या सन्दिग्धतापूर्ण प्रस्तुत किया गया है उत्तरवर्ती वाचकों ने समय के साथ इसमें क्या जोड़ा है, अध्यापकों द्वारा अपनी स्मरण शक्ति के आधार, जनसाधारण के अध्यापकों द्वारा नहीं बल्कि मौखिक रूप से विद्या–अर्जन करने वाले प्रायः अनाड़ी शिष्यों, सम्पादकों जिन्होंने काफी समय पूर्व धारा प्रवाह रूप में सुनकर लिखित रूप देने का प्रयास किया है? और ये सभी व्यक्ति वाचक, अध्यापक, सम्पादक हैं जिनके जीवन के आदर्शों का विकल्प विश्व के शेष व्यक्तियों से भिन्न होता है, इनके आदर्श आनुपातिक आधार पर भिन्न होते हैं। इस विकृत माध्यम के द्वारा उसे पढ़ना पड़ा और अपने आप से पूछा कि कौन–सी उक्ति, किस मान्य सच्चे अध्यापक एवं मार्गदर्शक के जहन में डाली जाए, किसी ऐसे व्यक्ति की ओर से की जाने वाली संभावना है, किसके पास इसका दस्तावेजी प्रमाण हो सकता है?

अतः इस सुझाव में कुछ भी असंगत नहीं हो सकता कि अनुच्छेद भिक्खुओं द्वारा बाद में सम्मिलित किया गया है। प्रथम कि बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् 400 वर्षों तक सुत्त पिटाका को लिखित रूप नहीं दिया गया। दूसरा सम्पादकों, जिन्होंने इनको संकलित और सम्पादित किया भिक्षु थे और भिक्षु सम्पादकों ने भिक्षुओं के लिए संकलन किया और लिखा। बुद्ध के प्रति व्यक्ति कृतज्ञता भिक्षुओं के लिए

ब्रह्मचर्य का अपना सिद्धान्त संरक्षित करने के लिए मूल्यवान है और भिक्षु सम्पादक के लिए इस सिद्धान्त में इसे सम्मिलित करना असंभव नहीं था।

यहाँ दो अन्य विचारणीय विषय हैं जो इस प्रस्ताव का समर्थन करेंगे कि यह अनुच्छेद बाद में सम्मिलित किया गया है।

(1) प्रथमतः इस सुत्त के परिचय में दी गई तालिका (देवी दास द्वारा एस.बी.बी. शृंखला में, भाग–।। दिघ निकाय के पृष्ठ 72 पर देखा जा सकता है) में यह देखा जा सकता है कि अनेक उल्लेखनीय उद्धरण जो इस सुत्त में वर्णित हैं अन्य सुत्तों में भी वर्णित हैं। इस बात पर ध्यान देना महत्त्वपूर्ण है कि यह उद्धरण किसी अन्य सुत्त में नहीं है यद्यपि वास्तविकता यह है कि इनमें इस सुत्त के अनेक अन्य उद्धरण हैं।

(2) दूसरा, इस सुत्त के परिचय के पृष्ठ 38 (देवीदास द्वारा एस.बी.बी.ई. के खण्ड 11 में प्रकाशित) में यह उल्लिखित है कि सुत्त का चीनी भाषा में संस्करण उपलब्ध है। परन्तु इस चीनी संस्करण में भी यह विशिष्ट उद्धरण नहीं है।

हम और अधिक विचार करते हुए संभावना के परीक्षण का प्रयोग करते हं। क्या यहाँ कोई कारण था कि आनन्द ने ऐसा प्रश्न क्यों पूछा क्या यह बुद्ध के महिलाओं के साथ ज्ञात रिश्तों के अनुरूप था? यहाँ यह दर्शाते हुए प्रमाण है कि हो सकता है आनन्द द्वारा ऐसा प्रश्न पूछा नहीं गया और यदि ऐसा प्रश्न पूछा गया होता तो बुद्ध द्वारा ऐसा उत्तर नहीं दिया जा सकता था। पिटाकाओं के उल्लेखों के अनुसार आनन्द एवं बुद्ध का महिलाओं के प्रति आचरण ऐसे प्रश्न पूछने और ऐसा उत्तर दिये जाने की संभावनाओं के विपरीत है।

इस मुद्दे पर कि आनन्द को यह प्रश्न पूछने की कोई जरूरत थी, यहाँ यह नोट करना संगत होगा कि महापरिनिभाना सुत्त के इसी अध्याय में, उपरोक्त उद्धृत से कुछ गाथायें हटा दी गई हैं, बुद्ध वर्णन करते हैं कि आनंद कितना मोहक है और इसे सभी क्यों प्यार करते है। मैं इनमें से निम्नलिखित दो गाथायें उद्धृत करता हूँः

भ्रातृगण, आनन्द में ये चार चमत्कारिक एवं अद्भुत गुण हैं। यदि भिक्षुक संघ के लोग आनन्द के पास आते हैं तो वे उसको निहार कर प्रसन्न हो जाते हैं और तब आनन्द उनको सत्य का उपदेश देता और वह इस वार्तालाप से प्रसन्न हो जाते हैं जब आनन्द मौन होता है तो भिक्षुक व्याकुल हो जाते।

यदि भिक्षुक संघ की बहनें या सद्–पुरुष या सद्–महिलायें आनन्द से मिलती थीं और तब यदि आनन्द उन्हें सत्यता का उपदेश देते तो वे वार्तालाप से प्रसन्न हो जाते, जब आनन्द मौन होता जो भिक्षुक संघ की बहनें व्याकुल हो जातीं।

इससे यह स्पष्ट होता है कि आनन्द का महिलाओं से मिलना सामान्य बात थी, वह न केवल भिक्षुक संघ की बहनों से मिलते थे बल्कि संघ के अतिरिक्त उनसे मिलने आने वाली सद्–महिलायें, जो संघ की सदस्य नहीं थीं, से भी मिलते थे। वे उनको देखते थे, मिलते थे और बातचीत करते थे। तब आनन्द ने ऐसा प्रश्न क्यों पूछा? बुद्ध जानता था कि महिलायें आनन्द से अक्सर मिलती हैं। उन्होंने पहले कोई आपत्ति नहीं की थी। उसने महिलाओं के साथ सभी संबंधों को निषेधात्मक एवं घृणनीय क्यों समझा? यह पूरा उद्धरण इतना अस्वाभाविक है कि इसे बाद के भिक्षुओं द्वारा सम्मिलित किया गया माना जाना चाहिए।

आनन्द के जीवन में एक और उदाहरण है जो महापरिनिभाना सुत्त के उद्धरण से भिन्न है। जैसाकि हम भली–भाँति जानते हैं कि प्रथम संगीत (परिषद) में आनन्द के विरुद्ध पाँच शिकायतें भी गई थीं। वे थीं :–

(1) कि वह यह पूछने में असफल रहा कि विनय का कौन–सा भाग बुद्ध की राय में छोटा भाग है जिसके लिए उन्होंने संघ को परिवर्तन एवं संशोधन करने का अधिकार दिया है;

(2) कि वह एकान्तवास के दौरान महामहिम के चोगे पर, जब सिलाई की जा रही थी, तेजी से चढ़ गया;

(3) कि उसने मृत महामहिम के पार्थिव शरीर को महिलाओं द्वारा श्रद्धांजलि दी जाए ताकि मृत शरीर उनके आँसुओं से मलिन हो जाये;

(4) कि उसने महामहिम को चक्र के लिए जीवित रहने के लिए नहीं कहा; और

(5) कि महिलाओं को संघ में प्रवेश दिलवाने वाले प्रमुख साधक थे, ये सभी आरोप आनन्द को दोषी प्रतिपादित करते हैं। क्या वे दोषी प्रतिपादित किये गये या नहीं, यह एक अन्य मामला है। तीसरा आरोप रोचक है। चूँकि इस का संबंधित प्रश्न के साथ बहुत बड़ा सम्बन्ध है। आनन्द ने महिलाओं को महामहिम का शरीर छूने की इजाज़त क्यों दी यदि महापरिनिभाना सुत्त ने

उल्लेख के अनुसार वह वास्तविक सच है। क्या उसने बुद्ध द्वारा कुछ मिनट पूर्व दिये गये परामर्श की खुले आम एवं जानबूझकर अवज्ञा की थी? इसका उत्तर नकारात्मक ही होगा। इस नकारात्मक उत्तर से क्या परिणाम निकलना चाहिए। इससे यही परिणाम निकलता है कि बुद्ध ने ऐसा परामर्श कभी नहीं दिया होगा जैसाकि उसके विरोध में कहा गया है। यदि बुद्ध ने ऐसा परामर्श दिया होता तो आनन्द इसके विपरीत कार्य नहीं कर सकता था। अतः यह युक्तियुक्त है कि बुद्ध द्वारा ऐसा परामर्श कभी नहीं दिया गया।

अब हम बुद्ध की ओर से इस प्रश्न पर विचार करते हैं। क्या ये बुद्ध के लिए सहज है कि उन्होंने ऐसा उत्तर दिया होगा। इस प्रश्न का उत्तर बुद्ध का महिलाओं के प्रति किये गये आचरण पर निर्भर करता है। क्या बुद्ध महिलाओं से मिलने से बचते थे जैसा कि आनन्द को दिये गये परामर्श में बताया गया है? वास्तविकतायें क्या हैं?

अचानक दो उदाहरण मेरे मस्तिष्क में आये इनमें से एक विशाखा का है। वह बुद्ध के अस्सी मुख्य अनुयायियों में से एक थी और "भिक्षा देने वालों के मुखिया" की उपाधि से सुशोभित थी। क्या एक बार विशाखा बुद्ध का उपदेश सुनने के लिए नहीं गई थी? क्या उसने उनके मठ में प्रवेश नहीं किया था? क्या बुद्ध ने विशाखा के प्रति जो व्यवहार किया था उसी के अनुरूप महिलाओं के प्रति व्यवहार करने के लिए आनन्द को निर्देशित नहीं किया था? बैठक में उपस्थित भिक्षुओं ने क्या किया था? क्या वे बैठक से चले गये थे?

दूसरा उदाहरण जो मेरे मस्तिष्क में आ रहा है वह वैशाली की आम्रपाली का है। वह बुद्ध से मिलने गई और उनको व उनके भिक्षुओं को अपने घर भोजन पर आमन्त्रित किया। वह वेश्या थी। वह वैशाली की सबसे खूबसूरत महिला थी। क्या बुद्ध और भिक्षु इससे दूर रहे? दूसरी ओर उन्होंने लिच्छिवियों का आमंत्रण अस्वीकार कर उसका आमंत्रण स्वीकार किया और आम्रपाली के घर जाकर भोजन में भाग लिया जिससे लिच्छिवियों ने अपने आप को अपमानित समझा।

अन्य उदाहरणों की आवश्यकता नहीं है नन्दाकोवादा सुत्त में बताया गया है कि महाप्रजापति गौतमी द्वारा बुद्ध के पास पाँच सौ भिक्षुक महिलाओं को अपने साथ इस अनुरोध के साथ लाया गया जब वह श्रावस्ती में रह रहे थे, कि वे उन्हें सिद्धान्त एवं अनुशासन की दीक्षा देंगे। क्या बुद्ध उनसे भाग गये थे।

संयुक्त निकाय बताता है कि पाजुन्ना की पुत्री कण्णा जब रात देर का समग्र

महावन में अपनी दीप्त सुन्दरता की कान्ति बिखेरते हुए बुद्ध के समक्ष उपस्थित हुई जब वह वैशाली में रह रहे थे।

राजा प्रसनजीत की रानी मलिका अक्सर बुद्ध के पास धार्मिक उपदेश सुनने के लिए जाया करती थी।

इन उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि बुद्ध महिलाओं से परहेज नहीं करते थे और महिलायें भी बुद्ध के पास जाने से डरती नहीं थीं।

यह सत्य है कि बुद्ध भिक्षुकों को परामर्श देते थे कि भिक्षुक साधारण अनुयायियों के परिवारों में जाने की आदत न बनायें। ऐसा इस भय से करते थे कि महिलाओं से अक्सर मिलने से उनके प्रति झुकाव होना मानव की कमजोरी है। परन्तु वह इस प्रकार के मिलन से मना नहीं करते थे और न ही महिलाओं के प्रति तिरस्कार की भावना रखते थे।

यह भी सत्य है कि बुद्ध बह्मचर्य बनाये रखने के प्रबल समर्थक थे। वह गंभीरता से इस तथ्य से अवगत थे कि, उनके शब्दों में, महिला ब्रह्मचर्य के जीवन को कलंकित करती है। परन्तु वह क्या परामर्श देते थे? क्या वे भिक्षुकों को परामर्श देते थे कि महिलाओं से सभी संबंध विच्छेद कर दिये जायें? बिल्कुल भी नहीं। उन्होंने कभी ऐसी रोक नहीं लाई। ऐसा कुछ कहने की बजाय वह भिक्षुकों से कहा करते थे कि जब कभी किसी महिला से मिलें तो उसे माँ के रूप में, बहन के रूप में या बेटी के रूप में जैसा भी मामला हो अर्थात् महिला का सम्मान इस प्रकार से करो जैसा आप अपनी माँ, बहन या पुत्री का करते हैं।

दूसरा संभावित आधार यह है जिस पर बुद्ध के विरोधी दोषारोपण का समर्थन करते हैं। वह है बुद्ध का संघ में महिलाओं को सम्मिलित करने तथा भिक्खू संघ के अधीन भिक्खुनि/भिक्षुकनी संघ (जिसकी उन्होंने अन्ततः स्वीकृति दे दी) बनाने का विरोध करना है। यहाँ भी एक बार स्थिति का विश्लेषण करने की आवश्यकता है। बुद्ध ने महाप्रजापति की परिव्रजा लेने की माँग का विरोध क्यों किया? क्या उसने इस का विरोध इसलिए किया कि उसकी यह राय थी कि महिलायें निम्न श्रेणी की हैं और उनके प्रवेश से लोगों की नज़रों में संघ की हैसियत कम हो जाएगी या क्या उसने इसका विरोध किया कि उसकी राय यह थी कि उसके सिद्धान्त एवं उसके अनुशासन को समझने के लिए बुद्धिमत्ता एवं नैतिकता की दृष्टि से महिलायें अक्षम हैं? निश्चिय रूप से इन दोनों प्रश्नों में से दूसरा प्रश्न आनन्द ने तर्क के दौरान बुद्ध से तब पूछा होगा जब उसने बुद्ध को कुछ हद तक हठी पाया होगा। बुद्ध ने

संदेह या विवाद के लिए कोई स्थान छोड़े बिना सुस्पष्ट उत्तर दिया। उन्होंने कहा कि महिलायें उसका सिद्धान्त एवं उसका अनुशासन समझने के लिए पूरी तरह से सक्षम हैं और परिव्रजा लेने की उनकी माँग को इस कारण से नहीं ठुकराया गया है। इससे यह स्पष्ट है कि बुद्ध ने बुद्धि या आचरण की दृष्टि से महिलाओं को पुरुषों से हीन नहीं माना कि उन्होंने महिलाओं के प्रवेश का विरोध किया क्यों वे उन्हें निम्न दर्जे का मानते थे और उन्हें भय था कि वह संघ की प्रतिष्ठा को कम कर सकती है, के संबंध में तर्क का यहाँ उल्लेख करना उचित नहीं है। इसलिए यदि उनकी ऐसी भावना होती तो उन्होंने कभी भी उनके प्रवेश की स्वीकृति नहीं दी होती।

यह तर्क कि उन्होंने भिक्खुनि संघ का गठन भिक्खू संघ के अधीन किया, इस व्यवस्था के प्रश्न के उत्तर में उल्लिखित है कि उत्कृष्टता या हीनता का कोई विचार नहीं था, इस व्यवस्था का आधार पूर्णतया व्यावहारिकता थी। परिव्रजिका (भिक्षुणी) में महिलाओं के प्रवेश से बुद्ध को दो प्रश्नों का उत्तर देना पड़ता। क्या पुरुषों एवं महिलाओं के लिए केवल एक संघ होना चाहिए? उन्होंने निर्णय लिया कि दो अलग–अलग संघ होने चाहिए। उन्हें भय था कि पुरुषों एवं महिलाओं की मण्डली से ब्रह्मचर्य का नियम परिव्रजक पूर्णतया समाप्त हो जायेगा। अतः महिलाओं को प्रवेश की स्वीकृति देते समय उन्होंने सोचा, यह आवश्यक है कि उनके शब्दों का प्रयोग किया जाए, कि दो अलग संगठनों के गठन से उनके बीच बाँध बन जायेगा। दो अलग संगठनों के गठन का निर्णय लेने से उन्हें एक और प्रश्न का सामना करना पड़ा। यदि दो अलग संघ होंगे–एक पुरुषों के लिए तथा दूसरा महिलाओं के लिए क्या ये दोनों स्वतंत्र होंगे और अलग–अलग संगठन होंगे या इन दोनों में किसी प्रकार का आन्तरिक संबंध होगा?

प्रथम मामले पर कोई अन्य निर्णय इसके सिवाय संभव नहीं था कि महिलाओं का संघ पुरुषों के संघ से अलग होना चाहिए।

यह एक अपरिहार्य तर्क था जिसका ब्रह्मचर्य के नियम से अनुसरण किया गया और दोनों पर पूर्णतया लागू है। बुद्ध जानते थे कि पुरुषों एवं महिलाओं दोनों के जीवन में काम प्रवृत्ति कितनी बड़ी ताकत है। बुद्ध के अपने शब्दों के अनुसार यह एक ऐसी प्रवृत्ति है जो पुरुष को महिला की दासता और महिला को पुरुष की दासता की ओर ले जाती है। यदि इस प्रवृत्ति को अपनी पूरी ताकत से पनपने का अवसर दिया जाए तो ब्रह्मचर्य के नियम को बचाने के लिए ही उसने दो अलग संघों का गठन किया है।

अब दूसरे मुद्दे पर विचार करते हैं : क्या बुद्ध द्वारा लिए गए निर्णय के अतिरिक्त अन्य कोई निर्णय लिया जा सकता था? जिन महिलाओं ने उसके मत को स्वीकार किया है वह अपरिपक्व महिलायें थीं। उन्हें उसके सिद्धान्त की शिक्षा दी जानी थी और उन्हें उसके अनुशासन के नियमों के अनुसार प्रशिक्षित किया जाना था। इस कार्य को कौन कर सकता था? अपने अतिरिक्त उसने किसको यह कार्य सौंपा? अपने धर्मसंघ के पुरुष भिक्खू के अतिरिक्त किसी अन्य को नही। इसके लिए उन्हें पहले ही अपने सिद्धान्त में शिक्षा तथा अपने अनुशासन में प्रशिक्षित किया जा चुका था और यह है जो उसने किया अब भिक्खुओं को भिक्खुणियों को शिक्षा देने का कार्य सौंप कर भिक्खुओं एवं भिक्खुणियों के मध्य कौन–सा संबंध बनाया गया? यह उठाये जाने वाला आवश्यक प्रश्न था। इसके बिना भिक्खुनी संघ की भिक्खू संघ के प्रति अधीनता का औचित्य स्पष्ट नहीं होता। इस प्रश्न का स्पष्ट उत्तर यह है कि भिक्खुनियों को प्रशिक्षण का कार्य भिक्खुओं को सौंप देनें से उनका आपस में संबंध शिक्षक एवं शिष्य का हो जायेगा। अब शिक्षक एवं शिष्य के संबंध से शिक्षक का शिष्य पर अधिकार हो जाता है तथा शिष्य का शिक्षक के प्रति समर्पण एवं अधीनता का भाव हो जाता है? बुद्ध ने इसके अतिरिक्त और क्या किया?

इस संबंध में यह उपयोगी होगा कि ईसाई चर्च में मठों एवं आश्रमों के मध्य संबंधों की तुलना उपयोगी होगी। क्या आश्रम (नरियाँ) मठों (मनोस्ट्रीज) के अधीन नहीं हैं? निस्संदेह हैं। इसलिए कोई यह कह सकता है कि ईसाईमत में महिलाओं को पुरुषों से हीन माना जाता है? तब बुद्ध द्वारा भिक्खुओं और भिक्खुनियों के मध्य संबंधों को विनियमित करने के लिए की गई व्यवस्था की विभिन्न व्याख्या क्यों की जाती है?

जहाँ तक सुत्त पिट्टक का संबंध है इस आरोप के लिए बिल्कुल कोई आधार नहीं है कि बुद्ध महिलाओं के प्रति भेद–भाव करते थे और पुरुषों को हमेशा उनसे सावधान रहने की नसीहत देते थे।

II.

अब हम बुद्ध का महिलाओं के प्रति रवैये के विशिष्ट उदाहरणों पर विचार करते हैं। क्या बुद्ध महिलाओं को निम्न दर्जे का स्वीकार करते थे? मैं विश्वस्त हूँ कि जो कोई भी बौद्ध धार्मिक साहित्य में बुद्ध द्वारा महिलाओं के संबंध में दिये गये संदर्भों को पढ़ कर प्रभावित होगा कि ऐसा कोई कार्य जिससे महिलायें अपमानित हों, करना

तो दूर रहा बल्कि बुद्ध ने अपने पूर्ण जीवन में महिलाओं को उन्नत करने तथा उनके नैतिक एवं बौद्धिक उत्थान करने का प्रयास किया है।

सामान्यतया भारत के लोगों द्वारा प्राचीन काल से ही पुत्री के जन्म को विपत्ति के रूप में माना जाता है। क्या बुद्ध ने इस संवेदना में कोई भागीदारी निभाई थी? उसका इस प्रश्न के प्रति रवैया पारम्परिक दृष्टिकोण से भिन्न था। जैसाकि सम्राट प्रसन्नजीत को दिये गये परामर्श से स्पष्ट होता है। एक बार राजा प्रसन्नजीत श्रावास्ती में जीता के उद्यान में बुद्ध से मिलने गये। शाही महल से एक दूत आया और उसने उसे सूचना दी कि उसकी पत्नी रानी मल्लिका ने एक पुत्री को जन्म दिया है। यह समाचार सुनकर राजा के चेहरे का रंग बदल गया और वह उदास व खिन्न दिखाई देने लगे। बुद्ध ने चेहरे पर यह परिवर्तन देखा और उससे इसका कारण पूछा। इस संबंध में जानकारी मिलने के बाद बुद्ध ने कहा, "दुखी क्यों होते हो? हे, मानवों के महामहिम, एक बेटी के रूप में सन्तान बेटे से बेहतर सिद्ध हो सकती है संभवतः वह बड़ी होकर बुद्धिमान और सद्‌गुणी बने।.......... कालान्तर में उसका पुत्र महान् कार्य करे और बहुत बड़े–बड़े प्रान्तों पर साम्राज्य करे।

इस प्रश्न के उत्तर में कुछ परिवारों का उत्थान होता है और अन्यों का विनाश होता है, बुद्ध ने भिक्खुओं को बताया होगा कि :

किसी परिवार, भिक्षुक द्वारा प्राप्त की गई महानता कभी समाप्त नहीं होती क्योंकि वे, जो एक बार नष्ट हो जाता है, उसकी इच्छा नहीं करते हैं, वे मरम्मत करते हैं और विनाश नहीं करते हैं, वे संयम से खाते और पीते हैं, वे उस महिला या पुरुष को सत्ता सौंपते हैं जो अमर है। कोई भी परिवार इन चार या इनमें से किसी एक कारण से कभी समाप्त नहीं होते।

चाहे जो भी परिवार भिक्षुक हो उन सभी का अन्त होगा क्योंकि वे जो खोते हैं उसे पाने की इच्छा करते हैं, खराब की मरम्मत करते हैं, संयम से खाते–पीते हैं और सद्‌गुणी महिला या पुरुष को सत्ता में प्रतिष्ठित करते हैं।

कोई भी परिवार हो– उसका इन चारों या इनमें से किसी एक कारण से विनाश होगा। भिक्खुओं को समझाते हुए, बुद्ध ने भिक्षुकों को बताया कि एक राजा "जो जीवन चक्र चलाता और उसका लक्ष्य चक्रवर्ती (विश्व सम्राट) बनना होता है जब वह इस संसार में अवतरित हुआ तो क्या हुआ–

'जब कभी ऐसे सम्राट इस धरती पर अवतरित होते हैं तो इस धरती पर दिखाई देते हैं चक्र, हाथी, घोड़ा, स्वर्ण, महिला, गृह स्वामी और राज्य अधिकारी के रूप में सात रत्न दिखाई देते हैं।

किसी अन्य अवसर पर विश्व में महिलाओं के मूल्य पर बोलते हुए बुद्ध ने कहा था,

"महिला एक सर्वोत्कृष्ट वस्तु है (जैसा कि समालोचक ने संकलित किया है) क्योंकि यह अपरिहार्य उपयोगी इसलिए है कि बोधिसत्व और विश्व के शासक उससे जन्म लेते हैं।"

एक व्यक्ति जिसकी दृष्टि में पुत्री का जन्म एक दुख का अवसर नहीं हो सकता और खुशी का अवसर हो सकता, जिसका यह दृष्टिकोण है कि जिन परिवारों ने अपने कार्यकलापों के लिए महिला को अधिकृत किया वही परिवार पतन से बचे, जिस व्यक्ति को महिला को सात रत्नों में से एक रत्न कहने में कोई हिचकिचाहट नहीं हुई, उस व्यक्ति को महिला से घृणा करने वाला या उनका तिरस्कारक कैसे कहा जा सकता है? महिला समुदाय के प्रति बुद्ध द्वारा प्रतिपादित विशिष्ट वक्तव्य सामान्य संवेदनाओं से युक्त है। क्या कोई यह कह सकता है कि ये परिकलित किया गया है कि महिला को उपहास का पात्र एवं तिरस्कृत वस्तु बनाया जाए।

III.

जो लोग भिक्खुनियों को भिक्खुओं के अधीन करने को सामाजिक बुराई कहते हैं वे इस बात को नहीं समझते कि बुद्ध ने महिलाओं को संन्यास या परिव्रजा की स्वीकृति देकर कितना बड़ा क्रान्तिकारी कदम उठाया था। ब्राह्मण सिद्धान्त के अनुसार महिलाओं को पहले से ही ज्ञान प्राप्ति के अधिकार से वंचित किया हुआ था। जब संन्यास का प्रश्न उठा तो उन्होंने भारतीय महिलाओं के प्रति एक और गलत का किया। संन्यास उन ब्राह्मणों के लिए आदर्श नहीं था जो वेदों की उपासना करते थे और काफी समय तक उपनिषद् को धार्मिक साहित्य की मान्यता देने से मना करते रहे। संन्यास उपनिषद् का आदर्श था तथा उपनिषद् का सिद्धान्त आत्मा ही ब्रह्म है, को समझने पर ही संन्यास का अन्त है। ब्राह्मण संन्यासी जीवन के घोर विरोधी थे। अन्ततः वे कुछ शर्तों के साथ झुके। इनमें से एक शर्त यह थी कि महिलायें (और शूद्र) संन्यास के पात्र नहीं होंगे। इस कारण को समझना बहुत ही महत्त्वपूर्ण है कि ब्राह्मणों ने महिलाओं को संन्यास ग्रहण करने से रोक क्यों लगा रखी थी क्योंकि इससे ब्राह्मणों का महिलाओं के प्रति रवैया समझने में सहायता मिलती है और यह

रवैया बुद्ध के रवैये से बिल्कुल भिन्न है। मनु द्वारा कारण वर्णित किया गया है। इसे निम्न प्रकार से पढ़ा जाए :

IX.18 महिलाओं को वेद पढ़ने का कोई अधिकार नहीं है। इसलिए उनके संस्कार बिना वेद–मन्त्र पढ़े किये जाते हैं। महिलाओं को धर्म की कोई जानकारी नहीं है क्योंकि उन्हें वेदों की जानकारी प्राप्त करने का कोई अधिकार नहीं है। वेद–मन्त्रों का उच्चारण पापों के नाश के लिए उपयोगी है। चूँकि महिलायें असत्य हैं वे वेद–मंत्रों का उच्चारण नहीं कर सकती।

यद्यपि बुद्ध की अपेक्षा मनु परवर्ती था उसने प्राचीन धर्म सूत्र में प्रतिपादित पुराने दृष्टिकोण को उद्घाटित किया। महिलाओं के प्रति यह दृष्टिकोण भारत की महिलाओं का तिरस्कार एवं उनके प्रति अन्याय था। यह अन्याय था क्योंकि बिना किसी औचित्य के उन्हें ज्ञान अर्जित करने के अधिकार से वंचित किया गया जो कि प्रत्येक मानव का जन्मसिद्ध अधिकार था। यह तिरस्कार इसलिए था क्योंकि उन्हें ज्ञान अर्जन के अवसर से वंचित करने के पश्चात् उन्हें ज्ञान के लिए असत्य जैसा मलिन घोषित कर दिया गया था और इसलिए उन्हें संन्यास ग्रहण करने की स्वीकृति न दी जाए क्योंकि संन्यास को ब्रह्म के पास पहुँचने का मार्ग बताया गया है। उन्हें न केवल अपनी आध्यात्मिक क्षमता प्राप्त करने से वंचित किया गया बल्कि उन्हें ब्राह्मणों द्वारा किसी आध्यात्मिक क्षमता प्रापत करने के अयोग्य घोषित किया गया था।

यह महिलाओं के प्रति निर्दयी व्यवहार है। इसकी कोई समानता नहीं है, जैसाकि प्रो. मैक्समूलर ने कहा है, "मानव ईश्वर से बहुत दूर हो सकता है परन्तु धरती पर मनुष्य से अधिक ईश्वर के समीप कोई नहीं है, धरती पर ईश्वर के समान मनुष्य के सिवाय और कोई नहीं है" यदि यह पुरुष के लिए सत्य है तो यह महिला के लिए सत्य क्यों नहीं है। ब्राह्मणों के पास कोई उत्तर नहीं है।

परिव्रज़िका जीवन में महिलाओं के प्रवेश द्वारा, बुद्ध ने एक ही बार में इन दोनों बुराइयों को समाप्त कर दिया। उन्होंने उन्हें ज्ञान का अधिकार तथा पुरुषों के साथ–साथ अपनी आध्यात्मिक क्षमताओं को समझने का भी अधिकार दिया। यह एक क्रान्ति एवं भारत में महिलाओं को स्वतंत्रता दोनों थे, प्रो. मैक्समूलर के शब्दों में उद्धरण इस प्रकार है :

"भारत का इतिहास हमें पढ़ाता है कि पुराने ब्राह्मणवादी कानून के पीड़ित करने वाले बन्धक अन्ततः टूट गये, इसमें बिल्कुल भी सन्देह है कि हमें बौद्ध–धर्म को

व्यक्ति स्वतन्त्रता के अधिकारों और विशेषकर समाज की बेड़ियों (रूढ़ियों) से ऊपर उठने के अधिकार के प्रबल समर्थक के रूप में मान्यता देनी चाहिए।

अन्यथा जब कभी आध्यात्मिक स्वतन्त्रता के लिए इच्छा जाग्रत होती तो जंगल में जाकर आध्यात्मिक रूप से स्वतन्त्रता का जीवन जीना होता है।''

बुद्ध द्वारा भारतीय महिलाओं को दी गई यह स्वतन्त्रता वास्तव में बहुत बड़े महत्त्व की बात है और भिक्खुनियों के भिक्खु संघ की अधीनता में होने से जो कलंक लगे थे वे सब मिट गये हैं। यह कोई निरर्थक स्वतन्त्रता नहीं थी। यह स्वतन्त्रता भी जिससे वे स्पष्ट एवं व्यक्त रूप से आनन्दित हो रही थी और गा रही थी .... वास्तव में स्वतन्त्र होकर कितनी सम्मानित रूप से आज़ाद हूँ मैं मुक्ता .... एक भिक्खुनी जो ब्राह्मण लड़की थी, गा रही थी। दूसरी भिक्खुनी भी ब्राह्मण लड़की थी, और गा रही थी कि मैं एक पहाड़ पर बैठकर अपने आध्यात्म से आज़ादी की साँस ले रही है।

जैसा कि श्रीमती रायस् डेविड ने कहा है—

''अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने के कार्य में गतिशीलता लाने के लिए उन्होंने पूर्ववर्ती अपनी ईसाई बहनों की तरह सामाजिक घरेलू सफलता के मापदण्ड निर्दिष्ट किये हैं, वे अपना संसार भूल गई है परन्तु इसके बदले में उन्हें आश्रित होने की बजाय अपने निजी अस्तित्व का दर्जा प्राप्त किया है जो कि प्रशंसनीय, पोषित एवं परिरक्षित है। कपड़ों से लिपटा मुँडा सिर, एक समान कपड़े पुरुष संन्यासियों के समान सुफेद चोगे और सफेद अंग वस्त्रों से ऐसा प्रतीत होता है कि बहने कही आने—जाने के लिए स्वतन्त्र थीं और वनों में विचरण एवं पहाड़ों पर चढ़ते हुए सुख की साँसें ले रही थी।''

महिलाओं को भिक्खुनियाँ बनने की स्वीकृति देकर बुद्ध ने उनके लिए न केवल स्वतंत्रता का मार्ग खोला परन्तु उन्होंने बिना किसी लिंग के भेदभाव के प्रतिष्ठा भी प्राप्त करने की स्वीकृति प्रदान की। श्री राचस डेनिस के शब्दों में उनके द्वारा प्राप्त की जा सकने वाली स्वतंत्रता है?

अन्य संन्यासी तपस्वी के साथ परिणय की खुशी को कम से कम उसके भाई अराहन्त द्वारा विवेकी पुरुष होने के नाते बिना लिंगभेद के मान्यता प्रदान की गई। इस प्रकार उसने आध्यात्मिकता की वास्तविकता को समझा, उसने पिट्टक में आर्यस् के नाम से धार्मिक व्यवस्था की बौद्धिक सहचारिता परस्पर आदान—प्रदान उनके साथ

की जिनके साथ उसने सभी चीज़ों को उनके वास्तविक रूप से देखने की शक्ति प्राप्त की थी, इस शक्ति को बुद्ध ने चेतना कहा है।

एक भिक्खुनी सोमा ने कहा कि हमारे आर्यस् के अनुसार महिला की प्रकृति हमारे लिए अड़चन बन सकती है;

"वह एक व्यक्ति में क्या हो सकता है जो दूसरे के लिए महत्त्वपूर्ण हो उनकी अन्तर्रात्मा में जीवन के नियम वास्तव में समाविष्ट है?

एक का प्रश्न दूसरे के लिए कैसे उत्पन्न होता है

क्या मैं उन मामलों में एक महिला हूँ या

क्या मैं एक पुरुष हूँ? या मैं क्या नहीं हूँ तब?

इस प्रकार मैं संन्यासी हूँ और वार्तालाप के लिए उपयुक्त हूँ"।

सब कुछ ऐसा नहीं है। बुद्ध द्वारा और महिलाओं को भिक्खुनी बनने की स्वीकृति देने से उन्होंने उनका पुरुष के साथ समानता का मार्ग प्रशस्त कर दिया है। श्रीमती रायस् डेविड द्वारा अवलोकित के अनुसार "यह सत्य है कि भिक्खुनियों को तकनीकी रूप से सदैव के लिए भिक्खुओं के अधीन कर दिया गया है। समान रूप से यह स्पष्ट है कि बौद्धिकता एवं अधिक प्रतिष्ठा द्वारा थेरी मित्रतावश समानता प्राप्त कर सकते हैं। सालम्स XXX, VII में एक उदाहरण है जिसमें बुद्ध ने आध्यात्मिकता प्राप्त करने के लिए अपने आपको महान् कासापा, जो मठ के प्रमुख के उत्तराधिकारी के रूप में संस्थापक के साथ अपने आपको जोड़ा। इस संबंध में यह नोट किया जाये कि बुद्ध ने इस प्रकार कौमार्यता पर कोई पुरस्कार नहीं नियत किया था। उन्होंने अपना मार्ग सभी वर्गों—विवाहित, अविवाहित, विधवाओं और वेश्याओं के लिए भी खुले रखे। सभी पुरुषों के साथ वरीयता, स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा एवं समानता प्राप्त कर सकते थे।

IV.

इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि भारत में महिलाओं की स्थिति, जो कभी होती थी, में लगातार गिरावट आई है। कोई भी इस संबंध में अधिक नहीं बता सकता कि प्राचीन समय में उन्होंने राजनीतिज्ञता में कितनी या कैसी भूमिका निभाई है। परन्तु इसमें कोई संदेह नहीं है कि वे देश के बौद्धिक एवं सामाजिक जीवन में

बहुत ही उच्च पदों पर आसीन रही होंगी।

अथर्ववेद से स्पष्ट है कि एक समय था जब स्त्री उपनयन की हकदार थी। जब एक लड़की अपना ब्रह्मचर्य समाप्त कर लेती तो उसे विवाहयोग्य कहा जाता था। श्रुत–सूत्र से यह स्पष्ट है कि महिलायें वेद–मंत्रों का उच्चारण कर सकती थीं और महिलाओं को वेदन पढ़ना सिखाया जाता था। इस तथ्य का प्रमाण पाणिनी अष्टाध्यायी में दिया गया है कि महिलायें गुरुकुल में जाती थीं और वेद की विभिन्न शाखाओं का अध्ययन करती थीं और मीमांसा में पारंगत हो जाती थी। पातंजलि महाभाष्य में दर्शया गया है कि महिलायें अध्यापक थीं और छात्राओं को वेद पढ़ाती थीं। महिलायें पुरुषों के साथ धर्म, दार्शनिकता और अध्यात्म विद्या के अत्याधिक जटिल विषयों पर सार्वजनिक रूप से विचार–विमर्श की कहानियाँ किसी रूप में कम नहीं हैं। जनक एवं सुलभ, यज्ञवाल्क्य और गार्गी, यज्ञवाल्क्य और मैत्रेयी तथा शंकराचार्य एवं विद्याधारी के बीच सार्वजनिक वाद–विवाद इस बात को दर्शाता है कि मनु से पूर्व समय में भारतीय महिला ज्ञान और शिक्षा के उच्चतम शिखर तक पहुँच सकती थी।

इस बात पर कोई विवाद नहीं हो सकता कि किसी समय महिलाओं को बहुत अधिक सम्मान दिया जाता था। प्राचीन भारत में रतनियों में से जो राजा के अभिषेक में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती थी वह रानी होती थी और राजा उसको अन्यों की भाँति उपहार दिया करते थे। राजा केवल इस पर चुनी गई रानी का ही सम्मान नहीं करते थे बल्कि निम्न जातियों की अपनी अन्य पत्नियों का भी पूरा सम्मान करते थे। इसी प्रकार राज्यअभिषेक समारोह के पश्चात् श्रेणी की मुखिया महिलाओं को भी अभिवादन करते थे।

विश्व के किसी भी भाग की तुलना में भारत में महिलाओं का स्थान बहुत ऊँचा था। उनकी गिरावट के लिए कौन जिम्मेदार था? हिन्दुओं को कानून देने वाला मनु था। इसका कोई और उत्तर नहीं हो सकता। इस संदेह में कोई गुंजाइश न रहे, इसलिए महिलाओं के संबंध में मनु द्वारा बनाये गये कानून उद्धृत करता हूँ और इनको मनु–स्मृति में देखा जा सकता है।

II. 213. इस (संसार) में महिलाओं का स्वभाव है कि पुरुष को पथभ्रष्ट करें। इस कारण विवेकी पुरुष कभी भी महिलाओं (सहचर्य) के साथ अरक्षित नहीं है।

II. 214. महिलायें (इस) संसार को भ्रमित करने में समर्थ हैं, न केवल मूर्ख परन्तु ज्ञानी पुरुष भी भ्रमित हो सकते हैं और उन्हें अपनी कामना और दोष का दास (बना) कर सकती है।

II. 215. किसी को एकान्त स्थान पर अपनी माता, बहन या पुत्री के साथ नहीं बैठना चाहिए क्योंकि इन्द्रियाँ बलवान् होती हैं और ज्ञानी पुरुष को भी अपने वशीभूत कर लेती हैं।

ix. 14. महिलायें सौन्दर्य की परवाह नहीं करती और न ही उनका ध्यान आयु पर केन्द्रित होता है (चिंतन) (यह पर्याप्त है कि) वह एक पुरुष है, वे अपना समर्पण सुन्दर को तथा कुरूप को भी कर देती हैं।

ix. 15. उनके पुरुषों के प्रति मनोवेग से, अपने चंचल स्वभाव, स्वाभाविक निष्ठुरता से वे अपने पतियों के प्रति भी बेवफा हो जाती हैं लेकिन उन्हें इस (संसार) में सावधानीपूर्वक नियंत्रित किया जा सकता है।

ix. 16. उनकी मनोवृति को जानते हुए, जो उनके सृजन के समय प्राणियों के सृजक ने उनमें भरी थी, (प्रत्येक) पुरुष को उनको रक्षित करने के लिए अत्यधिक कर्मठता से प्रयास करने होंगे।

ix. 17. (उनका सृजन करते समय) मनु ने महिलाओं को आसन (उनका मनपसंद) और आभूषण, मलिन कामना, कोप, छलकपट, द्वेष और बुरे आचरण आवंटित किये हैं।

यह दर्शाता है कि मनु की राय में महिला कितनी गिरी हुई थी। महिलाओं के विरुद्ध मनु के नियम इस दृष्टिकोण के साथ दृष्टान्त रूप में हैं।

महिलायें किसी भी परिस्थिति में स्वतंत्र नहीं हो सकती है। मनु की राय में:—

ix. 2. रात—दिन महिलायें अपने (परिवारों) (के) पुरुषों के अधीन होनी चाहिए और यदि वे अपने आप को इन्द्रियजन्य सुखों से जोड़ लेती है तो उन्हें किसी एक के नियंत्रण में रखा जाए।

ix. 3. उसका पिता बचपन में (उसका) नियंत्रण करेगा, युवा अवस्था में पति (उसका) नियंत्रण करेगा, वृद्ध अवस्था में उसके बेटे (उसका) नियंत्रण करेंगे, एक महिला कभी भी स्वतंत्र नहीं है।

ix. 5. महिलाओं को विशेषकर दुष्प्रवृत्तियों की माह चाहे देखने में वे कितनी भी तुच्छ हो, के प्रति सावधान किया जाए, यदि उन्हें सावधान न किया गया तो वे दोनों परिवारों के लिए मुसीबत खड़ी कर सकती हैं।

ix. 6. सभी जातियों का गुरुतर दायित्व समझते हुए, कमजोर पति (अवश्य) भी अपनी पत्नियों को रक्षित करने का प्रयास करे।

v. 147. अपने स्वयं के निजी घर में भी एक लड़की द्वारा, एक युवा महिला द्वारा या वृद्ध महिला द्वारा स्वतंत्र रूप से कुछ न किया जाये।

v. 148. बचपन में लड़की को अपने पिता के, युवावस्था में अपने पति के, जब उसके पति की मृत्यु हो जाये तो अपने पुत्र के नियन्त्रण में रहना चाहिए; महिला कभी भी स्वतंत्र नहीं होनी चाहिए।

v. 149. वह अपने पिता, पति या बच्चों से अलग होने की इच्छा न करे, उनको छोड़ने से वह दोनों (अपने स्वयं और अपने पति के) परिवारों को निन्दनीय करेगी।

महिला को तलाक लेने का अधिकार नहीं है।

v. 45. पति को पत्नी के साथ एक माना जाये इसका अर्थ है कि महिला एक बार विवाहित हो जाने के बाद अलग नहीं हो सकती।

अनेक हिन्दू यहाँ रुक जाते हैं क्योंकि यह सम्पूर्ण कहानी मनु के तलाक के कानून की है और अपनी अन्तर्रात्मा को सांत्वना द्वारा इसका सम्मान इस सोच के साथ करते हैं कि मनु ने विवाह को पवित्र बंधन माना है और इसलिए तलाक की भी स्वीकृति नहीं दी है। निस्संदेह यह सच्चाई से कोसों दूर है। उसने तलाक के कानून का बिल्कुल भिन्न उद्देश्य रखा है। यह पुरुष को महिला के साथ बाँधने के लिए नहीं था परन्तु यह महिला को पुरुष के साथ बाँधने के लिए था तथा पुरुष को आजाद रखना था।

मनु ने पुरुष को अपनी पत्नी का परित्याग करने से नहीं रोका है। वास्तव में उसने उसे अपनी पत्नी के परित्याग की ही स्वीकृति नहीं दी बल्कि उसने उसको बेचने की भी स्वीकृति दी है। परन्तु उसने पत्नी को स्वतंत्र होने से रोका है। देखें मनु ने कहा है :–

ix. 46. न तो बिक्री और न ही विवाह–विच्छेद द्वारा पत्नी अपने पति से मुक्त हो सकती है।

इसका अर्थ यह है कि एक पत्नी बिक्री या उसके पति द्वारा विवाह–विच्छेद करने पर वह किसी की भी कानूनी धर्मसंगत पत्नी नहीं बन सकती चाहे उसे संबंध–विच्छेद पर खरीद कर प्राप्त किया गया है। यदि यह सरासर गलत या न्यायविरुद्ध नहीं है तो कुछ भी गलत या न्याय विरुद्ध नहीं हो सकता।

परन्तु मनु अपने कानून बनाते समय न्याय या अन्याय की सोच से चिन्तित नहीं था। वह महिलाओं को स्वतंत्रता से वंचित करना चाहता था जो उनके पास बौद्ध शासन में थी। मनु इस स्वतंत्रता को नहीं चाहता था और इसे रोकने के लिए महिलाओं को उनकी स्वतंत्रता से वंचित कर दिया गया।

सम्पत्ति के मामले में मनु ने पत्नी के दर्जे को कम कर दास बना दिया।

ix. 146. एक पत्नी, एक पुत्र और एक दास, इन तीनों की कोई सम्पत्ति नहीं होगी, सम्पदा जो वे अर्जित करेंगे उसकी होगी जिससे वे संबंधित हैं।

जब वह विधवा हो जायेगी, मनु उसे आजीविका की स्वीकृति देते हैं यदि उसका पति संयुक्त था, और उसके (पति) परिवार से अलग थी तो उसके पति की सम्पत्ति से जायदाद की स्वीकृति दी है। परन्तु मनु ने कभी भी सम्पत्ति पर किसी प्रकार के अधिकार की स्वीकृति प्रदान नहीं की है।

मनु के कानूनों के अधीन महिला दैहिक सज़ा की पात्र है और मनु पति को अपनी पत्नी की पीटने की स्वीकृति देते हैं :

VIII. 299. पत्नी, पुत्र, दास, शिष्य और सगा छोटा भाई, जिसने गलती की हो, को रस्सी या बेंत से पीटा जा सकता है। मनु के मतानुसार महिला को ज्ञान का अधिकार नहीं है। मनु ने उसके लिए वेद अध्ययन वर्जित किया है।

II. 66. महिला के लिए भी संस्कारों का निष्पादन आवश्यक है और यह संस्कार बिना वेद–मंत्रों के उच्चारण के निष्पादित किये जाएँ।

ब्राह्मणवाद के अनुसार यज्ञ व दान धर्म की आत्मा होते हैं। मनु यज्ञ करने के लिए महिलाओं को रोकते हैं। मनु निर्दिष्ट करते हैं कि :

ix. 36–37. वेदों द्वारा नियत दैनिक यज्ञ महिला द्वारा न किया जाये। यदि वह ऐसा करती है तो वह नरक में जाएगी।

उन्हें ऐसे यज्ञ करने में असमर्थ बनाने के लिए मनु उन्हें ब्राह्मण पुरोहितों से सहायता एवं उनकी सेवायें प्राप्त करने से रोकते हैं।

महिलाओं द्वारा किये यज्ञ में ब्राह्मण कभी भोजन न करें। महिलाओं द्वारा किये गये यज्ञ अशुभ होते हैं और ईश्वर को स्वीकार्य नहीं है। अतः इनसे बचना चाहिए।

अन्ततः जीवन के आदर्श के संबंध में मनु ने महिला से कुछ कहा है। यह उपयुक्त होगा कि उन्हीं के शब्दों का उल्लेख किया जाए :

v. 151. उसे जिस किसी को उसके पिता द्वारा या पिता की स्वीकृति से उसके भाई द्वारा सौंपा जाता है, वह जब तक जीवित रहेगी तब तक उसकी आज्ञा का पालन करेगी और जब पति की मृत्यु हो जाए, तो वह उसकी स्मृति को धूमिल नहीं करेगी।

v. 154. यद्यपि पति सदगुण विहीन या कहीं और भोग–विलास कर रहा हो या अच्छे गुणों से रहित हो तो भी निष्ठावान् पत्नी की भांति पति का ईश्वर के रूप मं हमेशा सम्मान करे।

v. 155. अपने पति से अलग महिला द्वारा कोई यज्ञ, कोई व्रत, कोई उपवास न किया जाये, यदि एक पत्नी अपने पति की आज्ञा का पालन करती है तो केवल इसी कारण से उसे स्वर्ग की प्राप्ति होगी।

अब वह संगत पाठ प्रस्तुत है जो मनु द्वारा महिलाओं के लिए नियत आदर्शों का महत्त्वपूर्ण अंश है :–

v. 153. पति जो उससे पवित्र मंत्रों के साथ विवाह करता है, वह अपनी पत्नी का हमेशा खुशी का स्रोत इस जन्म तथा आगामी जीवन में भी बना रहेगा।

v. 150. वह अपने घरेलू कार्यों का प्रबंधन हमेशा तत्परता, खुशी व कुशलता से करे व अपने बर्तनों को धोने में सावधान एवं खर्चे में मितव्ययी रहे।

इसे हिंदू महिलाओं के लिए अत्यधिक उच्च्य आदर्श मानते हैं।

महिलाओं की असमर्थताओं रूपी इमारत की मुंडेर पर विशिष्ट प्रकार का पत्थर लगाते हुए मनु ने नया नियम घोषित किया कि महिला की हत्या केवल एक उपपातक अर्थात् यह एक लघु अपराध था।

xi. 167. मद्य, महिला, शूद्र, वेश्य या क्षत्रिय को मारना तथा आस्तिकता (यह सभी) लघु अपराध है।

हर कोई आसानी से समझ सकता है कि शूद्र, वेश्य या क्षत्रिय की हत्या को केवल एक उपपातक क्यों कहा होगा? वह यह स्थापित करना चाहते थे कि ब्राह्मण

इन सबसे श्रेष्ठ है और ब्राह्मण की हत्या ही महापातक है। परन्तु उन्होंने यह नियम महिलाओं पर क्यों नहीं लागू किया?

क्योंकि मनु की नज़रों मे महिला किसी मूल्य की नहीं है।

इन उद्धरणों के आधार पर भी क्या कोई संदेह कर सकता है कि यह मनु था जो भारत में महिलाओं के पतन के लिए जिम्मेदार था। अधिकतर लोग शायद इससे अवगत हों। परन्तु वे दो बातें जानने के इच्छुक प्रतीत नहीं होते। महिला के संबंध में मनु के नियमों में कुछ नया या चौंका देने वाला नहीं है। ये ब्राह्मणों के तब के विचार हैं जबसे ब्राह्मणवाद ने भारत में जन्म लिया है। मनु पूर्व यह केवल सामाजिक सिद्धान्त के रूप में विद्यमान थे। मनु ने केवल सामाजिक सिद्धान्त को राज्य के कानून के रूप में परिवर्तित कर दिया। दूसरी बात जो वे नहीं जानते, वह कारण है जिससे मनु ने महिलाओं को असमर्थ बनाया। वह यह है कि आर्य समाज के दो मुख्य वर्ग शूद्र एवं महिलाओं की भीड़ बुद्ध धर्म को अपनाने के लिए उमड़ रही थी और वादी मनु को बौद्ध धर्म की ओर बढ़ रही महिलाओं के बहाव पर बाँध बाँधना था।

इसलिए मनु ने ये असमर्थतायें महिलाओं पर थोपीं थीं कि वे स्थायी रूप से अपंग हो जाएँ। जिनको इस पर संदेह हो वह मनु स्मृति में दी गई निम्नलिखित निषेधाज्ञाओं पर विचार करें :–

v. 88. व्यक्ति की मृत्यु पर किये जाने वाले अन्तिम संस्कार एवं अन्त्येष्टि उन व्यक्तियों की न की जाए जो अन्तर्जातीय माता–पिता से उत्पन्न हों, जो एकान्तवास के अभ्यस्त हों और जिन्होंने अपना जीवन आत्महत्या कर समाप्त कर लिया हो।

v. 89. ऐसे संस्कार उन महिलाओं के भी न किये जायें, जो अपने धर्म के विरोधी धर्म को स्वतंत्र रूप से अपनाती हैं, जिन्होंने अपने गर्भ में बच्चे को आहत कर दिया हो या उनके पति जिन्होंने ऐसा करवाया हो तथा जो मद्यपान करती हों।

अन्य के साथ इस निषेधाज्ञा का उद्देश्य (1) जो एकान्तवास का अभ्यस्त हो और (2) महिलायें जिन्होंने अपने धर्म–विरोधी धर्म को अपना लिया हो। इस निषेधाज्ञा में एकान्तवास को परिव्राजक के संदर्भ में लिया गया है अर्थात् वे जिन्होंने अपने घरों का परित्याग कर दिया है और संन्यास धारण कर लिया है और धर्म–विरोधी धर्म को अपनाने के संबंध में कोई संदेह नहीं है कि यहाँ मनु के मस्तिष्क में बुद्ध धर्म था। अतः यह स्पष्ट है कि जब मनु ने घोषित किया कि एकान्तवासी या जो महिला अपने

धर्म–विरोधी धर्म को अपना ले, का अन्तिम संस्कार या अंत्येष्टि न की जाए। मनु ने परिवार के उस सदस्य पुरुष या महिला का अंतिम संस्कार या अत्येष्टि करने की निषेधाज्ञा जारी की थी जिसने बौद्ध धर्म को अपना लिया था। दूसरे शब्दों में वह चाहते थे कि ऐसे लोगों के साथ ऐसा व्यवहार किया जाए जैसे वह असम्बद्ध हो और परिवार के सदस्य न हों। मनु बौद्ध धर्म का सबसे बड़ा विरोधी था। महिलाओं पर थोपी गई निषेधाज्ञाओं का रहस्य है। चूँकि वे जानते थे कि यदि घर को बौद्ध धर्म के हस्तक्षेप से बचाना है तो महिला को नियंत्रण में रखना आवश्यक है और उसने ऐसा ही किया। भारत में महिलाओं के स्तर में गिरावट एवं पतन का जिम्मेदार मनु को ठहराया जाना चाहिए न कि बुद्ध को।

कुछ ही पृष्ठों में मैंने हिन्दू महिला के उत्थान एवं पतन की कहानी प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। मैंने यहाँ यह स्पष्टीकरण भी देने का प्रयास किया है कि उनके पतन का प्रवर्तक कौन है और उसने ऐसा क्यों किया है। मुझे आशा है कि आप पक्षपातशून्य एवं निष्पक्ष रूप से अनुभव करेंगे कि बुद्ध को इस त्रासदी के लिए जिम्मेदार नहीं माना जा सकता। यदि बुद्ध ने महिला को उन्नत बनाने के लिए कोई प्रयास किया है तो यह प्रयास उसको उन्नत कर पुरुष के समक्ष लाना है।

(19)

सन्तों का साहित्य मनुष्य के नैतिक–उत्थान में सहायता कर सकता है।

मुझे जानकर प्रसन्नता हुई कि औरंगाबाद में एकनाथ अनुसंधान समिति का गठन हुआ है। मुझे युवावस्था में महाराष्ट्र के संन्यासियों की साहित्यिक रचनायें बहुत अच्छी लगती थीं। मैं कह सकता हूँ इस साहित्य को पढ़ने से मनुष्य के नैतिक उत्थान में कितना बड़ा योगदान हो सकता है। मैं समिति की सफलता की कामना करता हूँ और लोक शिक्षा समिति की ओर से हर संभव सहायता का वचन देता हूँ।

औरंगाबाद

2.9.1951

हस्त./–

बी.आर. अम्बेडकर

(एक नाथ दर्शन (मराठी) खण्ड–। श्री एकनाथ, संशोधन मन्दिर, 128 मराठावाड़ा, सुलतान बाजार, हैदराबाद, 1952)

20

सारांश

दुविधा में जनता

द्वारा

बी. आर. अम्बेडकर

एम.ए.पी.एच.डी. साइंस,

बार–एट–लॉ

जाति के संहार के लेखक

....

'राजगृह'

दादर

बम्बई–14

दुविधा में जनता

विषय–सूची

अध्याय–1 सभ्यता जो अपवादी है

अध्याय–2 वर्गीकृत व्यवस्था की आततायिता

अध्याय–3 लाखों से खण्डों में

अध्याय–4 वीज़ा के लिए प्रतीक्षा

अध्याय–5 अस्पृश्यों का आन्दोलन

अध्याय–6 दुविधा में अस्तित्व

अध्याय–7 विधिहीनता ही विधि संगत है

अध्याय–8 समान्तर मामले

अध्याय–9 दास एवं अस्पृश्य

अध्याय–10 एक शाश्वत सत्य

अध्याय–11 अस्पृश्य एवं शान्त ब्रिटेन

अध्याय–12 हिन्दू सुधारकों के कार्य

अध्याय–13 अस्पृश्यों को ईसाई बनाना

अध्याय–14 श्री गाँधी की संरक्षता

अध्याय–15 अस्पृश्य एवं उनका उद्‌भव

अध्याय–16 अस्पृश्य एवं उनकी नियति

सारांश

अध्याय–1

सभ्यता जो अपवादी है

I अन्य कातीय विचार

II विलुप्त वर्गों के माध्यम से दृष्टिपात

(क) प्रारम्भिक कबीले (ख) आपराधिक कबीले (ग) अस्पृश्य

III हिन्दू सभ्यता द्वारा प्रभावित उनकी स्थिति

IV इन वर्गों की समस्याओं में अन्तर

अध्याय–2

वर्गीकृत व्यवस्था की आततायिता

1. हिन्दू सामाजिक संगठन
2. वर्गीकरण बनाम असमानता
3. इसकी वास्तविकता
4. इसकी असमानता

अध्याय–3

लाखों से खण्डों में

1. अस्पृश्यों की जनसंख्या असीमित है।
2. वर्ष 1911 की जनगणना और पृथक गणना का प्रथम प्रयास

3. वर्ष 1911 की जनगणना के निष्कर्षों की पुष्टि

4. लोथियन समिति और कोई अस्पृश्य नहीं पर हिन्दू आक्रोश

5. आक्रोश

6. पिछड़ी जातियों एवं मुसलमानों का रवैया

अध्याय–4

वीज़ा के लिए प्रतीक्षा

1. अस्वच्छता तथा अपशुकुन

2. अस्पृश्यता एवं हिन्दू

3. अस्पृश्यता एवं पारसी

4. अस्पृश्यता एवं मुसलमान

5. न मनुष्य और न ही भाई यद्यपि बन्धु–बान्धव

अध्याय–5

अस्पृश्यों का आन्दोलन

1. कठिन परिश्रम में अन्तराल

2. सड़कों के प्रयोग के अधिकार के लिए संघर्ष

3. जल लेने के अधिकार के लिए संघर्ष

4. मन्दिरों में पूजा के अधिकार के लिए संघर्ष

5. स्वच्छ जीवन के लिए संघर्ष

अध्याय–6

दुविधा में अस्तित्व

1. अस्पृश्यों के आन्दोलन के प्रति हिन्दू प्रतिक्रिया
2. निष्ठुर दमन के लिए कानूनरहित साधन
3. अस्पृश्य–एक कमज़ोर ताकत
4. निर्लज्ज पक्षपाती अधिकारी
5. बन्दूकों को शान्त कराना
6. सज़ा की एक नई किस्म

अध्याय–7

विधिहीनता ही विधिसंगत है

1. धर्म के लिए अधर्म
2. मनु और धर्म
3. आधुनिक प्रतिरूप
4. आचरण एवं दृष्टिकोण पर धर्म का प्रभाव

अध्याय–8

समान्तर मामले

1. रोम में दासता
2. इंग्लैण्ड में कृषि दासता
3. यहूदी और दासता
4. नीग्रो और दासता

अध्याय–9

दास एवं अस्पृश्य

1. भारत में दासता
2. कानूनी रूप से दासता
3. यथार्थ रूप से दासता
4. विरोधाभास एवं इसका स्पष्टीकरण

अध्याय–10

एक शाश्वत सत्य

1. एक कलंक जिसे मिटाया नहीं जा सकता
2. कानून एवं धर्म
3. बुद्धिजीवियों द्वारा निभाई गई भूमिका
4. दर्जों का वर्गीकरण और सांझे मंच को कमज़ोर बनाना
5. चतुर्वर्ण और जन–समुदाय निर्बलीकरण

अध्याय–11

अस्पृश्य एवं शान्त ब्रिटेन

1. अस्पृश्य एवं ब्रिटेन की भारत पर विजय
2. ब्रिटिश सरकार एवं अस्पृश्यों की शिक्षा
3. ब्रिटिश सरकार एवं अस्पृश्यों का सार्वजनिक सेवा में प्रवेश
4. ब्रिटिश सरकार एवं सामाजिक सुधार
5. ब्रिटिश सरकार एवं अस्पृश्यों को लाभ

अध्याय–12

हिन्दू सुधारकों के कार्य

1. बुद्ध एवं सामाजिक सुधार
2. हिन्दू सुधारक एवं उनके कार्य
3. आधुनिक भारत में समाज–सुधार की उत्पत्ति
4. सुधार आन्दोलन की गुजांइश
5. सुधारकों की कार्यशीलता
6. हिन्दू युवक एवं समाज सुधार

अध्याय–13

अस्पृश्यों को ईसाई बनाना

1. धर्मान्तरण के प्रति हिन्दू विरोध
2. ईसाई मत का धीमा विकास
3. एक गलत मार्ग
4. ईसाई मत और अन्धविश्वास की वापिसी
5. ईसाई मत एवं धर्मान्तरणों की सामाजिक स्थिति

अध्याय–14

श्री गाँधी की संरक्षता

1. एक संत और एक राजनीतिज्ञ
2. महान् परित्याग
3. अस्पृश्यों के लिए उसके कार्य

4. दासता का गाँधीवादी मार्ग

5. एक राजनीतिज्ञ एवं एक सन्त

अध्याय–15

अस्पृश्य एवं उनका उद्भव

1. जाति का सिद्धान्त

2. विजय का सिद्धान्त

3. मनु का सिद्धान्त

4. अस्वच्छता का सिद्धान्त

5. एक नया सिद्धान्त

अध्याय–16

अस्पृश्य एवं उनकी नियति

1. भीतर एवं बाहर

2. आध्यात्मिक गृह के रूप में हिन्दूवाद

3. गीता एवं अस्पृश्यों की आशा

(21)

दी महारों: वे कौन थे तथा वे कैसे अस्पृश्य बने?

इस लेख में, मैं तीन प्रश्न उठाना प्रस्तावित करता हूँ और उनका उत्तर देने का प्रयास करूँगा जो कि मेरी समझ के अनुसार अत्यधिक उपयुक्त उत्तर होंगे। ये प्रश्न हैं: (1) माहर कौन थे? (2) वे गाँव से बाहर क्यों रहते हैं? (3) उनको अस्पृश्य के रूप में वर्गीकृत क्यों किया गया?

माहर कौन है?

श्री विल्सन ने माहर शब्द की उत्पत्ति महाराष्ट्र शब्द से की है और सुझाव दिया है कि महाराष्ट्र का अर्थ माहरों का देश है। महार शब्द की उत्पत्ति गुजरों के देश 'गुजराष्ट्र' और सोराज्य का देश 'सौराष्ट्र' के सादृश्य होने का समर्थन किया गया है। महार शब्द की इस उत्पत्ति पर आपत्ति दो विभिन्न आधारों पर की गई है, एक आपत्ति इस दृष्टिकोण पर आधारित है कि महाराष्ट्र शब्द का अर्थ महार देश से नहीं है परन्तु इसका अर्थ महान् देश है। दूसरी आपत्ति जो इसकी उत्पत्ति पर की गई है वह इस विचार पर आधारित है कि महार जो वर्तमान में अपनी सामाजिक हैसियत में इतने गिरे हुए हैं कि यह बिल्कुल भी नहीं माना जा सकता कि वे इतिहास में कभी भी देश के शासक की प्रतिष्ठित स्थिति में रहे हो। यह मेरा विचार है कि श्री विल्सन द्वारा प्रस्तुत की गई उत्पत्ति दो विभिन्न कारणों से समर्थन के योग्य नहीं है। विल्सन द्वारा प्रस्तावित उत्पत्ति को रद्द करने के लिए प्रथम कारण निम्न शब्दों में सूत्र बद्ध किया गया है: यह स्पष्ट है कि यदि महाराष्ट्र माहरों का देश था, तो यह स्पष्ट है कि माहर शेष जनसंख्या से भिन्न एक सम्प्रदाय के रूप में प्राचीन काल से अस्तित्व में होते और इस नाम से इतिहास में जाने जाते। अब यहाँ यह दर्शाने के लिए कोई प्रमाण है कि माहर एक सम्प्रदाय के रूप में इतिहास में माहर के नाम से जाने जाते थे? यदि हम अपने आपको बम्बई प्रान्त तक ही सीमित रखें तो तीन प्रमुख सम्प्रदाय जो अस्पृश्य वर्गों से गठित हैं: (1) दी महार (2) दी चांभर और (3) दी माँग। इनमें से महारों का सबसे बड़ा वर्ग है। यह विस्मयकारी बात है कि माँग एवं चांभर इतिहास में विद्यमान समुदायों के रूप में ज्ञात है परन्तु महार का समुदाय के रूप में कहीं कोई उल्लेख नहीं है। मनु ने कई वर्गों का उल्लेख किया

है जो उस समय अस्पृश्य समुदायों के रूप में मान्य थी। उनमें से चांभार को विशेष रूप से अस्पृश्य समुदाय के रूप में उल्लेख था। मांग का उल्लेख मनु द्वारा नहीं किया गया। ऐसा संभवतः इसलिए होगा कि मनुस्मृति के लेखक को ज्ञात क्षेत्रों में मांग क्षेत्र न हो। परन्तु बुद्ध साहित्य में पर्याप्त प्रमाण है कि उसमें मांतग के रूप में संदर्भित मांग एक अलग सम्प्रदाय के रूप में ऐसे नाम से रहते थे जिसकी जानकारी सभी को थी। परन्तु न तो मनुस्मृति में और न ही बौद्ध साहित्य में महार का एक सम्प्रदाय के रूप में उल्लेख है। इस प्राचीन संकलन में महार का कोई उल्लेख है परन्तु बाद की आधुनिक काल वाली स्मृतियों में भी माहर का एक सम्प्रदाय के रूप में कोई उल्लेख नहीं है। वास्तव में मुसलमानों के आगमन तक किसी को माहर शब्द की जानकारी नहीं थी। इसका उल्लेख केवल एक बार 1100 ए.डी. दयानेश्वरी उल्लेख है। इससे पूर्व महार नाम अस्तित्व में नहीं था। हमें क्या सोचना चाहिए? क्या दयानेश्वरी से पूर्व प्राचीन काल में माहर के रूप में कोई सम्प्रदाय नहीं था? या हम यह समझें कि यहाँ एक सम्प्रदाय था जो किसी अन्य नाम से जाना जाता था? महार नाम का अस्तित्व न होने का मामला श्री विल्सन के विचारों का खण्डन करता है। यदि माहर शब्द की जानकारी नहीं थी तो देश का यह नाम दिये जाने की संभावना बहुत कम है।

दूसरा कारण जो मुझे श्री विल्सन का दृष्टिकोण रद्द करने के लिए प्रेरित कर रहा है, देवताओं से उत्पन्न विचारों पर आधारित है जिसको महार सम्प्रदाय में देखा में जा सकता है। यदि श्री विल्सन की परिकल्पना को सही माना जाए तो हम आवश्यक रूप से इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि महार मूल निवासी थे और देश जिसे अब महाराष्ट्र कहते हैं में आर्यों के आने से पूर्व से रह रहे। मैं निश्चित रूप से यह अनुभव करता हूँ कि यह निष्कर्ष कई कारणों से अमान्य है, इसके लिए मैं दुख से कहता हूँ कि मैं उन लोगों से पूर्णतया सहमत नहीं हूँ जिनका तर्क है कि माहर इस प्रान्त की मूल–निवासी जाति से संबंधित हैं कारणों की श्रृंखला में प्रथम कारण यह है कि मैं अपने विचार से सहमत हूँ: कि मैं यहाँ एक उल्लेखनीय तथ्य को प्रस्तुत करना चाहूँगा और यह है– जहाँ महार नहीं है वहाँ मराठा नहीं है और जहाँ कहीं महार है वहीं मराठा भी है। यह संबंध केवल संयोग नहीं है बल्कि यह संबंध अभिन्न है और इस प्रमाण से समर्थित है जो समान्यतया नृवंश विज्ञान के विद्यार्थियों द्वारा भी सम्भवतया नज़रअन्दाज कर दिया जाता है। अब यह भली–भाँति विदित है कि मराठों का एक (कबीला) संगठन है। जिसे वे अपना 'कुल' कहते हैं और उनका अपना एक देवता भी है। 'कुल' और देवता की महत्ता से नृवंश विज्ञान का प्रत्येक विद्यार्थी परिचित होगा। साझा कुल और एक साझा देवता रिश्तेदारी का

संकेत है। इसे मस्तिष्क में रखते हुए महारों और मराठों में 'कुल' की तुलना से बहुत ही महत्त्वपूर्ण परिणाम निकलते हैं।

(निम्न उल्लिखित तालिका पाण्डुलिपि में उपलब्ध नहीं है–सम्पादक)

तालिका पर नज़र डालने से ज्ञात होगा कि महारों में ऐसा कोई कुल नहीं जो मराठों में नहीं है और मराठों में ऐसा कोई 'कुल' नहीं है जो महारों में नहीं है। यदि नृवंश विज्ञान के इस अभिकथन के समर्थन पर आश्रित रहा जा सकता है कि साझा 'कुल' रिश्तेदारी का सूचक है तब महार एवं मराठा मं खून के रिश्ते होने संबंधी सम्प्रदाय है और महारों को मूल निवासी सम्प्रदाय के रूप में रद्द नहीं किया जा सकता जब तक कि कोई यह कहने को तैयार न हो कि मराठा भी एक मूल निवासी सम्प्रदाय है।

मराठा, आर्य या गैर–आर्य समुदाय है, यह एक ऐसा प्रश्न है जिस पर कोई सर्वसम्मति नहीं हुई है। राइसले का मत है कि मराठा आर्य नहीं थे, और उन्होंने अपना निष्कर्ष नृवंश विज्ञान के सिद्धान्तों पर दिया है। अन्यों ने इस दृष्टिकोण को चुनौती दी है और निष्कर्ष निकाला है कि मराठा आर्य है और राइसैल की नृवंश विज्ञान संबंधी आपत्तियों का उत्तर इस तर्क के साथ दिया है कि आर्य आक्रमणकर्त्ताओं की दो धारायें थी और मराठा दूसरे से संबंधित हैं। यही कारण है कि उनका नृवंश विज्ञान संबंधी वक्तव्य राइसले द्वारा माने गये मानकों के अनुरूप नहीं है। दूसरी परिकल्पना से कुछ समर्थन इस तथ्य से मिलता है कि प्राचीन काल में महाराष्ट्र अराइके के नाम से इस आधार पर जाना जाता था कि आर्यों ने 'अरेर मेटिड' (आर्यन् व्यक्ति) कहा जाता है।

जैसा भी हो यहाँ ऐसा कोई प्रश्न नहीं है कि महार मूल नागरिक नहीं हैं। इस अभिव्यति के समर्थन में कुछ भी कहा गया हो, के अतिरिक्त अन्य प्रवर्त्तक घटनायें एवं स्मृतिचिन्ह हैं जिन पर इस दृष्टिकोण के लिए निर्भर रहा जा सकता है। पहली चीज़ वह है जिस पर ध्यान दिया जाना चाहिए कि 'कुल' की अत्यधिक संख्या इस बात की सूचक है कि महारों में भी राजपूत का दर्जा पाया जाता है। ब्राह्मणों एवं मराठों में भी इस बात पर शास्त्रार्थ हुआ था कि मराठा क्षत्रिय हैं। या नहीं, इस शास्त्रार्थ में इस बात पर चर्चा की गई कि क्या मराठों का कुल 96 कुलों में से एक है, ये सभी 96 कुल राजपूतों के होने स्वीकार किये गये थे और इस हैसियत पर होने पर क्षत्रिय संबंधी कोई प्रश्न नहीं उठता। अब यह परीक्षण महारों पर किया गया, तो इस संबंध में यहाँ ऐसा कोई प्रश्न हो सकता जिससे कि महारों को मूलरूप से राजपूत होना कहा गया हो जैसा कि क्षत्रिय जाति के लिए कहा गया है। यह

सुझाव दिया गया है कि महारों ने राजपूतों के 'कुल' को अभी हाल ही में हस्तगत अपनी सामाजिक स्थिति में सुधार लाने के लिए किया है। यह स्पष्टतया गलती है। महारों की यह लम्बी परम्परा रही है कि वह 'सोमावंश' से संबंधित हैं, जो कि क्षत्रियों की दो शाखाओं में से एक है और महारों के ये गोत्र काफी प्राचीन समय से हैं और इनको हाल ही में हस्तगत नहीं किया गया है, यह इस तथ्य से स्पष्ट है कि जब तक सतारा के अन्तिम मराठा राजा प्रतापसिंह की हैसियत की ब्राह्मणों द्वारा जाँच नहीं कर ली गई तब तक ब्राह्मण उन्हें क्षत्रिय मानने से इन्कार करते थे। ब्राह्मणों का एक दल, जो प्रतापसिंह का पक्ष लेता था, ने तर्क दिया कि भौंसले कुल राजपूतों के 96 कुलों में से एक था और चूंकि राजपूत क्षत्रिय माने जाते थे, इसलिए प्रताप सिंह को क्षेत्रिय के रूप में माना जाना चाहिए। इस आशय के उत्तर में दूसरे पक्ष ने इसे एक पहेली बना दिया। उनका कहना था कि यदि यह तर्क ठोस था तो सभी महारों को क्षत्रिय कहा जाए क्योंकि राजपूतों की तरह उनके भी 'कुल' थे। परीक्षण के रूप में 'कुल' की वैधता के अतिरिक्त वास्तविकता यह है कि महारों द्वारा कुल को हस्तगत करने की घटना कोई नयी नहीं है। इस मत के समर्थन में यह एक विचार है कि महार मूल नागरिक नहीं है।

इस मत के समर्थन में दूसरा विचार यह है कि सम्मान/आदर के लिए प्रयोग किया जाने वाला शब्द महारों के लिए अलग है। महार सम्मान के लिए जोहर शब्द का प्रयोग करते हैं। यह शब्द निश्चित रूप से संस्कृत के शबद 'योधार' का बिगड़ा रूप है। यह सर्व–विदित है कि प्राचीन वैदिक काल में ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों ने सम्मान के लिए अलग–अलग शब्दों का चुनाव किया हुआ था। ब्राह्मण 'नमस्कार' और क्षत्रिय 'योधार' शब्द का प्रयोग करते थे। यह स्वीकार करना कठिन है कि महारों को शब्द 'योधार' का प्रयोग करने की स्वीकृति दी गई होगी क्योंकि वे एक निम्न जाति का सम्प्रदाय था या वे विशेष रूप से मूल नागरिक होंगे क्योंकि चमारों एवं मांगों में सम्मान के शब्दों में काफी अन्तर है और क्षत्रियों की हैसियत के अनुसार दूर–दूर तक का कोई संबंध नहीं है। मांग 'फरमान' शब्द का प्रयोग करते थे ऐसा प्रतीत होता है यह 'फरमान' अर्थात् नियन्त्रण का बिगड़ा रूप है।

चमार 'डफेरा' शब्द का प्रयोग करते हैं जिसकी उत्पत्ति के संबंध मैं बताने में असमर्थ हूँ परन्तु 'वास्तविकता यह रही होगी कि केवल महार जाति के लोग 'जोहर' शब्द को सम्मानजनक शब्द के रूप में प्रयोग करते हैं जिसके संबंध में मैंने पहले ही उल्लेख किया है कि इस शब्द का केवल क्षत्रियों द्वारा सम्मानसूचक शब्द के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि मराठा भी एक समय 'जोहर' शब्द का प्रयोग सम्मानसूचक शब्द के रूप में प्रयोग करते थे। यह शिवाजी के शासन में

भी प्रयोग में था और शिवाजी ने भी अपने हाथ से हस्ताक्षरित किये गये मालोजी घोरपड़े को सम्बोधित पत्र में सम्मानजनक शब्द के रूप में 'जोहर' शब्द का प्रयोग किया है। यह भली–भाँति विदित है कि मराठों ने शिवाजी के पश्चात् सम्मानजनक शब्द के रूप में 'जोहर' के स्थान पर राम–राम का प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया था। यह आश्चर्यजनक बात है कि महारों ने इस व्यवहार का अनुसरण नहीं किया था। महारों ने जोहर शब्द का प्रयोग जारी रखा जबकि मराठों ने इसे छोड़ दिया था और राज्य ने अन्य सभी के लिए 'राम–राम' शब्द लागू कर दिया था, यह एक ऐसा प्रश्न है जिसपर कुछ व्याख्या करने की आवश्यकता है। परन्तु वास्तविकता यह है कि 'जोहर' क्षत्रिय के दर्जे का संकेतात्मक शब्द है।

यहाँ एक और मामला है जिसपर ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है क्योंकि यह इस विचार के प्रतिकूल है जिसका मैं समर्थन करता हूँ कि महार मूल निवासी नहीं थे और वे वास्तव में मराठा जाति से संबंधित हैं और किसी समय उनको क्षत्रिय के रुप में माना जाता था। वास्तविकता यह है कि महारों में शव को दफनाने की परम्परा है जब कि मराठों एवं क्षत्रियों में सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक रूप से शव का दाह–संस्कार करने की परम्परा है। शव को दफनाने की परम्परा को स्वीकार किया जाना चाहिए परन्तु परम्परा की विद्यमानता को स्वीकार करना निष्कर्ष के स्वरूप को स्वीकार न करना है जबकि निष्कर्ष उससे अद्भूत किया जाना है। प्रथम स्थान में यह संकेत है कि यह शव को दफनाने की परम्परा मौलिक नहीं है। परन्तु महारों में मूल परम्परा शव का दाह संस्कार करना इस तथ्य से समर्थित प्रतीत होता है जबकि महार शव को दफनाते हैं और वे अभी भी अपने साथ शव के साथ मिट्टी के बर्तन में कोयला और अंगार क्रबिस्तान में ले जाते हैं।

ऐसा करने के पीछे कोई उद्देश्य अवश्य होगा और यहाँ कोई भी विचारणीय उद्देश्य सिवाय इसके नहीं हो सकता कि आग का प्रयोग शव के दाह संस्कार के लिए किया जाए। महारों में शव के दाहसंस्कार की परम्परा को किस ने शव को दफनाने की परम्परा में बदल दिया, इस का निश्चित कारण बताना कठिन है। परन्तु ऐसा लगता है कि शव को दफनाना एक परम्परा थी जो बाद में जब महार का दर्जा गिर कर कम हो गया तथा उन्हें अस्पृश्य के रूप में वर्गीकृत किया है तब यह परम्परा महारों पर लागू की गई। परम–पुराण में इस दृष्टिकोण के लिए पर्याप्त समर्थन मिलता है। परम–पुराण में यह उल्लिखित है कि अनेक सम्प्रदायों को उनके शवों के दाह संस्कार में रोक दिया गया था क्योंकि शव का दाह–संस्कार करने का अधिकार तीन पुनरुद्धारित वर्गों को था। यदि यह सही है तो शव को दफनाने की परम्परा प्रभावित करने वाले प्रमाण को नज़र अंदाज नहीं कर सकते जो हमेशा

से यह दर्शाते हैं कि मराठा मूल निवासी नहीं थे और वे कभी जाति से मराठा और हैसियत से क्षत्रिय नहीं थे।

II

वे गाँव से बाहर क्यों रहते थे?

ऐसा स्वीकार किया जाता है महार गाँव से बाहर रहते हैं। यह एक वास्तविकता है कि इसे किसी भी कीमत पर विदेशी नहीं माना जा सकता क्योंकि गाँव सामान्यतया खुले स्थल पर बिना किसी सीमाओं को निश्चित किये बनाया जाता है। परन्तु दो चीज़ें निर्विवाद रूप से यह प्रदर्शित करती हैं कि महारों को गाँव से बाहर रहने वाला माना जाता है। प्रत्येक ग्रामवासी इस प्रकार गाँव के मध्य भिन्नता करता है और महारवाड़ा का इस प्रकार अर्थ महार–वाड़ा है इसका अर्थ है कि महारों की बस्ती जो गाँव के बीचों–बीच नहीं है। अधिक स्पष्ट रूप से यह कहा जा सकता है कि जहाँ गाँव की सीमा है। जब कभी गाँव का 'गवखुश' के रूप में कोई स्थानीय कार्यक्रम होता है तो यह देखा जा सकता है कि महारों की बस्ती हमेशा गाँव के बाहर होती है। अब इस तथ्य को लेख में दिये गये पहले प्रश्न के संबंध में वर्णित को दृष्टिगत रखते हुए जो कुछ पढ़ा गया है उससे दूसरे प्रश्न को पर्याप्त महत्त्व मिलता है। यदि महार मूल निवासी नहीं हैं तो उन्हें समाज के परित्यक्त वर्ग के रूप में क्यों माना जाता है। अत्यधिक स्वाभाविक उत्तर जो हर किसी को सही उत्तर के रूप में प्रभावित करती है वह है मनु संहिता में वर्णित निषेधाज्ञायें। चण्डाल के संबंध में बातचीत की जाए तो मनु ने उन्हें गांव की सीमा से बाहर रहने के लिए बाध्य किया है। चण्डालों के बारे में मनु द्वारा कही गई बातों से सामान्य धारणा से यह अन्दाजा लगाया जा सकता है कि उसने जो कुछ चण्डालों के बारे में कहा है उसको हिन्दू शासकों ने इसी प्रकार के सभी वर्गों पर पूर्णरूपेण सख्ती से लागू कर दिया। गंभीरता से विचार करने पर मुझे लगता है कि उठाये गये प्रश्न का उत्तर नहीं हो सकता। जो कुछ भी मनु ने कहा है वह कानून–निर्माताओं के भी मौलिक आदेश नहीं है। मेरी समझ के अनुसार मनु ने ऐतिहासिक काल में कार्यशील ताकतों के परिणामस्वरूप जो कुछ हो रहा था उसको अपना वास्तविक आदर्श बना दिया क्योंकि इससे उसका मकसद हल हो रहा था। इस प्रश्न के उत्तर को भिन्न दृष्टिकोणों से देखा जाना चाहिए। मेरे विचार से इसका सही उत्तर उस काल का अध्ययन करने से प्राप्त किया जा सकता है जिसमें समुदाय प्रशपालन से व्यवस्थित समुदाय के रूप में परिवर्तित हो गया। यह सभ्यता के विकास के विद्यार्थियों के लिए सामान्य ज्ञान का मामला है कि समुदाय की सम्पदा की प्रकृति ही आदतों को नियत करने का मुख्य निर्धारक कारक होता है। पशुपालक कभी भी एक स्थान पर नहीं बसते हैं परन्तु एक स्थान

से दूसरे स्थान पर घूमकर खानाबदोशी का जीवन–यापन करते हैं क्योंकि उनकी सम्पदा भेड़ें और अन्य पशु होते हैं और भेड़ें और पशु एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते हैं और इनके स्वामी भी उस स्थान पर जाते हैं जहाँ उनके पशुधन उनको ले जाते थे। जिस समुदाय ने खेती जोतने की कला सीख ली और अपने उत्पाद का मूल्य समझना शुरू कर दिया, उस समुदाय ने खानाबदोशी का जीवन त्याग कर एक स्थान पर स्थायी जीवन–यापन करना प्रारम्भ कर दिया क्योंकि उनकी अचल सम्पत्ति भूमि थी। अब यह प्रक्रिया जिसमें खानाबदोशों ने स्थायी जीवन को स्थान दिया, एक लम्बी प्रक्रिया है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें कुछ घूमते रहते थे और कुछ स्थायी रूप से रहने लग जाते थे। मानव सभ्यता के प्रारम्भिक इतिहास के विद्यार्थियों को भलीभाँति यह जानकारी होगी कि उन प्रारम्भिक दिनों में सामाजिक जीवन कबीलों में संगठित था और ये कबीले प्रायः एक–दूसरे से लड़ते रहते थे। इन विचारों के परिप्रेक्ष्य में प्रारम्भिक अवस्था पर विचार करते हैं जब समुदाय या कबीलों ने खानाबदोशी का जीवन छोड़ स्थायी जीवन–यापन प्रारम्भ कर दिया तथा विचार करें कि उनकी धरती पर सर्वोच्च आवश्यकताओं में से कौन सी आवश्यकता अनुभव की गई होगी। यहाँ जो कबीले बस गये और अपनी बस्ती बना ली, जिसे जब गाँव की संज्ञा दी गई, इसमें मक्का होती है। इसमें भेड़ें एवं अन्य पशु होते हैं। दूसरी ओर यह उन कबीलों से घिरे रहते जो खानाबदोशी हैं और उनकी लालची आँखे उनके अनाज तथा गायों तथा भेड़ों पर होती थीं। स्पष्टतः ऐसे स्थायी रूप से बसे हुए कबीलों की प्रथम एवं सर्वोपरि समस्या अपने आपको इन खानाबदोशी कबीलों के घावों एवं आक्रमणों से बचाव करना होता होगा। वे अपना बचाव कैसे कर सकते थे? वह इस बचाव की व्यवस्था कैसे कर सकते थे? स्पष्ट है कि वे अपनी तथा अपने अनाज या अपने पशुओं के बचाव के लिए रक्षात्मक या आक्रमणकारी बचाव के लिए अपने आपको हमेश संघर्षरत नहीं रख सकते थे। चूँकि उनकी सारी ऊर्जा कृषि के कामों में लग जाती थी, कृषि का व्यवसाय उनके लिए नया था और इसके लिए उन्हें अपने स्वयं के शारीरिक श्रम पर निर्भर रहना होता था। इस प्रकार अपने आप के बचाव के लिए उन्हें अपने कबीले के अध्यक्ष पर निर्भर रहना होता था। परन्तु कबीले का मुखिया अपने कबीले की सुरक्षा कैसे कर सकता था जो की स्थापित थे और मेहनत से अपने खेत जोतने में लगे हुए थे और न तो उनके पास समय था और न ही उनके पास अपने व्यक्ति थे जो उनकी ओर हथियार उठा सकें। अतः कबीले के मुखिया खानाबदोशों के आक्रमणों से अपने कबीले की रक्षा के लिए अपनी कमान के अधीन कार्य करने केलिए सैन्यबल को बढ़ाने के लिए किसी अन्य स्रोत को ढूँढते थे। कबीलों का मुखिया अपने सैन्य–बल के लिए सैनिकों की भर्ती किन वर्गों से कर सकते हैं। स्पष्टतः एक स्रोत से। कबीलों के युद्ध काफी लम्बे समय तक नहीं

चलते थे। एक कबीला दूसरे कबीले के विरुद्ध युद्ध करता था। इस प्रकार युद्ध में एक कबीला हार जाता था और इस हारे हुए कबीले के लोग खण्डित हो जाते थे और हताश हो जाते थे और अपनी सुरक्षा के भय से सुरक्षित स्थानों को ढूँढते थे। स्थापित कबीले और खण्डित कबीलों के अध्यक्षों के लिए कितना बढ़िया होता था कि नियति उनको मिला देती थी। स्थापित कबीले के मुखिया को अपने कबीले की सुरक्षा के लिए कबीले व्यवसाय में व्यवधान लाये बिना अपेक्षित सैन्य बल मिल जाता था। खण्डिल कबीले के व्यक्तियों को ग्रामीण समुदाय की सेवा के बदले में निश्चित निर्वाह भत्ता तथा कबीले के मुखिया का संरक्षण भी प्राप्त हो जाता था।

परन्तु खण्डित कबीले से व्यक्ति मिल जाने के बाद अगला प्रश्न यह होता था कि इन लोगों को कहाँ स्थापित किया जाए। उनको स्थापित समुदाय के मध्य स्थापित होने की अनुमति नहीं दी जा सकती थी क्योंकि वे विभिन्न कबीले के लोग थे और उनपर सहानुभूति नहीं की जा सकती थी। केवल सहानुभूति प्राप्त ही स्थापित कबीले के मध्य रह सकता था।

स्पष्टतया केवल एक ही रास्ता होता था जिसके द्वारा मुखिया दूसरे कबीले के खण्डित लोगों, जिनकी उसको स्थापित समुदाय की रक्षा में सैन्यबल नियुक्त किये जाने की आवश्यकता होती थी, को अपने कबीलों द्वारा स्थापित सीमाओं के बाहर स्थापित करते थे। यह प्रक्रिया है जो मेरी समझ के अनुसार स्पष्ट कर सकती है कि महार गाँव की सीमाओं के बाहर क्यों रहते थे। महार खण्डित कबीलों के लोग हैं जो प्रारम्भिक काल में एक–दूसरे के विरोधी थे। उन्हें स्थापित समुदाय का मुखिया गाँव के पाटिल द्वारा अपने अधीन कर लिया जाता था और उस गाँव की सीमाओं में स्थापित होने की स्वीकृति प्रदान की जाती थी। वे उनके लिए निगरानी एवं चौकसी का कार्य करते थे ओर इसके बदले में उन्हें कोई स्थान दे दिया जाता था। इसमें कोई विचित्र बात नहीं है कि महार गाँव की सीमाओं के बाहर रहते हैं। इस तथ्य में ऐसा कुछ उल्लिखित नहीं है जो यह बता सके कि वे निम्न दर्जे से संबंधित थे और इस कारण से उन्हें गाँव की सीमा से बाहर रहने के लिए कहा जाता था क्योंकि उन्हें गाँव के मुखिया द्वारा अपने समुदाय की सुरक्षा के लिए गाँव में लाया जाता था और उन्हें गाँव की सीमा से बाहर रहने के लिए कहा जाता था इनको गाँव की सीमा से बाहर रहने के लिए इसलिए नहीं कहा जाता था क्योंकि वे निम्न दर्जे के हैं बल्कि ऐसा इसलिए किया जाता था क्योंकि वे किसी अन्य कबीले के होते थे। इसके लिए समर्थन में बेल्स या आयरलैंड का संदर्भ दिया जा सकता है। आयरलैंड के बेयन कानूनों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि आयरलैंड का भी अपना ग्रामीण समुदाय है जो एक स्थापित समुदाय और बस्ती है। गाँव की सीमा पर ऐसे

लोग रहते हैं जिनको बोयर्स कहा जाता है। बोयर्स खण्डित कबीले के शेष लोग हैं जिनको गाँव के मुखिया द्वारा अपने अधीन कार्य करने तथा समुदाय संरक्षण के हित में लाया गया था। बिल्कुल इसी प्रकार का घटनाक्रम गवेली नाम से ज्ञात बेल्स गाँवों में हुआ है। प्रत्येक गवेली गाँव की सीमा में अजनबियों का समूह है। उन्हें अलतुद कहा जाता था। वे भी गवेली के मुखिया द्वारा गवेली के संरक्षण के लिए लाये गये खण्डित कबीले के हिस्से थे। मेरी समझ में प्रश्न का यही सन्तोषजनक उत्तर है। लेकिन यह प्रश्न रह जाता है कि माहर एक अलग समुदाय के रूप में क्यों रहते रहे जबकि आयरलैंड और वेल्स में अलतुद और बोयर्स ने भिन्न समुदायों के रूप में रहना छोड़ दिया था और ग्रामीण जनसंख्या के सामान्य लोगों के साथ घुल–मिल गये थे। इस प्रश्न का उत्तर कठिन नहीं है। यह ऐसा है कि जाति प्रथा और अस्पृश्यता के विकास ने इनके विलयन को रोक दिया। परन्तु इसे निस्संदेह तीसरे और अन्तिम प्रश्न, जो कि इस लेख में विचार के लिए उठाया गया है, की पूर्व प्रत्याशा में उठा दिया गया है।

III

माहरों को अस्पृश्य के रूप में क्यों वर्गीकृत किया गया? ब्राह्मणवाद का बौद्ध धर्म के विरुद्ध संघर्षों में अस्पृश्यता को उद्भव इच्छित किया गया था। यह प्रश्न का विचित्र उत्तर है परन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि यह सही उत्तर है। मामले को स्पष्ट करने के लिए बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों को स्पष्ट करना आवश्यक है। सभी विवरणों पर विचार करना आवश्यक नहीं है। यह उल्लेख करना पर्याप्त होगा कि बुद्ध ने जिस बात का सख्ती से विरोध किया है वह 'यज्ञना' जो कि आर्य धर्म का मुख्य एवं प्रमुख किस्म थी। यज्ञना में गाय की बलि दी जाती थी।

आर्य अर्थव्यवस्था में गाय अत्यधिक महत्त्वपूर्ण पशु थीं। कृषि की सम्पूर्ण व्यवस्था गाय पर निर्भर करती थी। गाय दूध देती थी जो लोगों की आजीविका का मुख्य साधन था और गाय बैल को जन्म देती थी जो भूमि को जोतने के लिए आवश्यक पशुओं में से थे। यद्यपि बुद्ध की यज्ञना के प्रति आपत्तियाँ दार्शनिकता पर आधारित हैं लेकिन जन–समुदाय की मानसिक सोच बौद्ध धर्म द्वारा संग्रहित जीवन की वास्तविकता से परे नहीं थी क्योंकि वे समझ सकते थे कि गायों के निरन्तर हो रहे वध को रोकना आवश्यक है, जबकि ब्राह्मण गाय को बलि के रूप में प्रयोग करते थे। अतः गाय पहला विचारणीय विषय बन गया और अन्ततः पूजनीय बन गई। लोगों द्वारा गाय की बलि के लिए मना करने पर ब्राह्मणों का आधिपत्य खतरे में पड़ जाने से उनको कोई अन्य तरीका ढूंढना पड़ा जिससे उस जन समुदाय का दिल जीता

जा सके जिसका झुकाव बौद्ध धर्म की ओर हो गया था। ब्राह्मणों ने ऐसा कैसे किया? बौद्ध धर्म द्वारा गाय की पूजा का प्रभाव लोगों के मन में इतना गहरा पड़ा कि ब्राह्मणों को अपना यज्ञना छोड़ने के सिवाय अन्य कोई रास्ता नहीं दिखाई दिया और उन्होंने बौद्धों की तरह गाय का सम्मान ही नहीं बल्कि उसकी पूजा करना भी प्रारम्भ कर दिया। परन्तु यह पर्याप्त नहीं था। ब्राह्मण अपने बौद्ध धर्म के विरुद्ध संघर्षों में धार्मिक विचारों के किसी सदाचारी विचार से प्रेरित नहीं हुए थे। वे केवल जन समुदाय पर उनका अधिकार एवं प्रतिष्ठा जो बौद्ध धर्म के भिक्खुओं ने हस्तगत कर ली थी, को वापिस प्राप्त करने के राजनीतिक उद्देश्य से प्रेरित थे। वे जानते थे कि यदि वे बौद्धों से किसी प्रकार का वर्चस्व प्राप्त कर लेते हैं तो वे बौद्धों से एक कदम आगे बढ़ जायेंगे और उन्होंने यह नियम लागू कर दिया कि वे न केवल गाय का अपितु किसी पशु या किसी जीवित प्राणी की हत्या नहीं करेंगे। ब्राह्मणों में प्रचलित शाकाहारवाद का उद्भव पूर्व के ब्राह्मणों की कूटनीति का ही परिणाम है जो उन्होंने बौद्धों पर अपना आधिपत्य जमाने के लिए अपनायी थी।

इसके अतिरिक्त एक बात और मस्तिष्क में रखने योग्य है। बौद्ध काल से पूर्व और अशोक के समय तक गाय का माँस सभी वर्गों–ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों के लिए सामान्य भोजन था। इसमें कोई दुराग्रह नहीं था। गाय एक ऐसा पशु माना जाता था जैसे भेड़ या बकरी या हिरण को माना जाता है। परिणामस्वरूप यद्यपि जनसंख्या चार वर्गों में बंट गई थी परन्तु ये वर्ग भोजन के मामले में अलग नहीं थे और विशेष कर गाय के माँस के संबंध में। संभवतः अन्तर केवल इतना था कि कुछ लोग वध किये गये पशु का माँस खाते थे। यह उनके लिए संभव था जिनकी खरीदने की हैसियत थी। शेष जो गरीब थे वे मृत पशुओं का माँस खाते थे क्योंकि सम्पन्न लोग भी इसको भोजन के रूप में प्रयोग करने से परहेज नहीं करते थे। यह भी पूर्णतया स्वीकार्य है कि गाँव का मुखिया मृत गायों और पशुओं का माँस खण्डित कबीलों के लोगों जो गाँव की सीमा पर रह रहे थे, को स्थापित समुदाय की सेवा करने के बदले पारिश्रमिक के रूप में दे देते थे। सच्चाई में बिना किसी हेर–फेर के हर कोई यह कह सकता है कि अशोक के राज्यकाल से पूर्व जहाँ तक गाय के माँस को खाने का संबध है इसमें किसी प्रकार का कोई अन्तर नहीं था। सभी गाय का माँस खाते थे। केवल अन्तर इतना था कि गाँव के लोग वध की गई गाय का माँस खाते थे और जो गाँव से बाहर रहते थे वह मृत गाय का माँस खाते थे। इस अन्तर में कोई धार्मिक या सामाजिक महत्त्व नहीं था। यह केवल अमीरी व गरीबी का अन्तर था। बौद्ध काल के पश्चात् और विशेष कर अशोक के समय में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। गौ–हत्या स्वेच्छा से या राज्य द्वारा बन्द करवा दी गई।

इससे बहुत बड़ा अन्तर आ गया। गाँववासियों ने गाय–माँस खाना बन्द कर दिया क्योंकि वे वध की हुई गाय का माँस खाते थे और चूँकि गाय का वध होना बन्द हो गया था इसलिए उन्होंने गाय का माँस खाना बन्द कर दिया। खंडित कबीलों के लोगों ने जो सीमा पर रहते थ, मृत गाय का मांस खाना जारी रखा। उन्हें रोकना आवश्यक नहीं था क्योंकि वह मृत गाय का माँस खाते थे। जो बिल्कुल गाय का माँस नहीं खाते थे और जो खाते थे, उनका विभाजन केवल आर्थिक अन्तर से नहीं हुआ था। यह एक ऐसा अन्तर था जिसने धार्मिक विचारों को जन्म दिया। धर्म की दृष्टि से गाय का वध एक दुराचारी धारणा बन गई। और जो वर्ग मृत गायों से संबंधित कार्य करते थे, वे भी दुराग्राही वर्ग बन गया। दुराग्रह की इस धारणा से अस्पृश्यता का उद्‌भव हुआ। दुराग्रह की धारणा गाय के सम्मान या तिरस्कार पर आधारित है। ब्राह्मण अपने स्वयं के हित को ध्यान में रखते हुए गाय का सम्मान व पूजा करने के लिए सहमत हो गये। ये इतना आगे बढ़ गये कि कोई भी वर्ग गाय की पूजा से संबद्ध कार्य करता तो वह आलोचना का पात्र होता, इसलिए अस्पृश्य सहचार के योग्य नहीं है।

यह अस्पृश्यता का उद्‌भव है और कि इसका यही कारण है कि महार अस्पृश्य क्यों माने जाने लगे, का पता लगाया जा सकता था आदि किसी ने इस संबंध में मामले को प्रमाणित करने का प्रयास किया होता और भारत में इन समुदायों के क्या विशेष कार्य है तथा कौन ऐसा दुर्भागी व्यक्ति है जिन्हें अस्पृश्य समुदाय माना जाता है। इस मामले की जाँच करने से हमें पता चलता है कि पूरे भारत में अस्पृश्य कुछ ऐसे कार्य करते हैं जो उन सबके समान हैं। इन कार्यों में मृत गायों को ले जाना, मृत गाय की चमड़ी अलग करना, माँस खाना, हड्डियों को बेचना आदि सम्मिलित है। इस अभिव्यक्ति में कोई अपवाद नहीं है। यह सभी मामलों एवं सभी प्रान्तों में लागू होता है। मृत गाय और अस्पृश्यता में इतना गहरा संबंध क्यों है कि यह दोनों एक साथ क्यों चलते हैं? मेरा उत्तर यह है कि यह एक–दूसरे का कारण है। हिन्दू समुदाय का उनके प्रति दुराग्रह जिन्होंने गाय का माँस खाना बन्द नहीं किया चूँकि बौद्ध धर्म ने गाय की पूजा करनी प्रारम्भ कर दी थी। महारों ने मृत गाय को खाना बन्द नहीं किया और परिणामस्वरूप इस दुराग्रह का कारण एवं शिकार बन गये।

इस लेख में उठाये गये तीनों प्रश्नों का अब उत्तर दिया जा चुका है। लेकिन एक और प्रश्न रह गया है वह यह है कि महारों को महार क्यों कहा जाता है।

कई लोगों ने परिभाषा देने का प्रयास किया परन्तु इन सबमें डॉक्टर भण्डारकर द्वारा दी गई सही प्रतीत होती है। डॉ. भण्डारकर के अनुसार महार शब्द मृत–आहार

का बिगड़ा रूप है। मृत आहार का अर्थ जो मृत पशु के माँस पर जीवित है। यह अस्पृश्यता के उद्भव के प्रश्न पर उपरोक्त तर्कों में उल्लिखित के अनुरूप है। परन्तु इस संबंध में दो अन्य पूरक प्रश्न उत्पन्न होते हैं। पहला यह कि उनको कोई विशिष्ट दर्जा देने के लिए विशेषकर महार के जीवन क्रम को क्यों चुना गया। इसका उत्तर पहले ही दिया जा चुका है परन्तु यह यहाँ सारांश रूप में प्रस्तुत हैं क्योंकि इससे महार शब्द के उद्भव की शुद्धता सशक्त होगी। जैसाकि मैंने पहले ही कहा है कि एक समय था जब गाय का माँस खाना इतना सार्वभौमिक था कि किसी ने भी इसकी वास्तविकता को जानने का प्रयास नहीं किया। तब भी कुछ वध किये हुए पशु का माँस और कुछ मृत पशु का माँस खाते थे, इसका केवल आर्थिक महत्त्व था। परन्तु कोई धार्मिक या सामाजिक महत्त्व नहीं था। परन्तु जब सभी ने गाय का माँस खाना बन्द कर दिया और जिन्होंने खाना जारी रखा, इससे एक अन्तर दिखाई दिया जो कि खुली आँखों से देखा जा सकता है और धार्मिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। अतः यह स्वाभाविक है कि अन्तर इतना स्पष्ट एवं महत्त्वपूर्ण है कि इसको शेष लोगों ने इस वर्ग को एक अलग दर्जा देने का आधार बना लिया। परन्तु महार शब्द की इस उत्पत्ति से कठिनाई उत्पन्न हुई जिसका समाधान किया जाना अपेक्षित है। यदि यह इस शब्द की सही परिभाषा है और यदि इसके प्रचलन के यही कारण हैं तो इसका प्रचलन तभी से हो जाना चाहिए था जब अन्तर अत्यधिक एवं महत्त्वपूर्ण हो गया था। जब महारों को महार कहा जाने लगा तो इससे पूर्व वह इतिहास में किस नाम से जाने जाते थे। इसे स्वीकार करने में कोई संदेह नहीं कि एक नया नाम है क्योंकि ध्यानेश्वर के समय से पूर्व साहित्य या इतिहास में कहीं भी यह नाम नहीं आया है। लेकिन इससे एक अन्य प्रश्न अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि इनको नाम सामान्य नाम बन जाने से पूर्व किस नाम से पुकारा जाता था। अब यह भली भाँति विदित है कि महारों को परवारी भी कहा जाता है। यह नाम कभी भी लुप्त नहीं हुआ और उनके महार नाम के साथ हमेशा से विद्यमान रहा है यद्यपि महार बहुत प्रसिद्ध हो गया। परन्तु एक समय था जब परवारी नाम महार नाम की अपेक्षा प्रमुखता से प्रयोग किया जाता था। उदाहरण के लिए ईस्ट इण्डिया कम्पनी के समय कम्पनी की सेना में महारों की सैनिकों तथा अधिकारियों के रूप में काफी भर्ती की गई। इन की जाति के कालम में परवारी भरा जाता था। अतः इसमें कोई प्रश्न नहीं कि महारों का यह उनका दूसरा नाम है। और मैं यह कहने का जोखिम उठाता हूँ कि यह वही नाम था जिसके द्वारा महारों को महार नाम मिलने से पूर्व पुकारा जाता था। कि यह परवारी नाम बहुत प्राचीन नाम है, यह इस तथ्य से सिद्ध होता है कि इस का प्रयोग पटोलमी में हुआ। उन्होंने शब्द 'पोरावर्दी' का प्रयोग कि है जो संभवतः परवारी शब्द का गलत उच्चारण या वर्तनी का गलत प्रयोग है।

परवारी शब्द का क्या अर्थ है। वास्तव में उत्तर देने के लिए यह कठिन प्रश्न है। सभी यही जानते हैं कि इसका अर्थ निर्भरता है जो कि परिवार शब्द का मूल अर्थ है और परवारी इसका बिगड़ा रूप प्रतीत होता है। निस्संदेह खण्डित कबीले अपनी अजीविका के लिए ग्रामीण समुदाय पर निर्भर थे और ग्रामीण समुदाय संभवतः उन्हें व्याख्यात्मक शब्द परवारी नाम से पुकारते हों क्योंकि खण्डित कबीले के लोग उनके लिए अजनबी थे और उनपर निर्भर थे। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि शब्द परवारी प्रचलित था परन्तु अब महार नाम के ज्ञात लोगों तक सीमित न रहा हो। इसका प्रयोग सामान्य रूप से किया जाता था। चूँकि यह सिद्ध करने के लिए दस्तावेजी प्रमाण है कि इसने हर संभव प्रयासों से माँग समुदाय को भी इसमें शामिल किया है। अतः परवारी शब्द उन सभी व्यक्तियों के लिए प्रयोग किया गया प्रतीत होता है जो आये और ग्रामीण समुदायों के लिए अजनबियों की तरह स्थापित हो गये। केवल परवारी शब्द ही संयुक्त शब्द नहीं है बल्कि महार भी संयुक्त शब्द है परन्तु एक ही मूल के होने का संकेत नहीं देता। महार समुदाय संयुक्त समुदाय का प्रतीत होता है, इसमें उच्च सामाजिक स्तर एवं निम्न सामाजिक स्तर के लोग सम्मिलित हैं। इसका संकेत महारों के विभिन्न कुलों से मिलता है। जो 'कुल' 96 कुलों में से हैं वे उच्च सामाजिक स्तर के लोग हैं जो इन कुलों में नहीं आते, निम्न सामाजिक स्तर के हैं। परन्तु महार के रूप में एक नाम सैकड़ों वर्षों से प्रचलित हो जाने से लोगों के मन में उच्च या निम्न सामाजिक स्तर की धरणा समाप्त हो गई है। परन्तु नृवंश विज्ञान के विद्यार्थियों की जानकारी के लिए यह जरूरी है कि महार जाति का उद्‌भव विभन्न खण्डित कबीलों के लोगों से हुआ जिसमें कुछ भी साझा नही है। सिवाय इसके कि ये परवारी हैं और ग्रामीण समुदाय पर निर्भर हैं।

(22)
रिपब्लिकन पार्टी का अर्थ
स्वतन्त्रता, समानता, मित्रता एवं न्याय

डॉ० बी.आर. अम्बेडकर के धर्म परिवर्तन के संबंध में निर्णय के अनुसार उन्होंने मई, 1956 में उद्घोषित किया था कि वह अक्टूबर, 1956 में बौद्ध धर्म अपना लेंगे। इसके साथ ही वह भारत के संविधान में निहित सिद्धान्तों पर आधारित एक नया राजनीतिक दल गठित करने के लिए गंभीरता से सोच रहे हैं।

वर्ष 1936 में इंडीपेंडेंट लेबर पार्टी और वर्ष 1942 में अनुसूचित जाति संघ का गठन तथा रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इण्डिया की स्थापना का निर्णय एक आदर्श राजनीतिक दल के माध्यम से अपने सपनों को साकार करने के कर्मठ प्रयासों को स्पष्ट करता है।

अपनी दूरदर्शिता को आकार देने के लिए डॉ० बी.आर. अम्बेडकर ने रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इण्डिया की रूपरेखा निर्णायक रूप से तैयार की। श्री डी.टी. रूपवते द्वारा रूपरेखा का मराठी अनुवाद बाद में प्रबुद्ध भारत रिपब्लिकन पार्टी स्थापना अंक–1957 में परमपूज्य डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर का 'रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इण्डिया' के गठन के संबंध में भारतीयों को खुला–पत्र शीर्षक से प्रकाशित हुआ।

रूपरेखा के निम्न पाँच अध्याय हैं :

अध्याय–1 एक आन्दोलन कैसे राजनीतिक दल बन गया?

अध्याय–2 प्रजातन्त्र की सफलतापूर्वक कार्यशीलता के लिए दृष्टान्त स्थितियाँ।

अध्याय–3 संसदीय सरकार को विपक्षी पार्टी की आवश्यकता क्यों होती है?

अध्याय–4 एक पार्टी क्या है?

अध्याय–5 पार्टी के उद्देश्य एवं लक्ष्य

तदनुसार 'दि रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इण्डिया' के गठन के संबंध में समाचार जनता के 10 दिसम्बर, 1955 के अंक में प्रकाशित हुआ।

इस संबंध मं उन्होंने अपने समविचारकों एवं समकालीनों जैसे डॉ. राम मनोहर लोहिया से पत्र–व्यवहार भी किया था।

अनुसूचित जाति संघ की कार्यकारिणी की बैठक दिनांक 30 सितम्बर, 1956 को डॉ० बी.आर. अम्बेडकर के नई दिल्ली स्थित आवास में हुई थी। डॉ. अम्बेडकर ने बैठक की अध्यक्षता की थी। बैठक में पारित प्रस्ताव सं. 2 के अनुसार यह सर्वसम्मति से निर्णय लिया गया था कि अनुसूचित जाति संघ का विघटन कर 'रिपब्लिकन पार्टी के नाम से राजनीतिक दल की स्थापना की जाये।

डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने नागपुर में 13 अक्टूबर, 1956 को एक प्रेस सम्मेलन को सम्बोधित किया जिसमें उन्होंने स्पष्टतया बताया कि उन्होंने रिपब्लिकन पार्टी के संविधान का प्रारुप पहले से ही तैयार किया हुआ है।

सम्पादक आर. चान्दीदास, बार्ड मोर हाऊस, लियन क्लार्क और रिचर्ड फोनडेरा– 'इण्डिया वोट' में रिपब्लिकन पार्टी की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख निम्न प्रकार से किया है :

'रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इण्डिया' एक अखिल भारतीय पार्टी है जिसकी स्थापना स्व० डा. बाबा साहब अम्बेडकर ने की थी– जो एक महान् राजनीतिक विचारक, महान् सामाजिक क्रान्तिकारी और महान् संवैधानिक विशेषज्ञ थे। उन्होंने स्वतन्त्रता, समानता और मित्रता पर आधारित भारतीय समाज के पुनर्निर्माण में अपना जीवन समर्पित कर दिया। दि रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इण्डिया ने अपने आपको इस महान् कार्य के लिए समर्पित कर दिया।

रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इण्डिया का अर्थ है संसदीय प्रजातन्त्र

1. द रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इण्डिया सरकार की संसदीय प्रणाली का प्रतिनिधित्व करेगी, क्योंकि यह जनता के हित और व्यक्ति के हित के लिए सर्वोत्तम किस्म की सरकार होती है।
2. द रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इण्डिया राज्य के धर्मनिरपेक्ष स्वरूप का समर्थन करती है।

रूपरेखा का मूल पाठ निम्न प्रकार से है :

अध्याय–1

एक आन्दोलन कैसे राजनीतिक पार्टी बनी

भारतीय कांग्रेस की स्थापना 1855 में हुई थी। वर्ष 1947 तक इसने भारतीय

स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए एक आन्दोलन के रूप में कार्य किया। इसके पास प्रारम्भ में कोई निश्चित लक्ष्य नहीं था। यह अच्छी सरकार की माँग के साथ प्रारम्भ हुआ था। कुछ समय के पश्चात् इसने अपने लक्ष्य को बदल लिया। इसे स्व–शासन के रूप में परिभाषित किया गया। ब्रिटिश राजनीतिक विचारकों ने इस स्व–शासन को दो भागों (1) औपनिवेशिक राज्य और (2) स्वतन्त्रता में विभाजित कर दिया। औपनिवेशिक राज्य का अर्थ साझे सम्राट के प्रति निष्ठा के साथ स्वतन्त्रता। स्वतन्त्रता का अर्थ राजा के प्रति निष्ठा के बिना स्वतन्त्रता।

कुछ समय के लिए भारतीय कांग्रेस औपनिवेशिक राज्य के लिए सहमत हो गई। परन्तु थोड़े समय बाद ही भारतीय कांग्रेस ने अत्यन्त नाटकीय ढंग से स्वतन्त्रता के पक्ष में एक प्रस्ताव 1930 में पारित किया और इसे 1947 में प्राप्त कर लिया।

इस समय तक कांग्रेस एक सेना की भाँति थी, इस सैन्य बल का गठन संसदीय प्रजातन्त्र के उद्देश्य के लिए नहीं बल्कि विदेशी सरकार के विरुद्ध राजनीतिक संघर्ष करने के उद्देश्य से किया गया था। इसे देखकर श्री गाँधी ने बहुत ही बुद्धि मत्ता से सुझाव दिया कि कांग्रेस का विघटन कर दिया जाए और पार्टी सिद्धान्तों पर राजनीतिक पार्टी का गठन सरकार के संचालन के लिए किया जाए। परन्तु नेता लोग सरकार की लगाम अपने हाथों में थामने के लिए बिल्कुल तैयार बैठे थे। उन्होंने श्री गाँधी के परामर्श को सुनने से इंकार कर दिया। सामान्यतया शान्ति के बाद सैन्य बल जिसने अपना मार्ग प्रशस्त करने के लिए संघर्ष किया था, का विघटन कर दिया गया। केवल इस कारण से कि युद्ध के दौरान भर्ती के मानक कम कर दिये गये थे और प्रत्येक अच्छे, बुरे अनासक्त को भी भर्ती की स्वीकृति दी गई थी। भारत के मामले में न केवल सैन्य बल का विघटन कर दिया गया बल्कि सरकार पर अधिकार जमाने की भी स्वीकृति प्रदान कर दी गई।

हमें कांग्रेस सरकार का दस वर्षों का अनुभव है। कोई भी कह सकता है कि यह बहुत विश्वसनीय नहीं है। समय आ गया जब श्री गाँधी के परामर्श को गंभीरता से स्वीकार किया गया और हमने एक और पार्टी के गठन के लिए कदम बढ़ाया और यह पार्टी विपक्षी पार्टी के रूप में कार्य करेगी।

अध्याय–2

यह अध्याय डॉ. बी.आर. अम्बेडकर द्वारा पुणे में दिनांक 22 दिसम्बर, 1952 को 'प्रजातन्त्र की सफलतापूर्वक कार्यशीलता के लिए दृष्टान्त स्थितियाँ' शीर्षक पर दिये गये भाषण के पाठ पर आधारित है। –संपादक

अध्याय–3

संसदीय सरकार में विपक्षी पार्टी की आवश्यकता क्यों होती है?

संसदीय सरकार बिना शिक्षित जन–मत के कार्य नहीं कर सकती। सरकार और संसद को उचित रूप से कार्य करने के लिए जनता की राय की जानकारी अवश्य होनी चाहिए।

इसे स्पष्ट करने के लिए आवश्यक है कि शिक्षा एवं प्रचार–प्रसार में अन्तर किया जाये। प्रचार द्वारा सरकार, शिक्षा द्वारा सरकार से बिल्कुल भिन्न होगी। प्रचार का अर्थ है कि मामले के पक्ष में प्रस्तुतीकरण। शिक्षा का अर्थ है पक्ष एवं विपक्ष में सुनने के पश्चात् सरकार।

संसद में किसी मामलेन पर निर्णय करने के लिए नागरिकों के समक्ष उसकी अच्छाइयों एवं बुराइयों की जानकारी प्रस्तुत की जानी चाहिए, तब यह स्पष्ट है कि यहाँ दो पार्टियाँ होनी चाहिए। एक पार्टी मामले के पक्ष में तथा दूसरी पार्टी मामले के विपक्ष में प्रस्तुतीकरण दे, एक पार्टी की विद्यमानता से तानाशाही के अतिरिक्त कुछ नहीं होगा। तानाशाही से बचने के लिए दूसरी पार्टी आवश्यक है। यह एक गंभीर मामला है। लोगों को अच्छे कानूनों/नियमों की अपेक्षा अच्छे प्रशासन से मतलब है। कानून एवं नियम अच्छे होते हैं और उनका प्रबन्धन खराब हो सकता है।

नियमों एवं कानूनों का प्रबन्धन अच्छा या बुरा, इसके प्रबन्ध/लागू करने के लिए नियुक्त अधिकारी की स्वतन्त्रता पर निर्भर करता है। जहाँ केवल एक पार्टी होती है वहाँ अधिकारी राजनीतिक मुखिया, मंत्री की अनुकम्पा पर आश्रित होता है। मंत्री का अस्तित्व मतदाताओं की खुशी पर निर्भर करता है और प्रायः मंत्री मतदाताओं के लाभ के लिए अधिकारियों को गलत कार्य करने के लिए दबाव डालते हैं। यदि यहाँ कोई एक विपक्षी पार्टी होगी तो मंत्री के ऐसा कार्यों को प्रस्तुत किया जाएगा और ऐसी कुचेष्टा एवं अनिष्ठता को रोका जा सकेगा।

संभवतः अच्छे प्रशासन से लोग बोलने की स्वतन्त्रता एवं हिरासत बन्धन मुक्ति की आशा करते हैं। जब एक विपक्षी पार्टी होती है तो बोलने की स्वतत्रन्ता एवं कार्य करने की स्वतन्त्रता होती है। जब कोई विपक्ष नहीं होता तो खतरा होता है। ऐसी स्थिति में कोई भी प्रश्न नहीं कर सकता कि किसी व्यक्ति को बोलने से क्यों रोका गया है या अपनी नियति की ओर अग्रसर होने से क्यों रोका गया है।

यहाँ ऐसे आधार हैं कि विपक्षी पार्टी क्यों आवश्यक है। सभी देशों जहाँ कहीं संसदीय सरकार है वहाँ विपक्ष को राजनीतिक संस्थान के रूप में दर्जा मिला हुआ है।

कनाडा और इंग्लैण्ड में विपक्ष एक कानूनी मान्यता प्राप्त निकाय है और दोनों देश विपक्षी नेताओं को वेतन देते हैं ताकि वह अपने संसदीय दायित्व बिना किसी कठिनाई के निभा सकें।

अध्याय–4

पार्टी क्या है?

पार्टी सेना के समान है। इसके पास निम्नलिखित अवश्य होने चाहिए :

1. नेता जो कमाण्डर इन चीफ के समान हो
2. एक संगठन जिसमें सम्मिलित हो–

   (1) सदस्यता (2) ठोस रूपरेखा (3) अनुशासन
3. इसके सिद्धान्त एवं नीति होनी चाहिए।
4. इसके कार्यक्रम एवं कार्य योजना होनी चाहिए।
5. इसकी कुशलता और कूटनीति होनी चाहिए अर्थात् इसकी योजना होनी चाहिए कि अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कब क्या किया जाना चाहिए।

   साधारण शब्दों में यह मतदाताओं का कुछ उद्देश्य के साथ संघ है।

(1) पार्टी संगठन के गठन और विकास को प्रोत्साहित करना तथा इसके द्वारा पार्टी को पोषित करना।

(2) पार्टी के सिद्धान्तों को समाचार–पत्रों, व्याख्यानों, भाषणों, साहित्य आदि के द्वारा प्रचार–प्रसार करना।

(3) राजनीतिक पार्टी के गठन द्वारा संयुक्त राजनीतिक कार्यवाही के आधार के रूप में कार्य करने के लिए विधानमण्डल में संघ के सदस्यों को प्रतिनिधित्व करने को रिपब्लिकन पार्टी कहा जाये।

अध्याय–5

पार्टी के उद्देश्य एवं लक्ष्य

1. भारत के संविधान की प्रस्तावना में कहा गया है– हम, भारत के नागरिक सत्यनिष्ठा से भारत को प्रभुता सम्पन्न, प्रजातंत्रीय गणराज्य बनाने की शपथ लेते हैं और सभी नागरिकों को उपलब्ध करायेंगे :

न्याय– सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक

स्वतंत्रता– विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, निष्ठा और पूजा

समानता—हैसियत और अवसर और सभी मैं इसका प्रचार करूँगा, व्यक्ति के गौरव और देश की एकता को सुनिश्चित करते हुए मंत्री।

अपनी संविधान सभा में 26 नवम्बर, 1949 को एतद् द्वारा इस संविधान

को अपनाते, अधिनियमित एवं अपने आप पर लागू करते हैं।

प्रस्तावना में नियत उद्देश्यों एवं लक्ष्यों—न्याय, स्वतंत्रता, समानता और मैत्री को प्राप्त करने के लिए रिपब्लिकन पार्टी अपने उद्देश्य एवं लक्ष्य निर्धारित करेगी।

ये पार्टी के उद्देश्य एवं लक्ष्य हैं, सार्वजनिक मामलों के संबंध में पार्टी के कार्यकलाप निम्नलिखित सिद्धान्तों पर आधारित होंगे :—

1. सभी भारतीय न केवल कानूनी दृष्टि से समान होंगे बल्कि समानता के हकदार होंगे और तदनुसार समानता को पोषित करेंगे जहाँ विद्यमान नहीं है वंचितों के लिए इसका समर्थन करेंगे।
2. यह प्रत्येक को अपनी इच्छानुसार विकास करने के अधिकार के साथ अपने—आपको समर्थ बनाने के लिए प्रेरित करेगी तथा राज्य केवल एक साधन के रूप में होगा।
3. यह प्रत्येक भारतीय की स्वतंत्रता धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक को इस सीमा तक पोषित करेगी जब तक कि किसी अन्य भारतीयों या राज्य के हितों की सुरक्षा की आवश्यकता न उत्पन्न हो जाए।
4. यह सभी भारतीयों के समान अवसरों के अधिकार का समर्थन इस शर्त के साथ करेगी कि पूर्व मे जिनके पास अवसर नहीं थे, उनको पूर्व में अवसर उपलब्ध होने वालों से प्राथमिकता दी जाए।
5. यह राज्य को हमेशा अपने दायित्वों के प्रति जागरूक बनाये रखेगी ताकि प्रत्येक भारतीय अभाव रहित एवं भय रहित रहे।
6. यह स्वतंत्रता समानता और मैत्री को बनाये रखने का आग्रह करेगी और मनुष्य का मनुष्य द्वारा, वर्ग का वर्ग द्वारा तथा राष्ट्र का राष्ट्र द्वारा किये जा रहे दमन और शोषण से उद्धार के लिए प्रयास करेगी।
7. यह संसदीय प्रणाली की सरकार का समर्थन करेगी चूँकि इस प्रकार की सरकार जन—हित एवं व्यक्ति विशेष के हितों के लिए सर्वोत्तम होती है।

(23)

'बुद्ध एवं उसका धम्म'

तीन में से एक

'बुद्ध एवं उसके धम्म' की प्रस्तावना को डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने 15 मार्च, 1956 को अपने हाथ से अत्त्युतम ढंग से 13 लम्बे कागजों पर लिखा है। इसे पूरा करने के लिए उन्होंने तीन बार पेन बदला। संदेह के लिए कोई गुंजाइश न छोड़ते हुए इसे पूर्णतया स्पष्ट बनाने के लिए प्रस्तावना का निष्कर्षात्मक निम्न पैरा प्रस्तुत किया गया है और यह पैरा उन्होंने जो कुछ कहा है उसका साक्ष्य है :

मैं उल्लिखित करता हूँ यह तीन पुस्तकों में से एक है जो बौद्ध धर्म को उचित रूप से समझने के लिए एक समूह के रूप में है। अन्य दो पुस्तकें हैं 1. बुद्ध एवं कार्लमार्क्स और 2. प्राचीन भारत में क्रान्ति एवं प्रति–क्रान्ति। ये खण्डों में लिखी गई हैं। मैं इन्हें शीघ्र ही प्रकाशित करने की आशा करता हूँ।

15, मार्च 1956

हस्ता. / बी.आर. अम्बेडकर

रातू नानकचंद : डॉ. अम्बेडकर के अन्तिम कुछ वर्ष, पृ. 197

(24)

राजनीति में प्रवेश के लिए प्रशिक्षण विद्यालय

सम्पादकीय टिप्पणी

वर्ष 1962 में प्रो. के.टी. शाह द्वारा संसद में एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया कि क्या संसद और राज्य विधान सभा के सदस्यों के लिए कोई औपचारिक अर्हतायें होनी चाहिएं। सदस्यों ने अनुभव किया कि कुछ न्यूनतम शैक्षणिक अर्हतायें होनी चाहिएं। परन्तु ऐसे निर्धारण से बहत सारे लोग चुनाव लड़ने से वंचित हो जायेंगे। कानून मंत्री के रूप में डॉ. अम्बेडकर ने सुझाव दिया कि औपचारिक अर्हता की बजाय चुनाव लड़ने वालों को व्यावहारिक ज्ञान एवं उनमें शील होना चाहिए।

उनके भाषण का संबंद्ध सार निम्न प्रकार से हैं :

'बहरहाल, मैं जानता हूँ कि जिन्होंने उसके प्रस्ताव का समर्थन किया है, उसकी इच्छा को समझ लिया होगा और प्रो. शाह के प्रस्ताव के समर्थन में दिये विभिन्न भाषणों पर भी विचार कर लिया होगा, ऐसा प्रतीत होता है कि कई सदस्य संविधान में उल्लिखित के अतिरिक्त कुछ शैक्षणिक अर्हता जोड़ने के इच्छुक हैं। परन्तु इनमें से कोई भी निश्चित नहीं है। इनमें से किसी ने भी मुझे यह विचार नहीं दिया है ताकि प्रत्याशी कानूनी रूप से चुनाव लड़ने का हकदार हो जाए।

अब मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि इस सदन की सदस्यता के लिए शिक्षा ही एक मात्र अर्हता नहीं हो सकती। यदि मैं बुद्ध के शब्दों का प्रयोग करूँ तो उन्होंने कहा था कि मनुष्य को दो चीज़ों की आवश्यकता होती है पहली ज्ञान और शील के साथ होना चाहिए, जिसका अर्थ है चरित्र, नैतिक साहस, किसी प्रकार के प्रलोभन से मुक्त होने की समर्थता, अपने आदर्शों के प्रति सत्यनिष्ठा। मैंने प्रो. शाह के समर्थन में सदस्यों द्वारा दिये भाषणों में दूसरी अर्हता के संदर्भ में कुछ नहीं सुना है। परन्तु इसके बावजूद मैं स्वयं भी यह देखने का इच्छुक हूँ कि कोई भी सदस्य इस गरिमामयी सभा में प्रवेश नहीं करें जिसके पास शील पर्याप्त मात्रा में न हो, मेरे लिए उस मूल्यवान अर्हता को सुनिश्चित करने के लिए कोई साधन या पद्धति ढूँढनी अत्यन्त कठिन होगी।

शिक्षा के प्रश्न पर विचार करने पर मैं यह समझाने की इच्छुक नहीं हूँ कि मैं अज्ञानता को सदाचार मानता हूँ। यह बिल्कुल स्पष्ट होना चाहिए। मैं शिक्षा को समझता का दर्जा प्राप्त करने के लिए आवश्यक अर्हता मानता हूँ जो कि अपने दायित्वों का निर्वाह करने के लिए बहुत ही आवश्यक है। इस सदन में ऐसे लोग हैं यद्यपि वे शिक्षित नहीं हैं परन्तु जिस वर्ग का वह प्रतिनिधित्व करते हैं उनकी समस्याओं के समाधान के लिए उपायों का सुझाव देना भी आवश्यक है। भाषण देना तथा समस्याओं का खुले आम प्रचार करना एक आसान बात है परन्तु उपाय खोजना बहुत कठिन कार्य है। इसके लिए शिक्षा की आवश्यकता है और इसलिए पिछ़डी जातियों, अनुसूचित जातियों या कबीला क्षेत्रों की स्थिति में भी शिक्षा एक अत्यंत आवश्यक अवयव है। मैं इसे कैसे सुनिश्चित कर सकता हूँ? जब मैं इस सुझाव की जाँच कर रहा था कि यहाँ शैक्षणिक अर्हता के रूप में कुछ होना चाहिए, मैंने पाया है कि एक उक्ति जो सैद्धान्तिक या अकादमिक पहलू से बहुत अच्छी लगती है परन्तु इसके अन्य अनिष्टों की जानकारी के बिना उसे यथार्थ रूप नहीं दिया जा सकता। यह मेरी मुश्किल है। आप मानक या स्तर कहाँ पर नियम करेंगे? क्या आप कहेंगे कि इस सदन के सदस्यों की अर्हता केवल बी.ए. होनी चाहिए? मान लिया आप ऐसा कर देते हैं तो इसका परिणाम क्या होगा? सदस्य शायद जानते होंगे कि यहाँ अनेक लोग है जो शैक्षणिक और बुद्धिमता की दृष्टि से स्नातक से कहीं अधिक सक्षम हैं यद्यपि वे किसी कॉलेज या विश्वविद्यालय में नहीं गये। इनमें से कई ऐसे सदस्य होंगे जिन्होंने निजी रूप से अपने आपको शिक्षित बनाया है, जो कि बी.ए. या एम.ए. के समान सक्षम या बेहतर हैं क्या आप ऐसे लोगों को केवल इसलिए रोकने जा रहे हैं कि वे एक विश्वविद्यालय से प्रमाण–पत्र प्राप्त करने में समर्थ नहीं हो सके हैं। मेरे विचार से यह बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम होगा।

एक अन्य परिणाम पर विचार करें। इस देश में शिक्षा निम्नतम श्रेणी की है। इतना ही नहीं परन्तु कुछ कारण जिनकों हम सभी जानते हैं इस देश में शिक्षा सभी समुदायों में सार्वभौमिक रूप से नहीं फैली हुई है। यहाँ एसे समुदाय हैं जो उच्च शिक्षित हैं और यहाँ ऐसे समुदाय हैं जहाँ शिक्षा बहुत कम है। मान लिया आप बी.ए. या मैट्रिकुलेशन की शिक्षा को मानक बनाते हैं तो आपको इससे ऐसा नहीं लगता कि आप इस सदन की सदस्यता को कुछ लोगों का विशेषाधिकार बना रहे हैं। मुझे भय है यही परिणाम होगा। माना कि आप अपना स्तर कम कर देते हैं उदाहरण के लिए चतुर्थ स्तर या केवल साक्षरता तक कर देते हैं ताकि किसी समुदाय को इस सदन में अपना सदस्य भेजने के अवसर से वंचित न किया जाये। क्या इस अर्हता से कुछ भला होगा? यह किसी मूल्य का नहीं होगा। अतः मेरा आग्रह यह है कि यह एक

अच्छी बात है। परन्तु मैं किसी की भावना की दुहाई नहीं दूँगा कि सदस्य जो इस सदन में अपने विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं, शिक्षित होने चाहिए। परन्तु मैं इस समय यह नहीं कह सकता कि आप इसे कानूनी रूप कैसे दे सकते हैं। अतः मेरा सुझाव यह है कि यह बेहतर होगा कि यह मामला लोगों या सरकार चलाने वाली राजनीतिक पार्टियों, पर छोड़ देना चाहिए। मुझे इस संबंध में कोई संदेह नहीं है कि यदि राजनीतिक पार्टियाँ, अपने स्वयं के विशिष्ट उद्देश्यों के लिए इस मामले में ध्यान नहीं देती तो कुछ समय बाद लोग अपने आप इससे निपट लेंगे। लोग उन व्यक्तियों, जो इस सदन में अपने दायित्वों का उचित रूप से निर्वाह नहीं करेंगे को बने रहने तथा वापिस आने की स्वीकृति नहीं देंगे। वे परिणाम चाहते हैं। इस संबंध में मैं आश्वस्त हूँ कि वे अनुभव करेंगे कि केवल कर्त्तव्य के माध्यम से ही वह इस उद्देश्य को प्राप्त कर सकते हैं कि इस सदन में अच्छे व्यक्तियों को भेजा जाये। मेरे विचार से यह उपयुक्त रहेगा कि मामला लोगों पर छोड़ दिया जाना चाहिए''।

डॉ. अम्बेडकर इस बात से भली–भाँति विदित थे कि यद्यपि चुने हुए प्रत्याशियों में ज्ञान और शील हो सकते हैं परन्तु तब भी उनसे संसदीय विधायी पद्धतियों में अवश्य प्रशिक्षित होना चाहिए। उसके मस्तिष्क में घूमते हुए इस विचार से उसने 'राजनीति में प्रवेश के लिए प्रशिक्षण विद्यालय' स्थापित करना प्रस्तावित किया।

भारत में प्रजातंत्रीय शक्तियों को बल देने एवं प्रस्तावित रिपब्लिकन पार्टी में युवा वर्ग को लाने के लिए डॉ. बी.आर. अम्बेडकर ने वर्ष 1956 में राजनीति में प्रवेश के लिए प्रशिक्षण विद्यालय स्थापित किया। डॉ. अम्बेडकर निदेशक थे और श्री एस.रेगी रजिस्ट्रार थे। ये विद्यालय उनके लिए था जिन्होंने विधान मण्डल में जाने की आकांक्षा संजोयी हुई थी और यह देश में अपनी किस्म का पहला विद्यालय था। उन्होंने आग्रह किया कि नवागन्तुक को भाषण कला अवश्य विकसित करनी चाहिए ताकि विभिन्न विषयों जैसे अर्थशास्त्र, राजनीति, सामाजिक एवं संसदीय पद्वति पर अपने विचार व्यक्त कर सके। वह एक ऐसे प्रधानाचार्य की तलाश में थे जिसका व्यक्तित्व अच्छा हो, विषय में पारंगत हो तथा आकर्षक व्यक्तित्व पर भाषण दे सके। वह मानते थे कि विद्यालय की प्रतिष्ठा अधिकतर अध्यापक की समर्थता और वाक् क्षमता पर निर्भर करती है। विद्यालय 15 विद्यार्थियों के साथ प्रारंभ हुआ और एक जुलाई 1956 से मार्च, 1957 तक चला

डॉ. अम्बेडकर ने दिसम्बर, 1956 में इस विद्यालय के विद्यार्थियों को भाषणकला पर व्याख्यान देने की योजना बनाई थी। परन्तु असामयिक मृत्यु के कारण वह विद्यालय में नहीं आ सके।

———समाप्त——— 4.6.16